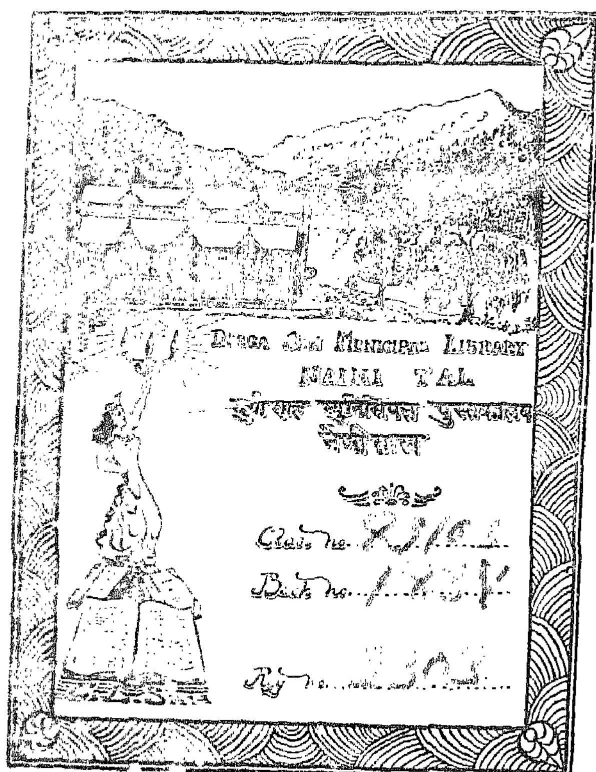
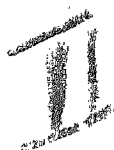


बयालीस के बाद

अर्थात्

विसर्जन



लेखक

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव

बी० ए०, एल० एल० बी०

[रचियता—'विदा' 'विकास' 'विजय' 'बयालीस' आदि उपन्यास तथा 'आशीर्वाद' कहानी संग्रह]

आत्माराम एण्ड सन्स . दिल्ली

रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम संस्करण
मूल्य सजिल्द छः रुपये

मुद्रक
यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

बयालीस के बाद

१

"पुष्पों का पराग और सुरभि लेकर संसार में पवन अवतीर्ण हुआ है—और प्रेम की कोमलता और स्निग्धता को लेकर स्त्री जाति का जन्म हुआ है। दोनों का बल अतुलनीय और निःसीम है, फिर भी दोनों मृदुल हैं, नवनीत-से मधुर हैं और जीवन के लिए आवश्यक हैं।"

उपरोक्त वचनों को रामनाथ ने पुनः अपने विचारों की कसौटी पर रगड़ना शुरू किया। इसके आगे वह सोच न सका। वह अलसाई हुई आँखों से अपनी जेल की कोठरी की शून्यता देखने लगा। सामने वही चिरपरिचित तसला अपने हृदय की भावनाओं को लिये हुए पड़ा था। उसने उसे उठाकर अपने सिर पर लिया। वह मुस्कराने लगा अपनी मूर्खता पर, और फिर उसको क्षुब्ध मन से कोठरी के एक कोने में फेंक दिया। निर्जीव लोहे के टुकड़े में जैसे जीवन का संचार हुआ हो—थोड़ी देर तक झनझनाकर वह फिर मृतक-सा नीरव हो गया।

तसले की झनझनाहट ने सतर्क प्रहरी को उसकी कोठरी के सामने लाने के लिए बाध्य किया। प्रहरी ने सीखचों से कोठरी के भीतर की अवस्था देखी, और फिर कहा:—"कैदी, क्या कुछ मिजाज-पुर्सी कराने की इच्छा है। जानते हो बर्तन सरकारी हैं, टूटने पर तुम्हारी हड्डियां भी टूट सकती हैं।"

रामनाथ ने एक शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखा, और अपना सिर घृणा से घुमा लिया। प्रहरी ने फिर कहा:—"मैं तुम्हारी सारी गति-विधि पर अपनी दृष्टि रखता हूँ, यह ध्यान रहे। इस बार तो मैं माफ करता हूँ, किन्तु अगर दुबारा यह हरकत देखी तो समझ लेना तुम्हारी खैर नहीं है।"

रामनाथ ने म्लान हँसी के साथ उसकी ओर उपेक्षा से देखा।

प्रहरी चला गया।

रामनाथ सोचने लगा:—"यह जीवन बुरा तो नहीं है। विचार करने का कितना समय मिलता है। नीरवता—अटूट शांति कितनी सुखकर है। संसार का नैराश्य क्रंदन, उसकी पीड़ा, उसका पैशाचिक गान यहाँ तो कुछ नहीं है। गरीबों की त्राहि-त्राहि, पूँजीपतियों की विलास-क्रीड़ा—इन सबसे तो मुक्ति है। मूत्र और पीप के रेलों से भरी हुई बस्तियों से यह स्थान सर्वथा मुक्त है। उन्मुक्त पवन है, जिसमें स्फूर्ति है, प्राण हैं, जीवन है, स्वच्छ जल है, जिसमें शक्ति है, प्रेरणा है और उत्साह है, सूर्य का प्रकाश है, जिसमें प्रखरता है, तेजस्विता है और

स्वतन्त्रता है, नीलिमा से ओत-प्रोत विस्तृत आकाश है, जिसमें कमनीयता है, विमुग्धता है, और स्वच्छंदता है, श्यामल मेदिनी है, जिसमें स्निग्धता है, रस है, गन्ध है। वही सब-कुछ है जो बाहर है, परन्तु जेल की दीवारें क्या बाहर रखने में कृतकार्य हुई हैं ? फिर यहाँ आने के लिए लोग क्यों नहीं तैयार होते। यहाँ पर विलासिता का ताण्डव नृत्य नहीं है। समष्टिवाद का क्या इससे कोई उत्कृष्ट उदाहरण मिलेगा ? सभी कैदी हैं, सभी बराबर हैं। सबके लिए एक-सा भोजन, एक-सा परिधान, और एक-सा ही नम्बर है।"

रामनाथ ने सतर्क होकर अपनी विचार-धारा संकुचित की। वह शून्य दृष्टि से फिर वातायन के बाहर झिलमिलाती हुई दीप-शिखा को देखने लगा। बाहर सर्वत्र नीरवता का अटूट साम्राज्य था, जो कभी किसी प्रहरी की पद-चापों से टूट जाता, किन्तु दूसरे ही क्षण फिर वही निस्तब्धता छा जाती। आकाश तिमराच्छन्न था, रामनाथ को मुस्कराते हुए तारे दृष्टिगोचर नहीं होते थे। इसी समय सहसा बारह बजने का घंटा झनझनाकर वायु को प्रकम्पित करने लगा। पहरा बदलने की हलचल के बाद फिर वही शांति विराजने लगी।

रामनाथ अपनी पृथ्वी की शैया पर लेट गया। उसने अपने नेत्र बन्द कर लिये। निद्रा का आह्वान करने लगा, किन्तु वह अपने प्रयास में सफल नहीं हुआ। उसके हृदय के भीतर का भयंकर युद्ध और भी भीषणता पकड़ने लगा। वह पुनः विचारने लगा—"मैं कौन हूँ, एक क्षुद्र शक्ति वाला मानव। संसार में क्यों अवतीर्ण हुआ, दुःख भोगने के लिए। और·······और पूँजीपतियों की विलास-लीला का शिकार होने के लिए। मैंने क्या अपराध किया है, गरीब और निर्धन माता-पिता की सन्तान हुआ हूँ, और······और अपनी इज्जत बचाने का प्रयत्न किया है। आह, वह घटना भूलती नहीं, जितना भूलने की कोशिश करता हूँ, उतनी ही वह प्रखर होती है। आज से दस दिन पहले की बात है, मैं मिल से वापस आ रहा था, अनेक अरमान साथ में थे। सोच रहा था कि 'वह' मेरी प्रतीक्षा में बैठी द्वार की ओर बार-बार देख रही होगी। मैं मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था, क्योंकि उस दिन पहला वेतन मिला था। गृहस्थी का स्वर्ण-जाल गूँथता हुआ घर आया। घर का दरवाजा खुला हुआ था, देखते ही माथा ठनका। यह अनहोनी बात कैसी ? मुझको देखते ही पड़ोसियों ने घेर लिया। मैं अवाक् होकर उनकी ओर देखने लगा। वे सब पत्थर की तरह चुप थे। मैं घर के भीतर घुसा, पड़ोसियों की भीड़ मेरे साथ-साथ चली आई, आज से पूर्व ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।" पड़ोसियों ने कहा:—"किसको ढूँढ़ते हो, वह तो गई, आज उसका भाग्योदय हुआ है। वह तो अब महलों में रहेगी, इस झोपड़ी में नहीं।" मेरी आँखों से ज्वाला निकलने लगी। मैंने चिल्लाकर कहा:—"चुप रहो।" वे हँसे और उनमें से कितने ही चले गए। उनमें से एक ने फिर कहा:—"गुस्सा शांत करो वह वहाँ गई

है जहाँ तुम्हारा कोई उपाय नहीं चल सकता। वह हमारे मिल-मालिक के पास गई है। आज तीसरे पहर एक मोटर आई, उनमें दो स्त्रियाँ और चार लठैत जवान थे। हमारे अहाते के सामने मोटर खड़ी कर वे जवान तुम्हारे घर के सामने खड़े हो गए, और औरतें घर खुलवाकर अंदर गईं। दूसरे ही क्षण वे तुम्हारी स्त्री को लेकर मोटर में बैठ गए। हम लोग कोई उपाय न कर सके। पलक झपकते ही यह सब हो गया। उनमें से मैं एक को पहचानता हूँ, वह हमारे मालिक का पछैयाँ नौकर था, जिसने यह लिफाफा तुमको देने के लिए दिया है।" "मैंने काँपते हुए हाथों से वह ले लिया, नहीं छीन लिया। उसको फाड़कर देखा, उसमें से नोटों का एक पुलिंदा गिर पड़ा। मेरी सहन शक्ति ने जवाब दे दिया। मैंने ठोकरों से अपनी स्त्री के मूल्य को बिखेर दिया। और विक्षिप्त-सा वहाँ से निकल भागा।"

रामनाथ क्षण-भर के लिए स्तब्ध हो गया। पुरानी स्मृति सजग होकर चुटकियाँ लेने लगी। वह तड़पकर उठ बैठा। किन्तु बैठने में उसका उद्वेग कम नहीं हुआ। वह फिर कहने लगा:—"ईश्वर ने संसार में पूँजी की सृष्टि क्यों की? क्या पूँजी का जन्म पूँजी-हीन व्यक्तियों को मारने के लिए हुआ है। पूँजी की उत्पत्ति कहाँ से होती है? क्या हमारे स्वत्वों—अधिकारों को कुचलकर हमारे रक्त-मांस में उसका जन्म निहित नहीं है? उस पूँजीपति ने मेरी स्त्री को क्या निःशक्त की स्त्री नहीं समझा? मैंने उसको मारकर कौन-सा अपराध किया है। क्या मैंने अन्याय किया है? यदि यह अन्याय है तो न्याय किसको कहेंगे? फिर भी मैं कैदी हूँ। मैं जानता हूँ मेरे लिए फाँसी का फंदा निश्चित है, उस पर झूलने के लिए मैं तैयार हूँ। किन्तु उर्मिला का क्या होगा। उस पर वह पापी विजय नहीं पा सका। वह अपने को उसके हाथों में समर्पण करने के पहले अट्टालिका से गिर पड़ी। किन्तु फिर भी मरी नहीं। उस समय मैं भी वहाँ पहुँच गया, मेरे सामने ही मेरे शत्रु ने उसको छूकर भ्रष्ट करना चाहा। मैंने उन्मत्त की भाँति उस पर वार कर दिया, और तेज चाकू से उसकी पाप-लीला का अंत कर दिया। इसी समय 'उसकी' चेतना लौटी, उसने आँख खोलकर मेरी ओर देखा। आह, उस दृष्टि में कितना प्रकाश था। मैं उसकी ओर झपटा, चाहा कि हृदय से लगा लूँ, किन्तु कई सशक्त हाथों ने मेरी गति अवरुद्ध कर दी, और मैं बन्दी बना लिया गया। मैं नहीं जानता कि इस समय उर्मिला कहाँ है? किसी अस्पताल में होगी।" रामनाथ के नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी। वह अस्थिर हो गया। जेल की कोठरी का अंधकार उसको शांत करने की चेष्टा करने लगा। वायु के एक-आध थपेड़े उसकी अग्नि को बुझाने का प्रयत्न करने लगे। अर्द्ध रात्रि की नीरवता उसकी पीड़ा को अपने उदर में रख लेने का प्रयास करने लगी।

रामनाथ फिर अस्फुट स्वर में कहने लगा:—"मैं एक कुलीन और शिक्षित

घर का मनुष्य हूँ। मेरे माता-पिता ने मुझको शिक्षित किया, किन्तु डिग्री लेने के पहले ही उनका देहान्त हो गया। निरुपाय होकर कालिज छोड़ना पड़ा। बेकारी में दिन कटने लगे। नौकरी की तलाश में सड़कों पर पूँजीपतियों की 'नहीं-नहीं' सुनते-सुनते सुबह से शाम हो जाती। रात्रि को क्लांत होकर घर पहुँचता, उर्मिला सहास्य मेरा स्वागत करती। वह आशा से विभोर रहती, किन्तु मेरी नैराश्यपूर्ण लम्बी साँस मेरी असफलता का परिचय दे देती। किन्तु उसके माथे पर ज़रा शिकन न आती, उसकी आँखों का प्रकाश वैसी ही ज्योति से ओत-प्रोत रहता, और मैं क्षण-भर के लिए सब भूल जाता। घर की पूँजी निःशेष हो जाने पर फाकों पर नौबत पहुँची, लेकिन फिर भी उसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। लखनऊ में मेरा रहना असम्भव हो गया। वहाँ मजदूरी भी न मिलती थी, और वास्तव में वहाँ कुछ झेंप भी आती थी। हम लोग कानपुर चले आये, और मैं 'वीनस मिल' में साधारण मजदूर की श्रेणी में भरती हो गया। मजदूरों की बस्ती में एक छोटी-सी कोठरी लेकर उर्मिला के सुख का वार-पार न रहा। वह कहती कि अब हमें कोई चिन्ता नहीं, तीस रुपयों में हम सानन्द अपना जीवन व्यतीत कर लेंगे। आह, उसमें कितनी आशा थी, कितनी उमंगें थीं, और कितना भोलापन था। किन्तु भगवान् को वह भी न भाया।" 'भगवान्' शब्द ने फिर उसे चौंका दिया। वह विक्षिप्त-सा कहने लगा :—"भगवान् इस निरर्थक शब्द को किसने जन्म दिया। भगवान् को गढ़ने वाला कौन है? मानव जाति के कुसंस्कार और अज्ञान, भीरुता और कापुरुषता, अंध विश्वास और पुरुषार्थहीनता, अकर्मण्यता और मूढ़ता के समूह का नाम ही तो भगवान् है। भगवान् का अस्तित्व केवल मेरे-जैसे गरीबों के लिए है, पूँजीपतियों के लिए नहीं। उसका बल और शौर्य हमारे-जैसे निराधार निःशक्त मनुष्यों के उत्पीड़न में ही प्रकाशित होता है। उसका विकास हमारी कमजोरी में निहित है। उसका जीवन हमारे विनाश में है। उसका अस्तित्व हमारे रुदन में है। यदि कहीं वास्तव में उसका अस्तित्व है, तो वह ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा पूँजीपति है। यदि उसमें किसी की भलाई करने की शक्ति है, तो वह सिर्फ पूँजीवादियों की सहायता करता है। वह भी उनके जैसा अत्याचारी, अनाचारी और निरंकुश है। हम गरीबों के लिए भगवान् नहीं है, और यह अच्छा है कि वह नहीं है।" "अच्छा मैंने क्या अपराध किया था जो भगवान् ने मेरे लिए यह सजा तजवीज की। मैंने किसी का अनिष्ट नहीं किया था। जैसे-तैसे अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। नरक के कीड़ों से भी हीन जीवन में अपने को सुखी समझता था। किसी से न तो द्वेष था और न ईर्ष्या थी। किसी की हानि नहीं की थी। हमारे मिल-मालिक वामनदास को क्या अधिकार था कि वह मेरे घर पर डकैती करवाता और मेरी स्त्री का अपहरण करता? वास्तव में अपराधी वह है या मैं। मैं आज जेल की इस कोठरी में विचाराधीन

कैदी होकर बैठा हूँ, जिसकी सजा मृत्यु होगी, और मेरी स्त्री मरणासन्न अवस्था में किसी अनाथों के अस्पताल में दम तोड़ रही होगी। वामनदास मेरी शक्ति के परिचय से अवश्य काल-कवलित हुआ, किन्तु आज राज-शक्ति उसका साथ दे रही है, जो इस बेबसी में मेरा व्यंग्य करने और मुझे विद्रूप करने में किञ्चित् भी संकुचित नहीं होती। वामनदास का परिवार सुखी है, सम्पन्न है। उसके जीवन के अतिरिक्त और कोई हानि नहीं हुई। और अगर मैं उसको दण्ड नहीं देता, तो अवश्य वह भी अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों की भाँति मेरे अपमान पर गर्व से उन्नत मस्तक होकर गौरव प्रकाशित करता। यह है पूँजी की सत्ता, उसकी अजेय शक्ति, और उसका अमिट गर्व।"

"मेरे बाद उर्मिला का क्या होगा? क्या इस जीवन में उससे पुनः साक्षात् होगा? उसकी अवस्था कैसी है, कौन जाने। मुझे यह भी नहीं मालूम कि वह अभी तक जीवित है या मर गई। यदि वास्तव में उसकी मृत्यु हो गई हो तो उसमें उसकी मुक्ति है। यों भी उसका जीवित रहना असम्भव है। हम दोनों की इहलीला का अन्त अवश्यम्भावी है। चलो अच्छा हुआ, इस नारकीय जीवन से, रौरव ज्वाला से छुटकारा तो मिला। मृत्यु का विचार पूँजीपतियों के लिए चाहे भले ही त्रासजनक हो, किन्तु हम-जैसे नरक में बिलबिलाते कीड़ों के लिए तो मुक्ति का संदेश है। मैं मृत्यु का स्वागत करता हूँ, उर्मिला भी उसके स्वागत-आयोजन में व्यस्त होगी। आह, कितनी शांति मिलती है। कुछ दिनों में मेरा फैसला सुनाया जायगा, और उपहार में मृत्यु की शांति मिलेगी। वह क्षण मेरे जीवन का कितना सौभाग्यमय होगा। यह पूँजीपतियों के भगवान् का न्याय है।"

रामनाथ विक्षिप्तों की भाँति हँस पड़ा। उसके हास्य के व्यंग्य ने उस अंधकार को भी कम्पित कर दिया। पूर्व दिशा से चन्द्रमा संभ्रम काँपता हुआ झाँककर अपनी पीत आभा से रामनाथ की ओर आश्चर्य से देखने लगा, और वक्र दृष्टि से कम्पित तारों से कुछ कहने लगा:—"सावधान, यह पागल का प्रलाप नहीं है, शोषितों की चेतावनी है।" समीर उसकी मूर्खता पर खिलखिलाकर हंसने लगा, और आकाश अपने विचार में मग्न होकर रामनाथ की भाग्यलिपि पढ़ने का निष्फल प्रयत्न करने लगा।

इसी समय तीन बजने का घंटा घन नाद से बज उठा। रामनाथ चकित होकर सुदूर निष्प्रभ प्रकाश-दीप को देखने लगा। विक्षिप्त वायु अब भी अपने हास्य में तल्लीन था।

२

वामनदास के मुकदमे में जितनी दिलचस्पी मजदूरों की थी, उतनी ही पूँजी-पतियों को थी। यह एक निर्णय—दोनों के जीवन के अधिकारों का था। मजदूर अपने संगठन को जीवन देने की शक्तिमय उत्तेजना इस बलिदान के द्वारा

खोज रहे थे, और पूँजीपति अपनी निरंकुशता के ताण्डव नृत्य के प्रमाणपूर्ण अधिकार का स्पष्टीकरण ढूँढ़ने में व्यस्त थे, और परम्परा से पुरुषों द्वारा कुचली हुई स्त्री जाति, वर्ग और श्रेणी भूलकर अपनी जाति पर किये गए अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए आकुल थी।

सेशन जज ने रामनाथ की ओर देखते हुए पूछा:—"क्या तुम किसी गवाह से दुबारा जिरह करना चाहते हो।" रामनाथ के उत्तर देने से पूर्व ही वकीलों की कुर्सी से बैरिस्टर मिस कनकलता वामनदास ने उठकर कहा:— "अभियुक्त की तरफ से मैं पैरवी करूँगी।" कहते हुए उसने वकालतनामा रामनाथ के हस्ताक्षरों के लिए कठघरे की ओर बढ़ा दिया।

न्यायालय में एक क्षीण किन्तु तीव्र रव हुआ, और सबके नेत्र मिस कनक की ओर स्वतः उठ गए। सेशन जज मिस्टर इमाम तैयब जी की भी आँखें विश्वास न करने के लिए ज़िद करने लगीं। पिता के हत्याकारी की ओर से पैरवी करने वाली उसकी एक-मात्र संतान हो सकती है? यह विचार किसी के स्वप्न में भी अनुमान-परिधि से सर्वथा परे था। मजदूर-प्रतिनिधियों ने चिल्लाकर कहा:— "धोखा है। रामनाथ हस्ताक्षर न करना।"

रामनाथ ने चकित दृष्टि से कनक की ओर देखा—उसका मुख धीरता की प्रतिच्छाप से दृढ़ था। उसने मजदूर-प्रतिनिधियों की ओर एक विकल दृष्टि से देखा, और दूसरे ही क्षण अपने हस्ताक्षर कर दिये।

मिस कनक ने वह वकालतनामा जज की मेज पर रखते हुए कहा:— "मेरा व्यवहार देखकर आप और जनता चकित हैं—मैं भी स्वयं चकित हूँ, किन्तु मेरा कर्त्तव्य, मेरी जाति की बेबसी और कमजोरी मुझे बाध्य कर रही है कि मैं सृष्टि के आदि से स्त्रियों पर होते हुए अत्याचार के प्रति अपनी क्षीण आवाज उठाऊँ। क्षीण वह भले ही हो, किन्तु उसमें दृढ़ता है, जिसका परिचय केवल इसी बात से लग सकता है कि वह मेरे पिता के प्रति है।"

वामनदास के सम्बंधियों में कानाफूसी होने लगी। पुलिस किंचित् हताश होकर उसकी ओर देखने लगी।

रामनाथ कई उलझनों का पुञ्ज बना हुआ, मुग्ध दृष्टि से अपने फाँसी के फन्दे वाली रस्सी में किंचित् शिथिलता का अनुभव करने लगा।

मिस कनक तत्परता और तीव्रता से जिरह करने लगी। बने हुए मुकदमे की धूल उड़ने लगी। गवाह भी इस उलट-फेर में, विस्मय में, सिखाई हुई बातें भूल गए। सत्यता प्रकट होकर स्वर्ण की भाँति चमकने लगी। कुछ देर पहले के चश्मदीद गवाह विचलित हो गए, और वे कहने लगे कि उन्होंने कोई कृत्य अपनी आँखों से होते नहीं देखा था। पब्लिक प्रासीक्यूटर दाँत पीस रहा था, दर्शकों की गैलरी में बैठे हुए सब इंस्पैक्टर पुलिस कुर्सी पर बार-बार उठ-बैठ

रहे थे। मिस कनक की जिरह-शक्ति उस दिन अपनी जाति का आशीर्वाद ग्रहण कर चुकी थी, वह अजेय थी।

मजदूर वर्ग जिसने 'धोखा' की आवाज लगाई थी, सबसे अधिक प्रसन्न था। वह एक विचित्र परिवर्तन था। जिसके प्रति उनके मन में द्वेष का उन्मुक्त प्रवाह था—और जो उनमें से पिता के वैर का प्रतिशोध उसकी सन्तान मिस कनक से लेने के लिए विचार कर रहे थे, वही स्वतः अदालत के जल-पान के लिए उठ जाने के अवकाश में उसकी पद-धूलि को लेकर अपने मस्तक पर उस भक्ति के साथ रखने लगे, जैसे एक पुजारी अपने इष्ट देव की चरण-रज धारण करता है। घृणा, तिरस्कार और उपेक्षा का विकृत वायु-मंडल अपनी विषाक्त ज्वाला से स्वर्गीय वामनदास के वर्गीय मित्रों को ओत-प्रोत कर भीषण प्रवाह जैसे वेग से उमड़ असहाय रामनाथ को प्लावित कर अब मिस कनक की ओर अग्रसर हो रहा था।

सेठ पोपटलाल ने चिल्लाकर कहा:—"यदि मैं वामनदास होता तो ऐसी सन्तान के पैदा होते ही दूध की नहीं विष की बूँदें डाल दी होतीं।"

लाला कञ्चनलाल ने अपनी पगड़ी सँभालते हुए कहा:—"ऐसी सन्तान से तो निस्सन्तान होना कहीं श्रेयस्कर है।"

चमड़े के व्यापारी और प्रसिद्ध मिल-मालिक अब्दुल मजीद ने दाँत पीसते हुए कहा:—"कैंची की तरह चलती हुई जबान को राख लगाकर खींच लेने से हमारे अजीज दोस्त वामनदास के लिए फख्र की बात होगी। उनकी रूह खुशी से नाच उठेगी।"

भक्त और पुजारी का 'ट्रेड मार्क' अपने मस्तक पर लगाये हुए रामानुजी सेठ नेमीचंद ने अपनी जिह्वा को दाँतों से दबाते हुए कहा:—"आह, कैसा कलिकाल आया है कि आजकल बाप के हत्याकारी की वकालत उसकी सन्तान करती है। क्या इसी दिन के लिए वामनदास ने इंगलैंड भेजकर कनक को बैरिस्टर बनाया था? आज पितृ-ऋण का खाता कनक ने बराबर कर दिया।"

व्यंग्यमयी कटु आलोचना की झंकार कनक के कानों में बराबर आ रही थी। जब आज प्रातःकाल उसने अपने हृदय के आह्वान को कार्य में परिणत करने के लिए अपने को तैयार किया था, तब उसने इससे भी प्रखर विरोध का चित्र खींच लिया था। अपने विरोध की समस्त भावनाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए उसने दृढ़ता से कहा:—'कर्त्तव्य कर्त्तव्य है।' पिता और पुत्री का सांसारिक सम्बन्ध कर्त्तव्य का गला नहीं घोट सकता। यदि एक पुरुष मेरे ऊपर अत्याचार करता है, तो क्या मुझको अधिकार नहीं है कि उसके निराकरण में अपनी सारी शक्ति लगा दूँ। और यदि वह आततायी पुरुष मेरा पिता हो, और मेरी जगह पर मेरी एक निर्बल बहन हो तो क्या मेरे निर्धारित कर्त्तव्य में कोई अंतर पड़

सकता है ? अंतर उपाय में नहीं, किन्तु तीव्रता और वेग में हो सकता है। वह दया जो एक अनजान के प्रति प्रस्फुटित होने में संकुचित न होती, अब अपने एक निकट सम्बंधी के प्रति सर्वथा शुष्क हो सकती है—और प्रतिशोध के दाँतों का पैनापन कुछ अधिक तीव्र और प्रखर हो सकता है। पिता उस दया का पात्र कदापि नहीं, जो एक अनजान के लिए है। अभागिनी उर्मिला के प्रति मेरे पिता द्वारा किये हुए अत्याचारों की वास्तव में यदि कोई मार्जना है तो वह केवल यही है कि मैं उसके पति को निर्दोष प्रमाणित करूँ। मेरे पिता का खून नहीं हुआ है—उनकी पापाकीर्ण अभिसन्धियों का उनके ही अस्त्रों से उचित और अनुकूल प्रत्युत्तर मिला है। न्याय के खोखले आवरण की धज्जियाँ उड़ाना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है—और अधिकार है। इस अवसर पर मेरा पिता पिता नहीं आततायी है, मेरी स्त्री जाति का शत्रु है, हमारी जाति को खिलौनों की तरह खेलने वाला एक खिलाड़ी-मात्र है।" न्यायाधीश के प्रत्यागमन पर न्याय का नाटक पुनः आरम्भ हुआ। कनक की जिरह से वादी सरकार के सारे मुख्य गवाह बिगड़ गए। मिस्टर तैयबजी की आँखें किंचित् भय के साथ पुलिस की ओर अपने-आप उठ गईं। जिरह समाप्त होने के बाद अदालत दूसरे दिन के लिए उठ गई।

कनक सबकी चित्र-विचित्र दृष्टियों का केन्द्र बनी हुई अपनी मोटर पर सवार होकर घर चलने को उद्यत हुई, किन्तु उमड़ता हुआ गरीब जनता का प्रवाह उसकी गाड़ी का मार्ग अवरुद्ध करने लगा। यह कैसा स्वागत था। आज उसी के मजदूर उसकी जय-जयकार कर रहे थे, जो कुछ घंटे पहले अकथ्य बातें कहने में संकुचित न होते थे।

कनक ने हाथ जोड़कर उनके नेता से कहा:—"कृपा करके मेरे जाने का मार्ग उन्मुक्त करा दें, मैं विचारने के लिए अवकाश चाहती हूँ।"

उसकी प्रार्थना या आज्ञा ने वही कार्य किया जो एक सेना-नायक की आज्ञा उसके सैनिकों के लिए करती है। क्षण-मात्र में उसका मार्ग उसी के जय-घोष के साथ खुल गया।

वायु का एक झोंका झुककर उसके कानों में कहने लगा:—"वह आज से शोषितों की नेतृ है।" मजदूर भी आकाश कम्पित करते हुए जय-नाद द्वारा समीर के कथन का अनुमोदन करने लगे।

३

उर्मिला मलिन दृष्टि से नवागन्तुका की ओर देखकर उसको पहचानने का प्रयत्न करने लगी। नवागन्तुका कनक थी।

कनक ने उसके समीप ही अस्पताल के एक स्टूल पर बैठते हुए कहा:—"बहन, तुम मुझे नहीं पहचानतीं। शायद आज से पहले कभी देखा भी न हो।"

उर्मिला प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती रही।

कनक कहने लगी:—"मैं वकील हूँ, तुम्हारे पति की पैरवी करती हूँ।"

उर्मिला ने उठने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पीड़ा ने उसकी गति अवरुद्ध कर दी।

कनक ने सप्रेम उसका हाथ पकड़कर कहा:—"बहन, तुम व्याकुल न हो, तुम्हारा पति निरपराध है। मुझे विश्वास है कि मैं उसे छुड़ा सकूँगी।"

उर्मिला के नेत्रों से समवेदना के सहचर आँसू निकलने लगे।

उसने अश्रु-सिक्त कंठ से कहा:—"किन्तु हमारे पास रुपया नहीं है।"

उसकी असमर्थता आँखों की राह से बहने लगी।

कनक ने उसके समीप अपना स्टूल खींचते हुए कहा:—"मैं रुपयों के लिए तुम्हारे पति की पैरवी नहीं करती, किन्तु अपने पिता के भयानक अत्याचार का प्रायश्चित्त कर रही हूँ। बहन, तुम्हारे सामने मेरा मस्तक शर्म से झुका जा रहा है, जब मैं यह कहती हूँ कि तुम्हारी इस अवस्था का कारण मेरा ही पिता है।"

कनक की उत्तेजना प्रखर होने लगी और उर्मिला विस्मय-विस्फारित!

कनक ने उसके समीप खिसकते हुए कहा:—"बहन, हम स्त्री हैं। हमारी और तुम्हारी प्राकृतिक अवस्थाएं बिलकुल एक-सी हैं, तनिक भी विभिन्नता नहीं है। हमारे-तुम्हारे हृदय की आकांक्षाएं, भावनाएं, विचार और शारीरिक गठन तथा प्रवृत्तियाँ एक हैं—सर्वथा एक हैं। पुरुष जाति ने हमको आश्रित बनाकर दास, गुलाम, और इससे भी अधिक हेय यदि कोई शब्द है, तो वह बना रखा है। हमारा जन्म, हमारा पालन-पोषण और हमारा अन्त उनकी स्वार्थ-पूर्ति के लिए है। उनकी ऐसी सामाजिक व्यवस्था है कि हम जब से पैदा होती हैं, तब से अन्त तक पुरुष खिलाड़ियों की खेल होकर रहती हैं। वे हमें रोटी के टुकड़े फेंकते हैं, तो हम कुत्तों की तरह खाकर उनके पीछे दुम हिलाती घूमती हैं। वे हमको कपड़ों और गहनों से सजाते हैं तो हमारे भोग के लिए नहीं, अपने भोग के लिए—जैसे लड़कियाँ गुड़ियाँ सजाती हैं—केवल अपनी आँखों की तृप्ति के लिए। वे हमारा पोषण इसलिए करते हैं कि हमसे वे अपने ही-जैसे उद्दण्ड, उच्छृंखल और नीति तथा शठता के उज्ज्वल उदाहरण पुरुष सन्तान पैदा करना चाहते हैं, जिसको अपने एकाकी अस्तित्व में वे पैदा करने से सर्वथा असमर्थ हैं। स्त्री जाति कितनी असहाय है, वह अपने रक्त-मांस से उस सन्तान को जन्म देती है जो उसका घातक हत्याकारी है। हमें दी जाने वाली रोटियों के व्याज में यद्यपि हम अपने हृदय का रक्त देकर उनकी सन्तान का पोषण करती हैं—फिर भी अन्तिम घड़ियों तक उनके ऋण से मुक्त नहीं होतीं और ये पुरुष 'शाईलाक' की भाँति हमारे हृत्पिंड के मध्य भाग का एक पौण्ड टुकड़ा लेने के लिए अपने तेज चाकू हमेशा सान-पर चढ़ाते रहते हैं।"

कनक का कण्ठ भावावेग के कारण अवरुद्ध हो गया।

उर्मिला मुग्ध और चकित होकर उसकी ओर देख रही थी।

उसने शांत कण्ठ से उत्तर दिया:—"मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

कनक ने दया-भरी दृष्टि से-जैसी एक दीन के लिए एक सम्पन्न व्यक्ति के हृदय में होती है—देखा। फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा:—"बहन, यही तो हमारी बेबसी है, अज्ञान है। उनकी सामाजिक व्यवस्था है, उनका चातुर्य है, उनकी नीति है, कि हम किसी लायक नहीं रहतीं। उन्होंने हमको इतना वशीभूत कर अपना आतंक जमा रखा है कि हम उन्हीं के दृष्टिकोण से विचारती हैं, और कार्य करती हैं। हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं है। बहन अभी तुम हमारी बातें नहीं समझतीं, एक दिन समझोगी।"

उर्मिला ने शिशु की-सी सरलता से कहा:—"कब।"

कनक ने एक मलिन हँसी के साथ कहा:—"बहन, मेरा पिता, जो एक पुरुष है, तुमको क्यों हरण कर ले गया था, केवल इसलिए कि तुम एक स्त्री हो, और उसका जन्मसिद्ध अधिकार है कि तुम्हें अपनी कुप्रवृत्तियों का शिकार बनाये। जो व्यवहार उसने तुम्हारे साथ किया है वही वह मेरे साथ भी करता, यदि मैं कदाचित् उसकी लड़की न होती।"

उर्मिला ने पूछा:—"तो क्या सब पुरुष ही ऐसा करते हैं?"

कनक ने गंभीरता से कहा:—"हाँ, मांस के टुकड़ों के लिए कुत्तों की नीति में कोई अंतर नहीं पड़ता। हमको चूसने के लिए ही पुरुषों ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था तमाम संसार में स्थापित कर रखी है, और इस देश में तो हमारा शोषण अपनी चरम सीमा को पहुँच गया है। अच्छा, इस विषय पर हम फिर कभी बातें करेंगी, बहन, अभी तो तुम्हारे पति को कानून के शिकंजे से छुड़ाना ही मेरा प्रथम कर्तव्य है—नहीं प्रायश्चित्त है।"

उर्मिला की आँखें उल्लास से चमकने लगीं।

कनक ने नत दृष्टि से पूछा:—"क्या तुम मेरे पिता के भेजे हुए व्यक्तियों को पहचान सकती हो?"

उर्मिला कुछ भूली हुई घटनाओं को अपने मस्तिष्क में खोजने लगी।

उसने कहा:—"हाँ, शायद पहचान सकूँगी। पहले दो औरतें मेरे घर पर आईं, और उन्होंने दरवाजा खुलवाया। मैंने समझा कि कोई पड़ोसिन होंगी। मैंने द्वार खोल दिया। वे दोनों आकर बैठ गईं। मैंने उनसे पूछा:—'क्या तुम पड़ोस ही में कहीं रहती हो।' उन्होंने जवाब दिया:—'हम यहाँ से कुछ दूर रहती हैं।' 'वीनस मिल' में आग लग गई है, और उसमें कितने ही आदमी घायल और मर गए हैं। हमारे आदमी भी वहीं काम करते हैं। उनका एक साथी, जिसका नाम······वह शायद तुम्हारा ही आदमी है, घायल हो गया है। उसका

तमाम बदन जल गया है। उसकी हालत नाजुक है। उसने इस घर का पता देकर तुमको बुला लाने को कहा। भला, आदमी कैसे आते? इसलिए हमको ही आना पड़ा।' मैं सुनते ही अपनी सुध-बुध खो बैठी। बिना विचारे उनके साथ चलने को तैयार हो गई। जिसने मुझसे बात की थी, उसको मैं अच्छी तरह पहचान सकती हूँ, क्योंकि उसके दाहिने गाल पर एक बड़ा-सा काला मस्सा है। दूसरी को भी पहचान सकती हूँ, वह सांवले रंग की कुछ अधबैसू है।"

कनक ने पूछा:—"अच्छा, इसके बाद क्या हुआ?"

उर्मिला ने आँसुओं को पोंछते हुए कहा:—"उन्होंने घर से निकलते ही कहा कि 'हमारे मिल-मालिक भी कैसे दयालु सज्जन हैं कि उन्होंने यह सुनते ही अपनी मोटर और हमारी रक्षा के लिए चार आदमी तुरंत दे दिये। जल्दी चलो, उनकी हालत बहुत खराब है।' मैं उनकी बातें नहीं सुन रही थी, मेरा मन तो उनके पास पहुँचने के लिए विकल था। मैं तुरंत मोटर में बैठ गई। तीन आदमी तो हमारे साथ ही बैठ गए और एक पीछे रह गया। मोटर हमको लेकर बड़े वेग से चल दी। थोड़ी ही देर में मैं वहाँ पहुँच गई जहाँ यह घटना घटी। एक ऊँची कोठी थी, जिसके रास्ते भयानक पेंचदार थे। वे हमको घुमाती-फिराती एक कमरे में ले गईं, और बैठने के लिए कहा। मैंने जब उनसे अपने पति के बारे में पूछा तो वे एक भयंकर शब्द से हँस पड़ीं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वे मुझे धोखा देकर लाई हैं, और मेरे पति को कोई हानि नहीं पहुँची। इसके बाद उन्होंने कई घृण्य प्रस्ताव मेरे सामने रखे। रेशमी वस्त्र और जड़ाऊ गहने दिखाये, भय दिखाया, और खुशामद की। उनके सामने ही एक प्रौढ़ बलिष्ठ व्यक्ति हँसता हुआ आया, और मेरी ओर लुब्ध दृष्टि से देखने लगा, जिसकी चितवन से ही भय उत्पन्न होता था। उसने हँसकर कहा: —'घबराओ नहीं, मैं तुमको रानी बना-कर रखूँगा, तुम इस घर की मालकिन हो, और ये तुम्हारी दासियाँ हैं।' फिर उनसे कहा कि इन्हें स्नान कराकर सज्जित करो, और लाल शरबत पिलाकर 'रंगमहल' में हाजिर करो।' यह कहकर मेरी ओर देखता हुआ वह चला गया। इस संसार से मैं बिलकुल अनजान हूँ। मेरी समझ में न आता था कि मैं क्या करूँ। अपनी मुक्ति का कोई उपाय नहीं विचार सकती थी। वे स्त्रियाँ उस पुरुष का आदेश पाकर इधर-उधर किसी तैयारी में लग गईं मैं भी खिड़की खोलकर बाहर देखने लगी। थोड़ी देर बाद मैंने अपने पति को दूर से आते देखा। वे भागे हुए कहीं जा रहे थे। मैं समझ गई कि वे मेरी ही खोज में कहीं जा रहे हैं, मैं चेतना खो बैठी और बिना विचार किये ही खिड़की से बाहर कूद पड़ी। इसके पश्चात् मुझको नहीं मालूम कि क्या हुआ। कहते-कहते उर्मिला के नेत्र मुँद गए, और आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें निकलकर गालों को सिक्त करने लगीं।

कनक ने लज्जित स्वर में कहा:—"वही प्रौढ़ व्यक्ति मेरे पिता थे। मैं

उन स्त्रियों को नहीं जानती, किन्तु फिर भी पता लगा लूँगी।"

उर्मिला ने भय-विह्वल दृष्टि से पूछा:—"क्या उनके बचने की कोई आशा नहीं है।"

कनक ने धीमे स्वर में कहा:—"प्रयत्न तो बड़ी कर रही हूँ। मैं अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती। आशा तो है।"

उर्मिला ने पूछा:—"क्या उन्होंने तुम्हारे पिता को·········?"

कनक ने मलिनता के साथ कहा:—"हाँ, यह सत्य है। किन्तु······?"

उर्मिला ने आह के साथ कहा:—"ईश्वर की इच्छा।"

कनक ने एक वक्र दृष्टि से उसकी ओर देखा, और फिर कहा:—"ईश्वर पर मैं विश्वास नहीं करती। किसी मनुष्य को विश्वास करना भी नहीं चाहिए। ईश्वर का गोरख-धंधा तो इसी पुरुष जाति ने खड़ा किया है, केवल हमको भयभीत करने के लिए, हमको अपना गुलाम बनाने के लिए।" उर्मिला अवाक् होकर उस तेजस्विनी की ओर देखने लगी। कनक कह रही थी:—"बहन, ईश्वर के झंझट में मत पड़ो। अगर इसमें फँस जाओगी तो फिर इस जन्म में तुम्हारा उद्धार न होगा मैं अब जाती हूँ, कल सफाई के गवाह तलब करवाऊँगी, और उसमें तुमको भी चलना पड़ेगा। तुम्हारी गवाही मुख्य है।"

उर्मिला ने संकुचित होकर कहा:—"मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।"

कनक ने कहा:—"सत्य कहने के लिए साहस की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

"तुम्हें सत्य कहना है, और उन दो औरतों की शनाख्त करनी है जो तुमको लेने के लिए तुम्हारे घर गई थीं।"

उर्मिला कुछ विचारने लगी।

कनक ने उठते हुए कहा:—"तुम्हारे आराम का मैंने विशेष रूप से प्रबन्ध कर दिया है। तुम घबराना नहीं। मैं प्रत्येक दिन आकर एक बार मिल जाया करूँगी।"

वह कुछ सोचती हुई चली गई, और उर्मिला विचारने लगी अपना अतीत और भविष्य।

संध्या की नीरवता ने कनक की अस्थिरता को किंचित् उत्तेजित कर दिया, वह विचारने लगी:—"मानव जाति का जन्म स्वार्थ की संकीर्णता को अपनी विशालता में छिपाने के लिए हुआ है, न कि इतर प्राणियों के समान उसमें समाविष्ट हो जाने को। अपने जीवन का स्वार्थ मानव जाति के स्वार्थ में मिला देने का नाम ही मोक्ष और मुक्ति है। मानवता का अभिमान अपने स्वार्थ के उत्सर्ग में है, उसके बलिदान में है। अपने देश और जाति के लिए मर मिटने में ही मानव जीवन के श्रेष्ठतम विकास का स्पष्टीकरण है। मैं भी एक मानव हूँ, मेरा कर्त्तव्य है अपने स्वार्थ को मिटाना, अपने जीवन की सारी महत्त्वा-

कांक्षाओं को भस्मीभूत करना और अपनी नारी जाति को उठाना तथा उसके अधिकारों को उसको बताना, उनके लिए युद्ध करना, और पुरुषों की गुलामी से मुक्त करना।

"पुरुष भी एक मानव है, और वह इस सृष्टि का सबसे बड़ा स्वार्थी और महान् अत्याचारी है। उच्छृंखलता उसका जीवन है, पशुत्व उसका अभिमान है, स्वेच्छाचार उसका गौरव है, नग्न अत्याचार उसका उपहार है, और पग-पग पर विश्वास-घात उसका दैनिक व्यवहार है। वह अपने स्वार्थ-साधन के लिए पहले एक ईश्वर की सृष्टि करता है—उसका आतंक जमाता है, उसकी सर्वोपरि सत्ता निर्धारित करता है, फिर उसकी आड़ में अपना स्वार्थमय स्वर्ण-जाल बिछाता है, जिसमें सृष्टि के सभी जीव, चर, अचर फँसकर उसकी गुलामी करते हैं। वह दूसरे के जीवन से खेल खेलता है। उसी ईश्वरीय ओट में पक्षियों और पशुओं का शिकार करके उनके मांस से अपनी क्षुधा मिटाता है, और फिर भी कहता है कि यह बलिदान है। गाय के बछड़े के मुँह से उसका प्राप्य दूध छीन लेता है, और कहता है कि मैं गो-रक्षक हूँ। हमारी स्त्री जाति को उसी धोखे की टट्टी कपोल-कल्पित ईश्वरत्व की महिमा का अजस्र पाठ पढ़ाकर अपनी विलासिता को चरितार्थ करता हुआ धार्मिक और धर्म-विहित न्याय का नाटक रचकर अपने को सब अपराधों से बरी रखता है। वह हमारे खून से अपनी प्यास बुझाता है, और फिर भी कहता है कि मैं नारी जाति की जीवन-रक्षा का ठेकेदार हूँ। वह हमारे सारे अधिकारों को यहाँ तक कि साँस लेने तक के अधिकार को, अपने फौलादी पंजे में दबाये हुए है, और फिर भी वह हमारी आजादी, हमारी स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा हिमायती है। उफ, वह कितना कूटनीतिज्ञ है।

"पुरुष भी एक मानव है। उसका जन्म हमारे गर्भ में निहित है। हम अपना रक्त पिलाकर उसका पालन करती हैं। हम अपने जीवन की सारी स्वर्ण आशाओं को भस्म करके उसकी छोटी-से-छोटी साध पूरी करती हैं। हम अपने मुह का कौर उसके मुँह में डालती हैं। हम नग्न रहती हैं, और उसको विविध परिधानों से अलंकृत करती हैं। हम अपने को नष्ट कर उसको जीवन प्रदान करती हैं। और वही मानव, जो अपने ईश्वर की सृष्टि का सबसे मनोहर उत्तम प्रतिरूप है, हमारे लिए पग-पग पर विनाश के साधन एकत्रित करने में तनिक संकोच नहीं करता। उस विनाश को बैध रूप देने के लिए शास्त्र और कानून की सृष्टि करता है, देवताओं की दुहाई देता है, स्वर्ग और नर्क की रचना करता है। आजन्म हमको अपनी गुलामी के पाश में आबद्ध रखने के लिए नाना प्रकार के षड्यन्त्र रचता है। वह हमारी प्रत्येक कमजोरी से भरपूर लाभ उठाता है।

"पुरुष भी एक मानव है। उसका और हमारा उद्गम एक ही स्थान से है। इस संसार में जितना उसको अधिकार है उतना ही हमको भी है। इस संसार की

प्रत्येक वस्तु पर हम दोनों समान रूप से उत्तराधिकारी हैं । उसकी श्रेष्ठता और महत्ता कब और कहाँ निर्दिष्ट हुई है ? यदि कहीं है तो उसी के बनाये हुए कानून में जहाँ वह निरंकुश है, जो उसकी स्वयं रचना है, और जो उसको स्वार्थी सिद्ध करने का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है । उसकी कूटनीतिज्ञता ने हमारी जाति में कितना भेद उत्पन्न कर दिया है। माता अपनी स्त्री सन्तान को उपदेश देती है कि पुरुषों की गुलामी करो, बहन अपनी बहन को उपदेश देती है कि पुरुषों की गुलामी करो, और सखी अपनी सखी से कहती है कि पुरुषों की गुलामी करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है, इसी में तुम्हारे जीवन की महत्ता है, इसी में तुम्हारी निष्कृति है । उसका अत्याचार निरंकुश बर्बरतापूर्ण व्यवहार ही तुम्हारे लिए प्यार है ।

"पुरुष भी एक मानव है। हमारी नैसर्गिक कमजोरी के ठेकेदार पुरुष को यह अभिमान है कि वह हमारा रक्षक है । किन्तु मैं पूछती हूँ कि वह हमारी रक्षा किससे करता है ? अपने ही-जैसे इतर पुरुषों के प्रहार से रक्षा करना ही क्या वास्तविक रक्षा का रूप है ? यदि एक कुत्ता मांस के टुकड़े से कहता है कि मैं तुम्हारी रक्षा दूसरे कुत्तों से करता हूँ तो उसके इस दम्भपूर्ण तर्क में सत्य की कितनी मात्रा है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है । वास्तव में पुरुष अपने-स्वार्थ साधन के लिए ही हमारी रक्षा का ढोंग रचता है । प्रकृति ने हमारे अनुकूल ही हमें शक्ति प्रदान की है, और यदि पुरुषों का अस्तित्व न भी हो तो हम अपनी रक्षा करने में सर्वथा समर्थ हैं । हमको किसी बाह्य सहायता की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती । इसके अतिरिक्त वह हमारे 'संरक्षक' होने की सत्यता को संसार के सम्मुख न्याय-विहित सिद्ध करने के लिए हमको ऐसी परिस्थिति में रखता है जिससे नैसर्गिक शक्तियाँ समान रूप से हमें बलशाली बनाने में समर्थ नहीं होतीं । यह केवल इसलिए कि हम उनको अपना संरक्षक समझकर उनकी सहायता के लिए उनका मुख निहारा करें ।

"पुरुष भी एक मानव है । वह रोटी के चन्द टुकड़े घृणा से हमारी ओर फेंकता, और एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखता, ऐंठता चला जाता है और हम, जो उसकी बराबर की हिस्सेदार हैं, उनकी ओर नहीं रोटी के उन चन्द टुकड़ों को महान् विकलता से निहारती, अपना सर्वस्व उनके श्री चरणों पर निछावर करने के लिए आकुल उनकी ओर उत्कंठा से भागी चली जाती हैं । वे हमारा खून चूसते हैं, और फिर चूसने के लिए हमें जीवित रखते हैं । आजन्म हमारा खून पीने के लिए हमारी जठराग्नि में हमारे रक्त से रंजित रोटी के कुछ टुकड़े अति उपेक्षा और दया से हमारी ओर फेंकते हैं, और हम उन्हें खाकर फूली नहीं समातीं, और कहती हैं कि तुम हमारे अन्नदाता हो, तुम्हारी क्रीड़ा के लिए तुम्हारे ईश्वर ने हमारी रचना की है । हमें नव यौवन की स्वर्णमयी आशाओं के मोहन-जाल को, जिसको कि अभी कुछ क्षण पहले गूँथना प्रारम्भ किया था—

बरबस नष्ट करना पड़ता है, और वह भी अपने हाथों से, क्योंकि हमारा अपना कोई अस्तित्व नहीं, स्त्री मानव तो पुरुष मानव की गुलाम है, उसके स्वामी की इच्छाएं उसकी इच्छाएं हैं, उसके स्वामी का जीवन उसका जीवन है, उसके स्वामी का आनन्द उसका आनन्द है। उसका निर्माण तो उसी के विलास के लिए हुआ है, उसका अस्तित्व तो उसी पर निर्भर करता है, उसका स्वर्ग और नर्क सब उस पुरुष मानव के हाथ में सुरक्षित है। जो स्त्री मानव पुरुष मानव की बिना विचारे सेवा करेगी, उसके लिए मरने के बाद स्वर्ग में स्थान सुरक्षित है, और जो नहीं करेगी वह रौरव नर्क की अधिकारिणी है। तभी तो 'सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रनाम जोर जुग पानी' ब्रह्म के व्यापकत्व का अद्भुत उदाहरण रखने वाले भक्त श्रेष्ठ तुलसीदास जी हम स्त्री मानवों को उपदेश देने का दावा रखकर अपने श्री मुख से आकाशवाणी की भाँति आज्ञा प्रचारित करते हैं :—

'वृद्ध रोग वश जड़ धन हीना—अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसहु पति कर करि अपमाना—नारि पाय जमपुर दुख नाना।'

इसके लिए तुलसीदास को लाञ्छित करना, उनके साथ अन्याय होगा, उन्होंने केवल जन्म-जन्मान्तर से भोगते हुए पुरुष मानव की अधिकार-प्रणाली को कुछ खरे रूप में रखा है। कानून शास्त्र के पुराने आचार्यों की कूटनीतिज्ञ प्रणाली का कुछ खरा-सा सत्य स्पष्टीकरण है। महाराज मनु ने तो हमारे आँसू, वह चाहे पत्थर ही से क्यों न हो, पोंछने का प्रयत्न तो किया था, यह कहकर 'यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' परन्तु पवित्र राम नाम की पीयूष-धारा से संसार को प्लावित करने वाले भक्तश्रेष्ठ तुलसीदास ने हमें पग-पग पर जो प्रशंसा-पत्र दिये हैं उनकी गणना नितांत असम्भव है। हम उनके इस सत्य कथन का आदर करती हैं, और हृदय से धन्यवाद देती हैं।"

भावावेश में कनक के स्वगत विचार बहिर्गत हो गए, उसकी हृदय की पीड़ा बोल उठी थी। मौन विचारों ने शब्दों को जन्म दे दिया था। उसी समय कमरे में प्रवेश करते हुए उसके चचेरे भाई देवकीनन्दन ने मन्द मुस्कान के साथ कहा :—"यदि आप हृदय से धन्यवाद देंगी तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।"

कनक चौंक पड़ी। क्षण-भर तक उनकी ओर देखकर तीव्रता से कहा:—"आइये, भाई साहब, पधारिये! मैं आप की ही नहीं आपकी जाति की विवेचना कर रही थी।"

देवकीनन्दन ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा :—"मेरी जाति की! यह तो आप जानती हैं कि मैं जाति-पाँति कुछ नहीं मानता। मेरी जाति तो मनुष्य है।"

कनक ने तीव्रता से कहा:—"नहीं, आपको कोई अधिकार नहीं है कि आप अपने को मनुष्य कहें। आप कहिये कि मेरी जाति पुरुष है।"

देवकीनन्दन हँसने लगे, फिर कहा:—"पुरुष भी तो मनुष्य है।"

कनक :—"पुरुष मनुष्य हो सकते हैं, किन्तु सब मनुष्य पुरुष नहीं।"

देवकीनन्दन :—"तब फिर कुछ मनुष्य क्या हैं ? पशु।" यह कहकर वे फिर हँस पड़े।

कनक :—"पुरुष मनुष्य के लिए कुछ मनुष्य पशु हैं—अपितु उससे भी हीन।"

देवकीनन्दन :—"वे कुछ मनुष्य कौन हैं।"

कनक :—"पुरुष मनुष्य जिन्हें अपना गुलाम समझता है, वे कुछ मनुष्य नारी हैं। पुरुष मानव का खिलौना स्त्री मानव है, जिसका जीवन उसकी कृपा का महान् उदार उदाहरण है।"

देवकीनन्दन :—"अथवा जो पुरुषों की जन्मदात्री, महान् शक्ति की भंडार, पुरुष मानव का आश्रय, शान्ति और प्रकृति की कोमलता का उज्ज्वल उदाहरण है अथवा जो त्याग-सेवा की प्रतिमूर्ति, मनुष्य जाति की महानता की प्रतीक, पवित्रता की प्रतिमा, आदर, स्नेह, वात्सल्य और प्रेम की जीवित उदाहरण है। अथवा जो सत्यं, शिवं, सुंदरम् की जीवित कल्पना और ब्रह्म की सुलझी हुई व्याख्या की स्पष्ट उदाहरण है।"

कनक :—"बस रहने दीजिये, भाई साहब। इस कूटनीतिज्ञता ने ही हमको कहीं का नहीं रखा है ! इस गुड़ भरी छुरी ने ही हमारी जाति का लहू पान किया है। इन सुनहले शब्दों की चकाचौंध ने हमें पुरुष मानव की वास्तविक स्थिति को देखने का अवसर नहीं दिया। मुझे आश्चर्य होता है कि आप-जैसे स्पष्टवक्ता ईश्वर-भक्त भी ऐसे चाटुकारी भरे शब्दों को कहने की शक्ति रखते हैं।"

देवकीनन्दन :—"मैंने आज तक किसी की खुशामद नहीं की कनक, यहाँ तक कि ईश्वर की भी नहीं। मैंने आज तक उन स्तोत्रों का पाठ नहीं किया जिसमें उसकी खुशामद भरी है। जो कुछ मैं कहता हूँ सत्य कहता हूँ, अपनी समझ में सत्य कहता हूँ।"

कनक :—"अकेले आपके सत्य वक्तव्य से पुरुष समाज की कुछ हानि नहीं है। ऐसे व्यक्तिगत विचार वाले पुरुषों की कमी नहीं है जिनके हृदय में स्त्री जाति के लिए आदर है, सम्मान है, परन्तु उनका समाज तो वैसा ही कठोर और अन्याय का आवरण पहने हुए है। मेरा तो आशय पुरुषों के समाज से है।"

देवकीनन्दन :—"क्या आपके कहने का यह तात्पर्य है कि पुरुषों का समाज स्त्रियों की उपेक्षा करता है ?"

कनक :—"उपेक्षा तो नहीं, किन्तु उनको अपना गुलाम अवश्य बनाये हुए हैं। उनके सारे अधिकार दबाये हुए हैं।"

देवकीनन्दन :—"इसमें कुछ सत्यता तो अवश्य है कनक, किन्तु मैं इसका उत्तर तुमको फिर दूँगा। आज मैं यह जानने के लिए आया हूँ कि क्या तुम चाचा

जी के हत्याकारी की ओर से पैरवी कर रही हो। आज के समाचार-पत्र में इसी बात की चर्चा है।"

कनक :—"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? मेरा पेशा ही वकालत है।"

देवकीनन्दन :—"आश्चर्य केवल यह है कि वह तुम्हारे पिता का हत्याकारी है।"

कनक ने मुख फिराकर तीव्रता से कहा :—"पिता का हत्याकारी नहीं, उनको उपयुक्त दण्ड देने वाला है, वह निरपराध है। मालूम है कि उन्होंने कितना बड़ा पाप किया था ? पिता के पापों का प्रायश्चित्त सन्तान को भी करना पड़ता है। मेरे विचार से इससे बढ़कर प्रायश्चित्त का कोई दूसरा मार्ग नहीं था।"

देवकीनन्दन चकित दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे।

कनक फिर कहने लगी :—"न मालूम उन्होंने कितनी कुल-कामिनियों की मर्यादा नष्ट की है, उस समय समाज के किसी नेता ने साहसकर उनको इस मार्ग से विमुख तो नहीं किया था, फिर आज यदि उनको अपने अपराधों का दण्ड मिला है, और एक असहाय वीर युवक कानून के शिकंजे में फँस गया है तब उसको निकालने में, उसकी सहायता करने में लोग क्यों आश्चर्य करते हैं ? यदि मैं उसका पक्ष लेती हूँ, तो न्याय का पक्ष लेती हूँ, मैं कोई गर्हित कार्य नहीं कर रही हूँ।"

देवकीनन्दन :—"किन्तु संसार में तो तुमको रहना है, तुम्हें लोग क्या कहेंगे ?"

कनक सहसा हँस पड़ी जिससे देवकीनन्दन अप्रतिभ रह गए। फिर बोली :—"मैं पुरुषों के समाज की परवाह नहीं करती। सत्य और न्याय जब तक मेरे पक्ष में है, मैं किसी से भयभीत नहीं होती।"

देवकीनन्दन :—"किन्तु इससे वंश का नाम डूबता है।"

कनक :—"वंश का नाम डूबता है ? जब आपके पूज्य चाचा जी उस अभागिनी उर्मिला को छल से अपनी पाशविक इच्छाओं को तृप्त करने के लिए हरण कर लाए थे तब तो वंश का नाम स्वर्ण-प्रभा से देदीप्यमान हो उठा था। क्यों ? यह है तुम्हारा पुरुष समाज। अभी तो सत्य और स्पष्ट-वक्ता का जामा पहनकर स्त्री जाति को स्वर्ग की देवी बना रहे थे, और उसकी रक्षा के लिए जब मैं जाती हूँ, तो आपके वंश का नाम डूबने लगता है। भाई साहब, बिलकुल सच है, हाथी के दाँत दिखाने के और हैं, और खाने के और। मांस के लिए कुत्तों की नीति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

देवकीनन्दन :—"मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ कनक। मैं इस विषय में कुछ न कहूँगा। जैसी तुम्हारी इच्छा हो, करो।"

कनक :—"वही कर रही हूँ। मैं प्रायश्चित्त करने जा रही हूँ। यदि वीर-श्रेष्ठ रामनाथ को छुड़ा सकी तो ठीक है, लेकिन जिसकी आशा पूँजीपतियों के कानून से नहीं है, फिर भी प्रयत्न करना मानव धर्म है ।"

देवकीनन्दन ने हँस कर कहा :—"किन्तु तुम अब स्वयं एक बड़ी पूँजी की अधिकारिणी हुई हो।"

देवकीनन्दन के व्यंग ने कनक को उत्तेजित कर दिया।

कनक :—"किन्तु भाई साहब, मैं इस पूँजी का भोग नहीं करूँगी। अपनी मजदूरी पर ही बसर करूँगी। मैं इस सम्पत्ति का स्पर्श तक न करूँगी; मेरे बाद आप ही अधिकारी हैं। आप क्यों नहीं ग्रहण करते, मैं सहर्ष देने को तैयार हूँ।"

देवकीनन्दन :—"कनक, इसका भोग तो तुमको ही करना होगा। मेरी निज की सम्पत्ति ही इतनी अधिक है कि मैं उससे ऊब गया हूँ। मेरे जीवन की आवश्यकताएं कितनी कम हैं, यह तो तुमको भली-भाँति मालूम है, और मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है, यह भी तुमको मालूम है ।"

इसी समय स्वर्गीय वामनदास के सेक्रेटरी चन्द्रनाथ ने कमरे में प्रवेश कर देवकीनन्दन और कनक को प्रणाम करके कहा :— "जरूरी कागजात हस्ताक्षर के लिए लाया हूँ।" यह कहकर उसने कनक की ओर देखा।

देवकीनन्दन ने उठते हुए कहा :—"अब आप काम करें, मैं भी जाता हूँ। फिर कभी आऊँगा।" यह कहकर वे चले गए। कनक हस्ताक्षर करने में संलग्न हो गई।

५

अस्पताल के एक कमरे में उर्मिला लेटी हुई थी। उसके नेत्र छत की ओर निहारने में तल्लीन थे। विगत दिवसों की घटनाएं एक-एक करके उसके विचार-प्रांगण में नृत्य कर रही थीं। वह सोच रही थी—"आह, जीवन का वह मधुर स्वप्न क्षण-भर में भंग हो गया। मेरे आकाश-महल क्षण-मात्र में भूमिसात् हो गए, भविष्य के गर्भ में क्या निहित है यह मालूम नहीं। कितनी लांछना, कितनी पीड़ा, कितनी 'नाहीं' के पश्चात् दो रोटियों का सहारा मिला था—कितने प्रपंच, कितने परिश्रम और कितने असफल प्रयास के पश्चात् यह नौकरी मिली थी किन्तु सब एक ही क्षण में विनष्ट हो गया, और आज! आज वे कैद में हैं, उनके जीवन पर आपत्ति है, और मैं यहाँ मरणासन्न अवस्था में मृत्यु की बाट जोह रही हूँ। ईश्वर, भगवान्, क्या यही है तेरा न्याय? क्या तपस्या, व्रत, नियम, सेवा, पूजा का यही पुरस्कार है?

"आह, कलेजा काँप उठता है, जब मेरी आँखों के सामने उस दिन का दृश्य नाचने लगता है—वह तो क्षण-भर के लिए विलग ही नहीं होता। उसी ने तो मेरा भाग्य-स्रोत किसी अनजान धारा की ओर प्रवाहित कर दिया है। उन दो

स्त्रियों का मेरे यहाँ आना, और 'उनके' अचानक आहत होने की सूचना देना, मेरी विचार शक्ति का लोप हो जाना, और उनके साथ बिना विचारे चल देना, मिल-मालिक बामनदास के यहाँ पहुँचना, उस दुष्ट का हास—परिहास, मेरा खिड़की से झाँकना, और उनको देखकर परिस्थिति को भूलकर कूद पड़ना, यह सब एक ही क्षण में हो गया। जीवन का यह परिवर्तन कितनी शीघ्रता से हो गया।

"अब आगे मेरे भाग्य में क्या है—क्या लिखा हुआ है? कौन कह सकता है। दैव-विडम्बना क्या रच रही है—कौन जाने। भगवान् ने क्या यही दुर्दिन देखने के लिए मुझको संसार में पैदा किया था। मेरी आँखों के सामने 'उन्हें' फाँसी होगी—आह यह मैं कैसे देख अथवा सुन सकूँगी। दैव इतनी तो कृपा करो कि मेरा पहले ही प्राणान्त हो जाय। मैं 'उनसे' पहले मरूँगी। आज से कोई दवा नहीं पिऊँगी। यदि इस तरह भी मृत्यु नहीं हुई तो फाँसी लगाकर मैं भी मर जाऊँगी।" उर्मिला के नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। हृदय का उच्छ्वास सरल मार्ग से उद्दाम गति से प्रवाहित होने लगा। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गईं। थोड़ी देर बाद उसका उफान कुछ शान्त हुआ। वह फिर सोचने लगी—"मेरा जन्म एक अच्छे कुल में हुआ था—एक सम्पन्न घर की लाड़ली बालिका थी। अपने माता-पिता की एक-मात्र संतान थी, और उनकी नयन-तारा थी। वे मुझको अपने कलेजे से लगाकर रखते थे, और मेरी छोटी-से-छोटी साध पूर्ण करने में अपने जीवन का परम आनन्द समझते थे। मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि दुनिया में अभाव क्या वस्तु है। जब जिस वस्तु की कामना की, वह मुझे प्राप्त हुई। जब कभी पिता जी कहते कि उर्मिला मेरी पुत्र संतान है—तो अम्मा कहती—'नहीं, वह दोनों है; तुम्हारे लिए पुत्र और मेरे लिए कन्या।' दोनों हँसते और दोनों ही मुझको अपनी-अपनी गोद में लेने के लिए मुझे भाँति-भाँति के खिलौनों से, कपड़ों से और गहनों से आकर्षित करते। मेरी हँसी उनके लिए जीवन थी, और मेरा रुदन उनके लिए एक कठिन समस्या।

"जब कुछ बड़ी होकर स्कूल जाने लगी, तो मेरा आदर-सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। पिता जी मेरे लिए नाना प्रकार के चित्रों से सुसज्जित पुस्तकें लाने लगे, और मुझे शिक्षित करने में वही प्रयास करने लगे, जो एक पुत्र-सन्तान के लिए किया जाता है। किन्तु ईश्वर को वह मेरा सौभाग्य न भाया। मेरे पिता अचानक हैजे से ग्रसित होकर काल-कवलित हो गए, और मेरे जीवन का स्वर्णमय भविष्य लौह की भाँति काला हो गया। मेरी माता भी उस पीड़ा को सहन न कर सकीं और उनका भी अन्त हो गया। मैं संसार में अनाथ हो गई।

"एक दूर के रिश्ते के चाचा, जिनको मैंने अपने उस छोटे-से जीवन में कभी नहीं देखा था मेरे अभिभावक हुए, और उन्होंने मेरे पिता की सम्पत्ति के

साथ मुझको भी सँभाला । मेरा पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना, सब बंद हो गया। घर की सेवा-वृत्ति में मैं नियुक्त की गई, और रात-दिन थप्पड़ों और घूँसों की, और कभी-कभी बेंतों की वर्षा होने लगी। मैं उनके लिए भार थी, वे मुझसे छुटकारा पाने का शीघ्र-से-शीघ्र उपाय सोचने लगे । मेरे विवाह की बातचीत होने लगी, और दूसरे ही साल मेरा विवाह कर दिया गया। मैंने भी मुक्ति पाई उस नारकीय जीवन से ।

'ससुराल में यद्यपि पिता का स्नेह प्राप्त नहीं हो सका, किंतु माता का प्यार अवश्य मिल गया। मेरी सास के प्रेम ने, आदर ने, सत्कार ने मेरी पुरानी यंत्रणाओं को भुला दिया । उनके लिए हम दो ही आदमी सब-कुछ थे । मेरे पति के सिवाय उनके कोई सन्तान नहीं थी, और वे जिस मुसीबत से उनको पढ़ा रही थीं, उसका ज्ञान मुझको हो रहा था । एक दिन की बात याद पड़ती है—उस दिन उनकी तबियत खराब थी, इससे वे दूसरों का आटा नहीं पीस सकी थीं, क्योंकि हमारे घर की जीविका का आधार यही था। पास-पड़ोस का आटा, बेसन पीस-कर, सीना-पिरोना इत्यादि करके ही हम लोग जीवन व्यतीत कर रहे थे, इससे गरीबी हमेशा हमारे यहाँ निश्चित होकर वास कर रही थी मैं भी कई दिनों से बीमार थी, जिससे मैं भी उनकी सहायता करने में असमर्थ थी। दस बजे वे कालिज जाने वाले थे, और घर में कुछ खाने को नहीं था। उन्होंने मेरी ओर देखा, और मैंने उनकी ओर । बेबसी और गरीबी तड़प उठी, और हम एक दूसरे का आशय समझ गए। मैं चुपके से अपने कड़े उतार कर 'उनके' पास ले गई, और कहा कि इनको बेचकर कुछ रुपये ले आओ ! इतने में ही मेरी सास आ गई और उन्होंने वे कड़े छीन लिए और रोते हुए कहा :—'भैया, यह दुलहिन की आखरी चीज है, मैं इसे नहीं देने दूँगी। अभी मेरे पास चाँदी की चूड़ियाँ बाकी हैं, उनको बेच दो।' मैंने आपत्ति करते हुए कहा :—'अम्मा, तुम्हारे हाथ में इसके सिवाय और कुछ नहीं है, बिलकुल नंगा हाथ अच्छा नहीं लगेगा, और इन चाँदी की चूड़ियों को बेचने से मिलेगा ही क्या ?' हम दोनों को लड़ते देखकर उन्होंने कुछ व्यस्त होकर कहा :—'अम्मा, मैं अब नहीं पढ़ूँगा, आज से सरस्वती देवी को प्रणाम कर, जीविका-निर्वाह का कोई उपाय करूँगा ।' और वही दिन उनकी शिक्षा का अन्तिम दिन हुआ—जठराग्नि की लपटें उसे भी निगल गई ।

"इस घटना का प्रभाव मेरी सास पर बहुत पड़ा । यद्यपि उन्होंने बहुत चेष्टा की, और मैंने भी उनकी सहायता की, किन्तु 'वे' किसी भी भाँति पढ़ने के लिए तैयार नहीं हुए। मेरी सास उस दिन से फिर न उठी। वर्षों से लड़ती हुई उनकी शक्ति परिस्थितियों के मुकाबले में अपना धैर्य खो चुकी थी, उसका क्षीण होकर पतित होना निश्चित था । वे इस धक्के को बरदाश्त न कर सकीं, और एक दिन हम दोनों पर संसार का भार छोड़कर मानव जाति के निश्चित मार्ग

की ओर चली गई। हमारे जीवन का अन्तिम सम्बल भी काल की धारा में प्रवाहित हो गया। गरीबी हमारे मटमैले आँगन में ताण्डव नृत्य करने लगी, और अभाव—क्षुद्र-से-क्षुद्र वस्तु का—हमारा उपहास करने में संलग्न हो गया।

"इसके बाद का जीवन एक कशमकश की कहानी है—जीवन और मृत्यु की आँख-मिचौनी है। मृत्यु अपने पञ्जे में हम दोनों के जीवन को दबोचे हुए खिलौने की भाँति खेल रही थी। चारों ओर से निराश होकर यहाँ हम दोनों आये थे। पेट की ज्वाला शांत करने के लिए हमको मानवता की निम्नतम श्रेणी में उतरना पड़ा। उनको शिक्षा उनके काम न आई, पढ़े-लिखे व्यक्तियों की कहीं भी पूछ नहीं थी। जो कभी नहीं किया था वह करना पड़ा, जहाँ कभी न रही थी वहाँ रहना पड़ा, जो कभी नहीं सुना था वह सुनना पड़ा। दुर्दैव और अभाग्य हमारे जीवन के मूल्य को आँक रहे थे।

"किन्तु यहीं तक विश्राम न था—यही अंत न था। मजदूर होने के बाद भी निष्कृति न थी। मदान्ध पूँजीपतियों की विलास-क्रीड़ा का आरम्भ था। उनके जाल में फँस कर मेरे तथा 'उनके' जीवन की बाजी लग गई, और दोनों ही उसमें अपनी इहलीला समाप्त करने का आयोजन कर रहे हैं—यही हमारे जीवन का पटाक्षेप है।

'भगवान् ने हमारे भाग्य में सुख लिखा ही नहीं है। वह क्या इतना निष्ठुर और निर्दयी है? मेरी अहर्निशि की प्रार्थनाएं, पूजा सब निष्फल हुए। जीवन के मधुर स्वप्नों की छाया नैराश्य-अंधकार में परिणत हो गई; और आशाओं के महल गिरकर चकनाचूर हो गए। हमारा इतना सन्तोष, इतना-सा सुख उसको न भाया। हमारी कामनाएं रोती ही रह गईं, और यहाँ पर हम दोनों महाप्रस्थान करने वाले हैं।

"अच्छा मृत्यु क्या है? क्या जीवन का तार यहीं पर टूट जायगा, और फिर क्या हम दोनों मिल न सकेंगे? हृदय को यह विश्वास तो नहीं होता। नहीं हम मिलेंगे, फिर मिलेंगे. किन्तु वह मिलन एक नये आवरण में होगा, नई परिस्थिति में होगा, और न पहचाने जाने वाले रूप में होगा। किन्तु क्या हमारी आत्मा की आकर्षण शक्ति का लोप हो जायगा। क्या हमारे स्नेह और प्रेम की शक्ति भी उसी में समाविष्ट हो जायगी? कौन जाने। दुनिया में देखा तो यही है कि कोई भी पूर्व जन्म की दुहाई नहीं देता। इस संसार में सब-कुछ नये सिरे से शुरू होता है, और शरीर के अन्त होने के साथ सब अन्त हो जाता है। तब हमारा यह वियोग चिरस्थायी है।

"आह, मरने को जी नहीं चाहता। जीवन कितना मधुर है—उसकी कली-कली में प्रेम है, उत्साह है, आशा है, परन्तु विषाद-ग्रस्त जीवन में इन सबका अन्त है। नहीं, मृत्यु में भी आनन्द है। 'उनके' सामने मर जाने में ही

मेरी निष्कृति है, यही हमारा आदर्श है, यही हमारी शिक्षा है, और यही मेरी सास का उपदेश है । जब वे मर रही थीं तो उन्होंने कैसे कहा था कि देखो तुम्हारे श्वसुर जी मुझे बुला रहे हैं, मैं उनका रूप देख रही हूँ। यह क्या था—उनका प्रलाप था, हमारी शक्तिहीनता । क्या मरते वक्त उसके स्वजन आत्मीय उसको दृष्टिगोचर होते हैं ? मेरा विश्वास है कि अवश्य उनके दर्शन होते होंगे। मेरी सास जी कभी झूठ नहीं बोलेंगी । यही बात मेरी माँ भी कहती थी। तब अवश्य ही मुझे उनके दर्शन होंगे । मैं अपने माता-पिता और सास को अवश्य ही देख पाऊँगी। इसलिए मेरा मरना ही श्रेयस्कर है । उनके समीप रहने से फिर मुझे कोई दुःख नहीं मिलेगा । और शायद थोड़े दिन बाद 'वे' भी वहीं आकर हम लोगों से मिल जायं, फिर सब प्रकार से आनन्द-ही-आनन्द रहेगा।"

उर्मिला ने एक निश्चिंतता की साँस लेकर खुले हुए वातायान की ओर देखा। बाहर सुदूर उत्तर दिशा से पवन मुस्कराता हुआ उसकी ओर निहारता चला जाता था। उसका एक छोटा-सा झोंका अपने उर में सुरभि-समूह छिपाये घुस आया, और आकुल होकर उर्मिला को सान्त्वना देने का प्रयत्न करने लगा। प्रकाश अपनी रेखाओं से उसके स्वप्न-भंग करने में तल्लीन होगया।

इसी समय नर्स ने आकर कहा:—"बहन, समय होगया है, दवा पी लीजिए।"

उर्मिला ने अन्यमनस्क की भाँति उसकी ओर देखकर कहा:—"बहन, दवा पीने से लाभ।"

नर्स ने हँसते और उसके कपोलों पर उंगली छुआते हुए कहा:—"यह यौवन बना रहेगा।"

उर्मिला ने गंभीर होकर पूछा:—"क्या यह चिरस्थायी है ?"

नर्स ने हँसकर कहा:—"तभी तो यह आवश्यक है कि जब तक यह रहे रखा जाय।"

उर्मिला ने किंचित् हास्य के साथ कहा:—"परन्तु सच्चा यौवन, अथवा कभी न जाने वाला यौवन तो मृत्यु के बाद ही शुरू होता है।"

नर्स खिलखिलाकर हँस पड़ी, और दवा को गिलास में उँडेलते हुए कहा:—"बहन, मैं स्वप्नों पर विश्वास नहीं करती, इस जीवन के बाद क्या है नहीं जानती और न जानना ही चाहती हूँ । रो-रोकर जीवन बिताने से मैं हँसकर मरना चाहती हूँ। जो कुछ भी है, जितना भी है उसका अधिक-से-अधिक लाभ उठाना ही सच्चा और सफल जीवन है। उठो, हँसकर दवा पियो और अच्छी हो, और हँसकर जीवन का आनन्द लो । दुनिया रोने वालों से भरी है, और उन्हीं के रोदन-रव में संसार क्या दिग-दिगन्त गूँज रहे हैं, परन्तु बहन, मेरा तो यह कहना है कि यदि इस रोते हुए संसार में कुछ हँस लिया जाय, तो क्या यह उपयुक्त नहीं है ?" उर्मिला ने दवा का गिलास लेते हुए कहा:—"बहन, हँसता भी वही है

जिसके हृदय में आशाएं होती हैं, किन्तु जिसके जीवन की सारी आशाएं धूलि-धूसरित हो गई हैं, वह मृत्यु चाहता है, और बहन, वही मैं भी चाहती हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहती। यदि जीवनदायिनी दवा के बदले में तुम मुझे विष की बूँदें पिला सको, तो मैं तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ होऊँगी।"

उर्मिला ने दवा गिलास के बाहर डाल दी। नर्स उसकी ओर विस्फारित नेत्रों से किंचित् भय के साथ देखने लगी।

उर्मिला ने सहास्य कहा :—"बहन, डरो नहीं, मैं पागल नहीं हूँ। मैं तुम्हारा कोई अपकार नहीं करूँगी। मै अब दवा पीना नहीं चाहती। मैं शीघ्र-से-शीघ्र मरना चाहती हूँ।"

नर्स के नयनों की आभा लौट आई। उसने फिर सहास्य कहा :—"किन्तु बहन, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, तुमको मरने नहीं दूँगी, किसी भाँति नहीं।"

उर्मिला ने उसकी ओर वक्र दृष्टि से देखते हुए कहा :—"यदि ऐसा करोगी तो मुझे कहीं डूबकर मरना पड़ेगा।"

नर्स ने दवा की दूसरी खुराक डालकर उसके मुँह से लगाते हुए कहा :—"यह नहीं होने का, तुमको दवा पीनी पड़ेगी। यदि पियोगी नहीं, तो फिर तुम्हारे सुइयाँ लगाने की सिफारिश करूँगी। कनक जी का आदेश हम सबको पालन करना पड़ता है, वे हमारी नेता हैं। यदि तुम्हें मरना है तो पहले उनसे पूछ लो। मैं अब और सतर्कता से तुम्हारी गतिविधि का निरीक्षण करूँगी।"

उर्मिला ने कातर दृष्टि से उसकी ओर देखा, और दवा का घूँट कण्ठ के भीतर चला गया। नर्स हँसती हुई चली गई। उर्मिला शून्य दृष्टि से शून्य विचारों में लीन हो गई।

पवन वातायन के पल्लों से टकराकर मुक्त आकाश में विचरने लगा। उर्मिला क्लांत होकर सो गई।

६

"कुछ हँसकर कटी, और कुछ रोकर कटी इसी का नाम जिन्दगी है। हँसना और रोना—एक जीवन का आदि है और एक अन्त—रोते हुए आयें और हँसते हुए जायें— यही एक जीवन है।" देवकीनन्दन ने गम्भीरता के साथ कहा।

"दार्शनिकता वास्तविकता से कितनी भिन्न है, इसका स्पष्टीकरण ही सफल जीवन का रहस्य है।" कनक ने सव्यंग्य कहा।

"नहीं यही तुम भूलती हो, मेरी प्यारी बहन।"

"भूलती हूँ, या तुम्हारे-जैसे ढोंगियों की पोल खोलती हूँ।"

"दार्शनिक क्या ढोंगी हैं?"

"इससे बढ़कर ढोंग क्या कुछ और हो सकता है। दार्शनिकता ने ही

हमारे जीवन को बरबाद कर दिया है, हमारी अकर्मण्यता को जन्म दिया है। यदि संसार में दार्शनिक न होते तो शायद हमारी अवस्था कुछ और होती। हम भी संसार के बलवान् राष्ट्र होते, और जब तक भारत में दार्शनिकता रहेगी, हम गुलाम बने रहेंगे। तुम्हें मालूम है कि किन लोगोंने दार्शनिकता को जन्म, दिया है सींचा है, और एक सुदृढ़ हरा-भरा वृक्ष कर दिया है ?"

देवकीनन्दन ने हँसते हुए कहा:—"यदि कृपा कर मेरी प्यारी बहन यह भी बतायें तो अत्यन्त श्रेयस्कर होगा।"

कनक ने गम्भीर होकर उत्तर दिया:—"भाई साहब, जब पूँजीपतियों ने ईश्वर को जन्म दे दिया तब उस ईश्वर की लीलाओं को समझाने के लिए—अथवा अपने स्वार्थों को सर्वदा अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उन्होंने जिस विद्या, तर्क, आदेश अथवा युक्ति-का आश्रय लिया है उसका नाम 'दर्शन' है—अथवा दूसरे शब्दों में जिसके द्वारा सार्वभौम पूँजीपति का दर्शन हो सके उसका नाम 'दर्शन शास्त्र' है, और उसको भी हमारे पूँजीपतियों ने जन्म दिया।"

देवकीनन्दन हँस पड़, और कनक कुछ तिनक उठी। उसने सक्रोध पूछा:—"क्या मैं झूठ कहती हूँ? तुम्हारे दर्शन शास्त्र ने क्या संसार की वास्तविकता की ओर किंचित् ध्यान दिया है—उसने भिन्न-भिन्न प्रकार से मानव की गिरी हुई अवस्था को उसी अवस्था में सदैव बनाये रहने के लिए प्रयत्न किया है।"

देवकीनन्दन ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा:—"यह संसार मिथ्या है, इस संसार में जो सत्-चित्-आनन्द है, उसका स्पष्टीकरण उसने किया है—वह क्या है, आत्मा परमात्मा, आत्मारूप में जो ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त है उसका ज्ञान कराने वाला शास्त्र दर्शन शास्त्र है।"

कनक ने हँसते हुए कहा:—"ठीक यही तो मैं भी कहती हूँ, भेद केवल दृष्टिकोण का है। जिसे तुम परमात्मा कहते हो, उसे मैं पूँजीपतियों का बनाया हुआ एक 'लू-लू' समझती हूँ। जिस प्रकार एक अज्ञानी शिशु को डराने के लिए उसके माता-पिता किसी वस्तु का नामकरण 'लू-लू' करते हैं तथा डराकर अपना काम निकालते हैं, उसी प्रकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए संसार के पूँजीपतियों ने 'ईश्वर' को जन्म दिया और उसको सर्व शक्तिमान् की विभूति से शोभित किया। मनुष्य को उनका बनाया और उसकी विषम परिस्थितियों का सुलझाव उसकी 'लीला' और 'कर्म-विपाक' द्वारा अनुमोदन कर सिद्ध किया। यह है तुम्हारे ईश्वर का रहस्य, और उस ईश्वरीय विद्या दर्शन शास्त्र का भंडाफोड़।"

कनक के कण्ठ से कर्कशता और व्यंग्य झाँक रहे थे।

देवकीनन्दन ने ईषत् हास्य के साथ कहा:—"तुम्हारी विवेचना अत्यंत हानिकर है...।"

"तुम्हारे-जैसे पूँजीपतियों के भीरुतापूर्ण तर्क के लिए" कनक ने बीच में ही कहा।

देवकीनन्दन और कनक दोनों हँसने लगे !

देवकीनन्दन ने सहास्य कहा:—"बहन, तुम्हारी कटुतापूर्ण युक्तियाँ ईश्वर का अस्तित्व नहीं मिटा सकतीं।"

कनक ने उठते हुए कहा:—"हठधर्मी और प्रबुद्ध मूर्खता को नष्ट करना मेरा उद्देश्य नहीं है, और न मेरे लिए साध्य ही है।"

इसी समय एक परिचारिका ने आकर कहा:—"सेक्रेटरी साहब आना चाहते हैं।"

कनक ने उसको स्वीकृति देते हुए कहा:—"भाई साहब, ज़रा ठहर जाइये। मैं फिर इस विषय पर बहस करूँगी।"

स्वर्गीय वामनदास के सेक्रेटरी चन्द्रनाथ ने भाई-बहन को नमस्कार करते हुए कहा:—"आज के पत्रों में आप लोगों की विशेष रूप से टीका-टिप्पणी निकली है।"

देवकीनन्दन ने उत्कण्ठापूर्ण स्वर में पूछा:—"वह क्या ?"

किन्तु कनक ने उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा:—"पत्रों व पत्रकारों की टिप्पणियों से मैं कर्त्तव्य-विमुख नहीं हो सकती, और न मेरे लिए वे कोई आकर्षण रखते हैं।" फिर चन्द्रनाथ से कहा:—"हाँ आपका क्या काम है ?"

चन्द्रनाथ ने अप्रतिभ होकर कहा:—"कुछ कार्य विशेष नहीं है, वैसे ही अभिवादन करने के लिए चला आया था।"

कनक ने किंचित्-भ्रूकुंचित करके कहा:—"तो फिर आप जा सकते हैं। कृपा करके आज वे सारे कागज़ ढूंढ़कर निकाल रखें जो इस सम्पत्ति से सम्बन्ध रखते हों।"

चन्द्रनाथ के मुख पर एक गम्भीर छाया क्षण-मात्र में फिर गई, उसने अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा:—"वे सब तो तैयार रखे हैं, आप उन्हें जब चाहें देख सकती हैं।"

देवकीनन्दन ने कहा:—"उनको देखकर क्या होगा। चाचा जी की सम्पत्ति का स्वामी तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है ? सब-कुछ उनका ही तो पैदा किया हुआ है। मुझे तो कोई दावीदार दिखाई नहीं देता।"

कनक ने सहास्य कहा:—"क्या तुम नहीं हो सकते ?"

देवकीनन्दन ने उत्तर दिया:—"मैं तो इस विषय में अपनी स्पष्ट राय दे चुका हूँ। मेरी ही सम्पत्ति इतनी बड़ी है कि जिसका इन्तज़ाम मैं नहीं कर सकता। एक तो चाचाजी इस विषय में कुछ लिख ही न गए होंगे, और कदाचित् लिख भी

गए हों तो कनक मैं तुम्हारा प्राप्य अपहरण नहीं कर सकता।"

कनक ने सहास्य कहा :—"यह तो आप बार-बार कहते हैं, किन्तु पूँजी का लोभ संवरण करना इस समाज में अत्यन्त दुष्कर है। संसार का जितना युद्ध है—जितना रक्त-शोषण है, वह सब पूँजी के लिए है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शत्रु है वह केवल पूँजी के लिए। जब तक पूँजीवाद का नाश न होगा, तब तक मानव जाति का कोई कल्याण नहीं हो सकता।"

देवकीनन्दन ने कुछ विनोदपूर्ण स्वर में कहा :—"किन्तु कनक, अब तो तुम स्वयं पूँजी की मालकिन हुई हो। चाचा जी की करोड़ों की सम्पत्ति की रक्षा क्या तुम नहीं करोगी ?"

कनक ने जोश के साथ कहा :—"इसका भी मैं उत्तर दे चुकी हूँ। मैं इसकी रक्षा करूँगी, अपने कल्याण के लिए नहीं, वरन् समाज के लिए। उन मजदूरों के समाज के लिए, जिनके रक्त में इसका जन्म निहित है। भाई साहब, मैं अपनी समस्त मिलों की आय को उन्हीं मजदूरों में वितरण कर दूँगी, जिन्होंने इसको पैदा किया है। चूँकि अभी यहाँ के समाज में ऐसी व्यवस्था नहीं है कि इसके लाभ को राष्ट्रीय योजनाओं में लगाया जा सके, इसलिए यह लाभ वही ग्रहण करें जिन्होंने इसका उपार्जन किया है।"

देवकीनन्दन ने कहा :—"तुम तो रूसी समाजवाद का अनुकरण करना चाहती हो।"

कनक ने उत्तर दिया :—"रूसी समाजवाद ! उसकी तो कल्पना भी इस गुलाम प्रदेश में नहीं की जा सकती। किन्तु मेरे समाजवाद का आदर्श वही है। मानव जाति के इतिहास में रूस का नाम तब ही स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा, जब मानव उत्कर्ष की ओर संकेत करता होगा।"

चन्द्रनाथ ने कहा :—"आप लोगों के बीच में बोलना गुस्ताखी होगी, किन्तु फिर भी मैं इतना कहना चाहता हूँ कि मनुष्य का जीवन पूँजी पर निर्भर है। यदि संसार में पूँजी न हो तो मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। प्रत्येक काम के लिए कुछ-न-कुछ पूँजी की आवश्यकता होती है। हाँ यह सत्य है कि कार्य और समय के साथ पूँजी का रूप बदल जाया करता है।"

देवकीनन्दन ने हँसते हुए कहा :—"कनक, अब तो आपका सेक्रेटरी भी आपके सिद्धान्त के खिलाफ है।"

कनक ने उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा :—"पूँजी को नष्ट करने का तात्पर्य यह है कि उसकी सार्वजनिक असुलभता नष्ट की जाय। वैयक्तिक पूँजी को राष्ट्रीय रूप दिया जाय।"

चन्द्रनाथ ने उत्तर देने के लिए मुँह खोला ही था कि कनक ने किंचित्

तेजी से कहा:—"सेक्रेटरी साहब, मैं इस विषय में आपसे बहस करना नहीं चाहती, कृपया आप वे कागजात ले आयें, जिनको मैंने अभी माँगा है।"

चन्द्रनाथ की भ्रकुटियाँ कुंचित हो गई। गर्म-गर्म रक्त का संचालन सवेग मस्तक की धमनियों में होने लगा, और अपमान से उसका मुँह लाल हो गया। वह सवेग कमरे से बाहर हो गया।

उसके जाने के बाद देवकीनन्दन ने कहा:—"कनक, कभी-कभी तुम·····।"

कनक ने सहास्य उसका वाक्य पूर्ण करते हुए कहा—"साधारण शिष्टाचार के नियमों का भी उल्लंघन कर जाती हूँ। अथवा दूसरे शब्दों में मैं लोगों का तिरस्कार कर बैठती हूँ। हाँ, मैं यह स्वीकार करती हूँ, न जाने क्यों मैं इस पुरुष से घृणा करती हूँ। मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह दुरभिसन्धियों से पूर्ण एक अत्यंत निम्न श्रेणी का मनुष्य है।"

देवकीनन्दन ने ईषत् हास्य के साथ कहा:—"अथवा पुरुषों की ओर तुम्हारी घृणा का संकेत है।"

कनक ने हँसते हुए कहा:—"हो सकता है कि यही हो. किन्तु इतना मैं स्पष्ट कह सकती हूँ कि यह बाहर से जितना रंगाचुँगा दीख पड़ता है, अन्दर से उतना ही कलुषित है।"

देवकीनन्दन ने उठते हुए कहा:—"सम्भव है कि तुम्हारे विचार ठीक हों, मैं तो कम-से-कम उसमें कोई दोष नहीं देखता। इसका-सा विनयी मिलना दुष्कर है।"

कनक ने भी उठते हुए कहा:—"यही तो मुझे खटकता है। हर एक वस्तु की एक सीमा होती है—सीमा तक रहना गुण है, किन्तु उसके पार जाने से वही गुण एक बड़ा भारी दुर्गुण हो जाता है। मनुष्य अच्छे गुणों की आड़ में ही अपनी दुरभिसंधियाँ छिपाता है।"

देवकीनन्दन ने कहा:—"ठीक है, अच्छा मैं जाता हूँ, कल तुम्हारी बहस सुनने के लिए तुम्हारे साथ ही कचहरी चलूँगा।"

कनक ने अभिवादन करते हुए कहा:—"जरूर चलिएगा, शहादत इस्तगासा आज समाप्त हो जायगी।"

देवकीनन्दन चले गए।

७

कनक ने शांत और गंभीर स्वर में अपनी बहस प्रारम्भ की। वह कहने लगी:—"आज अदालत के सामने एक जटिल प्रश्न है। क्या एक मानव को यह अधिकार प्राप्त है कि वह एक दूसरे मानव को प्राण-दण्ड दे सके, यद्यपि उस एक मानव ने एक दूसरे मानव का प्राण-नाश किया है? मैं स्वीकार करती हूँ

कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में मानव को वह अधिकार प्राप्त है. किन्तु यदि हम इस अधिकार के प्रतिबंधों पर थोड़ा सा भी ध्यान देंगे तो यह साफ प्रमाणित होगा कि किन-किन विशेष परिस्थितियों में अपराध का यह अन्तिम दण्ड व्यवहृत हो सकता है। एक घटना जो हो चुकी है, उसके विनिमय में अपराधी को प्राण-दण्ड देना कहाँ तक उचित हो सकता है. इसका निर्णय मैं अदालत से कराना नहीं चाहती, किन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहती हूँ कि उपस्थित प्रश्न के सभी पहलुओं की भली-भाँति छान-बीन करना हमारे लिए और समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है।

"रामनाथ ने सेठ वामनदास के प्राणों का अन्त किया है, यह एक निर्विवाद सत्य है, जिसे बादी सरकार ने भली-भाँति प्रमाणित कर दिया है, और अपराधी स्वयं स्वीकार करता है, किन्तु अब विचारना यह है कि क्या रामनाथ को प्राण-दण्ड दिया जा सकता है ? क्या रामनाथ का अपराध समाज के प्रति इतना भीषण अपराध है कि जिसका दण्ड फाँसी का फंदा हो सकता है। अपराध की गम्भीरता उसी समय विदित होगी जब हम उसकी परिस्थिति का पूर्ण रूप से विकार-रहित होकर विश्लेषण कर सकेंगे । मानव परिस्थितियों का दास होता है । परिस्थिति ऐसे-ऐसे जघन्य काम मनुष्य से करवाया करती है, जिसकी कल्पना कभी की ही नहीं जा सकती। विधान-शास्त्रियों ने भी परिस्थिति को प्रधानता दी है, और न्यायाधीश को आदेश दिया है कि वह निर्विकार भाव से प्रत्येक परिस्थिति का मनन करे । इसी कारण से स्वरक्षा, सम्पत्ति-रक्षा आदि के अधिकार उन्होंने मानव को प्रदान कर रखे हैं। दूसरे शब्दों में यह अधिकार एक मानव को प्राप्त है कि वह एक आततायी का जीवन नष्ट करे, यदि वह आततायी किसी इतर मानव के विहित अधिकार, सम्पत्ति, इज्जत और प्राणों पर आक्रमण करता है; क्योंकि समाज में सब मनुष्यों को समान अधिकार हैं। यदि एक मनुष्य दूसरे के विहित अधिकार पर आक्रमण करता है तो यह भी सर्वथा विहित है कि वह उसकी रक्षा करे, और रक्षा करने में यदि आततायी का प्राण-नाश होता है, तो क्या रक्षा करने वाला मानव अपराधी है ?

"इसके अतिरिक्त एक और व्यवस्था विधान-शास्त्रियों ने की है—वह है बुद्धि-विभ्रम अथवा नाश । जिसकी व्याख्या के अंतर्गत 'आकस्मिक और अत्यंत भीषण उत्तेजना' आती है। ऐसी उत्तेजना कि जिससे बुद्धि का संतुलन विनष्ट होकर मनुष्य विक्षिप्त तथा उन्मत्त हो जाता है। वह विक्षिप्तता कई कारणों से प्राप्त होती है; किन्तु उनमें से एक है अपनी इज्जत की रक्षा। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में पुरुष को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी स्त्री की मर्यादा की रक्षा करे, और उसकी रक्षा में वह दूसरे मानव का प्राण-नाश भी

कर सकता है, यदि परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि बिना प्राण-नाश के और कोई उपाय रह ही नहीं जाता ।

"अब हमें उपस्थित प्रश्न के विषय में यह देखना है कि अभियुक्त रामनाथ को मानसिक अवस्था क्या थी, उस दुर्घटना के समय क्या उसकी बुद्धि का संतुलन बराबर था, क्या सेठ बामनदास अपनी सम्पत्ति और अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर रहा था, क्या वह एक वर्तमान सामाजिक व्यवस्था द्वारा पंगु बनाई हुई महिला की मर्यादा नष्ट करने में प्रयत्नशील नहीं था, और क्या अभियुक्त रामनाथ को यह अधिकार प्राप्त नहीं था कि वह अपनी स्त्री की मर्यादा की रक्षा में सेठ बामनदास का प्राण ले सके ? इन सब बातों का उत्तर हमें उसी समय मिलेगा जब हम परिस्थितियों पर ध्यान देंगे। पहले यह देखना है कि वास्तविक आक्रमणकारी कौन है ? उत्तर मिलेगा कि इस नारकीय नाटक का सूत्रधार मृत सेठ बामनदास है । वह पूँजी की शक्ति से रामनाथ की स्त्री को पथ-भ्रष्ट करता है—उसको अपने घर से उठवा मँगाता है, उसके सतीत्व के नाश का उपक्रम करता है। सेठ बामनदास का कार्य एक आततायी, दस्यु, चोर, लम्पट और समाज के प्रति घोरातिघोर अपराध का ज्वलन्त उदाहरण है । क्या समाज में सेठ बामनदास-जैसे व्यक्तियों के रहने के लिए स्थान प्राप्त है ? उत्तर मिलेगा—नहीं । किन्तु कानून यह कहेगा कि मैं उसे दण्ड दूँगा । ठीक है, किन्तु क्या परिस्थिति ऐसी थी कि रामनाथ सेठ बामनदास को न्यायालय के सुपुर्द करता ? यह एक विचारने की बात है । रामनाथ अपने घर में शाम को आता है, और उस समय उसे मालूम पड़ता है कि सेठ बामनदास के कुचक्र से उसकी स्त्री का अपहरण हो चुका है, और वह उसकी खोज में कैसी उत्तेजना के साथ बाहर निकल पड़ता है, और वह उस समय पूँजीपति बामनदास के रंगमहल में पहुँचता है जब कि उसकी स्त्री एक खिड़की से अपनी मर्यादा की रक्षा में ४० फीट की ऊँचाई से कूद पड़ती है, गिरते ही वह मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो जाती है, और उसी समय आततायी बामनदास रामनाथ के सामने आ जाता है, अब यह विचारने की बात है कि रामनाथ की मानसिक अवस्था क्या होगी, और क्या हो सकती है ? क्या उसकी बुद्धि का संतुलन सम-भाव पर रहेगा ? क्या उस परिस्थिति में विचारने की शक्ति अवशेष रहती है ? उत्तर मिलेगा—नहीं । यदि वह अपनी सारी विपत्तियों के मूलाधार पूँजीपति बामनदास पर आक्रमण करता है—और उसका प्राण-नाश करता है, तो क्या वह अपराधी की श्रेणी में आयगा ? क्या वह समाज के प्रति अपराधी है ? विकार-रहित मस्तिष्क का यह अपराध, अपराध प्रमाणित नहीं होगा । वह उसे निर्दोष कहेगा । रामनाथ केवल अपने उसी अधिकार को ग्रहण करता है, जिसकी अनुमति उसे कानून देता है, और

समाज वैध बनाता है । रामनाथ विक्षिप्त अवस्था में सेठ वामनदास का खून करता है । यह खून समाज के लिए आवश्यक है, और अभियुक्त रामनाथ सर्वथा निर्दोष है । मैं समाज के नाम पर, मानवता के नाम पर और अनादि काल से स्त्री जाति पर होते हुए अत्याचार के नाम पर रामनाथ की मुक्ति की माँग करती हूँ । मैं न्यायालय से दया की भीख नहीं माँगती, मैं न्याय चाहती हूँ । वह न्याय, जो मानव को मानव बनाता है । पद-दलित मजदूर भी मानव हैं । वे भी समाज के वैसे ही उपादेय अंग हैं जैसे पूँजीपति हैं । क्या मजदूर स्त्री की मर्यादा पूँजीपति के लिए एक खिलौना है । क्या न्याय का संतुलन पूँजी पर स्थिर है ? वर्तमान समाजिक व्यवस्था में यद्यपि पूँजीपति अजेय है, उसके लिए न्याय-प्रणाली दूसरी है, किन्तु फिर भी पूँजीपति पूँजी की आड़ में ही शिकार करता है ।

"रामनाथ की निर्दोषिता सर्वथा प्रमाणित है । किन्तु मैं अदालत का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हूँ कि उसको जो हानि पहुँची है, मानसिक, शारीरिक क्षति जो उसको और उसकी स्त्री उर्मिला को प्राप्त हुई है, अमानुषिक मृत वामनदास के अविहित कार्यों से उसकी क्या, कितनी और कैसी पूर्ति होनी चाहिए । यद्यपि अंग-भंग और मर्यादा की क्षति-पूर्ति रुपयों से नहीं हो सकती, किन्तु वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में इसके अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ उपाय भी नहीं है । अदालत स्वयं इस प्रश्न पर गम्भीरता और सहृदयता के साथ निर्णय करे, और आशा है कि उचित क्षति-पूर्ति की व्यवस्था भी अपने आदेश में प्रदान करेगी ।"

कनक का स्वर जो पहले शांत था, इस समय उत्तेजना की चरम सीमा को पहुँच गया था । बहस को समाप्त करने के पश्चात् भी अदालत का कमरा उसी प्रकार निस्तब्ध था, जैसा कि वह आदि से था । वह उसी प्रकार कनक के शब्दों के लिए आकुल और उत्सुक था जितना कि वह उस समय था, जब उसने वक्तृता प्रारम्भ की थी प्रांगण में जनता स्थिर होकर सुन रही थी, और जब उसे मालूम हुआ कि कनक अपना वक्तव्य समाप्त कर चुकी है, उसने जय-जयकार से उसको अभिनन्दित किया । न्यायाधीश ने मृदु मुस्कान से कहा :—"मिस कनक, मैं समझता हूँ कि अब आप और कुछ कहना नहीं चाहतीं ।"

कनक ने बैठते हुए कहा :—"जो कुछ मुझे कहना था वह मैं कह चुकी, अब आपका कथन, निर्णय और आदेश सुनना चाहती हूँ । देखना यह है कि आप और जूरी मानवता के किस रहस्य का उद्घाटन करते हैं ।"

न्यायाधीश ने सरकारी वकील की ओर देखते हुए कहा :—"अब आप शायद कुछ कहना नहीं चाहेंगे ।"

सरकारी वकील ने उठकर कहा :—"मैंने यह भली-भाँति प्रमाणित कर

दिया है कि अभियुक्त अपराधी है, और जिसे वह स्वयं स्वीकार करता है। मैं केवल न्याय किये जाने की माँग करता हूँ।"

रामनाथ ने अपने कठघरे से कनक की ओर देखा, उसी समय कनक के नेत्र भी सहसा उधर चले गए। एक क्षण-भर दोनों एक दूसरे के अन्दर देखने का प्रयत्न करते रहे। रामनाथ ने मूक भाषा में उस तेजस्विनी रमणी को धन्यवाद दिया, और कनक ने मुस्कराकर उसे स्वीकार-सा किया। दर्शकों की गैलरी में बैठी हुई उर्मिला के नेत्र उसी समय कनक की ओर कृतज्ञता से चले गए। उसकी दृष्टि में वह कितनी उच्च थी। उसके हृदय में कोई कह रहा था—कि उसका सौभाग्य-सिन्दूर चिरकाल के लिए अमिट-सा हो गया है। रामनाथ के जीवन की आशा उसे होने लगी, और वह अपनी गृहस्थी की छिन्न-भिन्न अवस्था सुधारने में व्यस्त हो गई।

८

उस दिन अदालत में कनक की बहस ने पूर्ण रूप से रामनाथ को निर्दोष प्रमाणित करने की चेष्टा की, उसके तर्क ने अधिकारियों के नेत्र खोल दिए। साक्षियों के आधार पर रामनाथ को अपराधी स्थिर करना एक कठिन समस्या हो गई। न्याय को चुनौती दी जाने लगी, वामनदास के मित्रों ने दाँतों तले उँगली दबाई। उनकी समझ में नहीं आया कि पिता-पुत्री का यह कैसा सम्बन्ध है? अधिकारियों ने भी कनक के कार्यों की प्रशंसा की।

किन्तु जन-समूह ने आश्चर्यित और मुग्ध होकर कनक की सराहना की, और यह उस समय प्रगट हुआ जब वह अपनी बहस समाप्त कर अदालत के प्रांगण में आई। उसकी जय-जयकार ने—अजस्र पुष्प-वर्षा ने यह दिखला दिया कि दलित वर्ग ने उसको अपना नेता स्वीकार कर लिया, यद्यपि वह शोषक जाति की थी। जुलूस उसी क्षण बन गया, और मजदूर-दल उसकी जय-जयकार के साथ उसको घर तक पहुँचाने आया।

उसी दिन संध्या की श्यामल छाया में कनक ने अपने गुरुत्व को अनुभव किया। उसके सामने एक नया संसार प्रगट हुआ, जिसकी वह एक-मात्र अधिकारिणी थी। उसने मजदूरों का दलित वर्ग का—शोषित श्रेणी का नेतृत्व गृहण किया, और उसमें अपना एक गौरव भी अनुभव किया।

वह उस दिन कुछ चिन्तित थी। चिन्ता थी कि कैसे वह यह भार ग्रहण कर उसको यथारूप कार्यान्वित करने में समर्थ होगी। वह इसी चिन्ता में निमग्न थी कि उसके सेक्रेटरी चन्द्रनाथ ने आकर कहा:—"श्रीमती जी, मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

कनक ने सिर उठाकर प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए

कहा :—"कहिए, क्या कहना चाहते हैं ।"

चन्द्रनाथ कुछ कह न सका, वह पृथ्वी की ओर देखने लगा ।

कनक ने कुछ रुष्ट होकर कहा :—"कहिए न, मैं सुनने को तैयार हूँ ।"

कनक की आज्ञा की परवाह न करके पास ही रखी एक कुर्सी पर बैठकर चन्द्रनाथ ने कहा :—"आप रुष्ट न हों तो कहूँ ।"

कनक ने अपने क्रोधावेश को, जो उठने का उपक्रम कर रहा था, दबाते हुए कहा :—"मैं संयत हूँ, कहिए ।"

चन्द्रनाथ कहने लगा :—"श्रीमती जी, यह तो आपको मालूम है कि मैं एक दीर्घ काल से आपके पिता का सेक्रेटरी हूँ, उनके कई गुप्त भेदों को जानने वाला हूँ, और यही कारण है कि आज मैं आपसे कुछ बातें करने आया हूँ ।"

कनक की सहन शक्ति समाप्त-प्राय थी, उसने अधीरता से कहा :—"सेक्रेटरी साहब, यह अनुमान तो मैं भी कर सकती हूँ, आपकी भूमिका की कोई आवश्यकता नहीं है, आपको जो कहना हो संक्षेप में शीघ्र ही कहिए ।"

चन्द्रनाथ के मस्तक पर बल पड़ गए, उसने अपने उमड़ते हुए क्रोधावेश को दमन करके कहा :—"श्रीमती जी, वही मैं करता हूँ । आप चाहे, मेरी स्वामिनी रूप में भले ही इस समय प्रतिष्ठित हों, किन्तु………।"

कनक ने सक्रोध कहा :—"मैं कह चुकी हूँ कि आप अपनी मुख्य बातें कहने में विलम्ब न करें । क्या भूमिका के बिना आप कहने में समर्थ नहीं हैं ?"

चन्द्रनाथ ने उठते हुए कहा :—"न मालूम किस लिहाज से आपका यह आवश्यक क्रोध सहन कर रहा हूँ, आप नहीं जानतीं कि सारी प्रतिष्ठा मेरे मौन पर अवलम्बित है, आपको स्वयं नहीं मालूम कि आप कौन हैं, और मैं कौन हूँ । आप जब सम्पूर्ण रूप से शांत चित्त हों तब मुझे याद कीजिएगा ।"

यह कहकर वह सवेग चला गया ।

कनक ने सक्रोध कहा :—"सेक्रेटरी साहब, मैं आपको बरखास्त करती हूँ ।"

सवेग जाते हुए चन्द्रनाथ ने रुककर कहा :—"आप मुझे बरखास्त करती हैं, किन्तु मैं अत्यन्त शोक के साथ कहता हूँ कि यह अधिकार आपको प्राप्त नहीं है । आप मुझे तो नहीं किन्तु मैं आपको दर-दर की भिखारिणी बना सकता हूँ ।"

कनक ने आहत सर्पिणी की भाँति कहा :—"यह आप क्या कहते हैं ? जरा स्पष्ट कहिये । क्या मुझे अपने नौकर को बरखास्त करने का अधिकार नहीं है ।"

चन्द्रनाथ ने लौटते हुए कहा :—"नहीं है, श्रीमती जी नहीं है । मैं जिस

बात को छिपाकर रखना चाहता था, और आपको इस अगाध सम्पत्ति की अक्षुण्ण स्वामिनी बनाये रखना चाहता था, देखता हूँ कि वह असम्भव हो गया है। मैं शांति का संदेश लेकर आया था, किन्तु घटनाओं का स्रोत शायद हमको दूसरी ओर ले जाना चाहता है। जब आप स्पष्ट रूप से सुनना चाहती हैं, तो सुनिये, 'आप स्वर्गीय वामनदास की औरस सन्तान नहीं हैं'।"

कनक क्रोध से पागल हो गई, उसने लमककर कहा:—"क्या कहा, मैं वामनदास की औरस सन्तान नहीं हूँ।"

चन्द्रनाथ ने सहास्य कहा:—"हाँ, यह सत्य है, नितान्त सत्य है, इस कथन की पुष्टि में मेरे पास अकाट्य प्रमाण हैं। स्वर्गीय वामनदास की विल मौजूद है, किन्तु आपकी ओर देखकर मैंने उसे प्रकट नहीं किया और यही रवैया यदि आपका रहा तो मुझे प्रकट करना ही पड़ेगा।" कनक के नेत्र मुँद गए। क्रोध का आवेश-प्राबल्य बाधा पाकर भँवर रूप में घूमने लगा था, वह कुर्सी पर गिर पड़ी।

चन्द्रनाथ मुस्करा रहा था। उसने कहना आरम्भ किया:—"मुझे अफसोस है कि मैं अपने ऊपर अधिकार न रख सका। आपकी कटूक्तियों ने मुझे भी उत्तेजित कर दिया, और जिन बातों को मैं एक दूसरे ही रूप में रखना चाहता था, वह न होकर एक दूसरे ही रूप में आपके सामने आया। सम्पत्ति से चाहे जो कितनी ही घृणा करे, किन्तु उसके बिना संसार में कुछ काम नहीं हो सकता। जीवित रहने के लिए पूँजी की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि वायु, अन्न और जल की।"

कनक ने सचेष्ट होकर कहा:—"जो कुछ आपने कहा है यदि वह वास्तव में सत्य है तो......।"

चन्द्रनाथ ने उत्तर दिया:—"हाँ, यह कठोर सत्य है, मेरे पास प्रमाण हैं, यदि आप देखना चाहें मैं दिखा सकता हूँ, वे सब प्रमाण-पत्र अपने साथ ही लाया हूँ।"

यह कहते हुए उसने जेब से कुछ कागज निकाल कर रख दिये। कनक ने उनको झपटकर छीन लिया, वह उन्हें पढ़ने लगी। वह स्वर्गीय वामनदास की 'इच्छा' थी, जो लिखित रूप में सामने थी।

कनक पढ़ने लगी:—"सर्व साधारण को मैं इस लिपि द्वारा प्रकट करता हूँ कि मेरा नाम वामनदास और पिता का नाम कृष्णदास है। मेरे पिता के सगे भाई विष्णुदास की सन्तान भक्तिदास और उसका पुत्र देवकीनन्दन मौजूद हैं। मैंने अपने भाई भक्तिदास के साथ कई प्रकार के व्यापार किये, और अहमदाबाद तथा बम्बई के 'कृष्णा मिल' और 'विष्णु मिल' दोनों हमारी सम्मलित पूँजी से

बने हैं, जिसमें मेरे अकेले के हिस्से के शेयर पाँच-पाँच लाख रुपयों के हैं, और बाकी देवकीनन्दन के हैं। कानपुर में मेरे तीन मिल हैं, जिनमें से दो 'वीनस' और 'जुपिटर' मेरी निज की सम्पत्ति हैं—और सारे शेयर मैंने क्रमशः खरीद लिये हैं जिनकी कीमत पचास-पचास लाख रुपए हैं। 'नेपचून मिल' मेरा तीसरा मिल है, जिसमें आधे शेयर मेरे हैं और आधे देवकीनन्दन के। मेरे हिस्से के शेयरों का मूल्य इस समय पच्चीस लाख रुपया है। इसके अतिरिक्त बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, कराची और कलकत्ता में मेरी कोठियाँ हैं—जिनमें दो करोड़ रुपयों की लागत लगी हुई है। कानपुर में चार बँगले, छः कोठियाँ और हमारा सेण्ट्रल आफिस का भवन है जो एक करोड़ की लागत से बने हैं। यह सारी सम्पत्ति मेरी मेरी निज की उपार्जित है, और पैतृक नहीं है। चूँकि मनुष्य का शरीर नश्वर है, और न मालूम कब मृत्यु आ जाय, इसलिए मैं इस सम्पत्ति की व्यवस्था कर देना उचित समझता हूँ, अतएव मैं यह सूचित करता हूँ कि मेरे निधन के पश्चात् मेरी सम्पत्ति की इस प्रकार व्यवस्था की जाय।

"मेरे औरस सन्तान न होने के कारण मैं अपनी सम्पत्ति की निम्नलिखित व्यवस्था करता हूँ। अहमदाबाद तथा बम्बई के क्रमशः 'कृष्णा मिल' तथा 'विष्णु मिल' में मेरे जितने हिस्से अथवा शेयर हैं वे मेरे पश्चात् देवकीनन्दन के होंगे, और दोनों उक्त मिलों पर देवकीनन्दन का पूरा अधिकार हो जायगा। मेरे निधन के पश्चात् जितनी चल सम्पत्ति रोकड़ के रूप में मिले वह सब किसी विश्वविद्यालय को दी जाय, और उससे मेरे तथा मेरे पिता कृष्णादास के नाम से दो छात्र वृत्तियाँ दी जायं और अधिक रकम को विश्वविद्यालय किसी रूप में लगा देवे। कानपुर, बम्बई, कराची, अहमदाबाद, दिल्ली और कलकत्ता की कोठियाँ, बँगले, मकानात और दूसरी अचल सम्पत्ति, तथा वीनस, जुपिटर और नेपचून मिलों के सारे शेयर मैं अपने सेक्रेटरी चन्द्रनाथ को देता हूँ, जिसने तमाम जीवन मेरी सेवा की है, और मेरी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया है। मैं चन्द्रनाथ से बहुत प्रसन्न हूँ, और मेरी यह एकान्त कामना है कि वह इस विशाल सम्पत्ति को भोगे, और लाभ उठाय। चन्द्रनाथ एक कुलीन युवक है, और अत्यंत सहनशील तथा सच्चरित्र है, जिससे मुझे विश्वास है कि वह मेरी सम्पत्ति की रक्षा भली भाँति करेगा, और जिससे परलोक में मेरी आत्मा को शांति मिलेगी। इन्हीं कारणों से मैं अपनी सारी सम्पत्ति का—जिसकी व्यवस्था ऊपर लिख चुका हूँ—उत्तराधिकारी चन्द्रनाथ को बनाता हूँ, और आशा करता हूँ कि कानून भी उसको सहायता देकर मेरी 'इच्छा' को वैध रूप से उत्तराधिकारी निश्चित करेगा।

"मैंने एक अनाथ मातृ-पितृ-हीन बालिका—जिसका नाम है कनक—का

किया है और उसको सब प्रकार से शिक्षित किया है, उसको अपना उत्तराधिकारी नहीं नियुक्त कर सकता, किन्तु उसके विवाह के लिए व्यवस्था कर देना आवश्यक समझ अपने उत्तराधिकारी चन्द्रनाथ को आदेश देता हूँ कि वह उसके विवाह के लिए पचास हजार रुपए दे देवे, और यदि कनक विवाह न करे तो यह रकम उसको कदापि न दी जाय।

"मैंने यह व्यवस्था अपनी पूर्ण ज्ञानावस्था में, बिना किसी दबाव इत्यादि के लिख दी है, और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन के सम्मुख अपने हस्ताक्षर करता हूँ, ताकि प्रमाण रहे और समय पर काम आए।

हस्ताक्षर—वामनदास।"

इसके पश्चात् डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन की अनुमोदन-लिपि थी।

कनक ने उपरोक्त वामनदास की इच्छा को काँपते हुए हृदय से पढ़ा। उसका मस्तिष्क विभिन्न आशंकाओं से ओत-प्रोत हो रहा था, और उसके हाथ काँप रहे थे। चन्द्रनाथ कभी-कभी उसकी ओर देखकर अपने नेत्र पुनः नीचे कर लेता था - उसके मुख पर एक विचित्र प्रकार की हास्य-रेखा नृत्य कर रही थी, जिसमें प्रतिशोध की प्रच्छन्न झलक उनके नेत्रों को किंचित् भीषणता प्रदान कर रही थी।

कनक ने आत्म-संयम से कहा:—"इस विल के द्वारा तो आप ही इस सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। चलो यह भी अच्छा हुआ, आप इसका भार ग्रहण करें। मैं इसी क्षण इस घर से विदा लेती हूँ।"

यह कहकर वह उठ खड़ी हुई। चन्द्रनाथ ने वामनदास की 'विल' को अपनी जेब में रखते हुए कहा:—"ठहरिए, यह मेरी इच्छा कदापि नहीं है कि मैं···।"

कनक ने जाते हुए उत्तर दिया:—"नहीं, चन्द्रनाथ जी, क्षमा कीजिएगा, मैं आपको इसी नाम से पुकारूँगी चाहे आप कितने ही बड़े हो जायं—आपका अनुरोध मैं स्वीकार नहीं कर सकती। अब तक मैं इस सम्पत्ति का उपभोग इसलिए कर रही थी, क्योंकि मैं जानती थी कि यह मेरी है, किन्तु अब एक क्षण भी ठहरना मेरे लिए असम्भव हो गया है, मैं किसी की कृपा अथवा दया का पात्र नहीं होना चाहती। आपको इस कृपा के लिए धन्यवाद देती हूँ।"

कनक के स्वर में कठोर व्यंग्य का आभास था।

चन्द्रनाथ ने उसके पीछे-पीछे जाकर कहा—"श्रीमती जी, आप विश्वास करें या न करें, किन्तु मैं यह आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि न मालूम मैंने क्यों यह 'बिल' प्रदर्शित की, हालाँकि यह मेरे पास सदैव रही, और वामनदास जी की हत्या के पश्चात् इतने दिनों तक मैं छिपाए रहा। इसका कारण केवल यही था कि मैं आपको कोई कष्ट देना नहीं चाहता था। आपको ही इस विशाल

सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाए रखना चाहता था, और स्वयं इसी रूप से आप-की सेवा में जन्म बिता देना चाहता था।

कनक ने म्लान हास्य के साथ कहा:—"धन्यवाद, मैं इससे कदापि रुष्ट नहीं हूँ, और न आपके प्रति मेरा कोई द्वेष है। आपने वही किया है जो आपको करना चाहिए था। इतने दिन तक आप सर्वथा मौन रहे, यह आपका मेरे प्रति अन्याय था, और स्वर्गीय वामनदास जी के प्रति भी, किन्तु आज उस अन्याय के नाटक का अन्त तो हुआ। इतने थोड़े समय में आपने मेरे नेत्र खोल दिए—इसके लिए मैं पुनः आपको धन्यवाद देती हूँ। कृपया आप यह बतायें कि मैं अपनी दैनिक व्यवहार की वस्तुएं ले जा सकती हूँ या नहीं, और अगर ले जा सकती हूँ तो कौन-कौन-सी ?"

चन्द्रनाथ ने दीनस्वर में कहा:—"यह आप क्या कहती हैं। आपका हाथ पकड़ने वाला मैं कौन होता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप पूर्ववत् इसी घर में रहें, और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके आदेश सदैव उसी भाँति पालन किये जायंगे जैसे कि आज तक होते रहे हैं।"

कनक ने कमरे के बाहर जाते हुए कहा:—"आपका आग्रह मैं स्वीकार नहीं कर सकती। आज रात को मैं अपने किसी मित्र के यहाँ रह जाऊंगी, और कल अपने पढ़ने-लिखने का सामान मँगा लूँगी, आप कृपया भिजवा दीजिएगा।"

चन्द्रनाथ ने कुछ कहना चाहा, मगर कनक ने कुछ ध्यान नहीं दिया। वह सवेग चली गई। कमरे में एक भयानक निस्तब्धता छा गई।

९

उर्मिला ने सहास्य उत्तर दिया:—"हाँ, अब तो तबियत अच्छी है। किन्तु बहन, इस जीवन को लेकर क्या करूँगी ? यह मेरे किस मतलब का है ?"

कनक की वेदना तड़प कर आँखों के बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगी। अपने एकाकी जीवन की कठोरता को वह सत्य की कसौटी पर रगड़ने लगी।

उर्मिला ने विषादपूर्ण स्वर में कहा:—"जीवन अब किसके लिए रखूँ ? इसकी अब क्या सार्थकता है। मन बार-बार धिक्कारता है कि क्या तू अपने पति का फाँसी का फन्दा देखने को जीवित रहेगी ? स्त्री का जीवन पति के बिना निस्सार है।"

कनक ने कुछ उत्तेजित होकर कहा:—"यहीं पर मैं तुमसे सहमत नहीं होती। हिन्दू संस्कृति ने स्त्री के अस्तित्व को नष्ट कर दिया है, उसे इतना पंगु बना दिया है कि वह स्वतन्त्र रूप से कुछ विचार नहीं सकती, कुछ कर नहीं सकती, यहाँ तक कि वह जीवित नहीं रह सकती।"

उर्मिला ने चकित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए कहा:—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है, बहन? स्त्री और पुरुष के युग्म का नाम है ब्रह्म। ब्रह्म ने जब अपने को विस्तृत करना चाहा, तब वह दो रूपों में प्रकट हुआ—एक कर्त्ता अर्थात् ईश्वर रूप में, और दूसरा प्रकृति रूप में; और उनमें एक-एक क्रिया की शक्ति सन्निहित हुई। ईश्वर बीज स्थापित करता है और प्रकृति उसका पोषण करती है। ईश्वर के बिना प्रकृति उत्पन्न करने में असमर्थ है, यही अकाट्य प्रमाण है कि स्त्री का जीवन पति के बिना व्यर्थ है।"

"और स्त्री के बिना पुरुष का जीवन सार्थक है।" कनक का व्यंग्य उस कमरे में झनझना उठा।

कनक की ओर देखते हुए उर्मिला ने उत्तर दिया:—"नहीं, वास्तव में पुरुष का जीवन भी स्त्री के बिना व्यर्थ है। दोनों अपने आधे रूप में व्यवस्थित हैं। एक दूसरे की पूर्ति करता है। स्त्री और पुरुष दोनों एक होकर ही सृष्टि का विकास करते हैं, और उसी समय ब्रह्म एक से अनेकों रूप धारण करता है।"

कनक ने उपेक्षापूर्ण हास्य के साथ कहा:—"दार्शनिक विश्लेषण सदैव सत्य की कटुता छिपाने का प्रयत्न करता है। भरा पेट होने से ही दर्शन शास्त्र की सराहना होती है, भूख से बिलबिलाने वालों को वह नीरस और कटु मालूम होता है। पुरुष मानव ने दर्शन शास्त्र की रचना करके अपने प्रतिपादित सिद्धांतों को न्याय-विहित बनाने की चेष्टा की है। ब्रह्म को रचकर उसने अपने स्वार्थ के जाल को स्वर्णमय बना दिया है, जिससे स्त्री मानव पुरुष मानव की आश्रित बनकर उसके फन्दे से कभी बाहर निकल न सके। साहस का अभाव मानव को परावलम्बी बनाता है। साहस तथा शक्ति को नष्ट करने के भी उपाय हैं। यदि हम अपने शरीर के एक अवयव से बहुत दिन तक काम न लें, तो वह थोड़े दिनों के बाद निश्चेष्ट होकर काम देने के योग्य नहीं रहेगा। इसी प्रकार स्त्री मानव को पुरुषों की सभ्यता के आदि काल से साहस तथा शक्ति से हीन बनाया गया है, अतएव आज स्त्री मानव पंगु होकर पुरुषों के इशारे पर नाच रही है। पुरुषों से भिन्न होकर अपना अस्तित्व विचारने तक में असमर्थ है। जो जीवित, जाग्रत और स्पष्ट है, उस पर भी दर्शन शास्त्र—वह भी पुरुष-रचित—का परदा डाला जाता है। यह है पुरुष जाति की अजेय शक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण।"

उर्मिला ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"क्या सोच रही हो, उर्मिला। मैं समझती हूँ कि तुम्हारे पति को फाँसी नहीं होगी। तुम हताश न हो। किन्तु कारावास या द्वीपान्तर का दण्ड अवश्य दिया जायगा, क्योंकि न्याय विभाग पुरुषों के हाथ में है। यदि न्यायाधीश के

स्थान पर एक स्त्री मानव होती, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि रामनाथ छूट जाते। इतना ही नहीं वरन् उन्हें पुरस्कृत भी किया जाता। परन्तु सारे अधिकारों पर तो पुरुष मानव ने अपना प्रभुत्व जमा रखा है, इसीलिए स्त्री मानव को उनका गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।"

उर्मिला ने उज्ज्वल नेत्रों से कहा:—"इतना ही हो जाय तो मैं अपना परम सौभाग्य मानूँगी। इन आँखों से मैं उन्हें फाँसी पर लटकते नहीं देख सकती।"

"किन्तु पृथक् होकर तो रहना पड़ेगा।" कनक का मृदुल स्वर कुछ व्यंग्यमय हो गया।"

भविष्य की विरह-कल्पना उर्मिला के हृदय के उस स्थान पर बिलखती हुई पहुँच गई जहाँ अश्रुओं का भण्डार संचित रहता है। प्रताड़ित होकर नेत्र-कोषों से दो बूँद गुम-सुम होकर कनक की ओर निहारने लगीं।

कनक ने उसके समीप बैठकर उसके रूक्ष केशों की एक लट ले ली, और वह नत होकर अपने हृदय में उमड़ते सौहार्द तथा सहानुभूति के आर्द्र रूपों को पलकों से पीछे ढकेलने लगी। उर्मिला ने बिलखकर उसकी गोद में अपना सिर छिपा लिया। रूक्ष केश बिखर कर उसकी मनोव्यथा का साकार रूप दिखाने का प्रयत्न करने लगे।

कनक ने विजड़ित स्वर में कहा:—"उर्मिला, मैं तुमसे आज एक भीख माँगती हूँ।"

उर्मिला ने चकित नेत्रों से उसकी ओर देखा, फिर कहा:—"अभागिनी के पास अब देने को क्या है, बहन? तुम मेरे पति की जीवन-रक्षा कर रही हो, इसका बदला तो मैं अपने प्राणों की बलि देकर भी नहीं चुका सकती। और फिर बहन तुम्हें किस बात की कमी है, तुम स्वयं करोड़ों रुपयों की स्वामिनी हो। समझ में नहीं आता कि मेरे पास ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसके लिए तुम इस प्रकार कहकर मुझे नरक में घसीटती हो। यदि मैं अपने शरीर के चर्म से जूते बनाकर तुम्हें यावज्जीवन पहनाती रहूँ, तो भी तुम्हारे अहसान से उऋण नहीं हो सकती।"

कनक उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। उर्मिला सिमिटकर उसके हृदय के निकटतम भाग के समीप पहुँचकर उसकी याचना के रहस्य को जानने का प्रयत्न करने लगी।

कनक:—"मैं अब करोड़ों रुपयों की स्वामिनी नहीं रही, तुम्हारी तरह पथ की भिखारिणी हूँ।"

उर्मिला उठकर बैठ गई। उसने चकित होकर कहा:—"यह क्या कहती हो बहन, ऐसी अशुभ वाणी मत बोलो।"

कनक ने म्लान हास्य के साथ कहा :—"यह सत्य है, उर्मिला। वामनदास जी मेरे जन्म पिता नहीं, पोषक पिता थे। मैं अज्ञात माता-पिता की सन्तान हूँ। अनाथ जानकर ही उन्होंने मेरा सन्तानवत् पालन किया था, क्योंकि उनके औरस सन्तान नहीं थी। किन्तु नहीं जानती कि चौबीस वर्षों तक वे इस भेद को कैसे छिपाये रहे। व्यवहार में भी उन्होंने यह कभी विदित नहीं होने दिया कि मैं उनकी सन्तान नहीं हूँ। दूसरे की सन्तान के प्रति मानव-हृदय में क्या इतना प्रेम जाग्रत हो सकता है ? विश्वास तो नहीं होता।"

उर्मिला :—"मेरी समझ में क्या आयगा, जब तुम स्वयं उसको समझने में असमर्थ हो।"

कनक :—"क्या कहूँ ? कल शाम को स्वर्गीय वामनदास के प्राइवेट सेक्रेटरी चन्द्रनाथ ने बातों-ही-बातों में वह भेद खोल दिया, और वह विल भी मुझे दिखाई और विल गलत नहीं हैं, क्योंकि उसपर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हैं। उस विल के अनुसार मैं उनकी औरस सन्तान नहीं हूँ, और मुझे केवल विवाह के खर्च के लिए पचास हजार रुपये मिल सकते हैं। बम्बई की सम्पत्ति तो मेरे......नहीं, नहीं, वामनदास के भतीजे देवकीनन्दन को मिली है, और कुछ भाग दान के लिए निर्धारित हुआ है, बाकी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी चन्द्रनाथ को बनाया है। संक्षिप्त में यही उनकी 'विल' है।"

उर्मिला :—"बहन, इसमें कोई जाल तो नहीं है ?"

कनक :—"प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ता। और कोई कारण भी नहीं है। जब मैं चन्द्रनाथ के प्रति अपने व्यवहार का स्मरण करती हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि इस व्यवस्था को जानते हुए भी इतने दिनों तक वह कैसे मौन रहा ? चन्द्रनाथ को मैं बहुत दिनों से जानती हूँ। लगभग १४ वर्ष हुए जब यह वामनदास जी के साथ मसूरी में मिलने आया था। उन दिनों मैं ६-१० वर्ष के लगभग थी, किन्तु चन्द्रनाथ ठीक ऐसा ही था, जैसा कि आज के दिन है। अगर परिवर्तन हुआ भी हो तो वह नगण्य-सा है। उसके साथ प्रथम साक्षात् की घटना आज भी मेरे हृदय में उसी भाँति अंकित है। मैं वामनदास जी के साथ बगीचे में खेल रही थी। उसी समय चन्द्रनाथ वहाँ आया। उसको देखकर पिताजी...नहीं, वामनदास जी कुछ विचलित-से हो गए। उसका भी प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा, मैं हत-प्रभ होकर एक ओर खड़ी हो गई। चन्द्रनाथ ने बड़ी शीघ्रता से मुझे गोद में उठाकर मेरा कपोल चूम लिया। ठीक उसी समय मैं नहीं जानती कि मैंने उसके चेहरे में अथवा उसके नेत्रों में क्या देखा कि मैं मारे भय के सिहर उठी, और भय-पीड़ित होकर रोने लगी। चन्द्रनाथ ने मुझे नीचे उतारते हुए कहा :—"मैं भी कितना बड़ा मूर्ख हूँ, और मैंने अपने हैवानी तरीके से इस अबोध बालिका को डरा

दिया।" मुझे स्पष्ट याद है कि उन्होंने त्रस्त कण्ठ से कहा था :—"यह तो अबोध बालिका है, यदि तुम्हारे-जैसे पिशाच से डर गई तो आश्चर्य की कौन-सी बात है ? मैं जो इतना बोधवान हूँ, तुमसे क्या तुम्हारी छाया से काँपता हूँ।" यह सुनकर चन्द्रनाथ हँसता हुआ चला गया, और जाते-जाते कहता गया :— "आज जब मेरे आगमन से पिता-पुत्री दोनों दुःखित हैं, तब मेरा जाना ही श्रेयस्कर है। कभी फिर आकर मिलूँगा। लेकिन याद रखना, कि मैंने तुम्हारी असलियत खोज निकाली है। तुम अब मुझसे दूर भागने का प्रयत्न न करना, क्योंकि तुम भाग नहीं सकते, और तुम्हारे ऊपर मेरे दण्ड का बोझ अधिकाधिक उग्र होता जायगा।" उसकी इस धमकी से वे ही नहीं मैं भी विचलित हो गई थी। फिर कई वर्षों से उसको नहीं देखा। एक दिन जब 'कान्वेन्ट स्कूल' से छुट्टियों में घर आई तब उसको प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में कार्य करते हुए पाया। तभी से मैं उससे घृणा करती हूँ। उसको देखते ही कुछ भय-मिश्रित क्रोध मुझे दबा लेता है, और मैं यही चाहती हूँ कि वह मेरी आँखों से सदा दूर रहा करे।"

उर्मिला :—"फिर उसको निकाल क्यों नहीं दिया।"

कनक :—"पिता जी, अरे नहीं, वामनदास जी के रहते मैंने कई बार उसको निकालने का हठ उनसे किया था, किन्तु वे इस पर ध्यान नहीं देते थे। मेरे बहुत हठ करने पर कहते कि 'कनक तुझे नहीं मालूम कि वह हमारे कितने काम का आदमी है। व्यापार में वह बड़ा ही कुशल है। उसी की बदौलत यह सारी सम्पत्ति दीख पड़ती है, जिस दिन वह जायगा, हम दर-दर के भिखारी हो जायंगे। उसका सदैव आदर करो, जिससे वह सदैव प्रसन्न बना रहे'।"

"वास्तव में उनकी चेतावनी का ठीक अर्थ मैंने आज समझा है। उसका अनादर करने का ही फल कल मिला है।"

उर्मिला :—"क्या कल उसका कुछ अनादर किया था।"

कनक :—"जब से मेरे हाथ में अधिकार आया है तब से उसको निकालने की चेष्टा में थी, उसकी सूरत से मुझे नफरत है। मैंने कुछ रुष्ट होकर उसको कल निकाल दिया। बस, उसने भी अपना असली रूप प्रकट किया, और वामनदास जी की 'विल' दिखलाकर उलटा मुझको ही सम्पत्ति से वंचित कर घर तक से निकाल दिया।"

उर्मिला :—"क्या अब कोई उपाय नहीं है।"

कनक ने हँस कर कहा :—"उपाय, क्या उस घर में प्रवेश पाने का पूछती हो। नहीं, उर्मिला यह असम्भव है। मैं तो स्वयं इस सम्पत्ति से ऊबती थी, यह मेरे लिए एक बड़ा भारी बन्धन था, अब जब यह स्वयं मुझसे दूर हो गई है तो उसको हस्तगत करने की चेष्टा कदापि नहीं करूँगी। मेरे सामने मेरा कर्तव्य है,

जो मुझे एक दूसरी दिशा में जाने का संकेत कर रहा है—वह है सेवा-मार्ग। अपनी स्त्री जाति को पशुता से उठाकर मानव बनाना ही मेरा कर्त्तव्य है। वकालत से अपना भरण-पोषण मैं भली भाँति कर सकती हूँ। तुमको देखकर मेरे हृदय में एक अद्भुत स्नेह, सौहार्द और प्रेम जाग्रत हो उठा है। तुमको मैं अपने साथ बराबर रखना चाहती हूँ। तुम्हारे स्नेह और तुम्हारे अहर्निश संसर्ग की ही याचना करती हूँ। बोलो उर्मिला, तुम मुझे निराश तो नहीं करोगी।"

उर्मिला ने उसकी गोद में अपना मुँह पुनः छिपाते हुए कहा :—"बहन, इस प्रस्ताव को मैं अस्वीकार ही कैसे कर सकती हूँ। यदि तुम्हारी सेवा करने का मुझे अवसर मिले तो इससे अधिक मेरा सौभाग्य क्या होगा। यह तो अंधे को आँखें मिलने के बराबर है।"

कनक ने उसको सवेग अपने हृदय से चिपकाते हुए कहा :—"बस, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरा सूनापन मिट गया। आज से तुम मेरी सगी बहन से भी अधिक हो।"

दोनों एक दूसरे के पाश में आबद्ध हो गईं। दैव-विधान मुस्कराने लगा।

१०

ब्रिटिश शासन तलवार के बल पर अवलम्बित था। वह जन-आन्दोलन को सदैव शंकित दृष्टि से देखा करता था, और सदैव कोई-न-कोई बहाना निकालकर उसको कुचलने का प्रयत्न करता। गुप्तचर बड़ी सतर्कता से कार्य करते थे, और अधिकारी वर्ग के इशारों पर यान्त्रिक पुतलों की भाँति अपनी कार्य—नीति निर्धारित करते थे। रामनाथ को लेकर जो आन्दोलन श्रमिक वर्ग में चल पड़ा था, उससे सरकार और उसके पिट्ठू पूँजीपति दोनों ही त्रस्त से दीख पड़ते थे। दर्शक मजदूरों की संख्या बराबर अदालत के प्रांगण में बढ़ती जाती थी, और जैसे-जैसे रामनाथ के मुकद्दमे की पेशियाँ आगे बढ़तीं, वैसे-वैसे श्रमिक वर्ग उत्तेजित हो रहा था। आलोचनाएं, जो अभी तक गुपचुप होती थी, शनैः-शनैः सस्वर हो रही थीं और विरोध की मात्रा भी क्रमशः उग्र और कटु हो रही थी। इधर अधिकारी सोचने लगे थे कि किस दिन उसको कुचलने का श्रीगणेश किया जाय, और उधर मजदूर सीधी कार्रवाई करने का षड्यंत्र कर रहे थे। संघर्ष भी हँसता हुआ वहाँ पहुँचने की राह देख रहा था। रामनाथ के मुकद्दमे में पैरवी करने के कारण कनक बिना किसी प्रयास के श्रमिक वर्ग की नेता बन चुकी थी, और जब से वामनदास की सम्पत्ति को त्यागकर स्वतन्त्रता से अपना जीवन निर्वाह करने लगी थी, तबसे वे मजदूर जो उस पर विश्वास करते हुए शंकित होते थे, अब उसके हाथों में आँख मूँदकर अपना जीवन तक समर्पित करने को तैयार थे। जिस ओर से कनक निकल जाती वही दिशा उसके जय-जयकार से

प्रतिध्वनित होने लगती। श्यामदास की सम्पत्ति से विच्छेद को जन साधारण ने उसके त्याग के रूप में ही देखा था। यद्यपि समाचार-पत्रों में सारा वर्णन विस्तार के साथ प्रकाशित हुआ था, किन्तु जन-वाणी के प्रतीक पत्र-सम्पादकों ने उसमें कनक के त्याग का रंग-भर दिया था। मजदूर इसे चन्द्रनाथ का षड्यन्त्र घोषित कर रहे थे। 'वीनस मिल' के कितने ही मजदूर चन्द्रनाथ की हत्या करने के उपाय सोच रहे थे और परिस्थिति इतनी भयंकर होती जा रही थी कि चन्द्रनाथ ने बाहर निकलना ही छोड़ दिया था। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन ने उसके रहने का स्थान 'वीनस पैलेस' के चारों ओर सशस्त्र सैनिकों के पहरे का प्रबन्ध कर दिया था, जिन्हें आदेश था कि यदि मजदूर कदाचित् आक्रमण करें तो वे बिना चेतावनी के भी गोली का प्रयोग कर सकते हैं। चन्द्रनाथ ने सम्पत्ति पाने के उपलक्ष में चौगुना बोनस बाँटने की घोषणा की; किन्तु इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर, और कोई भी उसका साथ देने को तैयार नहीं हुआ। उन्हें उसमें दुरभिसन्धि और षड्यंत्र की गन्ध आ रही थी, और किसी भाँति वे इस अन्याय को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। जन समुदाय जहाँ कनक के त्याग की सराहना कर रहा था, वहाँ अन्याय को इस प्रकार मौन होकर सह लेने की आलोचना भी कर रहा था।

ये द्वितीय महासमर के दिन थे। मित्र शक्तियाँ हिटलर से पदाक्रान्त होकर रण-प्रांगण से भाग रही थीं और अधिक-से-अधिक संख्या तथा परिमाण में युद्ध-सामग्री बनाने में प्रयत्नशील थीं। मजदूरों से संघर्ष मोल लेने को ब्रिटिश साम्राज्य तैयार नहीं था। मजदूर-आन्दोलन को वे उसके आरम्भ काल में ही कुचल देने की योजना बना चुके थे, और चन्द्रनाथ भी प्राणपण से उसका साथ देने के लिए कटिबद्ध था। उसकी निष्कृति का उपाय भी यही था। पूँजीपतियों की सरकार पूँजीपतियों का ही आश्रय खोजती है, और पूँजीपति भी अपने जीवन का अस्तित्व उसी में देखता है। संध्या की श्यामलता कालिमा में परिवर्तित हो रही थी। चन्द्रनाथ सान्ध्य वेश-भूषा से सज्जित दर्पण के सामने खड़े होकर अपनी छवि निरख रहे थे। आँखों से सन्तोष उमड़ रहा था, किन्तु उसके पीछे किंचित् आशंका भी झाँक रही थी। हृदय का कम्पन उसके उल्लास को पूर्ण रूप से प्रस्फुटित करने में बाधक हो रहा था। इसी समय उसके एक विश्वस्त सेवक ने आकर सूचना दी कि मिस्टर निक्सन उससे साक्षात् करने आये हैं। चन्द्रनाथ उनका स्वागत करने के लिए झपट कर नौकर से आगे हो गए और द्वार पर खड़े हुए मिस्टर निक्सन से हाथ मिलाते हुए बोले :—"आपने क्यों कष्ट किया, मैं तो स्वयं आ रहा था।"

मिस्टर निक्सन के साथ उनकी बड़ी कन्या मिस पामीला निक्सन भी

थी। चन्द्रनाथ ने मिस्टर निक्सन का हाथ छोड़कर उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा :—"आपने बहुत दिनों बाद मेरी प्रार्थना पर ध्यान तो दिया, और मेरी कुटीर को पवित्र किया। इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सौभाग्य हो सकता है।"

मिस पामीला ने एक मनोहारी मुस्कान के साथ चन्द्रनाथ को देखकर कहा :—"नहीं पहले तो मैं कई बार आ चुकी हूँ। कनक से मेरी मित्रता थी। हाँ, उसके गृह-त्याग के बाद आज ही आपके महल में आई हूँ।"

व्यंग्य का शरबती रंग चन्द्रनाथ के गोर आनन को किंचित् रक्ताभ करने लगा। किन्तु चन्द्रनाथ-जैसे चतुर खिलाड़ी ने उसे पी लिया और सर्व भयहारी मुस्कान से पामीला को निहारने लगा।

पामीला ने चारों ओर सजावट पर दृष्टिपात करते हुए कहा :—"आपकी सुरुचि की जितनी तारीफ की जाय वह कम है। हालाँकि कनक भी एक सुशिक्षित इंगलैंड रिटर्न्ड महिला हैं, पर आपने सजावट के विषय में उसको भी परास्त कर दिया है। इस कहावत में शायद सत्यता है कि मनुष्य दूसरों की कमाई हुई सम्पत्ति को ही बेदर्दी से भोगता है।"

अहेरी का दूसरा बाण भागते हुए हिरन को भी किंचित् काल के लिए स्तंभित कर देता है। चन्द्रनाथ का मुख कुछ विवर्ण हो गया।

मिस्टर निक्सन ने तुरंत ही बात बनाते हुए कहा:—"खर्च करने का सम्बन्ध दिल से होता है। जिसने दिल पाया है वही खर्च कर सकता है, और फिर खर्च करने में भी तो बुद्धि की आवश्यकता होती है।"

चन्द्रनाथ ने संसार की सबसे अधिक मूल्यवान सिगरेट उन दोनों को देते हुए कहा:—"मैं तो निक्सन-परिवार का जरखरीद गुलाम हूँ। आप लोगों का यदि कुछ भी मनोरंजन यहाँ आने पर हुआ, तो मैं इसको अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।"

फिर सिगरेट केस पामीला की ओर बढ़ाते हुए बोले :—"आशा है कि मिस निक्सन मेरे इस तुच्छ उपहार को स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करेंगी। यह मैंने अमेरिका में वाशिंगटन-प्रदर्शिनी में लिया था। भला, इसको खोलिए तो।"

पामीला उस हीरक-मंडित स्वर्ण सिगरेट केस को उत्सुकता से खोलने का प्रयत्न करने लगी। जब बहुत उपाय के पश्चात् भी कृतकार्य नहीं हुई तो चन्द्रनाथ ने हँसते हुए कहा:—"स्त्री जाति अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन इसके कारीगर ने आपको हरा दिया है।"

पामीला तड़प उठी। उसने उसे वापस करते हुए कहा:—"आपकी कृपा के लिए धन्यवाद। ऐसा सिगरेट केस मेरे किस काम का कि जिसको खोलने के

लिए आपको बार-बार बुलाना पड़े।"

चन्द्रनाथ ने हँसकर कहा:—"यह तो आपका अन्याय है, मिस निक्सन! खोलने में आप असमर्थ हैं, और दण्ड मुझे दे रही हैं। अच्छा मैं अपराध स्वीकार करता हूँ, और दण्ड स्वरूप में यह हीरों का इयरिंग भी समर्पित करता हूँ।"

यह कह उन्होंने जेब से डिबिया निकाल कर खोल डाली। तेज बिजली के प्रकाश में मोर के आकार के इयरिंग देदीप्यमान हो उठे। पामीला कुछ हत-प्रभ हो गई, और मिस्टर निक्सन ने उनको देखने के लिए उठा लिया।

मिस्टर निक्सन:—"वाकई, बड़ी अमूल्य जोड़ी है।"

पामीला ने उनको अपने पिता के हाथों से लेते हुए कहा:—"हाँ, अच्छे हैं, लेकिन पापा, मैं इतना अमूल्य उपहार स्वीकार नहीं कर सकती।"

चन्द्रनाथ:—"क्या आप अनुमान कर सकती हैं कि इससे मुझे कितना कष्ट होगा।"

यह कहकर उन्होंने बड़ी शोक पूर्ण मुद्रा से पहले पामीला की ओर और फिर मिस्टर निक्सन की ओर देखा।

मिस्टर निक्सन:—"पामी, ले लो, नहीं तो मिस्टर चन्द्रनाथ को कष्ट होगा, और यह हमारी सभ्यता के विरुद्ध भी है कि किसी के उपहार को ठुकरा दिया जाय।"

पामिला ने इयरिंग पहनकर कहा:—"पापा, यह क्या मेरे पर जेबा मालूम देते हैं?"

मिस्टर निक्सन के उत्तर देने के पहले ही चन्द्रनाथ ने कहा:—"वाह, यह आपने खूब कहा। मैं तो यह कहूँगा कि आपके पहनने से इनकी शोभा बढ़ गई। सिर्फ थोड़ी-सी कसर रह गई है, वह यह कि गर्दन सूनी है। इयरिंगों के मुकाबले में गले में नेकलेस भी होना चाहिए।"

पामीला ने सहज लज्जा से रक्ताभ होते हुए कहा:—"स्त्रियों को गहने की कमी कभी पूरी नहीं होती। अभी आप नेकलेस की कमी बतलाते हैं, फिर कहेंगे कि आर्मलेट और ब्रेसलेट की कमी है। स्त्री जाति के आभूषणों की कमी को क्या कभी कोई पूर्ण कर सकता है?"

चन्द्रनाथ ने तिजोरी खोलकर एक बड़ा स्वर्णखचित डिब्बा निकाला, और पामीला के सन्मुख रखते हुए कहा:—"आपका कथन सत्य है, मिस निक्सन, किन्तु पुरुष जाति भी इस कमी को पूर्ण करने के लिए सतत चेष्टा करती आई है। उसी ओर यह मेरा भी प्रयत्न है। सफलता मिलना या न मिलना मेरे भाग्य की बात है।"

यह कहकर उन्होंने वह सुनहला डिब्बा खोल डाला। हीरे, पन्ने और लाल अपनी आभा पामीला के कपोलों पर बिखेरने लगे। इस बार मिस्टर निक्सन भी अप्रतिभ रह गए।

उन्होंने सवेग पूछा:—"क्या यह सब-का-सब पामी के लिए है?"

चन्द्रनाथ ने नत नेत्रों तथा नत मस्तक होकर कहा:—"हाँ, यदि आपकी अनुमति हो तो मैं मिस निक्सन को यह भेंट देकर अपने को कृतार्थ मानूँगा।"

पामीला का स्त्रीत्व, जो अभी तक आभूषणों के जाल में प्रलुब्ध होकर मोहाच्छन्न था, सहसा सजग हो गया। उसने उठते हुए कहा:—"नहीं, पापा, मैं अब किसी भाँति स्वीकार नहीं कर सकती। हर एक कार्य की एक सीमा होती है। अब यह उपहार नहीं है, रिश्वत है। मैं नहीं जानती कि किस कार्य के लिए इतनी बड़ी रिश्वत दी जा रही है।"

मिस्टर निक्सन और चन्द्रनाथ दोनों हतबुद्धि-से हो गए।

मिस्टर निक्सन:—"पामी, तुम्हारा अनुमान गलत है। मिस्टर चन्द्रनाथ मेरे पुराने मित्र हैं। मित्रों के उपहार इसी प्रकार के हुआ करते हैं। यह तो व्यवहार है। जब मिसेज़ चन्द्रनाथ आयंगी, तब हम भी इसके विनिमय में इससे मूल्यवान उपहार देंगे।"

पामीला का मन इस आश्वासन से पुनः लोभ की तरंगों से प्रताड़ित होने लगा। चन्द्रनाथ का साहस बढ़ा, उन्होंने हीरे का हार उसमें से निकालते हुए कहा:—"यह इंगलैंड के विख्यात जौहरी 'बेनेट एण्ड बेनेट' द्वारा निर्मित हुआ है, और इसके सारे जवाहरात दक्षिणी अफ्रीका की खानों के हैं। पन्ने का ब्रेसलेट और माणिक्य का आर्मलेट बरमा की खान से निकाले हुए पत्थरों का है।" पामिला ने बिना आपत्ति के अब उनको पहन लिया।

चन्द्रनाथ:—"अब कृपा करके एक बार इस शीशे के सामने खड़ी हो जायं, और यदि कोई वस्तु अशोभनीय हो तो तुरन्त वापस कर दें। मैं सहर्ष उसके स्थान की पूर्ति करूँगा।"

पामीला ने लजाते हुए कहा:—"नहीं, सब ठीक है।" यह कहकर वह एक बंकिम कटाक्ष के साथ मुस्करा दी। मिस्टर निक्सन दूसरी ओर देख रहे थे।

मिस्टर निक्सन ने पामीला से कहा:—"पामी, मिस्टर चन्द्रनाथ को क्या अपने यहाँ निमंत्रित नहीं करोगी?"

उसने उत्साह के साथ कहा:—"क्यों नहीं पापा? मामा से तय करके निमन्त्रण भेज दूँगी।"

"हाँ, यह ठीक है।" कहते हुए वे उठ पड़े।

पामीला उनका आशय समझ गई, और जाने के लिए वह भी उठ खड़ी हुई। चन्द्रनाथ ने विदा करते हुए कहा :—' जाने के लिए इतनी जल्दी करेंगे, यह तो आशा नहीं थी।"

पामीला ने मन्द मुस्कान से कहा :—"आप भी चलिए। आज पिक्चर ही देख आयें।"

चन्द्रनाथ ने इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार किया, और आशाओं का भार वहन किये हुए उनके साथ चले गए।

११

एक किराये के ताँगे से कनक और उर्मिला जैसे ही कचहरी के अहाते में उतरीं, वैसे ही गगनभेदी नाद से श्रमिक वर्ग ने उसकी जय-जयकार कर शान्ति-रक्षा की ठेकेदार पुलिस को सूचना दी कि उनका वास्तविक नेता आ गया है। और वह नेता एक रमणी है। पुलिस वालों ने लाठी सँभाली और पैंतरे बदल कर सतर्क हो गए। कनक ने एक क्षण में परिस्थिति समझ ली, और वह उसको सुधारने के लिए उद्विग्न हो उठी। आज रामनाथ के मुकदमे का फैसला सुनाया जाने वाला था। यह समाचार उसके पास उड़ता हुआ आ चुका था कि यदि जज रामनाथ को फाँसी का दण्ड देता है तो मज़दूर बल-प्रयोग से उसको छुड़ा लेंगे। वे स्वयं मर जायंगे किन्तु रामनाथ को फाँसी पर लटकते हुए न देख सकेंगे। इसी उद्देश्य से आज वे इतनी बड़ी संख्या में एकत्रित हुए थे, और सभी के हाथों में शत-प्रतिशत शुद्ध भारतीय अस्त्र लाठी मौजूद थी।

कनक ने हँसकर उर्मिला से कहा :—"जानती हो, इतने आदमी तुम्हारे पति को छुड़ाने के लिए एकत्रित हुए हैं ?"

उर्मिला ने प्रश्न भरी दृष्टि से पूछा :—"यह कैसे।"

कनक ने उसको एक तख्ते पर चढ़ने का इशारा करते हुए कहा :—"पहले इस तख्ते पर चढ़कर इस जन-समूह को देखो। ये सब तुम्हारे पति के लिए जान देने को तैयार हैं। ये इतने उत्तेजित हैं कि पुलिस तो क्या, मौत से भी लोहा लेने में पीछे न हटेंगे। उनकी यह उत्तेजना हमारे लिए लाभदायक नहीं है, वरन् इससे हानि ही पहुँचने की अधिक सम्भावना है। सबसे पहले मेरा कर्त्तव्य है इनको शांत करना। तुम्हारे पति की पैरवी करने के कारण ही उन्होंने मुझे अपना नेता स्वीकार किया है। तुमको भी इनको समझाने के लिए बोलना पड़ेगा।"

उर्मिला ने भीत स्वर में कहा :—"मैं यह सब विद्या नहीं जानती। यदि आप मेरे साथ न हों, तो मैं इतने आदमियों के सामने खड़ी तक नहीं हो सकती।"

कनक के मुख से सहसा निकल गया :—"उफ, पुरुष जाति ने हमें कितना भीरु और पंगु भी बना दिया है।" कनक तख्ते पर खड़ी हो चुकी थी, जनता ने उसे देखकर पुनः जय-जयकार की।

कनक कहने लगी :—"भाइयो, जब मैं अपने को आप लोगों के मध्य में पाती हूँ, तब हर्ष से मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता है, क्योंकि आप लोगों में सत्यता है, कृत्रिमता नहीं है। आपके भाव, वाणी और उत्साह सभी सत्यता का आवरण पहने हुए हैं। मैं जानती हूँ कि आप जो मुख से कहते हैं वही करने को तैयार हैं। आप सत्य और न्याय के लिए अपना खून भी बहाने को तैयार हैं। आज आप रामनाथ का पक्ष ले रहे हैं, वह इसलिए नहीं कि आप रामनाथ के मित्र अथवा संबन्धी हैं, अथवा रामनाथ के छूट जाने से आपका कोई स्वार्थ-साधन होगा। वास्तव में आप उस अन्याय के विरोध में एकत्रित हुए हैं, जिसको पूँजीपति श्रमिक वर्ग पर अपना अधिकार समझ कर करते हैं। उसका विरोध करना आप का जन्म-सिद्ध अधिकार है, और उसके लिए लड़ना आपका परम कर्त्तव्य है। परन्तु आप जिन वालों का प्रतिकार ढूढ़ते हैं, वे यहाँ नहीं मिलेंगी। वे तो आपको पूँजीपतियों के दुर्ग-मिल-में मिलेंगी। यह न्यायालय हैं। जज सरकारी नौकर-मात्र है। वह जो फैसला देगा, वह हमें शान्ति पूर्वक सुनना चाहिए। आज के फैसले की अपील हो सकती है। छोटी अदालतों के जज पूँजीपतियों से प्रभावित भी हो सकते हैं, किन्तु हाई कोर्ट के जज अपना निर्णय निष्पक्ष होकर ही देंगे। इसके अतिरिक्त आज का फैसला ही अन्तिम फैसला नहीं है। शान्ति के द्वारा जो बातें हो सकती हैं, अशान्ति द्वारा कभी नहीं होतीं। कोई भी सरकार जनमत की अवहेलना नहीं कर सकती। आप न्याय और सत्य के लिए दृढ़ रहें, किन्तु शांत रहें। आपके अशांत होने से आपका उद्देश्य उसी अशांति में खो जायगा, और पूँजीपति तथा अधिकारी यही चाहते हैं। आपको पग-पग पर वे उत्तेजित करेंगे, किन्तु आप प्रतिज्ञा करें कि हम उनके जाल में नहीं फँसेंगे, और शांत रहकर वैध उपायों से अपना स्वत्व प्राप्त करेंगे।"

कनक ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा, वह फिर थोड़ी देर बाद कहने लगी :—"देखिये पूँजीपतियों की सहायक पुलिस के सिपाही इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आपको कुचलने के लिए उन्हें कोई बहाना मिले। अस्त्र-शस्त्रों के बल में आप सदैव उनसे कमजोर पड़ेंगे, क्योंकि उनको वे प्राप्त हैं, और आप को नहीं हैं, किन्तु आपके संगठन-बल के समक्ष वे हार जायंगे। क्योंकि आपके पक्ष में न्याय और सत्य है। आप सतर्क रहें और दुश्मनों को मौका न दें कि वे आप पर बल-प्रयोग कर सकें।"

श्रमिक वर्ग ने एक स्वर में घोषित किया :—"आप पर हमें पूर्ण विश्वास है, आपके बताये हुए रास्ते पर ही हम लोग चलेंगे । उत्तेजना मिलने पर भी हम शांत रहेंगे।"

कनक ने सन्तुष्ट होकर कहा :—"अब समय हो गया, मैं अदालत में

जाती हूँ। मेरे साथ जिस स्त्री को आप लोग देख रहे हैं वह रामनाथ की पत्नी है। आप लोग हमारे जाने का मार्ग देवें।"

मजदूरों का दल आदेश पाकर उसकी जय-जयकार के साथ हट गया। कनक उर्मिला के साथ अदालत के कमरे की ओर चली गई।

अदालत का कमरा भी खचाखच भरा हुआ था। चन्द्रनाथ और वामनदास के प्रायः सभी अन्तरंग मित्र वहाँ उपस्थित थे। न्यायाधीश तैयबजी भी बड़ी गम्भीर मुद्रा में विचारासन पर बैठे हुए नत नेत्रों से मुकदमे की फाइल उलट रहे थे। अभियुक्त रामनाथ कठघरे में खड़ा हुआ चारों ओर देख रहा था। उसके हृदय में भावों का ज्वार-भाटा स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता था। उर्मिला का हाल जानने के लिए जितना वह चिन्तित था उतना अपने प्राणों के लिए नहीं। कनक के साथ उर्मिला को प्रवेश करते देखकर उसके नेत्र हर्षावेग से चमक उठे। उसके मन ने निश्चिंतता की एक गहरी साँस ली। उर्मिला के नेत्र भी रामनाथ को देखकर अटक गए। उसकी दशा में इतना परिवर्तन देखकर उसका हृदय रोने लगा और दूसरे ही क्षण वह लड़खड़ा कर कनक के हाथों में गिर पड़ी। मूक अदालत के कमरे में एक कम्पन पैदा हुआ, और निश्चल न्यायाधीश भी उस खलबली का कारण जानने के लिए उत्सुक हो गया। कनक अपने रूमाल से हवा कर रही थी, और उर्मिला फर्श पर लेटी हुई अचेतनता के लोक में भ्रमण कर रही थी। न्यायाधीश ने चपरासी को पानी देने का संकेत किया, और कनक से कुछ खिन्न स्वर में कहा:—"आपको मालूम होना चाहिए कि यह अदालत है, अस्पताल नहीं।" स्वर्गीय वामनदास के मित्रों ने अनुमोदन किया। कनक ने तीव्र किन्तु संयत स्वर में कहा:—"मुझे दुःख है कि अभियुक्त रामनाथ की पत्नी अपने पति की दशा देखकर मूर्छित हो गई, जिसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता था, किन्तु मनोवैज्ञानिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण का आधार-स्तम्भ भी अदालत है। जहाँ सन्तप्त मानव-हृदय सहानुभूति की आशा करता है, वह स्थान अदालत है।"

कनक के उपचार से उर्मिला की चेतना वापस आ गई। उर्मिला स्वयं लज्जित हो रही थी। उसने एक भीत दृष्टि से चारों ओर देखा, और कनक से कहा:—"मुझे बाहर ले चलिए। न मालूम मेरा मन कैसा हो रहा है। हे भगवान्, क्या यही देखने को मुझे जीवित रखा।"

सेठ नेमीचंद ने कहा:—"निकालो इस चुड़ै.........। कहते-कहते वे सहसा रुक गए। कनक ने अग्निमय नेत्रों से उनकी ओर देखा, और फिर न्यायाधीश से कहा:—"आपने सेठ नेमीचंद के मुख से वे उद्गार सुने होंगे जो उन्होंने एक सम्भ्रांत रमणी के प्रति खुली अदालत में निकाले हैं।"

न्यायाधीश इमाम तैयबजी ने किंचित् उद्विग्नता के साथ कहा :—"हाँ, सुना जरूर है, किन्तु स्पष्ट समझ नहीं सका। शायद उनका तात्पर्य मिसेज़ रामनाथ को बाहर ले जाने का था।"

"यह आज्ञा तो आप दे सकते हैं, एक दर्शक नहीं। इसके अतिरिक्त उनके इस कथन में कितनी अभद्रता थी। दरअसल बात यह है कि स्त्री जाति का मूल्य पुरुष जाति के लिए कुछ नहीं है। मैं अदालत से रक्षा की प्रार्थना करती हूँ, और आशा करती हूँ कि वे उस मानहानि के मुकद्दमे में साक्षी देंगे, जो अभियुक्त रामनाथ की पत्नी सेठ नेमीचंद के विरुद्ध दायर करेगी।"

न्यायाधीश ने निर्णय की पाण्डुलिपि उलटते हुए कहा:—"यह उसके लिए उपयुक्त अवसर नहीं है। आज आपके कारण अदालत का बहुत समय नष्ट हुआ है, आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए। मैं भी यही उचित समझता हूँ कि रामनाथ की पत्नी को बाहर भेज दिया जाय, क्योंकि उसकी उपस्थिति से कुछ अप्रिय घटनाएं घटित हो सकती हैं।"

कनक ने उर्मिला को बाहर ले जाते हुए कहा :—"मुझे इसके लिए वास्तव में खेद है, और मैं अदालत से प्रार्थना करूँगी कि वह अपनी कार्रवाई आरम्भ करे।"

कनक उर्मिला को अपने कमरे की ओर ले गई।

न्यायाधीश ने बड़ी गम्भीरता के साथ चारों ओर देखकर अपना निर्णय सुनाना आरम्भ किया। कहानी उस समय से आरम्भ हुई थी, जब से स्वर्गीय वामनदास ने उर्मिला को बुलाया था।

साक्षियों के कथन का तारतम्य निकालते हुए अन्त में वे इसी निर्णय पर पहुँचे कि रामनाथ मानव-हत्या का अपराधी है, और उसे प्राण-दण्ड दिया जाय।

वामनदास के उत्तराधिकारी चन्द्रनाथ और उसके पूँजीपति मित्र प्रसन्नता से पुलकित हो गए।

और रामनाथ का मस्तक गर्व से उन्नत होकर अपने प्रतिपक्षियों को विचलित करने लगा। श्रमिक वर्ग चिल्ला उठा :—"अन्याय, घोर अन्याय है।" पुलिस इसके लिए पहले ही तैयार थी। उसने उत्तेजित भीड़ पर लाठी-चार्ज कर दिया। शांति रखने के लिए वचन बद्ध होते हुए भी मजदूर बिना कारण के लाठी-प्रहार सहन न कर सके। उन्होंने भी ईंट-पत्थर और लाठी चलाना आरम्भ कर दिया। सशस्त्र पुलिस इसी की प्रतीक्षा कर रही थी, उसने आँख मूँदकर फायर करना शुरू कर दिया। मजदूरों की लाशों-पर-लाशें गिरने लगीं जिनको भागने का अवसर मिला वे भाग गए, और शेष घायल तथा मृत होकर अदालत के प्रांगण में पड़ गए। पाँच मिनट के पश्चात् पूँजीपतियों के अतिरिक्त और

कोई भी श्रमिक वर्ग का साथी वहाँ नहीं था। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। कनक जिस बात को बचाने के लिए प्रयत्न कर रही थी, वही घटना घटित हो गई। न्यायाधीश इमाम सैयद जी उठकर अपने आराम करने वाले कमरे में चले गए, और पुलिस का एक दस्ता रामनाथ को संगीनों के बीच में लिये हुए खड़ा था। कनक, जो उर्मिला को अपने कमरे में बैठाकर न्यायाधीश का विचार सुनने आ गई थी, बार-बार बाहर आने का प्रयत्न कर रही थी, किन्तु अदालत के कमरे की पुलिस गारद उसे जाने की अनुमति नहीं दे रही थी। उसने चिल्लाकर कहा:—"यह खून है, असहायों का खून है।"

चन्द्रनाथ ने उसके समीप आकर धीमे स्वर में कहा:—"इसके लिए उत्तरदायी तुम हो, केवल तुम हो।"

कनक ने तड़पकर कहा:—"चुप, नराधम! यह सब काण्ड तेरा ही घटित कराया हुआ है, शायद।"

चन्द्रनाथ ने मन्द मुस्कान से कहा:—"तुम्हारे सामने स्वीकार करने में मुझे कोई भय नहीं है। यह सब काण्ड केवल तुमको यही दिखाने के लिए किया गया है कि जरा स्वस्थ मन से विचारो कि पूँजी की शक्ति अजेय है। उसकी अपरिमित शक्ति के समक्ष मानवों की शक्ति हेय है, तुच्छ है, नगण्य है। बामनदास की सारी सम्पत्ति अब भी तुम्हारी हो सकती है, यदि तुम वापस लौट आओ, और पहले की तरह स्वामिनी की भाँति मेरे ऊपर शासन करो।"

कनक ने आहत सिंहनी की भाँति सरोष नेत्रों से उसकी ओर देखा, और मारने के लिए थप्पड़ उठाया। चन्द्रनाथ ने पीछे हटते हुए कहा:—"सावधान! क्या इतने रक्त-पात से तुम्हारी पिपासा शांत नहीं हुई है। कनक, जब तक तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं करोगी तब तक तुमको शांति से नहीं बैठने दूँगा। मजदूरों का इतना खून बहाऊँगा कि तुम्हारे भागने के सारे मार्ग अवरुद्ध हो जायंगे जिनके बल का तुमको नाज है, तुम्हारा वह बल मैं नष्ट कर दूँगा। बामनदास पूँजीपति था, उसने क्या नहीं किया, मैं आज अपने कौशल से पूँजीपति हूँ, ऐसा कौन काम है संसार का जिसको मैं नहीं कर सकता, केवल पूँजी चाहिए। बुद्धि और ज्ञान का वाहन नर केवल पूँजी का गुलाम है। उसका सारा जीवन पूँजी की प्राप्ति में व्यतीत होता है, उसका सारा चातुर्य और कौशल पूँजी की वेदी पर निछावर होता है, और पूँजी मनुष्य के शत-शत जन्म के प्रयास के पश्चात् प्राप्त होती है। वही पूँजी मैं तुम्हारे चरणों पर लुटाने को तैयार हूँ, नहीं लालायित हूँ। उत्तेजित न हो, शांत मन से विचारो। पुलिस, फौज और शासक सब पूँजी के आश्रित हैं। उसी का एक तुच्छ चमत्कार तुमको दिखाया है। देखो, इतने अभागे मजदूरों का खून हो गया है, मैं मानता हूँ कि वे निरपराध

थे, किन्तु कल समाचार-पत्रों में पढ़ लेना कि अपराधी कौन ठहराया जाता है। तुम्हारे सामने हजारों मजदूर मारे गए हैं, किन्तु देखना कि संख्या कितनी बताई जाती है। अपराध और संख्या का निर्णय पूँजीपति करेंगे, मजदूर नहीं। इस दुर्घटना का सूत्रपात पूँजीपति के द्वारा हुआ है, वही इसका मूल कारण है, किन्तु अपराध उस पर नहीं मढ़ा जायगा। वह तो भगवान् की तरह स्वच्छन्द है, निर्लिप्त है, निर्विकार है और सदा निर्दोष है। एक बार विचारने का अवसर मैं पुनः देता हूँ। अब जाकर देखता हूँ कि इन अभागों को किस प्रकार जल-समाधि दी जाती है!" यह कहकर चन्द्रनाथ तेजी से कमरे के बाहर चला गया।

उत्तेजना की पराकाष्ठा मूर्च्छना है। कनक वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बाहर गोली-काण्ड समाप्त हो चुका था। न्यायाधीश ने कनक को अपने कमरे में जाने की आज्ञा दे दी।"

१२

केन्सिंगटन होटल के एक सुसज्जित कमरे में चन्द्रनाथ ने कहना आरम्भ किया:—"मित्रो, आज आपको कष्ट देने का एक विशेष प्रयोजन है। हम लोग आजकल एक विशेष परिस्थिति में से गुजर रहे हैं। हम लोग सभी मिल-मालिक हैं, और पूँजीपति हैं। हमारी समस्याएं भी लगभग एक-सी हैं। मजदूरों का आन्दोलन हम लोगों के विरुद्ध दिन-प्रतिदिन उग्र होता जा रहा है। वे हमारी शक्ति को अपने संगठन द्वारा कुचल देना चाहते हैं, और हमारी पूँजी को छीन-कर स्वयं पूँजीपति अति सुगमता से हो जाना चाहते हैं। जितना उनके साथ नेकी से व्यवयहार किया जाता है, जितनी उनको सुविधाएं दी जा रही हैं, जितना उन्हें वेतन और बोनस दिया जा रहा है, जितना उनके साथ मनुष्यता से बर्ताव किया जाता है उतना ही वे प्रचंड और उग्र होते जा रहे हैं। बात-बात पर वे हड़ताल करते हैं, बात-बात पर वे हमारे नौकरों से झगड़ा करते हैं, और बात-बात पर हमसे लड़ने को तैयार होते हैं। सरकार और जनता की सहानुभूति उन्हें प्राप्त है। सरकार और राष्ट्रीय संस्थाएं हमारी दुश्मन हैं, यद्यपि दोनों का भरण-पोषण हमारे द्वारा होता है; किन्तु अवसर प्राप्त होने पर वे दोनों हमारा खून चूसने को तैयार हैं। वास्तव में हमारी दशा प्राचीन काल के यहूदियों की भाँति है। जिस प्रकार एक यहूदी के लिए जैसा ईसाई मित्र था वैसा ही मुसलमान था। दोनों ही अवसर मिलने पर बेचारे यहूदी की गर्दन पर छुरी चलाने में चूकते न थे। ठीक वही दशा हमारी—बल्कि उससे भी हीन है। अतएव यदि हम अपनी रक्षा स्वयं नहीं करेंगे; तो हमारा पतन और नाश निकट है। मृत्यु हमें निगल जाने के लिए झाँक रही है।"

सेठ पोपटलाल ने चाकू से भटनचाप काटते हुए कहा:—"अरे भाई चन्द्रनाथ, इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधने की क्या जरूरत है। हम सब समझते हैं, भला अपनी मुसीबत को कौन नहीं समझता ?"

अब्दुलमजीद ने चाय का प्याला नीचे रखते हुए कहा:—"यह मजदूरों वाला मसला तो हमारे में से हर एक के सामने है। मजदूर क्या हैं, शैतान के भाईबन्द हो रहे हैं। बात-बात में छेड़खानी, अभी उस दिन हमारे मिल के एक सार्जेंट की हड्डी-पसली तोड़ दी। खैर वे सब पकड़े गए, बल्कि जितने नेता बनते थे, सबको पकड़वा दिया, मगर है तो उनकी ज्यादती।"

लाला कंचनलाल ने ह्विस्की का एक पेग चढ़ाते हुए कहा:—"मजदूर के नाम से मुझे चिढ़ हो गई है। मैंने अपने मिलों के मैनेजरों को हुक्म दे रखा है कि तुम जितना मजदूरों को मारोगे, सताओगे और तंग करोगे उतना ही तुम्हारा फायदा है, तुम्हें उतनी ही जल्दी तरक्की दी जायगी।"

सेठ नेमीचन्द ने अपने और लाला कंचनलाल के प्याले में शराब उंडेलते हुए कहा:—"मैं तो इनसे यहाँ तक परेशान हो गया हूँ कि मैंने अपने सार्जेंट से कह दिया है कि जो मजदूर बदमाशी करता नजर आय उसको पहले गोली के घाट उतार दो, पीछे जो कुछ खर्च होगा मैं सहर्ष कर डालूँगा। पुलिस तो मारने वाले को नहीं रुपये को पकड़ती है, जहाँ दो-चार हजार थैलियाँ फेंक दीं, वहाँ ही पुलिस वाले दुम हिलाने लगते हैं।"

लाला कंचनलाल पर सरूर चढ़ रहा था, उन्होंने मुँह मटका कर कहा:—"बहुत बढ़-बढ़ कर बातें न मारो सेठ जी, अभी उस दिन कचहरी में एक दुधमुँही लड़की ने आँखों में उँगली डाल दी थी। अगर जज साहब अपने पुराने मेली न होते तो लेने के-देने पड़ जाते। मान-हानि का दावा होता, जेल जाते, और दीवानी दरबे में रुपया अलग उगलना पड़ता।"

सेठ नेमीचन्द की भी बुद्धि लोप हो चुकी थी, उन्होंने लाला कंचनलाल की पीठ पर एक थप्पड़ मारते हुए कहा:—"अरे मारवाड़ी ओसवाल बनिये, उस छोकरी को क्या डर दिखाता है। उसको तो कल के छोकरे चन्द्रनाथ ने ऐसा धता बताया कि वह आज एक-एक पैसे को मुहताज हो रही है। उसकी धमकियों से नेमीचन्द नहीं डरने का। अगर तेरे में हिम्मत हो तो तू ही उससे दावा करा दे। फिर मैं तुझको और उसको दोनों को समझ लूँगा।"

बात बढ़ती देखकर अब्दुलमजीद और चन्द्रनाथ ने बीच-बचाव करते हुए कहा:—"न मालूम तुम लोग क्यों जरा-सी पीने के बाद आपे से बाहर हो जाते हो। काम की बात होती थी, और कहाँ से यह हंगामा खड़ा कर दिया।"

लाला कंचनलाल ने पगड़ी पहनते हुए कहा :—"आप ही देखिये, कुसूर किसका है ?"

अब्दुलमजीद ने हँसकर उत्तर दिया :—"शराब का। जब बिना कारण के झगड़ा होता है, तब कारण या तो शराब का और या दिली बुग्ज का होता है।"

चन्द्रनाथ ने उन दोनों को बैठते हुए कहा :—"समझ में नहीं आता कि आप लोग शराब क्यों पी लेते हैं, जब उसे हज़म नहीं कर सकते। ठहरिये, काम की बातें होने दीजिये।"

सेठ पोपटलाल ने अभी तक कोई भाग नहीं लिया था, चुपचाप बैठे हुए मटन चाप खा रहे थे। झगड़ा शांत होने पर बोले :— "मैं शराब की कमजोरी से भली भाँति परिचित हूँ, इसीलिए कभी उसको मुँह नहीं लगाता। हाँ, गोश्त जरूर खा लेता हूँ, क्योंकि इससे दिल, दिमाग और जिस्म तीनों को फायदा पहुँचता है। नहीं जानता कि जैन धर्म ने क्यों इसका बहिष्कार किया है। खैर जो हुआ सो हुआ, चन्द्रनाथ, तुम अपनी कहानी शुरू करो। मैं क्या जानता था कि ये दोनों एक देशीय और मारवाड़ी हैवान लड़ने लगेंगे, नहीं तो तुम्हें टोक-कर अपना और तुम्हारा मजा किरकिरा न करता।"

लाला कंचनलाल ने उठते हुए कहा :—"जहाँ नेमीचन्द रहेगा, वहाँ मैं नहीं ठहर सकता। यह आज धन्ना सेठ बन बैठा है, अभी कल तक तो इसके दादे-परदादे मेरे यहाँ के झूठे बरतन माँजते थे। अभीतक इसके परदादा का एक लोटा मेरी मारवाड़ की दूकान में गिरवी रखा हुआ है, वह भी सिर्फ एक रुपये में। ब्याज की दर तो दो रुपया सैकड़ा माहवारी लिखी हुई है, मगर मैं सिर्फ एक रुपया सैकड़ा माहवारी ब्याज ले लूंगा। गिरवी रखे हुए पौने दो सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं। हिम्मत हो तो असल रकम मय ब्याज के भुगतान करके छुड़ा ले।"

अब्दुलमजीद ने हँसते हुए कहा :—"अरे ताना क्या मारते हो सेठ ? नेमीचंद क्या मामूली हैसियत का आदमी है। भूल से रह गया होगा।"

सेठ नेमीचन्द ने धीमे स्वर में कहा :—"ब्याज की एक अवधि हुआ करती है। अवधि बीत जाने के बाद पुरानी रकमों में ब्याज की मिती नहीं जोड़ी जाती। कोई एक मुश्त रकम ब्याज के रूप में दी जाया करती है, यही बाजार का नियम है। इस नियम के अनुसार मैं आज भी भुगतान करने को तैयार हूँ। आप लोग ही वह रकम निश्चित कर दें, मैं लाला कंचनलाल को वह रकम भुगता दूँ।"

लाला कंचनलाल ने हिसाब लगाते हुए कहा :—"जो साहूकारी का दावा भरते हैं, उनके लिए मियाद नहीं होती। साहूकारी का यह निर्विवाद नियम है कि

जब रकम का भुगतान हो, दूर मिती से ब्याज भुगतान हो। जहाँ तक मेरा अनुमान है, सेठ नेमीचन्द के परदादा पारसमल को लोटा गिरवी रखे हुए १८० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मिश्र ब्याज से यह रकम इस समय एक अरब या कुछ कमोवेश होती है......।"

सेठ नेमीचन्द ने उठकर जाते हुए कहा:—"ऐसे सूदखोरों से मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।" यह कहकर वे होटल से बाहर हो गए। थोड़ी देर के लिए कमरे में निस्तब्धता छा गई।

चन्द्रनाथ ने फिर कहना आरम्भ किया:—"हमारी हीनता का यही प्रधान कारण है। हम कभी एक सूत्र में बँधना नहीं जानते। इसके विपरीत मजदूरों में एकता है। इसी एकता के बल से वे हमारा मुकाबला करते हैं, और हमको पग-पग पर पराजित करते जाते हैं। आपको निमंत्रित करने का यही मेरा उद्देश्य था कि हम भी अपना एक संगठन बनायं, और मजदूरों के संगठन का मुकाबला जब हम संगठित होकर करेंगे तब हम उनको ही नहीं सारे संसार को हरा देने की सामर्थ्य रखते हैं। योरूप और अमेरिका में पूँजीपति ही राज्य-संचालन करते हैं। इंगलैंड और जर्मनी के शासन की बागडोर पूँजीपतियों के हाथ में है। वहाँ के पूँजीपतियों में इतनी शक्ति है कि वे अपने स्वार्थ के लिए देशों को लड़ा देते हैं और जब उनका स्वार्थ पूर्ण हो जाता है, तब वही सन्धि भी करा देते हैं, और विनाश के बाद फिर अपनी सत्ता को स्थापित करते हैं। किन्तु यहाँ के पूँजीपति इतनी हीन दशा को इसलिए प्राप्त हैं, क्योंकि उनमें संगठन नहीं है। ईर्ष्या से वे इतने अभिभूत हैं कि एक दूसरे का गला काटने के लिए सदैव सतर्क रहते हैं। कहावत है कि वंश से वंश कटता है। कुल्हाड़ी में यदि लकड़ी का बेंट न हो, तो अकेली कुल्हाड़ी काटने में असमर्थ है। हमारी आपसी फूट ही हमें विनाश के रसातल में लिये जा रही है।"

चन्द्रनाथ कुछ क्षण ठहरकर अपने कथन का प्रभाव भाँपने लगा।

अब्दुलमजीद ने कहा:—"आपका कहना बिलकुल दुरुस्त है। वास्तव में हमारी फूट ही हमें खाये जा रही है।"

पोपटलाल:—"बेशक, इसी को नष्ट करना उचित है, अतएव आज एक संगठन की नींव डाली जाय।"

चन्द्रनाथ:—"मुझे हर्ष है कि आप लोग संगठन की आवश्यकता समझते हैं। हमारे सामने एक विशेष कार्य-क्रम-एक गठित योजना होनी आवश्यक है। सबसे पहले हमें जनमत को अपने अनुकूल बनाना है, इसलिए प्रचार-कार्य को प्रारम्भ किया जाय। डेमोक्रेसी अथवा जनवाद केवल पूँजीवाद की एक विशिष्ट शाखा है। इंगलैंड, फ्राँस, जर्मनी, अमेरिका सब डेमोक्रेसी के पृष्ठपोषक हैं,

परन्तु प्रत्येक देश में पूँजीपतियों का बोल-बाला है। इसका कारण यह है कि गणतन्त्र शासन-प्रणाली में निर्वाचन ही शासन-सूत्र का आधार है, और निर्वाचन बिना पूँजी के असम्भव है। संसार के इतिहास में कोई पथ का भिखारी-चाहे वह कितना ही बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ अथवा विद्वान् क्यों न हो-निर्वाचन में कभी सफल नहीं हुआ है। निर्वाचित तो वही होता है, जिसके पास लुटाने को धन है, वोट खरीदने को पैसा है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि कहीं-कहीं आदर्शवादिता के कारण मध्यम श्रेणी के व्यक्ति निर्वाचित हो जाते हैं, किन्तु प्रकृति का नियम है कि कोई भी आदर्शवादिता चिरस्थायी नहीं हो सकती। वह कुछ दिन ही जीवित रहती है, और फिर मानवों में जन्म निहित स्वार्थ भावना उसका स्वयं नाश कर देती है, अन्त में आदर्शवादी मानव पुनः पूँजीपति के रूप में ही परिवर्तित हो जाता है। आदर्शवादी वह तभी तक है जब तक वह पूँजीपति नहीं होता। पूँजी जब एक बार हस्तगत हो जाती है, तब मानव उसका त्याग करने के लिए कदापि तैयार नहीं होता। एक दो व्यक्तियों के उदाहरण समाज की स्थापना नहीं करते। मानव प्रायः निन्यानवें के फेर में ही लड़खड़ाता हुआ दिखाई पड़ता है। इसीलिए तो हम पूँजीपतियों का स्थान समाज में अक्षुण्ण है, चिरस्थायी है।"

सेठ पोपटलाल ने आवेश में आकर कहा :—"बेशक, भगवान् ही की भाँति पूँजी भी सर्व शक्तिमान् और अनश्वर है।"

चन्द्रनाथ :—"मैं तो उससे भी अधिक मानता हूँ। संसार में एक ऐसा जन-समुदाय है जो भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानता, किन्तु पूँजी की महानता तो वह समुदाय भी स्वीकार करता है। भगवान् की भाँति पूँजी के भी अनेकानेक रूप हैं, नाम हैं और गुण हैं। कहीं वह वस्तुओं के रूप में है, कहीं मुद्राओं के रूप में है और कहीं स्वर्ण तथा रत्नों के रूप में है। आजकल मशीन अथवा कलयुग में वह कल-पुर्जों के रूप में अवतरित है। यही नहीं कि पूँजी के लिए मानव ही लालायित हैं, प्रकृति के छोटे-छोटे कीटाणु भी-जैसे चींटी इत्यादि-पूँजी की महत्ता को स्वीकार करते हैं। चींटियों का बिल खोदिये तो वहाँ आप पूँजी को अन्न, मिष्टान्न तथा माँस के रूप में पायंगे। पक्षियों के घोंसलों में ढूँढिये तो भी वहाँ आपको पूँजी उनके खाद्य योग्य वस्तुओं में संचित मिलेगी। चूहों के बिलों में भी पूँजी के (अन्न रूप में) दर्शन मिलेंगे। मानव भी तो प्रकृति ही द्वारा रचित हुआ है। पूँजी के लिए लिप्सा होना उसमें आवश्यक है, बिलकुल स्वाभाविक है। वास्तव में पूँजी वही है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को विनिमय में प्राप्त करता है, और चूँकि मनुष्य ने विनिमय का आकार मुद्राओं, स्वर्ण तथा रत्नों को उनके

अनेक गुणों के कारण स्वीकार कर लिया है, इसलिए शिक्षित जन-समुदाय में दूसरे रूप में। अतएव पूँजी की महत्ता, तथा श्रेष्ठता और उपादेयता सृष्टि के आदि काल से रही, और अन्त तक रहेगी। प्राकृतिक तथा भौगोलिक रूप से भी वही देश श्रेष्ठ माना जाता है जहाँ पूँजी की प्रचुरता होती है, इसीलिए पहाड़ी तथा मरुभूमि यदि उनमें खानें इत्यादि पूँजी के रूप वर्तमान नहीं हैं, तो निम्न तथा हेय श्रेणी के देश माने जाते हैं, तथा वहाँ के रहने वाले सदैव दरिद्री और पूँजीहीन होते हैं। जड़ प्रकृति ही पूँजी की श्रेष्ठता अंगीकार करती है, तब हम पूँजीवादी सदैव श्रेष्ठ रहेंगे। किन्तु इस प्राकृतिक श्रेष्ठता को चिरकाल तक बनाये रखने के लिए हमें कतिपय उपायों का अवलम्बन करना पड़ेगा। गणतंत्र शासन-पद्धति में पूँजी की महत्ता तो निर्विवाद रूप से है, यदि केवल हम अपनी पूँजी को सुचारु कुशलता से व्यवहार करना जान लें।"

अब्दुलमजीद ने कहा :—"आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे अजीज दोस्त वामनदास की तरक्की के दारोमदार तुम्हीं थे। बेशक, पूँजी देकर खुदा ने हमको दीगर इन्सानों से अधिक ताकतवर बना दिया है, अब इसको महफूज रखना और अपनी तरक्की करना हमारे कूवते-बाजू और अक्ल पर मुनहसर है। अब जरा वे तरीके तो बताइए।"

चन्द्रनाथ प्रसन्नता के साथ कहने लगे :—"दुनिया का वर्तमान काल 'प्रोपेगैन्डा' अथवा प्रचार का है। पहले हिटलर ने केवल प्रचार के बल से विजय-पर-विजय करते हुए संसार को चकित कर दिया था। प्रचार विद्या के आचार्य डाक्टर गोयबेल्स संसार-भर के प्रचारकों को परास्त कर रहे हैं। सत्य और मिथ्या वास्तव में कुछ नहीं है—एक वस्तु के दो रूप हैं। जो जिसके लिए उपादेय होता है वही उसके लिए सत्य है—अनुपादेय अथवा विरोधी वस्तु मिथ्या है। एक वस्तु सत्य इसलिए है, क्योंकि उसका प्रचार अधिक है।

जिसे दुनिया आज मिथ्या कहती है, यदि उसी का प्रचार अहर्निश होता रहे तो वह कालान्तर में सत्य का रूप धारण कर लेगा। इस बात का प्रचार किया गया है बहुत काल से कि मनुष्य को मारना पाप है, इसलिए जन साधारण उसे पाप की दृष्टि से देखता है। आत्म-रक्षा के लिए किसी को मार डालने का अधिकार है, यह भी प्रचार के कारण सत्य सिद्ध किया गया है। माँस-भक्षण के प्रेमियों ने यह प्रचार किया कि बकरे के मारने से पाप नहीं, वरन् पुण्य होता है, इसलिए बलिदान की प्रथा उचित तथा सत्य ठहराई गई। अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि किसी प्रथा अथवा वस्तु की सत्यता या मिथ्यता केवल प्रचार पर निर्भर है। यदि हम विशद रूप में प्रचार करने में समर्थ हों कि पूँजीपति भगवान् का प्रतिरूप हैं, और वह देवताओं की भाँति पूजनीय हैं, अवध्य है, और

माननीय है तो वह अवश्य ही जन-साधारण से इसी प्रकार माना जायगा। प्रमाण के लिए मैं कहूँगा कि हमारे राजाओं तथा सम्राटों ने, जो एक क्षेत्र, प्रदेश अथवा महादेश के महानतम पूँजीपति थे, अपनी महत्ता को सार्वभौमिक सिद्ध करने के लिए धार्मिक ग्रन्थों में अपने को 'ईश्वर रूप' में अंकित करवा दिया, जैसे 'नराणां च नराधिप :'—और इस धर्म वाक्य का धार्मिक ग्रंथों द्वारा प्रचार शताब्दियों तथा सहस्राब्दियों तक हुआ, तो यह घोर मिथ्या होते हुए भी सत्य रूप में प्रतिपादित हुआ कि राजा अथवा सम्राट् भगवान् का अवतार है, वह कोई अपराध नहीं कर सकता, उसके दर्शन-मात्र से पापों का नाश होता है और मर-कर स्वर्ग लोक में जाता है। मध्य कालीन युग में 'झरोखा दर्शन' की प्रणाली इसी प्रकार चली थी; और आज दिन भी राजपूताना में राजा की ड्योढ़ी दर्शन का वही महत्त्व चला आता है जो मन्दिर अथवा देव-दर्शन का होता है। स्वर्ग, नर्क, और स्वयं ईश्वर का अस्तित्व प्रचार पर ही निर्भर करता है। धर्म भी वही चला जिसका प्रचार अधिक हुआ। बौद्ध, ईसाई, इसलाम धर्म क्यों इतने विख्यात और सत्य माने जाते हैं, क्योंकि उनका प्रचार अधिक हुआ है। हिन्दू धर्म केवल भारत-व्यापी इसीलिए है क्योंकि उसका प्रचार भारत के बाहर नहीं हुआ इसके विपरीत जंगली मनुष्यों के धर्म की परिधि उन्हीं की छोटी-छोटी जाति अथवा संख्या में परिमित होने के कारण बिलकुल नगण्य हैं। अतएव प्रचार की अजेयता सर्व प्रकार से सिद्ध होती है। इसी कारण से पूँजी की सर्वोपरि महानता सिद्ध करने के लिए प्रचार को ही आधार स्तम्भ बनाना उचित है।"

सेठ पोपटलाल ने प्रसन्न होकर कहा:—"शाबाश, शाबाश। बिलकुल सत्य है। अब हमको प्रचार करना चाहिए कि मजदूर वास्तव में मनुष्य नहीं हैं, बल्कि मशीन की ही तरह कल-पुर्जे हैं, तो थोड़े दिनों में दुनिया जरूर मजदूरों को मनुष्य नहीं कल-पुर्जे मानेगी लाला कंचनलाल और शेख अब्दुलमजीद तो गंभीरता की मूर्ति बने बैठे थे। अब किंचित् मुस्करा दिये।

चन्द्रनाथ कुछ तीव्रता के साथ बोले:—"हर एक काम करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता हुआ करती है। अव्यावहारिक और असंगत कथन मूर्खता का द्योतक है। बुद्धि की कुशलता इसी में दृष्टिगोचर होती है कि बात असंगत भी न विदित हो, और अपना स्वार्थ पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाय। हमारा ध्येय है मजदूरों को कम-से-कम मजदूरी देना, गुलामों की भाँति उनसे काम लेना, और उसी भाँति उनके स्त्री-बच्चों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें एक विस्तृत योजना बनानी होगी, और वह हमारे प्रचार के बल पर ही निर्भर करेगी। प्रचार के समस्त साधनों को पहले हस्तगत करना होगा। समाचार-पत्र, उपदेशक, धार्मिक ग्रन्थ आदि-आदि प्रचार के सभी

उपकरण अपनी पूँजी के बल से अपने अनुकूल बनाना होगा। सम्पादकों को, उपदेशकों को, और लेखकों को अपनी पूँजी के प्रवाह से ओतप्रोत कर दीजिए कि वे पूँजीपतियों का ही गुणानुवाद गायं, और मजदूरों की कोई शिकायत न सुनें, न कहें और न छापें। शासन-सत्ता पर अपना अधिकार पूँजी के बल पर स्थापित कर लें, और इसके द्वारा कानून बनाकर उनकी सारी क्रियाओं तथा आन्दोलन को अवैध बना दिया जाय। जहाँ कहीं विरोध हो, वहाँ शक्ति का आश्रय लेकर कुचल दिया जाय। ऐसा परिश्रम और संघर्ष हमें वर्षों करना पड़ेगा, तब जन-साधारण मजदूरों का हिमायती नहीं रहेगा, और हम अपनी शर्तों पर उनसे मनमाना काम ले सकेंगे। सारांश यह कि हमको अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनमत को अपने अनुकूल बनाना होगा। जनमत को अनुकूल करना कुछ विशेष कठिन नहीं है क्योंकि पचास प्रतिशत जनता अपने ही भरण-पोषण की पहेली सुलझाने में, अथवा गार्हस्थ्य जीवन की भूल-भुलैयाँ में संलिप्त रहती है। उसको बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं होता। बीस प्रतिशत जनता अति अल्प मात्रा में सांसारिक मामलों में दिलचस्पी लेती है, किन्तु वह दर्शक मात्र होती है। बीस प्रतिशत जनता कुछ अधिक दूसरों के झगड़ों में हस्तक्षेप करती है, और वह मौखिक आलोचना-मात्र तक सीमित रहती है। पाँच प्रतिशत जनता आलोचना के साथ बौद्धिक कार्यक्रम बनाती है, चार प्रतिशत जनता सक्रिय सहानुभूति रखती है। और केवल एक प्रतिशत जनता दूसरों के लिए अपना रक्त भी बहाने को तैयार रहती है। इसलिए पहली पचास प्रतिशत जनता के लिए हमें कुछ भी चिन्तित न होना चाहिए। दूसरी बीस प्रतिशत के लिए समाचार-पत्रों से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जायगा। तीसरी बीस प्रतिशत को समाचार-पत्रों तथा उपदेशकों आदि द्वारा गुणगान से हम वशीभूत कर लेंगे। चौथी पाँच प्रतिशत हमारे उपहार, दान तथा रिश्वत आदि से विजित कर ली जायगी। पाँचवी चार प्रतिशत शासन-सत्ता तथा कानून द्वारा पराजित की जा सकती है। अब लड़ना केवल हमको एक प्रतिशत जनता से है। क्या हमारे बुद्धि-कौशल तथा पूँजी में इतनी भी शक्ति नहीं है कि हम उस एक प्रतिशत को नष्ट कर सकें ?"- चन्द्रनाथ अपनी बातों का प्रभाव देखने के लिए ठहर गए।

लाला कंचललाल ने विजय-घोष करते हुए कहा:—"क्यों नहीं, उसकी क्या बिसात है, हमारे सामने।"

चन्द्रनाथ ने तर्क करते हुए कहा:—"अपने प्रतिद्वन्द्वी को तुच्छ समझना पराजय की पूर्व सूचना है। यह एक प्रतिशत महान् शक्तिशाली है क्योंकि वह निस्वार्थी है, निर्लोभी है, बेलौस है, कर्मठ है, निर्भय है और अटल है। उसी एक से लड़ने के लिए अपना सारा बुद्धि-बल, पूँजी-बल अपने अस्तित्व के दाँव

पर लगा देना होगा। बोलिए आप तैयार हैं।"

अन्य तीनों मिल-मालिकों ने एक स्वर में उत्तर दिया :—"हम तैयार हैं।"

वायु ने उस कमरे की ऊँची दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनि की :—"हम तैयार हैं।"

विद्युत् दीप-शिखा भी उसी समय सहसा प्रखर होकर कह उठी :—"हम भी तैयार हैं।"

चन्द्रनाथ को सबने उस दिन अपना नेता स्वीकार कर लिया, और संघर्ष को निमन्त्रण दे दिया गया।

द्वितीय खण्ड

१

बलवन्त ने घास का गट्ठर फेंकते ही सिर उठाकर जो अपने सामने देखा तो साहबदीन, गाँव के साहूकार, से आँखें चार हुईं। एक तो पहले से ही बोझ उठाए आने के कारण उसका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था, और जब साहूकार को वही आदि कागजों का बस्ता लिये हुए अपनी प्रतीक्षा में खड़ा देखा, तो उसकी जान सूख ही गई। रक्त का संचालन और भी अधिक गतिशील हो गया, जिसने हृदय में छिपे हुए भय को आँखों के आगे ढकेल दिया, और उसने कुछ लड़खड़ कर मुख के मार्ग से कण्ठ में जाकर शरण ली। साहब दीन की पूँजी शक्ति उसको उससे श्रेष्ठ बताकर उसको दुर्वाक्य कहने लिए बाध्य करने लगी। परन्तु दरिद्रता की सहचरी नम्रता बलवन्त की सहायता के लिए विकलता के साथ उसके पास आकर खड़ी हो गई।

बलवन्त ने हाथ जोड़कर काँपते हुए कण्ठ से कहा:—"कहिए, क्या हुक्म है, सेठ जी?" साहबदीन ने उठते हुए जोश को कुछ दबाकर संयत स्वर में कहा:—"मियाद बीते हुए एक माह से अधिक हो गया है। मैंने विचार किया कि शायद ठाकुर को घर के झंझटों में फँसे रहने के कारण याद नहीं रही, और न उनको इतना समय मिलता है कि दूकान तक आ जाय, इसलिए मैं स्वयं क्यों न चला चलूँ। आखिर रुपया तो अब मुझे लेना है, जब ठाकुर को लेना था तब वे मेरे दरवाजे आये थे, और अब मुझे लेना है तो नियम के अनुसार मुझे जाना उचित है।"

श्रेष्ठता का सहचर व्यंग्य दर्पण लिये हुए बलवन्त को अपनी ही दृष्टि में हीन बतलाने लगा।

उसने सिर नत करके कहा:—"सेठ जी, गरीबी चोरी की जननी है। जब आदमी के पास पैसा नहीं होता तो वह घर-घर का चोर हो जाता है। चोर भला किसको मुख दिखा सकता है? मैं झूठ नहीं कहूँगा, मियाद गुजरने को मुझे मालूम है, कितना रुपया आपको देना है, यह भी मालूम है, रुपया कौल पर न देने से कितना तावान देना पड़ेगा, यह भी मैं जानता हूँ, परन्तु करूँ क्या, रुपए का काम तो रुपए से होता है। हाथ में रुपये आए नहीं, और मुझे मुँह लुकाना पड़ा।"

पक्षी जब पूर्ण रूप से फँस जाता है तब बहेलिये को उसके सताने में एक

प्रकार का मोद होता है, और वह शायद उसको फाँसने में जो परिश्रम हुआ है उसकी प्रतिक्रिया होती है।

साहबदीन ने बड़ी धीरता के साथ पूछा :—"तो अब तुम्हीं बताओ कि इस तरह मुँह छिपाने से कब तक काम चलेगा, या अगर मुँह लुकाए रहने से तुम्हारा कर्ज अदा हो जाय तो फिर तुम्हें जरूर छिपे रहना चाहिए।"

बलवन्त ने हताश कण्ठ से कहा :—"आप ठीक कहते हैं, सेठजी, मुँह छिपाने से कर्जा अदा नहीं होता, मगर क्या करूँ, सामने आने की हिम्मत भी तो नहीं होती। हेकड़ी मुझे आती नहीं, लड़ना मैं जानता नहीं। हेकड़ी करूँ, और लड़ूँ तब जब रुपया फेंक देने की हिम्मत हो।"

साहबदीन की पूँजी शक्ति उसके ऊपर अपना रंग भरने लगी। उसने किंचित् तीव्रता से कहा:—"नहीं-नहीं चौधरी, अगर मन में इसका अरमान हो तो जरूर निकाल डालो। मैंने सारी उम्र हेकड़ों की हेकड़ी ही निकाली है। अंग्रेजों की अदालत तो राजा-महाराजाओं की अकड़ को भी धूल चटाती है, फिर तुम्हारी क्या बिसात है। तुम हो किस खेत की मूली। खड़े-खड़े ये खेत और बगीचा नीलाम करा लूँगा, और तो और तुम्हारी औरत की साड़ी तक बिकवा दूँगा। जब रुपया दिया है तो वसूल करने की भी हिम्मत रखता हूँ, यह कोई विधवा-राँड़ का पैसा नहीं है जो अँगूठा दिखा दोगे।"

बलवन्त ने बड़ी दीनता से कहा :—"सेठ जी, शान्त होइए, मैं कब हेकड़ी दिखाता हूँ।"

इसी समय गाँव के कपड़े वाले ने आकर कहा :—"ठाकुर राम-राम। अरे सेठ जी भी यहाँ पहले से ही मौजूद हैं, तब तो रुपया जरूर वसूल हो जायगा।"

बलवन्त को काठ मार गया। वह कुछ हतबुद्धि होकर उसकी ओर निहारने लगा।

कपड़े आदि के दूकानदार श्रीराम खत्री ने कहा:—"क्या बात है चौधरी, छः महीने हो गए तुम्हारी औरत एक धोती का जोड़ा लाई थी, और दो-चार दिन में दाम देने को कहा था जिसको आजकल-आजकल करते छः महीने हो गए, अभी तक दाम नहीं मिले। गाँव का मामला है अगर उधार न दें तो काम नहीं चलता, मगर इतने दिनों तक कैसे सब्र किया जा सकता है। आखिर मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। और न मेरी ऐसी कोई बड़ी हैसियत है। दो चार सौ का माल रखकर पेट गुजरान करता हूँ। अगर इसी तरह लोग उधार लेकर फिर दाम न दें तो मेरा दिवाला निकल जायगा।"

बलवन्त ने विकल स्वर में कहा:—"तुमको भी दाम मिलेंगे लाला जी। क्या करूँ इस साल कुछ पैदा नहीं हुआ, झूरा पड़ गया, और दूसरे जो कुछ

सींच-साँच के हुआ, उसमें मेरे भाग से आग लग गई। सब जलकर स्वाहा हो गया। लाला जी, अन्न जल जाता है, लेकिन कर्जा नहीं जलता। जिन्दगी रही तो सबको अदा करूँगा।"

श्रीराम ने बिगड़े हुए स्वर में कहा :—"यह तो ठीक नहीं है, मैं यह हरगिज नहीं मान सकता कि तुम्हारे पास दस रुपए भी नहीं हैं। जानते ही हो कि कपड़े का भाव कैसा चढ़ रहा है। अगर आज वह जोड़ा लेने जाओ तो सोलह-सत्रह रुपए से कम नहीं देना पड़ेगा। सोलह-सत्रह का माल दस में लुटा दिया, फिर भी दाम वसूल नहीं होते। और तुम्हारा खाता तो सेठ जी के यहाँ खुला ही हुआ है, इन्हीं से अपने खाता बाबत मुझ गरीब को दस रुपए दिला दो। सेठ जी……।"

श्रीराम आगे बोल न पाया था कि सेठ साहब ने गरज कर कहा :—"एक तुम्हीं तो बड़े होशियार मिले हमको। मैं तुम्हारी रकम चुकाऊँ? क्या बलवन्त ने मेरे पास जमा करवा दिया था, या मैं बिकवाने में जामिन हुआ था। एक-एक के दस-दस तो तुम खाओ, और दाम दें सेठजी। सेठजी के पास रुपए फालतू हैं न। तुम्हारे खाने वाले हैं, बच्चे हैं, और सेठजी हैं लंगोटा धारी बाबाजी। दस रुपल्ली के लिए तो सब्र नहीं है, और सेठजी जिनकी बदौलत सारी खेती-किसानी चलती है, जिनके हजारों रुपए हो गए हैं, वे सब्र रखें और तुम्हारा भी कर्जा चुकावें। क्या आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा पा लिया है?"

श्रीरामने चढ़ कर कहा :—"अरे सेठजी, आप तो म्यान से बाहर ही हुए जाते हैं। मैंने ऐसी कौन-सी बेजा बात कही जो इतने लाल-पीले हो रहे हो। यह तो मैं कहता नहीं कि रुपया अपने घर से दो, अरे भाई, यह तो साधारण बात है कि जब तुम इससे लेन-देन करते हो, खेती-बाड़ी करते हो, तो तुम महाजन हुए ही। किसान के घर में रोकड़ रकम रखी नहीं होती, लाता तो वह है महाजन के घर से। वही बात मैंने कही थी। उस पर तीर-तूफान बघारते हो कि मैं एक-एक के दस लेता हूँ। सेठजी, मैं तो बाजार की दर से चीजों के दाम लेता हूँ। पहले चीज देता हूँ, तब दाम लेता हूँ, तुम्हारी तरह एक पर सुन्न लगाकर दस नहीं बनाता, और न लेता हूँ। मैं कोई तुम्हारा कर्जदार नहीं जो तुमसे दब जाऊँ। अगर तुम्हें हजार पाँच सौ की तड़प-झड़प है दो मुझे भी चार-पाँच सौ की सरदी-गरमी है। मौके पर अगर तुमसे इक्कीस न बैठा, तो भगवान् चाहेगा तो उन्नीस भी न बैठूँगा।"

श्रीराम छिपी हुई पूँजी के जोश में हाँफने लगा। सेठ साहबदीन कुछ उत्तर देने जा ही रहे थे कि जमींदार का गुड़ैत लखना पासी कन्धे पर साढ़े तीन हाथ का लोहे और पीतल की साम चढ़ा हुआ लट्ठ रखे उधर से निकला।

अधिकार के नशे से बेहाल उसने एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि से उन सबकी ओर देखा और मन्द मुस्कान से कहा:—"आज तो किसी भागवान् का मुँह देखकर चला हूँ। बोहनी होने में कुछ शक गुंजाइश नहीं रही। एक नहीं दो-दो महाजन ठाकुर के दरवाजे खुशामद कर रहे हैं। क्यों न हो, ठाकुर खुद भागवान् है। हाथी-जैसे तीन जवान बेटे हैं। दो कानपुर के मिल में कमाते हैं, और तीसरा फौज में भरती हो गया है। रुपए का क्या टोटा है मेरे भाई का साला भी कल कानपुर से आया है। वह बतलाता है कि मिलों में मजदूरी कई गुना बढ़ गई है पहले जिसको पन्द्रह बीस रुपए मिलते थे, उनको अब सत्तर-अस्सी रुपये मंहगाई, भत्ता मिलाकर मिलते हैं। अनाज और कपड़ा भी 'मिल' से मिल जाता है, वह भी बाजार से आधे दामों पर। ठाकुर के यहाँ पर अब तो रुपयों की गंगा बह रही होगी। क्यों ठाकुर ठीक है ?"

बलवन्त को पागल बना देने के लिए श्रीराम और साहबदीन पर्याप्त थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस बहाने से उनसे अपनी जान बचाय। मनुष्य यमदूत को देखकर उतना भयभीत नहीं होता, जितना वह लखना गुड़ैत को देखकर हुआ। उसकी जिह्वा सूखकर तालू से चिपट गई और जब उसने सुना कि उसका छोटा लड़का यशवन्त फौज में भरती हो गया है, तो वह बिलकुल निर्जीव हो गया। यशवन्त ही उसकी बुढ़ापे की लकड़ी बना हुआ था, और उसी के भरोसे खेती चलती थी। उसके दोनों बड़े लड़के महावीर और सन्तू उससे अलग अपनी स्त्री बच्चों के साथ कानपुर में रहते थे। उनसे उसको कोई सहायता नहीं मिलती थी, उलटा वे ही आकर कभी कुछ-न-कुछ नोच-खसोट ले जाया करते थे। सन्तान तो पितृ-स्नेह त्याग देती है, किन्तु पिता का पुत्र-स्नेह तो उसके जीवन के पश्चात् ही नष्ट होता है, यदि वास्तव में वह कभी मिटता है तो। बलवन्त अपने चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार देखने लगा।

सेठ साहबदीन ने उत्सुकता के पूछा:—"यशवन्त क्या सचमुच फौज में भरती हो गया है नम्बरदार ? सत्ता अस्पृश्य और अछूत को भी सम्मान-सूचक उपाधि प्रदान कर देती है। जमीदार का गुड़ैत होने के कारण लखना पासी नम्बरदार की उपाधि से विभूषित था।"

लखना ने लट्ठ को पृथ्वी पर रखते हुए कहा:—"सेठ जी, क्या कभी लखना को झूठ बोलते सुना है। हमारी जाति नीच जरूर है, लेकिन हम लोग झूठ नहीं बोलते। और अगर कभी झूठ भी बोलें तो किसी की प्राण-रक्षा या उसकी इज्जत-आबरू बचाने के लिए। मुफ्त में अपने फायदे लिए न झूठ बोलते हैं और न झूठ लिखते हैं।"

लखना के झिलमिलाते व्यंग्य ने श्रीराम और साहबदीन दोनों को एक

दूसरे के प्रति देखने के लिए बाध्य कर दिया। दोनों की आँखें नीची हो गईं।

श्रीराम ने आवान को हँसी से धोने का प्रयत्न करते कहा:—"यह बड़ी खुशखबरी है। आजकल फौज में बड़ी लम्बी तनख्वाहें हो गई हैं। वहाँ सभी बात का आराम है। बढ़िया-से-बढ़िया भोजन मिलता है, जाड़े-गर्मी की वर्दी मिलती है, और सबसे बड़ी बात यह कि रुपये बहुत ज्यादा मिलते हैं, और वह भी तुरत। अरे यह तो कहना भूल ही गया कि मर जाने के बाद मां-बाप औरतों-बच्चों को भी पेन्शन मिलती है।"

सेठ साहबदीन ने हँसकर कहा:—"बहुत ठीक हुआ, अब हम लोगों का रुपया वसूल हो जायगा। यशवन्त है भी पानीदार, और रौबीला। उसके गठे हुए बदन पर फौजी पोशाक बहुत जँचेगी।"

लखना पासी दोनों की ओर देखकर अपनी आँखें बन्द करके कुछ मुस्कराया। फिर कहा:—"अब ठाकुर को कुछ अद-बद नहीं कह सकोगे, क्योंकि फौजी सिपाही के सरकार ने तीन खून माफ कर दिए हैं। आज मालिक कचहरी में अखबार पढ़ रहे थे, उसमें लिखा था कि एक गाँव में फौजी सिपाही घुस गये और वहाँ कुछ औरतों को उठा ले गए......।"

श्रीराम ने विस्मित स्वर में पूछा:—"जबरदस्ती उठा ले गए? अरे भाई, यह अंग्रेजी राज है, जहाँ शेर-बकरी एक ही घाट में पानी पीते हैं। यह हरगिज मैं नहीं मान सकता कि अंग्रेजी राज में ऐसी घटनाएं घट सकती हैं।"

लखना गड़ैत ने तिनक कर कहा:—"लालाजी तुम मानो चाहे न मानो, मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मैं बाहर बैठा चिलम भर रहा था, और कचहरी के अन्दर बड़े मालिक, छोटे मालिक और फौज में भरती करने वाला अंग्रेज अफसर व उसके मुंशी बैठे थे। उसी समय डाक आई। छोटे मालिक ने अखबार खोलकर पढ़ा, और सबको यह बात सुनाई। तब मालिक ने वही बात कही जो तुम कहते हो। इस पर अंग्रेज-अफसर ने कहा:—"नहीं, यह बात सच है, सरकार फौजी सिपाहियों का बहुत ख्याल करती है, और ऐसे कामों की उन्हें छूट है।" अरे फिर छोटे मालिक ने पढ़ा कि जब फौजी औरतें ले गए तो गाँव वालों ने उनसे लड़ाई की, जिसमें कई आदमी मारे गए, मगर फौजियों पर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया, और न उसकी कहीं सुनवाई ही हुई। कांग्रेस वाले बड़ी चिल्लपों मचाये हैं, मगर सरकार एक नहीं सुनती। कलकत्ता में भी ऐसा ही हुआ है। असल बात यह है कि सरकार को फौजी सिपाहियों की जरूरत है, अब अगर सरकार उनको दण्ड दे तो फिर फौज में नौकरी कौन करेगा? इसलिए उनको कई बातों की छूट दी गई है। हाँ, अब काम की बात होनी चाहिए, बहुत गप्पें मार लीं। कहो बलवन्त, लगान-वगान कब अदा करोगे?"

बलवन्त के मुँह से बोल न निकला, उसके सारे हाथ-पाँव निर्जीव हो गए। यशवन्त को फौज में भेजने के लिए वह बिलकुल तैयार नहीं था। वह स्थिर दृष्टि से मूढ़ की भाँति उसकी ओर देखने लगा, जैसे कुछ सुना या समझा न हो।

लखना ने खखार कर फिर कहा:—"अरे चौधरी कुछ सुनते हो। लगान का रुपया कब दोगे। सेठ जी खड़े ही हैं, दिलवा दो। दाहिनी गदौरी खुजला रही है, चलो पहली बोहनी तुम्हारे ही यहाँ हो।"

बलवन्त ने साहस बटोरा, और कहा:—"लगान भी दूँगा नम्बरदार, सेठ जी का रुपया भी दूँगा।"

श्रीराम ने टोककर कहा:—"और मेरी धोती का दाम। मैं तो चीज देकर दाम माँगता हूँ, कोई खैरात नहीं।"

साहबदीन ने तीव्रता से कहा:—"और जैसे हम लोग खैरात माँगते हैं। पहले अंजली-अंजली-भर रुपये दिये हैं। सेंत-मेंत नहीं माँगता।"

लखना गुइँत ने चमककर कहा:—"अरे भाई, जब सरकार की जमीन जोती है, तब मैं लगान माँगता हूँ, सेंत-मेंत में नहीं माँगता।

बलवन्त ने थूक गटककर अपने गले की, शुष्कता दूर की, फिर कहा:—"न कोई सेंत माँगता है और न कोई खैरात माँगता है। सबका कर्जा मैं मञ्जूर करता हूँ, अभी आज रुपया कहाँ से लाऊँ? सबका रुपया दूध से धोकर दूँगा। जरा सबर करो।"

श्रीराम ने अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर से कहा:—"कहाँ तक सब्र करें। सब्र करते-करते छः महीने तो बीत गए। अब तक उन्हीं दस रुपयों से न मालूम कितने दस कमा लिये होते।"

साहबदीन ने भी शब्दों द्वारा जोर लगाते हुए कहा:—"मियाद बीते हुए एक महीने से ऊपर होगया। पाँच सौ रुपये तो खाली मेरे एक बैल के हैं। खेती-बाड़ी के खर्च, बीज और खाने के लिए जो अनाज दिया है, उससे कोई मतलब ही नहीं। सबका लेखा करने से रकम एक हज़ार से ऊपर जायगी। इसके अलावा पिछला बकाया भी तो है, जो लगभग दो हजार के होगा। मेरे सब तीन हजार रुपये निकलते हैं। कहाँ तक सब्र करूँ, चौधरी। मेरे ऊपर भी तो महाजन है, मुझे भी उसका सूद-ब्याज चुकाना पड़ता है।"

लखना कुछ विनोद-प्रिय था। उसने मन्द मुस्कान सहित कहा:—"तुम्हारे ऊपर कौन दूसरा महाजन है, सेठ। हाँ, तुम्हारी सेठानी हों तो बात दूसरी है। अगर वहीं हैं तब तो ठीक कहते हो। वे तो बाल की खाल भी निकाल लेती हैं। सेठ जी, तुम तो एक पैसे के दो ही अधेले भुनाते हो, वे तो तीन अधेले

भुनाती हैं।"

श्रीराम के हाथ अवसर आया, उसने हँसकर कहा :—"अगर सेठानी जी इतनी कुशल गृहस्थनी न हों तो फिर इतना धन कैसे जुड़े। सच्ची बात तो यह है कि घर की स्त्री लक्ष्मी होती है। वह चाहे तो घर बहा दे, और चाहे तो रुपयों का ढेर लगा दे।"

परिहास-प्रिय लखना बोल उठा :—"मालूम होता है लाला जी, तुम्हारी घर वाली घर फूँक तमाशा देखू है। हाँ, मैंने तो जब देखा है, उनको नई साड़ी पहनकर निकलते देखा है। चाहिए भी यही, जब भगवान् ने धन दिया है तब उसको भोगना ही चाहिए। वह धन किस काम का कि कौड़ी संचय और तीतर खाय। वह देखो भैया जसवन्त भी आ गए। कैसी शेर की-सी चाल है। चौधरी तुम्हारा यह लड़का फौज में नाम करेगा।"

बलवन्त ने उधर देखा, जिधर लखना ने इशारा किया था। कंधे पर लम्बी लाठी रखे हुए यशवन्त आ रहा था। अपने दरवाजे साहबदीन आदि को खड़ा देखकर वह लम्बे डगों से वहाँ आ गया, और सिर-से-पैर तक सबको निहार कर बलवन्त से पूछा :—"क्या बात है, बापू ?"

बलवन्त के उत्तर देने के पहले ही साहबदीन बोल उठे :—"बात क्या है, रुपया माँगने आये हैं।"

यशवन्त ने फिर श्रीराम से पूछा :—"कहो लाला जी तुम कैसे खड़े हो ?"

श्रीराम ने अपनी सहज तीव्रता को दबाकर मधुर स्वर में कहा :—"एक धोती जोड़े के दाम कई महीने से बाकी पड़े हैं कल कानपुर जा रहा हूँ कपड़ा खरीदने, इसलिए माँगने चला आया।"

यशवन्त ने कहा :—"अच्छा लखना, तुम कैसे आये।"

लखना ने हँसकर कहा :—"लगान-वसूली के लिए निकला था, सोचा कि पहले यहीं से बोहनी करूँ, क्योंकि तुम फौज में भरती हो गए हो। कुछ बोकड़ रकम पेशगी में मिली ही होगी। लगान चुकाकर अपने बापू को निश्चिन्त करके तब फौज में जाओ। नहीं तो बेचारे बूढ़े आदमी हैं, नाहक परेशान होंगे।"

यशवन्त ने धीर स्वर में कहा :—"बापू के बूढ़े शरीर की तुम्हें इतनी चिन्ता है, यह मुझे आज मालूम हुआ, लखना। अच्छा सुनो, लगान की रकम तो मैं अभी-अभी बड़े सरकार को चुकाकर आ रहा हूँ, देखो यह रसीद है, अब तुम जा सकते हो, और श्रीराम जी कहो, तुम्हारी धोती के दाम कितने हैं ?"

सेठ साहबदीन अब चुपचाप रह न सके, बोल उठे :—"और मेरी रकम का क्या होगा ?"

यशवन्त ने हँसकर कहा :—"सेठ चाचा, काहे को घबराते हो, तुम्हारी भी रकम मिलेगी। तुम्हीं लोगों की खातिर तो मैंने अपनी जान अंग्रेजी सरकार के हाथ बेच दी। यह तो तुम लोग जानते ही हो कि मैं काँग्रेसी हूँ, और काँग्रेस का हुक्म है कि कोई हिन्दुस्तानी फौज में भरती न हो, मगर क्या करूँ, घर की गरीबी से मजबूर हूँ। तुम महाजन लोग खून पीते हो खून। जोंक तो अच्छी होती है कि जो पेट-भर खून पी लेने के बाद छोड़ तो देती है, मगर तुम लोगों की प्यास तो जिन्दगी रहते बुझती नहीं। हमारा खून पीकर तुम मोटे होते हो, और फिर हमको मार डालने में तुम्हें तनिक भी ममता नहीं होती। एक तो इस साल झूरा पड़ा, जो कुछ सींच-साँचकर थोड़-बहुत पैदा हुआ उसे किसी ने जला दिया। भला तुम्हीं बताओ खलिहान में अपने-आप कहीं आग लगा करती है। पता तो उसका लग ही जायगा, तब बताऊँगा। बापू के हाथ में रुपया है नहीं, जो तुम्हारा भुगतान करें, वह भी एक-एक का बीस-बीस। इसलिए मुझे काँग्रेस के हुक्म के खिलाफ फौज में भरती होना पड़ा। खैर इन बातों से क्या मतलब। लो श्रीराम काका, यह दस रुपए का नोट लो, मैं समझता हूँ इतने ही तुम्हारे दाम होंगे, क्योंकि अम्माँ के मुँह से मैंने कई बार सुना है। अब तुम लोग जाओ। रह गए सेठजी चाचा, उनकी रकम तो ब्याज है, जब तक ब्याज मिलता जाय उनको मूल से वास्ता नहीं। अच्छा चाचाजी आज तो जाओ, कल हिसाब देखकर ब्याज की रकम अदा करूँगा। बापू, चलो घर के अन्दर चलो। अम्माँ कहाँ गई? आज उनकी हाथ की सोंधी रोटी खाने का बड़ा मन है। बापू, तुम बोलते क्यों नहीं, क्या बात है?"

यशवन्त, उसका सहारा यशवन्त उसी के कारण अपनी जान बेच रहा है, इस विचार ने बलवन्त की अवशेष शक्ति को क्षण कर दिया। वह मूर्छित होकर यशवन्त के भुज-पाश में गिरकर लाठी की भाँति उसके कन्धे से अटक गया।

२

यशवन्त अपने बाप को कन्धे पर उठाकर घर के अन्दर ले आया। उस समय वहाँ कोई न था। उसकी माँ लछिमिन और स्त्री सुखदेई दोनों खेती पर काम करने गई हुई थीं। रुपए पाने के बाद श्रीराम तो तुरन्त ही चला गया था। उसने बलवन्त को मूर्छित होते नहीं देखा, परन्तु सेठ साहबदीन उस समय वहीं उपस्थित थे। बलवन्त को सहसा गिरते देखकर उसे पहले भय हुआ कि कहीं हृदय की गति बन्द न हो गई हो। उसकी सतर्कता ने कहा कि अगर कहीं बलवन्त मर गया तो तुम भी फँस जाओगे, अगर कुछ नहीं होगा तो पुलिस के श्री चरणों में कुछ-न-कुछ अवश्य ही समर्पित करना पड़ेगा। पूँजीपति को अपनी पूँजी प्राणों

से भी अधिक प्यारी होती है। साहबदीन ने झंझटों में पड़ना उचित नहीं समझा, और उनकी ओर बिना दृष्टिपात किये ही वह चलता बना। केवल लखना नहीं जा सका था। सहृदयता का निवास समाज के पीड़ित और दुखी स्तर में है, इसीलिए गरीब और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों में उसके दर्शन अनायास मिल जाते हैं। सहृदयता का प्रदुर्भाव निरन्तर कष्ट-सहन में होता है, क्योंकि पीड़ा और कष्टों का अनवरत वर्षण मानव-हृदय की रूक्ष और परुष प्रवृत्तियों को साफ कर देता है और तब कोमलता ही अपने निखरे हुए रूप में वर्तमान रहती है। टीस और कसक का ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, और वह अनुभव कालान्तर में सहानुभूति तथा सहृदयता को जन्म देता है। इसके विपरीत पूँजीपति के हृदय की कोमल वृत्तियों को पूँजी का अविराम वेग अपने साथ बहा ले जाता है, और तब वहाँ केवल घृणा, तिरस्कार और लापरवाही अवशेष रहती है। लखना सामाजिक और सांसारिक परिस्थितियों से लड़ता हुआ निम्नश्रेणी का मनुष्य था। मुसीबत उठाये हुए था। दूसरों को मुसीबत में देखकर वहाँ से भाग जाने के लिए उसके पैर नहीं उठे। वह उनके साथ-साथ घर के दरवाजे तक आया, समाज ने उसको यहीं तक जाने का अधिकार दिया था। अस्पृश्य होने के कारण घर के अन्दर उसका प्रवेश निषिद्ध था। इसके अतिरिक्त यह निर्धन भी था, यद्यपि कहीं-कहीं पूँजी की शक्ति ने उनको यह अधिकार दे दिया है। पूँजीवादी लोक में पूंजी सर्व शक्तिमान् है।

बलवन्त की मूर्च्छना सांघातिक नहीं थी। अपरिमित सुख अथवा दुःख एक आवेश उत्पन्न करते हैं, जिसका प्रभाव वैद्युतिक शक्ति द्वारा हृदय पर पड़ता है तब हृदय ज्ञान-तन्तु में परिमाण से अधिक मात्रा में रक्त प्रवाहित करने लगता है, जिसके वेग को वह विकल होने से सहन करने में अक्षम होता है—तब विराम की आवश्यकता प्रतीत होती है, और इसी का नाम मूर्च्छना है। विरामँ अथवा मूर्च्छना होने से मस्तिष्क की ओर प्रवाहित रक्तस्रोत का वेग कम होकर शनैः-शनैः अपनी प्राकृतिक अवस्था पर आ जाता है। इतने समय में मस्तिष्क अपने स्नायु-मण्डल में अपनी अवस्था जमा लेता है, और उस समय विराम की आवश्यकता नहीं रह जाती, इसी को मूर्च्छना-भंग अथवा होश में आना कहते हैं। शीतल जल का उपकरण मस्तिष्क के उत्तेजित स्नायु-मण्डल को शांत करने में सहायता प्रदान करता है, क्योंकि शीतल जल में शीतल वैद्युतिक शक्ति उत्पन्न होती है, जो आवेश-जनित ऊष्मा या ताप को कम करती है। प्रकृति ने मूर्च्छना आदि की व्यवस्था मानव-शरीर में इसी प्रकार की है, जैसी इंजिन में आटोमैटिक या स्वयं परिचालित वाल्व अथवा नालियों की होती है। भाव, कुभाव सूक्ष्म वैद्युतिक किरणों द्वारा हृदय के रक्त-संचालन में उसी प्रकार काम करते हैं, जैसे अग्नि, जल

और वाष्प इंजिन में कार्य करते हैं। समत्व को त्यागकर जब कोई वस्तु अधिक हो जाती है, तब स्वयं परिचालित नालियाँ खुल जाती हैं, और तब वे इंजिन की गति अवरुद्ध कर पुनः समत्व स्थापित करती हैं। समत्व के सिद्धान्त पर समग्र ब्रह्माण्ड स्थित है, इसीलिए भारतीय धर्म शास्त्रों में समत्व की स्थापना ही समग्र लौकिक तथा पारलौकिक सुखों— यहाँ तक कि मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है।

बलवन्त को होश आ गया। उसने शून्य दृष्टि से चारों ओर देखा। मूर्च्छना अपने आगमन के पूर्व की स्थिति को क्षण-मात्र के लिए भुला देती है। मूर्च्छना भंग होने पर आँखें तो खुल जाती हैं, किन्तु विचारों में कुछ देर के लिए शून्यता रहती है। इस शून्यता का कारण यह है कि मूर्च्छित होने से ज्ञान-तन्तुओं में चेतना का प्रवाह जब रुक जाता है, तब विचार-धारा वहीं रुककर भँवर की भाँति मँडराने लगती है। यह भ्रमित अवस्था उस काल तक रहती है जब तक मनुष्य मूर्च्छित अवस्था में रहता है। मूर्च्छा भंग होने पर चेतना की धारा ज्ञान-तन्तुओं में पुनः प्रवाहित होने के लिए अग्रसर होती है, किन्तु भ्रमित विचार-धारा किंचित् काल में ही अपनी सहज गति पर जाती है। जिस प्रकार जल की धारा सहसा रुक जाने से स्थिर होकर वहाँ मँडराने लगती है, और अवरोध हट जाने से पहले बहुत-सा रुका हुआ जल एक बारगी बह जाता है, तब पीछे से प्रवाहित होता हुआ जल अपनी सहज गति पकड़ पाता है, उसी प्रकार चेतना होने पर मस्तिष्क में विचारों की उथल-पुथल सजग हो जाती है, और विचार का पूर्व सूत्र या तो स्मरण दिलाने अथवा थोड़ी देर बाद स्वयमेव अपनी गति पर आता है।

बलवन्त ने अपने पुत्र को पहचाना। यशवन्त ने पूछा :—"बापू, अब कैसी तबियत है।"

विचार-धारा अब संयत होकर बहने लगी थी। बलवन्त ने उत्तर दिया :—"अब अच्छी है, क्यों जस्सू, तूने यह क्या कर डाला ?"

यशवन्त का घरेलू नाम जस्सू था।

यशवन्त ने बात की गम्भीरता को अपनी हँसी द्वारा कम करने की चेष्टा करते हुए उत्तर दिया :—" कुछ भी नहीं बापू।"

बलवन्त :—"यह क्या सच है कि तू फौज में भरती हो गया है।" पिता के समत्व में अब भी एक क्षीण आशा की रेखा छिपी हुई थी। स्नेह प्रत्यक्ष को भी एक बार अपना भ्रम समझता है। यशवन्त ने सिर नत कर लिया, उसके विश्वास-घात ने उसके साहस को हर लिया था। पिता का स्नेह उसे धिक्कार रहा था।

बलवन्त कहने लगा :—"लोग यह सत्य ही कहते हैं कि मनुष्य संसार

में अकेला ही उत्पन्न हुआ है, और वह अकेला ही दुःख भोगता हुआ अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करता है। दुनिया कहती है कि बलवन्त बड़ा भाग्यशाली है, उसके हाथी-जैसे तीन जवान बेटे हैं वह दूधों नहा रहा है और पूतों फल रहा है; परन्तु वास्तव में बलवन्त बिलकुल अकेला है। उसके लिए पुत्रों का सुख नहीं है।"

वह आगे कुछ कह न सका, आवेग जिसने सहसा प्रगट होकर उसको मूर्च्छित किया था अब संयत होकर हृदय के रक्त को जल में परिणत कर आँखों के मार्ग से बाहर प्रवाहित होने लगा। वह जल मीठा न था, क्योंकि वह रक्त का रूपान्तर-मात्र था।

यशवन्त अपने प्रति अपने पिता के प्रेम को कुछ-कुछ जानता था। उसके स्नेह के गुरुत्व से अभिभूत होकर उसका मन त्राहि-त्राहि करने लगा। विश्वास-घात के लिए वह अपनी सफाई देने लगा:—"बापू; इसके अतिरिक्त कर्जा चुकाने का और कोई दूसरा उपाय न था। खेती में कुछ उत्पन्न होता नहीं, महाजन अपना रुपया माँगते हैं, जमींदार अपना रुपया माँगता है। बाजार वाले अपना रुपया माँगते हैं। अब तुम्हीं बताओ बापू, इन सबको देने के लिए कहाँ से रुपया आयगा। दरवाजे पर रोज-रोज हाय-हत्या होना भी तो अच्छा नहीं है। जिनका रुपया चाहिए वे तो माँगने आयंगे ही। उन्हें कब तक झूठे वादे देकर टाला जायगा। हर एक कौल की अवधि होती है। लड़ाई दो-चार साल की है, जन्म-भर तो चलेगी नहीं। आँधी के आम की भाँति अंग्रेज-सरकार रुपया लुटा रही है, यदि वह लड़ाई पर जाने से ही मिलता है तो क्या हर्ज है अगर जिन्दगी है तो बाल भी बाँका नहीं होगा, और अगर बापू......।"

बलवन्त ने बिजली की तेजी से उसके मुख पर अपना हाथ रखकर उसे बोलने से मजबूर कर दिया। मृत्यु का नाम-मात्र ही उसके हृदय को भीरु बना रहा था। उसने उसको अपने गले से ठीक उसी भाँति चिपटा लिया, जब वह छोटा था। वात्सल्य के आगे वर्षों की अधिकता का कोई अर्थ नहीं होता। बलवन्त सिसक-सिसक कर कहने लगा:—"मेरे कर्ज के लिए तेरा बलिदान मुझे जन्म-भर कुढ़ायगा। भरी जवानी में दुनिया बड़ी मोहक होती है। यही खाने पीने की उमर है। अभी बहुरिया आई ही है, अभी तुम न उसको जान पाये, और वह न तुमको जान सकी। तुम्हारी अम्माँ ने बड़ी साध से तुम्हारा गौना किया था। कर्ज में डूबा हुआ था, फिर भी तुम्हारे गौने का हौसला जी भरकर निकाल लिया था, सिर्फ इसी साध से कि हम अपनी आँखों से तुम्हारा हँसना-खेलना देखें, लेकिन बेटा, तुम मेरी सारी आशाओं पर पानी फेरकर चल दिए, और वह अपने बाप का कर्ज चुकाने के लिए। अगर जानता कि कर्ज अपने

सिर पर नहीं तुम्हारे सिर पर लाद रहा हूँ तो बेटा, इतना खर्च न करता। जितनी प्रसन्नता पिता को अपनी सन्तान को सुखी देखकर होती है, उतना ही हर्ष स्वयं उन वस्तुओं के भोग से नहीं होता। बहुरिया अपने मन में क्या समझेगी, और तुम्हारी अम्माँ तो शायद ही जीती बचे।"

आवेग फफक-फफक कर बहने लगा। रक्त के पानी में रूपान्तर होने की क्रिया कुछ समय लेती है, और जब संचित जल निःशेष हो जाता है, तब प्रवाह भी समाप्त हो जाता है। उस समय मस्तिष्क विचारों को पुनः प्रकट करने के लिए उत्साहित करता है, ताकि हृदय को समय मिले और वह अवसर में रक्त को पुनः पानी में परिणत करे।

बलवन्त कहने लगा:—"यह ठीक ही कहते हैं कि पिता का पाप संतान को भी सताता है। मेरे पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए तुम अपनी जवानी बरबाद करने जा रहे हो, अपना जीवन बलिदान करने जा रहे हो। मैं बैठे-बैठे यहाँ पर मल्लारें गाऊँ, और तुम साँप-बीछी-शेरों से भरे हुए जंगलों की धूल छानो। भगवान्, तुमने आज वह दिन भी दिखाया, जब मैं अपने हाथों से अपने बेटे का अपने स्वार्थ की वेदी पर बलिदान चढ़ा रहा हूँ। यह पत्थर का कलेजा न जाने क्यों टूक-टूक नहीं होता। अब तुम्हें कौन-सा सुख दिखाना बाकी है भगवान्?"

आवेग उसका गला मसोस कर पुनः श्वेत रक्त बहाने के लिए अस्थिर हो गया। इतनी देर में सारे गाँव में यह समाचार फैल गया कि बलवन्त का लड़का यशवन्त फौज में भरती हो गया है। गाँव की सीमा को उल्लंघन कर खेतों में बिखरे हुए नर-नारियों के समीप पहुँचने के लिए वह आकुल हो गया। लछिमिन और सुखदेई ने भी सुना। घास को छीलती हुई खुरपी लछिमिन की उँगली के जाल में फँस गई, और सुखदेई के बाल-हृदय से एक हूक उठी, जिसने उसके हृदय को निष्करुण होकर मथना आरम्भ कर दिया; क्योंकि भारतीय सभ्यता की लाज गुरुजनों के समीप उसकी पुकार का गला दाबे हुई थी। उसका हृदय आँसुओं को ढकेल रहा था, किन्तु नव-वधू की सहज लज्जा उनको पीकर सुखा देने का निष्फल प्रयत्न करने लगी।

अप्रिय सन्देश-वाहक अकारण ही शत्रु-सा खरकने लगता है। लछिमिन ने चिल्लाकर राग-द्वेष से परे उस सन्देश-वाहक अष्ट वर्षीय बालक महादेवा से कहा:—"मुहझौंसा कहीं का, ठहर तो झूठ बोलने का अभी मजा चखाती हूँ। पहले तो मैं ही मारती हूँ, फिर रुक्मिन दीदी से तेरी खाल कढ़ाऊँगी।"

महादेवा डरकर भागा। लछिमिन ने धमकाकर सत्य बोलना चाहा था। उसका हृदय सत्य जानने के लिए व्याकुल हो रहा था। उस निर्जन स्थान में यही

एक-मात्र आधार था।

लछिमिन ने पुकारते हुए कहा:—"अच्छा, मारूँगी नहीं। डरो नहीं। चले आओ, बताओ तो, तुमसे यह बात किसने कही ?"

लछिमिन को अभी तक अपनी उँगली काटने का ध्यान नहीं था। क्षत स्थान से रक्त निकलकर छटी हुई घास की जड़ों को सींच रहा था। एक बार भयभीत हो जाने पर बालक सहज में आश्वासित नहीं होता। महादेवा लछिमन की पहुँच के बाहर एक खेत की मेंड़ पर खड़ा हुआ था।

लछिमिन ने हँसकर बुलाते हुए कहा:—"महादेवा, आ जाओ, मैं कसम खाती हूँ, मारूँगी नहीं। मेरे पास गुड़ है, लेओगे। मैं तुम्हें यों ही झुठलाती थी।"

गुड़ का लोभ महादेवा को चल-विचल करने लगा। उसने दूर ही से कहा:—"नहीं, बड़ी अम्मा, तुम पकड़ कर मारोगी। अच्छा तुम्हारा, कौन कसूर किया है, जो तुम मारोगी ? मैं तो दूर ही खड़ा रहा, तुम्हारी घास के पास भी तो नहीं आया।"

लछिमिन की आशा सजग होने लगी। उसने बड़े ही मृदुल स्वर में कहा:—"मैं कब कहती हूँ कि तुमने मेरा कसूर नहीं किया है।"

"फिर तुम मारने को क्यों कहती थी ?" महादेवा ने उपालम्भ-मिश्रित स्वर में कहा। मिट्टी में मिला हुआ नमक क्षत स्थान में लगकर कनकनाहट करने लगा था।

लछिमिन ने कटी हुई घास से उँगली रगड़ते हुए कहा:—"तुमने आकर मुझे चौंका दिया था, इससे मेरी उँगली कट गई, तब गुस्से में मैंने कहा था। मारूँगी नहीं, अब चले आओ। बड़ा मीठा गुड़ है।"

गुड़ ने फिर महादेवा के लोभ को सजग किया, और वह डरते डरते आगे बढ़ा। लछिमिन ने अपनी ओढ़नी के पल्ले से बन्धी हुई गुड़ की आधी भेली दिखाते हुए आश्वासन दिया:—"डरो नहीं। चले आओ, मैं मारूँगी नहीं। क्या अपने महादेवा को कभी मारती हूँ ?"

लुब्ध पक्षी की भाँति महादेवा ने कहा:—"अच्छा, गंगा कसम खाओ कि तुम मारोगी नहीं।"

लछिमिन ने हारकर कसम भी खाई। महादेवा को कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ, वह धीरे-धीरे उसकी ओर अग्रसर होने लगा।

जब लछिमिन थोड़ी दूर रह गई, तब उसने फिर कहा:—"अम्मा से भी कहकर मरवाओगी तो नहीं।"

लछिमिन ने खीझकर कहा:—"नहीं, नहीं।"

महादेवा ने सौदा करते हुए कहा :—"मैं सब गुड़ लूँगा।"

लछिमिन ने हारकर कहा :—"अरे ले, क्या मैं झूठ कहती हूँ ।" यह कहकर उसने गुड़ महादेवा के पास फेंक दिया। वह उसे उठाकर खाने लगा।

लछिमिन की व्यग्रता सीमा को उल्लंघन कर गई थी।

उसने आतुर कण्ठ से पूछा :—"तुमसे किसने कहा कि मेरा जस्सू फौज में भरती हो गया है।"

महादेवा फिर डरा कि कहीं मारा न जाऊँ। वह भागने के लिए चौकन्ना हुआ।

लछिमिन ने देखा कि वह कहीं फिर न भाग जाय। उसने बड़े मीठे स्वर में कहा :—"न मालूम तुम इतना क्यों डरते हो ? कभी मारा है तुमको ? मैं सिर्फ जानना चाहती हूँ कि किससे तुमने जस्सू के फौज में भरती होने की बात सुनी है ।"

महादेवा ने गुड़ की मिठास लेते हुए कहा :—"सभी कहते हैं, गाँव-भर में यह बात फैली हुई है ।"

लछिमिन ने कुछ तीव्रता के साथ पूछा:—"अरे गाँव में बात फैली होगी, यह मैं नहीं जानना चाहती मैं पूछती हूँ कि तुमने कहाँ सुना ।"

महादेवा ने अप्रतिभ होकर कहा:—"बापू ही अम्माँ से कहते थे कि बल्लू चाचा के दिन घर आए हैं। उनका लड़का जस्सू भैया भी फौज में भरती हो गए हैं। अब उनके घर में रुपयों की नदी बह जायगी। आज ही उनको भरती करने वाले गोरे ने सौ रुपया पेशगी में दिया है।"

लछिमिन आगे न सुन सकी। उसका मन रो रहा था, और विश्वास न होता था। वह बार-बार कह रहा था कि झूठ है। देवी-देवताओं को मनाती हुई वह वायु वेग से सुखदेई को साथ लेकर गाँव की ओर भागी।

३

देवकीनन्दन ने बड़ी उद्विग्नता के साथ प्रवेश करते हुए कहा :—"कनक, कनक, तुम कहाँ हो ?"

"कनक और उर्मिला सामान बाँधने में दत्तचित्त थीं। कनक ने कुछ खिन्न होकर पूछा:—"कौन है ?"

देवकीनन्दन ने हँसकर कहा :—"तुम हो तो, खैर कोई बात नहीं, मेरा सारा परिश्रम सफल हुआ। अरे तुम मुझको भी भूल गईं, कनक। मैं हूँ देवकीनन्दन।"

कनक की क्षणिक खिन्नता तुरन्त ही प्रसन्नता में बदलकर बतलाने लगी कि भाव-कुभाव का कितनी शीघ्रता से प्रभाव मानव-हृदय पर पड़ा करता है। उसने व्यस्तता से कमरे के बाहर देवकीनन्दन का स्वागत मधुर मुस्कान

से करते हुए कहा :—"आइए भाई साहब, आपके आज अकस्मात् दर्शन हो गए। मेरा बड़ा भाग्य है जो यात्रा के आरम्भ में आपका आशीर्वाद पा जाऊँगी।"

देवकीनन्दन कनक को देखकर स्तब्ध रह गए। उनका मन उनकी आँखों से प्रश्न करने लगा कि क्या यही पुरानी कनक है? आँखें भ्रम की भँवरों में असहाय पड़ी हुई डूब-उतरा रही थीं। जब मन को उत्तर नहीं मिला तब हृदय ने अपने दो दूतों को तरल रूप में आँखों के झरोखों से झाँककर तथ्य निर्णय करने के लिए भेजा। वे वेदना से द्रवित हो गए और निराधार होकर देवकीनन्दन के कपोलों पर ढुलक पड़े। कनक उनकी अक्षमता देखकर अपना परिचय देने के लिए देवकीनन्दन के हृदय के समीप स्वतः खिंच गई। बीता हुआ बालपन बरबस वहाँ आकर खड़ा हो गया और यौवन-जनित पार्थक्य को दूर कर दोनों को निस्संकोच एक दूसरे से मिला दिया। कनक के कान देवकीनन्दन के हृदय स्पन्दन द्वारा प्रेरित मर्मान्तिक पीड़ा की कहानी सुनने लगे और देवकीनन्दन के हाथ कनक के मस्तक पर बिखरे हुए बालों को सवारकर उसके परिचित रूप की छाया दिखाने का प्रयत्न करने लगे। उन दोनों के प्रयास को मौन अपनी वैद्युतिक किरणों द्वारा उत्साह प्रदान करने लगा।

देवकीनन्दन ने सिसकते हुए कहा :—"मेरी प्यारी बहन कनक, स्वप्न में भी मुझे विश्वास नहीं था कि तुम इस तरह मेरे साथ भी विश्वास-घात करोगी?"

कनक सौहार्द्र की कसक को आँखों के पर्दे के पीछे घसीटने में तल्लीन थी, किन्तु उसके साथी उच्छ्वास को अतीत की स्मृतियों का बल प्राप्त होने से उसे बरबस ढकेल-ढकेल कर उसी के घर के बाहर निकालने में प्रयत्नशील थे। कनक अपनी सहायता के लिए मौन को निमंत्रित करने लगी।

देवकीनन्दन कह रहे थे :—"बहन इस संसार में तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई दूसरा सम्बंधी नहीं है। हम तुम सगे भाई-बहन न होते हुए भी सगों से अधिक हैं, जिसका साक्षी हमारे बाल्य-जीवन से अब तक का समय है। तुम मुझे कितनी प्रिय हो, इसकी थाह तुमको अपने हृदय में मिलेगी। संसार में यह प्रायः देखा गया है कि भाई तो बहन को भूल भी जाता है, लेकिन बहन कभी भी भाई को नहीं भूलती, और कम-से-कम मुसीबत के समय एक बार भाई को तो अवश्य स्मरण करती है। माना कि अभिमानिनी बहन भाई की सहायता लेने के लिए उत्सुक नहीं है, किन्तु क्या इस थोड़ी-सी बात के लिए वह भाई के समस्त स्नेह-जन्य अधिकारों को भी छीन लेना चाहती है, जिसे प्रकृति ने और दैव ने प्रदान किया है।"

देवकीनन्दन आगे न कह सके। सत्य कनक को बेधने लगा।

देवकीनन्दन ने मन के आवेग को दबाकर गले के नीचे उतार दिया।

फिर बैठते हुए कहा "तुमने एक पत्र लिखकर इस उथल-पथल की सूचना नहीं दी। इधर के समाचार-पत्र बम्बई तक बहुत कम पहुँचते हैं, और साधारण समाचार वहाँ के पत्रों में स्थान नहीं पाते। इसके अतिरिक्त काम का झंझट इतना था कि एक प्रकार से मैं समाचार-पत्र पढ़ता ही न था, अगर किसी पत्र ने उद्धृत भी किया हो तो मेरी दृष्टि में नहीं आया। बम्बई से फिर मैं मद्रास चला गया। वहाँ मुझे अपने प्रधान कार्यालय के सेक्रेटरी का पत्र मिला, जिसमें सारी घटना का सविस्तार वर्णन था। मैं तो स्तंभित रह गया, और वहाँ से सीधा चला आ रहा हूँ। स्टेशन पर ही मुझे मालूम हो गया था कि तुम सिविल लाइन्स में किराये के बंगले में रहने लगी हो। कानपुर में तुम इतनी विख्यात हो गई हो कि हरेक व्यक्ति तुम्हें जानता है।"

यह कहकर स्नेह से वे उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे।

दोनों फिर मौन होकर अपने अपने विचारों में तल्लीन हो गए।

देवकीनन्दन का आवेग पुनः वाचाल हो गया :—"तुम्हारे त्याग, साहस, कर्त्तव्य-परायणता की कहानी आज नगर के प्रत्येक मनुष्य के मुख पर है। चन्द्रनाथ के लिए घृणा, तिरस्कार साकार होकर गली-गली घूम रहे हैं। इस 'बिल' पर सारा नगर क्षुब्ध है। मेरी समझ में भी नहीं आता।"

कनक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया :—"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। औरस सन्तान ही सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती है—जारज नहीं।"

कनक के व्यंग्य ने देवकीनन्दन को व्यथित कर दिया :—"कम-से-कम कनक, तुम तो ऐसा न कहो। मैं प्रत्येक अनहोनी बात पर विश्वास कर सकता हूँ, किन्तु इस पर विश्वास नहीं कर सकता कि तुम चाचा जी की औरस सन्तान नहीं हो। चन्द्रनाथ का यह जाल है, स्पष्ट जाल है। मैं उसका सिर तोड़ दूँगा।"

व्यथा की पराकाष्ठा उत्तेजना को जन्म देती है। यदि व्यथा का कारण असत्य होता है तो वह क्रोध उत्पन्न करता है। देवकीनन्दन क्रोध से काँपने लगे।

कनक ने शांत करते हुए कहा :—"भाई साहब, शांत रहो, चन्द्रनाथ ऐसा कच्चा खिलाड़ी नहीं। बिल को असत्य प्रमाणित करना असम्भव है, क्योंकि उस पर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के भी हस्ताक्षर हैं।"

देवकीनन्दन ने परिस्थिति को समझते हुए कहा:—"सम्पत्ति की मुझे भी परवाह नहीं है। मेरे पास उससे कहीं अधिक सम्पत्ति है; और कनक मैंने भी अभी से तुमको अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया है, किन्तु मुझे रोष केवल इस बात का है कि वह तुमको कैसे कहता है कि तुम चाचा जी की औरस सन्तान नहीं हो।"

कनक ने हँसते हुए कहा :—"बिना इसके कहे हुए वह अधिकारी कैसे बनता और भाई साहब यह आपका कैसा अन्याय है कि आप मुझे अपना उत्तराधिकारी नियत करते हैं। मैं आपके इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार नहीं कर सकती।"

देवकीनन्दन ने तुष्टि अनुभव करते हुए कहा :—"इस प्रश्न का तुम्हें अधिकार नहीं है। जिसकी सम्पत्ति है उसे पूर्ण अधिकार है कि वह चाहे किसी को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाय। यह तो तुम जानती ही हो कि मुझे संसार से प्रेम नहीं है। मैं तो एकान्त में जाकर भगवद्‌भजन करना चाहता हूँ। तुमसे अधिक उपयुक्त उत्तराधिकारी मैं पा नहीं सकता। इस सम्पत्ति को तुम मानव-कल्याण के लिए व्यय करोगी, जिसकी आवश्यकता इस समय बहुत अधिक है। संसार पूँजीवाद का अनुयायी हो रहा है, और आवश्यकता है कि उसको इस मार्ग से हटाकर दूसरी दिशा में ले जाया जाय.........।"

कनक ने बीच ही में कहा :—"शायद पूँजी की ओर से विराग आपको इसी कारण से हुआ है ?"

देवकीनन्दन चुप हो गए। इसी समय उर्मिला ने उस कमरे में प्रवेश किया। देवकीनन्दन और उर्मिला दोनों सहम गए। उर्मिला जाने लगी।

कनक ने उर्मिला को बुलाते हुए कहा :—"बहन, यह मेरे भाई हैं, तुम निस्संकोच चली आओ।" फिर देवकीनदन्न से कहा :—"यह रामनाथ की पत्नी है।"

उर्मिला धीर पदों से आकर कनक के पास खड़ी हो गई। कनक ने उसको कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा :—"यह तो भाई साहब, आपको मालूम ही हो गया होगा कि यहाँ कि अदालत ने रामनाथ को फाँसी की सजा दी है। पुरुषों की सरकार से यद्यपि न्याय की आशा नहीं है, किन्तु फिर भी अपील तो करनी ही पड़ेगी। यदि स्त्रियों द्वारा चालित न्याय-तन्त्र होता तो, रामनाथ को फाँसी का दण्ड कभी नहीं मिलता। वह मुक्त तो होता ही और उसको पारितोषिक भी मिलता, किन्तु पुरुष तो अपनी जाति का पक्ष लेंगेही।"

देवकीनन्दन ने मन्द मुस्कान सहित कहा :—"किन्तु हाईकोर्ट में भी तो वही बात है। वहाँ पर सारे न्यायाधीश पुरुष वर्ग के हैं।"

कनक ने उठते हुए कहा :—"फिर भी परीक्षा तो करनी ही चाहिए। शायद न्याय का कण उनमें वर्तमान हो। इसके अतिरिक्त यहाँ पर पूँजीवादियों का भी हाथ न्याय वितरण में हुआ करता है। हाईकोर्ट में कुछ आशा है, क्योंकि पूँजीवादियों का कुचक्र वहाँ तक पहुँचा है इसमें सन्देह है।"

फिर कनक ने उर्मिला से कहा :—"बहन, जरा चाय तो बना लो। अभी

तक भाई साहब ने मुँह-हाथ भी नहीं धोया है, सीधे चले आ रहे हैं।"

देवकीनन्दन ने आपत्ति करते हुए कहा :—"जानती हो कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ ? तुमको अपने साथ अपने घर ले चलने के लिए । मैं तुमको अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रहने दूँगा । इसके अतिरिक्त उत्तराधिकारी सदैव अभिभावक के पास ही रहेगा ।"

देवकीनन्दन हँसने लगे ।

कनक ने हास्य के स्वर में कहा :—"उत्तराधिकारी और अभिभावक की बात तो पीछे तय होंगी, किन्तु क्या बहन का आतिथ्य भाई ग्रहण नहीं करेगा ?

देवकीनन्दन ने उत्तर दिया :—"क्यों नहीं ग्रहण करेगा । किन्तु कनक तुम्हें कष्ट होगा।"

कनक ने सन्तुष्ट होते हुए कहा :—"कष्ट किस बात का । उर्मिला और मैं दोनों मिलकर बहुत जल्द भोजन बना लेंगी । आज उर्मिला की बनाई हुई रसोई खाकर नौकरों के हाथ का बना हुआ भोजन फिर कभी नहीं खाओगे। उर्मिला के सत्संग से मुझे इसका भी ज्ञान हो रहा है। अब तक बहुत दूसरों के हाथ का बनाया हुआ खाया है, और अब स्वयंपाकी हूँ, किन्तु जो स्वाद आजकल भोजन में मिलता है, वह कभी नहीं मिलता था।"

देवकीनन्दन ने उठते हुए कहा :—"तब तो अवश्य खाऊँगा।"

उर्मिला को लेकर कनक भोजन बनाने में लग गई ।

४

भोजन करते हुए देवकीनन्दन ने कहा :—"कनक, वास्तव में आज का जैसा भोजन मैंने कभी नहीं खाया। इनमें स्वाद ही दूसरा है, जो होटल या बड़े-से-बड़े रसोई बनाने वाले नौकरों से बनाए हुए भोजन में नहीं होता । कारण समझ में नहीं आता।"

कनक ने संतुष्ट होते हुए कहा :—"भाई साहब, जरा मीठे चावल तो खाइए।"

देवकीनन्दन ने चावल खाते हुए कहा :—"वाह, बड़े सुन्दर बने हैं। तुम इतनी जल्दी पाक-विद्या-विशारद हो गई हो बहन, यह मुझे नहीं मालूम था।"

कनक ने उर्मिला की ओर संकेत करते हुए कहा :—"यह सब उर्मिला बहन के सत्संग का फल है, भाई साहब । मैंने यहाँ आकर पहले एक काश्मीरी रसोइया नौकर रखा। जब ये यहाँ आईं तो इन्होंने एक दिन स्वयं भोजन बनाने की जिद्द की। मैंने अनिच्छापूर्वक केवल इनके सन्तोष के लिए अनुमति दे दी। उस दिन से मैं इनकी भक्त हो गई। इसके पश्चात् फिर इन्होंने रसोइए को हिसाब चुकाकर विदा कर दिया, मेरे बहुत मना करने पर भी नहीं मानी। धीरे-धीरे मुझको

भी इस ओर आकर्षित किया। इनका कहना है कि भोजन उसी का बनाया हुआ स्वादिष्ट होगा, जिसके हृदय में स्नेह होगा। स्वाद वस्तुओं के मिश्रण में नहीं स्नेह में होता है।"

देवकीनन्दन ने चावल माँगते हुए कहा :—"यह चावल शायद उर्मिला बहन ने बनाये हैं।"

कनक ने हँसकर उत्तर दिया :—"हाँ, आपका यह अनुमान सत्य है। मैंने उसमें हाथ नहीं लगाया।"

देवकीनन्दन ने हँसकर कहा :—"अब तो कनक, मुझे एक और स्नेहशीला बहन तुम्हारी कृपा से सहज ही प्राप्त हो गई।"

फिर पास ही संकोच की प्रतिमा बनी हुई उर्मिला से कहा :—"उर्मिला अब तुमको अपने भाई के भोजन का भार ग्रहण करना होगा। सचमुच स्नेह से परिपक्व भोजन में जो तुष्टि प्राप्त होती है, वह कहीं नहीं प्राप्त होती।"

उर्मिला का मुख उत्तर देने के लिए नहीं खुला। प्रशंसा उसका कण्ठ अव-रुद्ध किये हुए थी।

कनक ने उत्तर दिया :—"आपके और इनके विचारों में सादृश्य भी है। ईश्वर पर इनका अगाध विश्वास है, और आपकी इनसे खूब पटेगी।"

इसी समय एक नौकर ने आकर कहा :—'भगवतीप्रसाद जी आए हैं, वे दर्शन करना चाहते हैं।"

देवकीनन्दन ने पूछा :—"ये भगवतीप्रसाद कौन हैं ?"

कनक ने नौकर से कहा :—"कमरा खोल दो और बैठाओ। कह दो, अभी भोजन कर रही हैं।"

फिर देवकीनन्दन को उत्तर में कहा :—"ये मज़दूर-सभा के मंत्री हैं, किसी कार्य से आए होंगे।"

देवकीनन्दन ने हँसते हुए कहा :—"अब तो तुम नेता हो गईं, कनक। सार्वजनिक कार्यों में तुमको बहुत व्यस्त रहना पड़ता होगा।"

उर्मिला ने कहा :—"सार्वजनिक सेवा फूलों की शैया नहीं है भाई साहब। कनक बहन को तो कभी-कभी एक मिनट का भी अवकाश नहीं मिलता।"

देवकीनन्दन ने आनन्द अनुभव करते हुए कहा :—"सेवा ही तो मानवता का लक्षण है। संसार के इतर प्राणियों से यही विशेष गुण उसे मनुष्य की श्रेणी में विभक्त करता है। अप्रत्यक्ष रूप से यद्यपि अन्य प्राणी भी सेवा करते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से केवल मनुष्य ही अपनी जाति की सेवा करता है। सेवा का भाव मानव-मस्तिष्क की एक विशेष क्रिया है, जिसका विकास अन्य प्राणियों में नहीं हुआ। दूसरे जीवों के मस्तिष्क में यह स्नायु नहीं है जो सेवा के लिए मानव

को उन्नत करता है ।"

उर्मिला ने कहा :—"यदि यह भावना अन्य जीवधारियों में नहीं है, तो फिर अपनी सन्तान के प्रति उनका सेवा-भाव क्यों होता है ।"

देवकीनन्दन ने उत्तर दिया :—"वह सेवा-भाव नहीं है । वह प्रकृति की वह योजना है जिसके द्वारा वह सन्तान का, जो निःसहाय दशा में पोषण चाहता है, पालन करती है । इसका प्रमाण यह है कि गाय अपने बच्चे के अतिरिक्त अन्य किसी बच्चे को दूध नहीं पिलायगी । शुद्ध परोपकार की भावना केवल मनुष्य में ही पाई जाती है ।"

कनक ने भोजन समाप्त करते हुए कहा :—"बहस करने का मर्ज यद्यपि उर्मिला बहन में नहीं था, किन्तु आजकल इनकी प्रगति इस दिशा में हो रही है।"

देवकीनन्दन ने तुरन्त उत्तर दिया :—"यह तुम्हारे सहवास का फल है । जब दो मनुष्य सम्पर्क में आते हैं, तब अवश्य ही उनमें आदान-प्रदान होता है । आदान-प्रदान प्रकृति का सर्वव्यापी नियम है । यहाँ तक कि हम प्रकृति की उन वस्तुओं से अप्रत्यक्ष आदान-प्रदान करते हैं, जिनमें जीव तथा प्राण दूसरे रूप में होता है, जैसे वृक्ष इत्यादि । वृक्षों के संसर्ग से हम उन्हें कुछ पोषक तत्त्व देते हैं, और विनिमय में वे कुछ हमको पोषक तत्त्व देते हैं । यही नहीं कि शारीरिक अथवा पार्थिव वस्तुओं में आदान-प्रदान होता है, बल्कि वैद्युतिक तरंगों द्वारा सारे ब्रह्माण्ड से हमारा अदान-प्रदान हुआ करता है, उनमें से कितनी ही धन और ऋण होने के कारण कट जाती हैं, और उनमें जो अनुकूल होती हैं, उनका प्रभाव हम पर पड़ा करता है, जिनको मस्तिष्क ग्रहण कर विचार की सृष्टि करता है । वास्तव में हमारा मस्तिष्क रेडियो की भाँति ब्रह्माण्ड की वैद्युतिक तरंगों को ग्रहण किया करता है, और जैसे रेडियो में जिस शक्ति के बाल्व अथवा नलियाँ होंगी वैसी ही ध्वनि ग्रहण करने में वे समर्थ होते हैं, उसी भाँति हमारे मस्तिष्क में जिन विचारों, भावों, इच्छाओं के ग्रहण करने की शक्ति होती है, वैसे ही भाव-कुभाव वे ब्रह्माण्ड में व्याप्त वैद्युतिक तरंगों से ग्रहण करते हैं । इस क्रिया का भाव मौन अवस्था में अधिक होता है, क्योंकि वाक्शक्ति मस्तिष्क के ग्रहण कार्य में बाधक होती है, इसीलिए चिन्तन का प्रथम लक्षण मौन है, और हमारे शास्त्रों में 'मौन व्रत' का महत्त्व उत्कृष्ट माना है । बोलते हुए हम सोचने में सदैव असमर्थ रहते हैं । जब हम बोलते हैं तब मस्तिष्क प्रदान का कार्य प्रत्यक्ष रूप से करता है, उस समय आदान अथवा ग्रहण करने की क्रिया विश्राम करती है ।"

इसी समय नौकर ने आकर कहा :—"रमाकान्त जी भी आये हैं ।"

कनक ने कहा :—"चलो भाई, बाहर चलें, मैं आपसे सहमत नहीं हूँ, इस विषय पर हम लोग फिर बात करेंगे । उर्मिला तुम भी आओ ।"

कनक को देखकर उन आगन्तुक व्यक्तियों ने अभ्यर्थना की। कनक ने देवकीनन्दन से उनका परिचय कराने के बाद पूछा :—"कहिये, भगवतीप्रसाद जी आपने कैसे कष्ट किया।"

भगवतीप्रसाद ने उत्तर दिया :—"कचहरी में जो उस दिन गोली-काण्ड हुआ था, उसमें तीन सौ मजदूर मारे गए हैं, क्योंकि उनका कोई पता नहीं मिलता। उसी के विरोध में मजदूर सार्वजनिक-सभा करना चाहते हैं, यद्यपि सरकार ने पूँजीपतियों के कहने से दफा १४४ लगा दी है, परन्तु मजदूर इस समय किसी प्रकार नहीं रोके रुकते। वे सब मरने के लिए उतावले हो रहे हैं।"

कनक ने व्यथित होकर कहा :—"भाई साहब देखिये, मानवों को इस प्रकार कुछ मनुष्यों की स्वार्थ की वेदी पर बलि चढ़ाया जा रहा है। अकारण तीन सौ मनुष्यों का रक्त-पात हुआ सरकार तो पूँजीपतियों की खिलौना हो रही है। इस समय हमें क्या करना चाहिए, भाई साहब ?"

देवकीनन्दन ने सोचते हुए कहा :—"परिस्थिति भयंकर अवश्य है, किन्तु हमको उतावलेपन से काम नहीं करना चाहिए। सभा करने से अभागे मजदूरों के प्राण फिर जायंगे। इसलिए सभा स्थगित कर दी जाय।"

कनक ने अनुमोदन करते हुए कहा :—"यही मेरा भी मत है। इस समय विरोध-प्रदर्शन से सिवाय जीवन-हानि के अन्य कोई लाभ नहीं।"

भगवतीप्रसाद :—"किन्तु मजदूर किसी भाँति नहीं मानते। मैंने बहुत चेष्टा की किन्तु जब हार गया तो आपके समीप आया हूँ, कि आप परिस्थिति को सँभालें। मजदूर वर्ग की श्रद्धा आप पर बहुत है, यदि आप इन्हें समझायंगी तो शायद स्वीकार कर ले, नहीं तो आज सभा अवश्य होगी, और शांति-भंग होने की संभावना है।"

रमाकान्त जो नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, बोले :—"अधिकारी तो यही चाहते हैं कि उन्हें कोई बहाना मिले, और वे हजार दो हजार को भून दें, फिर आन्दोलन अपने-आप बन्द हो जायगा।"

देवकीनन्दन :—"मेरा तो यह विचार है कि विरोध-प्रदर्शन किसी ऐसे मार्ग द्वारा किया जाय, जिसका प्रभाव पूँजीपतियों पर पड़े। पूँजीपति तो सरकार और मजदूरों को लड़ाकर तमाशा देखना चाहते हैं। हमारी लड़ाई तो पूँजीपतियों से है, अतएव उनको हानि पहुँचे, ऐसा कार्य हमको करना चाहिए।"

भगवतीप्रसाद :—"आपका कथन सत्य है, सरकार तो उसी समय हस्तक्षेप करती है, जब पूँजीपतियों से संकेत मिलता है।"

देवकीनन्दन :—"हड़ताल क्यों नहीं करते हड़ताल का असर पहले

पूँजीपतियों पर पड़ेगा, और इससे शांति भी भंग न होगी।"

भगवतीप्रसाद :—"हड़ताल का पहला असर मजदूर पर पड़ा करता है, क्योंकि पेट की भूख उन्हें बहुत जल्द हार मनवा देती है। इसके अतिरिक्त हड़ताल करने को जब कहा जाता है तो उनमें से कितने ही काम पर से किसी प्रकार नहीं रुकते। हड़ताल का असर तभी हो जब वह व्यापक हो। किसी भी मिल में एक भी मजदूर काम पर न जाय तब काम सध सकता है।"

देवकीनन्दन:—"वैसा ही प्रबन्ध कीजिये।"

भगवतीप्रसाद :—"किन्तु इसका प्रबन्ध तब हो, जब हमारे पास पर्याप्त कोष हो। मजदूरों के कोष आपको सदैव रिक्त मिलेंगे।"

देवकीनन्दन :—"यदि केवल कोष की कमी है, लगन की नहीं, तो कोष को मैं पूर्ण करूँगा। अपनी शक्ति-भर उसको भरा ही रखने की चेष्टा करूँगा।"

सबके नेत्र उनकी ओर उठ गए। भगवतीप्रसाद और रमाकान्त के नेत्र चमक उठे। कनक का मस्तक भाई के गर्व से ऊँचा हो गया।

भगवतीप्रसाद :—"यदि आप हमारी सहायता करें, तो फिर मजदूर पूँजीपतियों और उनकी सरकार दोनों को हरा सकते हैं। उनमें लगन की कमी नहीं है, वे अपने अधिकारों के लिए मरना जानते हैं, किन्तु पैसे की कमी से उनके सारे मनसूबे केवल मनसूबे ही रह जाते हैं।"

देवकीनन्दन :—"बल-प्रदर्शन के अवसर पर बल कार्य करता है। कूटनीतिज्ञों से लड़ने के लिए कूटनीति की आवश्यकता होती है। पूँजी मनुष्य को चाहे और कुछ न बनाय किन्तु कूटनीतिज्ञ अवश्य बना देती है। ब्रिटेन आज दिन कूटनीतिज्ञता में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता, यह केवल इसलिए कि वह महान् पूँजीपति है। इस क्षेत्र में ब्रिटेन को यदि किसी से भय है तो केवल अमेरिका से है, क्योंकि पूँजी में वह उससे आगे जा रहा है, और इस युद्ध के पश्चात् शायद अमेरिका महान् कूटनीतिज्ञ होगा।"

भगवतीप्रसाद :—"मजदूरों को अब विश्वास हो जायगा कि हड़ताल सफल हो सकती है, किन्तु अकेले मेरे उद्योग से यह कार्य न हो सकेगा। आपको या कनक जी को कार्यकारिणी-समिति में चलने का कष्ट करना पड़ेगा।"

देवकीनन्दन ने कनक की ओर देखा। कनक ने कहा :—"भाई साहब को रहने दीजिये, मैं चलूँगी। सार्वजनिक सभा से प्रदर्शन-मात्र होगा, ठोस काम कुछ नहीं हो सकता। किन्तु हड़ताल से प्रदर्शन के साथ ही आघात भी होगा। वैध उपायों से ही हमें कार्य करना चाहिए।"

रमाकान्त :—"बेशक, इसलिए कांग्रेस भी अहिंसा-सिद्धांत को अपनाये है, यद्यपि इस पर कितनों का विश्वास नहीं है कि इसके द्वारा हमें स्वराज्य

मिलेगा। सिद्धांतत: हम किसी बात पर विश्वास न भी करें, किन्तु नीति के आधार पर उसको मानना सदैव उचित है, क्योंकि·······।"

कनक ने बात काटकर कहा:—"नहीं, यही मेरा मतभेद है। नीति हमें वही ग्रहण करनी चाहिए जिस पर हमारा विश्वास है, तभी उसमें बल आयगा। नीति केवल नीति के रूप में निर्जीव है। विश्वास ही मर मिटने के लिए उत्साहित करता है, नहीं तो आघात के साथ ही नीति वायु में बिखर जाती है।"

देवकीनन्दन ने प्रसन्न होकर कहा:—"शाबाश कनक, बिलकुल ठीक है। सिद्धांत और नीति में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। जिस सिद्धांत पर विश्वास हो वही नीति अवलम्बन करनी चाहिए, तभी सफलता मिलेगी। यदि हड़ताल को केवल नीति समझकर व्यवहार में लाया जायगा, तो वह हड़ताल अवश्य ही अधबिच में टूट जायगी, यदि सिद्धांत मानकर विश्वास किया जायगा, तब अवश्य ही सफलता मिलेगी। अहर्निशि मनोयोग का दूसरा नाम सफलता है।"

भगवतीप्रसाद ने घड़ी देखते हुए कहा:—"अब समय हो गया है, चलिये। वहाँ सब लोग प्रतीक्षा करते होंगे।"

कनक वस्त्र बदलने के लिए चली गई।

५

मजदूरों का उत्तेजित दल कनक की प्रतीक्षा कर रहा था। उनके मन में विद्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित थी। वे मरने और मारने के लिए तैयार थे। दफा १४४ लगी हुई थी, किन्तु वे उससे किंचित् भी भयभीत नहीं थे। जुलूस निकालकर सभा करने की वे सारी योजना बना चुके थे। मृत मजदूरों का खून उन्हें शहीद हो जाने के लिए चुनौती दे रहा था।

'वीनस मिल' के मजदूरों के नेता बदलू ने उत्तेजित स्वर में कहा:—"भाइयो, शाम हो रही है, जुलूस निकालने का समय बीता जा रहा है। हमारे नेता भय से अपना मुँह छिपा रहे हैं।"

'कान्ती मिल' के मजदूरों के नेता ठाकुरी ने कहा:—"ठीक कहते हो बदलू। इस समय चन्दा वसूल करके जेबें नहीं भरनी हैं, गोलियों से छाती की जेबें भरनी हैं। मरने के लिए वही आगे आयंगे जिनमें लगन है, और सच बात तो यह है कि किराये के आदमी कहीं संग्राम नहीं लड़ते।"

बदलू ने झूमकर कहा:—"सोलह आना पाव रत्ती ठीक है। अब तो मन में यही है कि 'दुई घटा तक चले सिरोही, नदियाँ बहे रकत की धार'।"

दूसरे एक नेता अर्जुन ने उछल कर कहा:—"तलवार हमारी नैया है, जो करिहै हमका वहि पार।"

'विक्रम मिल' के मजदूरों के नेता शिवचरण ने उठकर कहा :—"भाइयो, हमको उतावला नहीं होना चाहिए, और न यह समय ऐसा है कि हम बिना विचारे हुए एक कदम भी आगे उठायें। कदम उठना बहुत सरल है, किन्तु पीछे लौटना असम्भव होता है, और यदि पीछे ही लौटने को कदम उठाया जाता है तो वह निरर्थक होता है, यह समय हमारी परीक्षा का है। परीक्षा के प्रश्नों को बहुत सोच-विचारकर हल करना होता है, मनमाने उत्तर लिखने से विद्यार्थी असफल होता है।"

ठाकुरदीन या ठकुरी ने चिल्लाकर कहा :—"यह भी रँगा सियार है, हमको जो कायर बनाय वह हमारा दुश्मन है।"

अर्जुन ने तीव्रता के साथ कहा :—"अरे यह सी. आई. डी. का काम करता है। भाइयो, मैंने इसको कल एक सिपाही से बातें करते देखा था। इसकी बातों पर विश्वास मत करना।"

ठकुरी ने शिवचरण का गला पकड़ते हुए कहा :—"तू जयचन्द है। हम पहले जयचन्दों को तलवार के घाट उतारते हैं।"

शिवचरण के साथी यूसुफ ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा :—"खबरदार जरा से आपेबाहर न हो ठकुरी। आपस में फूट डालना ठीक नहीं है। लड़ाई के मौके पर मेल-मिलाप बढ़ाया जाता है, या आपस में लड़कर अपनी ताकत को बरबाद किया जाता है।"

कई दूसरे मजदूरों ने चिल्लाकर कहा :—"शांति से काम लो। पहले सुनो कि कोई कहता क्या है। हमें अर्जुन की बात पर विश्वास नहीं होता कि शिवचरण सी. आई. डी. है। हम लोग उसको अच्छी तरह जानते हैं।"

जनमत को अपने विरुद्ध देखकर ठकुरी और अर्जुन को चुप हो जाना पड़ा।

शिवचरण कहने लगा :—"अर्जुन भाई मुझे सी. आई. डी. बतलाते हैं, यह उनका भ्रम है। मैं अवश्य कल एक सिपाही से बातें कर रहा था, जो हमारे गाँव का रहने वाला है, और उससे घरेलू बातें कर रहा था। उसने बातों ही-बातों में यह कहा था कि लैन-अफसर के पास हुक्म आ गया है कि पाँच सौ हथियारबन्द सिपाही हर समय लैन में हाजिर रखे जायँ, क्योंकि मजदूर बलवा करने को तैयार हो रहे हैं। यह समाचार हमारे काम का है। सरकार हमारे आन्दोलन को कुचल देने के लिए तैयार है, ऐसी हालत में हमको भी सोच-समझकर काम करना चाहिए। जो हमसे अधिक ज्ञानवान है उनसे भी सलाह लेनी चाहिए।"

अर्जुन ने कहा :—"देखा आप लोगों ने, शिवचरण सिपाही से बातें करना मञ्जूर करते हैं, और बात वह बतलाते हैं जिसको हम लोग सब जानते

हैं। यह कौन नहीं जानता कि सरकार हमारे ऊपर गोलियाँ चलाने का बहाना ढूँढ़ रही है। मैंने भी दुनिया देखी है; मैं ठीक कहता हूँ कि शिवचरण सरकार से मिल गया है।"

शिवचरण ने उत्तेजित स्वर में कहा :—"बिलकुल झूठ है। अपने गाँव के आदमी से कौन बातें नहीं करता चाहे वह फौज में हो और चाहे पुलिस में।"

ठकुरी ने व्यंग्य पूर्ण स्वर में कहा :—'पुलिस वाले तुम्हारे रिश्तेदार हैं, तभी इतना मोटे हो रहे हो, क्योंकि हराम की कमाई में तुमको भी हिस्सा मिलता है।"

शिवचरण ने अपने क्रोध को दबाते हुए कहा :—"निराधार बातों से ही बिगाड़ पैदा होता है।"

अर्जुन ने तड़प कर कहा :—"हो जाने दो बिगाड़, हम उसके लिए तैयार हैं। पहले बिगाड़ हो जाने से अन्त में तो बिगाड़ नहीं होता।"

यह कहते हुए उसने फिर शिवचरण का गला पकड़ लिया। यूसुफ आदि शिवचरण के मित्रों ने बीच-बिचाव करना आरम्भ किया। आपस में ही गाली-गलौज शुरू हो गई। इतना शोर-गुल होने लगा कि किसी की बात सुनना या समझना कठिन हो रहा था। इसी समय भगवतीप्रसाद के साथ कनक वहाँ आई। उसको देखते ही जो जहाँ था वहीं स्थिर रह गया। कण्ठ का स्वर कण्ठ में रह गया। जैसे विद्यार्थी गुरु को देखकर भय से शांत हो जाते हैं, उसी प्रकार मजदूर भी चुप हो गए।

भगवतीप्रसाद ने तीव्र स्वर में कहा :—"इतना शोर क्यों मचा रहे थे तुम लोग। इसी के बूते पर पूँजीपतियों तथा सरकार से लड़ने का दम भरते हो।"

अर्जुन ने जोश के साथ कहा :—"हम अपने बीच में सी. आई. डी. नहीं चाहते।"

भगवतीप्रसाद ने चकित होकर पूछा :—"हमारे इन चुने हुए व्यक्तियों में कौन सी. आई. डी. है।"

अर्जुन ने क्रोधाभिभूत होकर शिवचरण की ओर देखते हुए :—"शिवचरण है, और दूसरा कौन है। 'निठुर चलनि अरु मधुरी बानी—दगाबाज की यही निशानी'।"

भगवतीप्रसाद ने चकित होकर कहा :—"क्या कहा, शिवचरण सी. आई. डी. असम्भव। मैं इस पर कभी विश्वास नहीं कर सकता। इस जैसा समझदार नेता तुम लोगों को मिलना असम्भव है।"

ठकुरी ने अर्जुन का समर्थन करते हुए कहा :—"यह उसके सी. आई. डी. होने का दूसरा प्रमाण है। पहले वह इतना विश्वास जमा लेते हैं कि किसी को उन पर सन्देह करने का अवसर नहीं मिलता। अर्जुन ने इसको एक सिपाही से बातें करते हुए कल देखा है जिसको वह स्वयं स्वीकार करता है। जब पकड़े गए तो बात बनाते हैं कि वह सिपाही इनके गाँव का था, और उसने खबर दी है कि पुलिस-लैन में हर समय पाँच सौ हथियारबन्द सिपाहियों के हाजिर रहने का हुक्म आया है। भला आप ही बताइए कि यह कौन-सी नई बात है। क्या हम नहीं जानते कि सरकार हमें कुचल देने की तैयारी कर रही है। जब दो दल लड़ते हैं, तब हर एक दल अपनी-अपनी तैयारी करता ही है।"

शिवचरण ने उत्तर दिया :—"जो सत्य बात थी वह मैंने बता दी। मैं अब भी कहता हूँ कि मैं अपने गाँव के एक आदमी से जो पुलिस में नौकर है, बातें कर रहा था, और उसने बातों-ही-बातों में यह खबर दी थी। अगर मेरी बात पर विश्वास नहीं होता, तो मेरी गैरहाजिरी में उससे पूछ लिया जाय।"

अर्जुन :—"वह भला क्यों बतायगा। वह तुम्हारे जरिये हमारी बातें सरकार तक पहुँचाता है, और जो इनाम मिलता है, वह तुम दोनों बाँटकर खाते हो। तुम्हारा साझीदार तो तुम्हारे जैसी कहेगा ही, इसमें पूछ-ताछ करने से क्या हासिल होगा।"

ठकुरी :—"कहा भी तो है कि 'चोर-चोर मौसियारा भाई।' हमें शिवचरण पर विश्वास नहीं है। हम इसको अपनी सभा में भी नहीं चाहते।"

शिवचरण ने उठ कर कहा :—"जब सभा के कुछ व्यक्तियों का विश्वास मेरे ऊपर नहीं है, तब मेरा यहाँ रहना निरर्थक है।"

भगवतीप्रसाद ने शिवचरण को पकड़ते हुए कहा :—"शिवचरण ठहरो, तुम नहीं जा सकते। यह कोई अपने घर का मामला नहीं है। यह एक वर्ग के संगठन का मामला है, और जब तक कोई अकाट्य प्रमाण न हो, कोई किसी को दोषी नहीं ठहरा सकता। तुम लोगों का प्रधान होने के नाते मुझे सारा मामला सुनने का अधिकार है, और अर्जुन को प्रमाण देना पड़ेगा, नहीं तो सभा की ओर से उसे दण्ड दिया जायगा।"

अर्जुन ने कहा :—"जाने भी दीजिए। अगर सच्ची बात न होती तो यों तिनक कर न भागते।"

भगवतीप्रसाद ने अर्जुन को डाटते हुए कहा :—"अर्जुन, तुम्हारा व्यवहार सन्तोषजनक नहीं है, और न प्रमाण ही ऐसा है, जिससे कार्यकारिणी के एक सदस्य के ऊपर अविश्वास करना पड़े। मैं आदेश देता हूँ कि तुम अपने शब्द वपास लो।"

कनक ने स्थिति को समझकर कहा :—"तुम लोगों की शक्ति की कमी का यही कारण है—आपस में फूट। अशिक्षित होने के कारण सहनशीलता का तुममें अभाव है। तुम लोग मरना जानते हो, साहस का तुममें अभाव नहीं है, किन्तु अनुशासन की बड़ी कमी है। क्या कभी सोचा है कि फौज में इतनी बड़ी शक्ति क्यों होती है, हालाँकि तुम्हारी ही भाँति वे भी मनुष्य हैं। उनकी शक्ति का कारण है एक सूत्र में अनुशासन द्वारा बद्ध होना। आपस में वे लड़ते नहीं, अनुशासन कभी भंग नहीं करते। यदि उनको किसी विशेष व्यक्ति के सम्बंध में कोई विशेष बात मालूम हुई है, तो वे उसका निर्णय स्वतः नहीं करते, बल्कि अपने अफसर से कराते हैं, और अफसर उसकी जाँच करता है। आप लोग एक महान् कार्य के लिए तैयार हो रहे हैं, जिसमें अनुशासन की बड़ी आवश्यकता है। यदि अनुशासन भंग हो जायगा तो फिर आपको सफलता मिलना तो दूर, वास्तव में सदा के लिए कुचल दिया जायगा। आपको मालूम नहीं है कि आपकी विरोधी शक्तियाँ कितनी प्रबल हैं। उनका मुकाबला आप लोग केवल अनुशासित होकर ही कर सकते हैं। एक दूसरे के प्रति अविश्वास न कीजिए। हाँ यदि आपको किसी पर अविश्वास करने का कारण मिलता है, तो पहले उसको स्वयं निश्चय कीजिए, बाद में अपने किसी मुखिया से कहिए।"

शिवचरण :—"मेरे ऊपर अविश्वास का कारण यही है कि मैं इन लोगों से कह रहा था कि हम लोगों को बहुत सोच-समझकर कदम उठाना चाहिए। कदम उठाना सहल है; पीछे हटाना असम्भव है। इन लोगों का कहना था कि जी खोलकर दो-दो हाथ कर लेने चाहिएं। चूँकि मेरा कथन इनके मत के विरुद्ध था, उन्होंने मुझको सी. आई. डी. बता दिया।"

ठकुरी :—"हाँ, इतनी ही बात है। युद्ध छोड़कर पीछे हटना कायरता है। हमारी संख्या एक लाख के ऊपर है। हम मिल-मालिकों और उनके हिमायतियों को भून डालेंगे, हर एक मिल में आग लगा देंगे, और सब नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगे, यही तो होगा कि हमारे चार-पाँच हजार आदमी मर जायंगे। रूस में क्या हुआ था।"

कनक ने हँसकर कहा :—"रूस में जो हुआ हम उसकी पुनरावृत्ति अपने देश में नहीं चाहते। रक्त-पात की नींव पर खड़ी की हुई कोई व्यवस्था शांतिप्रद नहीं होती। हमको तो अपने अधिकारों को प्राप्त करना है। हम अपना खून बहायंगे, लेकिन दूसरों का नहीं। हिंसा के द्वारा जो शक्ति प्राप्त होती है, वह अस्थायी होती है, क्योंकि हिंसा स्वयं क्षणिक उत्तेजना द्वारा प्राप्त होती है। हमारे अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक सरल किन्तु अमोघ शस्त्र हमारे पास है—वह है हड़ताल। किन्तु उसमें सफलता तभी मिलेगी जब आप में अनुशासन

होगा। सब एक मत, एक विचार के हों। चाहे जितनी उत्तेजना आपको दी जाय, आप उत्तेजित न होइये। सदैव शांत रहिये। केवल उस समय तक काम न कीजिये, जब तक आपकी माँगें पूरी नहीं होतीं।"

शिवचरण :—"यही मैं भी कह रहा था, श्रीमती जी ! यद्यपि हमारा कोष करीब-करीब खाली है, उससे बहुत कम लोगों की सहायता की जा सकती है, किन्तु यदि हम सब एक दूसरे की सहायता करने के लिए कटिबद्ध हो जायं तो फिर हम अवश्य ही सफलता प्राप्त कर सकेंगे।"

कनक :—"तुम्हारा विचार उत्तम है। पहले कुछ देर तक अवश्य ही कोष खाली था, किन्तु अब खाली नहीं है। उसमें पर्याप्त धन आगया है। किन्तु उस कोष से उन्हीं लोगों की सहायता की जायगी, जिनको वास्तव में आवश्यकता है। इसके पेश्तर कि मैं आप लोगों को हड़ताल करने में सहायता दूँ, आपको यह बता देना उचित समझती हूँ कि आप लोगों को मादक वस्तुओं का बहिष्कार करना पड़ेगा। नशा आदमी को इंसान से हैवान बनाता है। जब तक नशाखोरी बन्द न होगी, तब तक आपका कोई भी काम सफल नहीं होगा। नशे की अवस्था में मनुष्य को उत्तेजित कर देना बहुत सरल है, क्योंकि उसकी बुद्धि भ्रमित होती है। इसके विपरीत पूँजीपति आपको नशे का आदी बनाकर आपको अपना गुलाम बनाए रखना चाहते हैं। जब तक आप नशा त्याग नहीं करेंगे तब तक पूँजीपति आपको अपना गुलाम बनाये रहेंगे। इसलिए हड़ताल शुरू करने की पहली शर्त है नशाखोरी को बन्द करना।"

मजदूरों के नेताओं ने उठकर कहा :—"हम अपने बीच से नशीली वस्तुओं को निकाल कर बाहर करेंगे। जो नशा करेगा हम उसका सामाजिक बहिष्कार करेंगे। सामाजिक बहिष्कार बड़ों-बड़ों को सीधा कर देता है। आपका यह कहना बिलकुल सच है कि नशा करने के बाद इंसान हैवान हो जाता है।"

कनक :—"यदि आप लोगों में कुछ थोड़े ही सच्ची लगन के आदमी यह भार उठा लें, तो नशाखोरी बहुत जल्द बन्द हो सकती है। नशीली वस्तुओं के लिए जो रकम खर्च की जा रही है, उसे आप अपने कोष में दीजिये। आपके कोष में जितना धन होगा, उतनी ही शक्ति आपकी बढ़ेगी। विरोधी शक्तियों से लड़ने के लिए आपके पैर मजबूत होंगे। आप लोगों की आमदनी का एक बहुत बड़ा भाग मादक वस्तुओं के व्यय करने में होता है। हमारी सरकार विदेशी है, उसके दूत मजदूरों को नशा पीने का आदी बनाते हैं, इसलिए कि जिससे ये सदैव दरिद्र, परमुखापेक्षी और विचार तथा क्रिया-शक्ति से पंगु बने रहें। बोलिये इसका व्यवहार बन्द करेंगे।"

मजदूरों ने उठकर एक स्वर में कहा :—"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम

नशीली वस्तुओं का सम्पूर्ण रूप से बहिष्कार करेंगे ।"

कनक :—"तब तो आपकी हड़ताल अवश्य सफल होगी। प्रदर्शन इत्यादि के फेर में न पड़िए। प्रदर्शन कीजिये कार्य द्वारा। काम की सफलता लगन में है; पहले आप अपनी माँगों का एक मसविदा बनाइये। फिर मिल-मालिकों के सामने उन माँगों को पेश कीजिये, उनके पूर्ण होने की एक अवधि दीजिये। इस अवधि में वे यदि आपकी माँगें स्वीकार कर लेते हैं, तब तो झगड़ा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, और यदि वे उनको पूरी नहीं करते, तब आप हड़ताल कीजिये, किन्तु वह हड़ताल व्यापक होनी चाहिए, इतनी व्यापक कि एक मजदूर भी काम पर न जाय। मिलों के ताले लटके रहें, खोले न जायं। इस बीच में आप सम्पूर्ण रूप से शांत रहें। मुझे विश्वास है मिल-मालिकों को आपके सामने घुटने टेकने ही पड़ेंगे। इस बीच के समय में आप नशाखोरी बन्द करने का प्रयत्न करें। जुलूस निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यर्थ में अमूल्य जीवन नष्ट करने की मैं सलाह नहीं देती।"

मजदूरों के नेताओं ने एक स्वर से कहा :—"हम आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करेंगे, केवल आप हमें रास्ता दिखाती रहें। आप हमारे लिए साक्षात् माता भगवती होकर अवतीर्ण हुई हैं।"

मजदूरों ने एक स्वर से कनक की जयकार की, जो आकाश में व्याप्त होकर मिल-मालिकों को चुनौती देने लगी।

६

प्रहरी बजरंगसिंह और रामनाथ में कुछ घनिष्ठता हो गई थी, वैसी जैसी दो प्राणियों के एक साथ रहने में हो जाया करती है। आदान और प्रदान का चक्र इस ब्रह्माण्ड में अनवरत चला करता है और जब दो जीव एक दूसरे के सन्निकट रहने लगते हैं, तो उनमें आदान-प्रदान की क्रिया कुछ प्रखर और स्पष्ट होने लगती है। दया, ममत्व, मोह, प्रेम आदि आदि सब इसी क्रिया से उत्पन्न होते हैं। जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने से हीन समझता है तो दया उत्पन्न होती है, और निरंतर दया का भाव ममत्व को जन्म देता है, जो कालांतर में मोह का कारण हो जाता है और वही अन्त में सौहार्द्र और प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। प्रेम आदि उत्पन्न होने के और भी कई कारण होते हैं, किन्तु उनमें से एक यह भी है।

बजरंगसिंह और रामनाथ अक्सर बातें किया करते थे। रामनाथ अपने जीवन की अतीत घटनाएं सुनता और वह उन्हें सुनकर कभी विचार करता, कभी अपना मन्तव्य प्रकट करता, और कभी करुणा से अभिभूत होकर रोने लगता। मानव मस्तिष्क में सभी भावों के ग्रहण करने की अलग-अलग धमनियाँ

हैं। चेतनता का आगार हृदय है, जो रक्त-संचालन द्वारा चेतनता प्रसारित करता है। भाव-कुभाव की वैद्युतिक तरंगें पहले मस्तिष्क पर आघात करती हैं। जिस भाव की वैद्युतिक तरंग होती है, वह उसी भाव के स्नायु में गति उत्पन्न करती है, और वह हृदय को जाकर आदेश प्रदान करती है। उस समय रक्त का संचालन अधिक रूप से उस विशेष स्नायु में होने लगता है, तब बल पाकर वह तन्तु इतनी अधिक गति उत्पन्न करती है कि वह मनुष्य के अवयवों द्वारा प्रकट होने लगता है। रामनाथ की करुणा भरी कहानी बजरंग को रुलाती अधिक थी, किन्तु फिर भी वह उसके पास जाने के लिए सदैव आकुल रहता था। जब बजरंग का पहरा बदलकर दूसरे प्रहरी का आता, तब वह अत्यंत अनमने भाव से अपना चार्ज देता, और जाते समय कहता:—"कैदी, अब दूसरे दिन आऊँगा।" वह चला जाता, और रामनाथ दूसरे प्रहरी से बातें करता। किन्तु वे इतने प्रभावित नहीं होते थे, जितना बजरंगसिंह हुआ था, क्योंकि वह भी संसार का एक सताया हुआ व्यक्ति था। उसके मस्तिष्क के दुःख की धमनियाँ जाग्रत और चेतन अवस्था में थीं, अतएव रामनाथ की करुणा-कहानी उसकी धमनियों को विशेष रूप से स्पंदित करती, जिससे हृदय बार-बार उद्वेलित होता, और वही उसके ममत्व का कारण बन रहा था।

जिस दिन रामनाथ को फाँसी की आज्ञा सुनाई गई, उस दिन प्रहरी बिलख-बिलख कर रोया। रामनाथ स्थिर था—उसके लिए वह कोई नवीन घटना नहीं थी। इस दण्ड की वह पहले से ही कल्पना कर रहा था, और वह इसके लिए एक प्रकार से तैयार भी था।

रामनाथ उसको रोते देखकर कुछ दुखी हुआ। जिस समय उसे हुक्म सुनाया गया था, उस समय उसके हृदय में आघात अवश्य लगा। किन्तु उसके बाद वह अपनी साधारण स्थिति में आगया था। जब उसने प्रहरी को रोते देखा तब उसका दुःख जाग पड़ा, और उस समय उसे अपने दण्ड की गुरुता का अनुभव हुआ। फाँसी के यथार्थ रूप का ज्ञान उस समय हुआ। प्रहरी का रुदन उसके दण्ड फाँसी की व्याख्या थी। उनके मन में उस समय प्रतीत हुआ कि फाँसी का अर्थ है—संसार-विच्छेद, और उसकी उर्मिला से चिर-विच्छेद।

विरह से अधिक विरह की कल्पना दुखदायी होती है। यद्यपि रामनाथ का वर्तमान जीवन विरह-पूर्ण था, किन्तु उसमें मिलन की आशा होने से वह सह्य हो गया था। फाँसी तो चिर-विच्छेद का कारण बन रही थी, इसीलिए उसकी कल्पना अधिक दुखदायी प्रतीत हुई।

रामनाथ की आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने पूछा:—"प्रहरी, तुम क्यों रोते हो? यह कोठरी तो उन्हीं कैदियों के लिए है जिन्हें फाँसी का दण्ड मिलता है।

मेरे पहले भी कितने व्यक्तियों को फाँसी मिली होगी, और वे सब इसके मेहमान हुए होंगे। उनके समय में भी तुम पहरा देते होगे। क्या तुम सदैव इसी भाँति रोते थे।"

वज्ररंगसिंह ने आँसू पोंछते हुए कहा :—"दुःख तो सदैव होता था, किन्तु न मालूम क्यों जितना इस बार हुआ है उतना कभी नहीं हुआ था।"

"इसका कारण?" रामनाथ ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं क्यों इतना कातर होता हूँ। इसका कारण शायद यह है कि तुम निरपराध होकर फाँसी पर लटकाए जा रहे हो।"

"लेकिन मैंने एक आदमी का खून तो किया है?"

"हाँ, उसी प्रकार जैसे युद्ध-क्षेत्र में एक सैनिक आक्रमणकारी का वध करता है। इस वामनदास को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यहाँ पर नौकर होने के पहले मैं उसके पास नौकर था। सेठ वामनदास तो उतना खराब नहीं था, जितना कि उसका सिकत्तर था। वह हमेशा खुड़पेंच लगाए रहता था, और किसी नौकर को एक साल से अधिक नहीं रखता था। सेठ बिलकुल उसकी मुट्ठी में थे। वह मनचाहा काम करता, उसको रोकने वाला कोई नहीं था। मैंने तीन साल बड़ी मुश्किलों से निकाले, और आखिर एक दिन जान बचाकर भागना ही पड़ा।"

"तो तुम उसकी लड़की को भी जानते होगे, जो आजकल बैरिस्टर है।"

"नाम तो उनका सुना करता था, किन्तु देखा नहीं था, क्योंकि उन दिनों वे विलायत में पढ़ रही थीं। सिकत्तर साहब के मुँह से अगर किसी की तारीफ निकलती थी तो वह मिस साहबा की थी। बाकी हरएक से वह गाली से बातें करता था।"

"इस पर सेठ जी कुछ कहते न थे?"

"सेठ जी को खुद वह गालियाँ दिया करता था। मैंने दो-एक बार छिपकर देखा है कि दरअस्ल सेठ तो नौकर था, और नौकर सेठ था। उसके सामने सेठ जी की वही दशा रहती थी, जो चूहे की बिल्ली के सामने हो, यदि चूहा बाँध दिया जाय और भागने न पावे। हाँ, बाहरी दिखावे में वह जरूर उनका कुछ थोड़ा लिहाज़ रखता था, किन्तु सेठ जी फिर भी उसके नाम से काँपते थे।"

"इसका कारण क्या था।"

"कारण मुझे ज्ञात नहीं। मैं तो दरबान था। कोठी की चौकीदारी करता था। यों तो देखने-सुनने में वामनदास अच्छा आदमी मालूम होता था, मगर था अय्याश, इसमें कोई शक नहीं। उसका हुक्म था कि कोई भी औरत किसी समय आय, उसे रोका न जाय।"

"कितनी औरतें आती थीं?"

"इसकी कोई गिनती न थी, कभी बीसों आतीं, और किसी दिन एक भी न आती। मगर मैंने यह भी देखा था कि सिकत्तर उन सब पर अपनी नज़र रखता था। एक रात की बात है कि जब एक बुरके वाली औरत अन्दर चली

गई तो थोड़ी देर में सिकन्दर आया । पहरे पर मैं था, मुझसे पूछा कि क्या एक बुरके वाली औरत सेठ साहब के पास गई है । मैंने पहले छिपाना चाहा, लेकिन जब वह लाल-पीली आँखें करने लगा, तो यह सोचकर कि कहीं गालियाँ न देने लगे, बता दिया । तब उसने कहा कि आयन्दा से जब वह आय तो उसको रोक लेना, और मुझे इत्तिला देना । बिना मुझे इत्तिला दिये हुए वह हरगिज़ अन्दर न जाने पाय । मैंने कहा कि सेठ जी का हुक्म है कि किसी को न रोका जाय । इस पर सिकन्दर बहुत बिगड़ा, और कहा कि क्या तू अन्धा है, देखता नहीं कि हुक्म मेरा चलता है कि सेठ का । इसके बाद मैंने इस्तीफा दे दिया, और पुलिस में भरती हो गया ।"

"उस दिन कचहरी में पेशी के दिन सुना था कि वामनदास अपनी सारी सम्पत्ति इसी सिकन्दर को दे गया है, और लड़की को एक पैसा नहीं, क्योंकि वह उसकी औरस सन्तान नहीं है ।"

"मैंने यह नहीं सुना, मैं तो जेल के बाहर कहीं आता ही नहीं । अपनी ड्यूटी बजाता हूँ, और फिर क्वार्टर में रहता हूँ । इसका भेद नहीं मालूम । दुनिया तो यही जानती थी कि सेठ के एक लड़की है, और वह विलायत में पढ़ रही है। उसको मैंने कभी देखा नहीं । मेरे रहते वह वापस नहीं आई ।"

"वही लड़की तो मेरे मुकद्दमे की पैरवी कर रही है । बेचारी ने मुझे बचाने की बहुत कोशिश की, मगर नतीजा कुछ नहीं निकला । फाँसी पर झूलना तो मेरे भाग्य में लिखा है, इसको कौन टाल सकता है ।"

फाँसी के प्रश्न ने बिखरी हुई समस्याओं को पुनः समेटना आरम्भ किया। रामनाथ ने एक ठण्डी साँस लेकर कहा :—"मुझे तो अपने लिए कोई दुःख नहीं है, एक तरह से जीवन की हाय-हाय से निष्कृति मिल जायगी। केवल एक क्षण-भर के लिए वेदना है, और फिर चिर शान्ति है । किन्तु मेरी पत्नी का क्या होगा, इसका विचार मुझे रात-दिन सताया करता है ।"

बजरंग ने आकाश की ओर देखकर कहा :—"उसका रक्षक भगवान् है । जिसने उसकी लाज रक्खी है, वही उसकी रक्षा भी करेगा । दुनिया के जब सब साधन खत्म हो जाते हैं, तब भगवान् रक्षा करता है । उसकी इच्छा के विपरीत कुछ नहीं होता और न होगा। मनुष्य अपनी छोटी-सी बुद्धि के द्वारा उस महान् विश्व के कार्यों की आलोचना करता है, जो असम्भव है । अगर मैं सुपरडेंण्ट साहब की बराबरी करना चाहूँ, तो क्या सम्भव है । मुझको ही नीचा देखना पड़ेगा । वैसे ही जब आदमी भगवान् की माया समझने का प्रयत्न करता है, तब उसको सफलता नहीं मिलती । भगवान् की माया भगवान् ही जाने ।"

रामनाथ ने कौतूहल भरी दृष्टि से देखते हुए कहा :—"तुम क्या भगवान्

पर विश्वास करते हो ?"

बजरंग ने हँसकर कहा:—"कौन नहीं करता ? हाँ, अंग्रेजी पढ़े-लिखे आदमी नहीं करते, मगर मैं तो अंग्रेजी पढ़ा नहीं। रुपये वालों को अपने रुपये का बल है बलवानों को अपने बल का बल है, किन्तु गरीबों और कमजोरों को केवल भगवान् का बल है। असहायों की वही रक्षा करता है।"

"मेरा तो विचार है कि भगवान् गरीबों का दुश्मन है, और वह केवल पूँजीपतियों की सहायता करता है।" रामनाथ ने कुछ तीक्ष्णता से कहा।

बजरंगसिंह ने बड़ी सरलता से कहा:—"यह बात नहीं है। उसकी कृपा से मनुष्य पूँजीपति बनता है, किन्तु मनुष्य जन्म से अहंकारी होता है। अहंकार और धनमद उसको भगवान् से दूर ले जाते हैं, उस समय से उसके पुण्यों का नाश होने लगता है, और फिर उसको नाना प्रकार की यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं। अपने ही मामले में देख लो वामनदास को अपनी करनी का फल मिला.........।"

रामनाथ ने बात काटकर कहा:—'लेकिन मुझे भी तो फाँसी मिल रही है।"

बजरंगसिंह ने जोश के साथ कहा:—"फाँसी का हुक्म जरूर हुआ है, लेकिन फाँसी पर तुम चढ़ोगे नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे बचावे का कोई-न-कोई उपाय वह अवश्य ढूँढ़ निकालेगा। तुम अपील क्यों नहीं करते ?"

रामनाथ:—"मान लो अपील में फाँसी का हुक्म रद्द हो गया, किन्तु कैद तो होगी ही।"

बजरंग ने सिर हिलाते हुए कहा:—"हाँ यह हो सकता है, किन्तु छूट भी सकते हो। कौन कह सकता है कि जजों का विचार उस समय क्या हो जायगा? शायद उनके मन में वही विचार उत्पन्न हो जायं, जो मेरे मन में उठ रहे हैं। जैसे मैं तुमको निर्दोष समझता हूँ, वैसे ही वे भी तुमको निर्दोष समझ सकते हैं। भगवान् बड़ा दयालु है।"

रामनाथ ने कौतूहल पूर्ण स्वर से कहा:—'तुम मुझे निर्दोष क्यों समझते हो ?"

बजरंग ने अत्यंत सरलता से कहा:—"इसलिए कि तुमने स्वार्थ भावना से वामनदास का खून नहीं किया। यह कार्य लोकोपकार के लिए हुआ है, जिसके निमित्त तुम्हारी सृष्टि हुई थी। निमित्त बनाने के लिए तुम्हें किसी-न-किसी प्रकार उत्तेजित करना अनिवार्य था। वैसी उत्तेजना, जो तुमको वामनदास का वध करने पर उत्तेजित करती, तुम्हें अपनी परम प्रिय वस्तु तो अनिष्ट होने से ही प्राप्त हो सकती थी। भगवान् ने वामनदास के मन में तुम्हारी

पत्नी के प्रति मोह उत्पन्न किया । माया-प्रेरित बामनदास अपने नौकरों से उसे अपने महल में छल, कौशल से उठवा मँगाता है । जब तुम घर लौटे तो तुम्हें तुरंत मालूम हो जाता है कि तुम्हारी स्त्री का चोर बामनदास है । तुम सीधे उसकी कोठी पर पहुँचते हो । अब देखो, भगवान् की माया । तुम्हारी पत्नी की लाज उसके चंगुल में फँसे होने पर भी नहीं जाती । तुम्हारे वहाँ पहुँचते ही वह खिड़की से कूद पड़ती है । क्यों कूदती है, इसलिए कि भगवान् तुम्हारे हृदय में उस सीमा तक उत्तेजना पैदा करना चाहता है, जब तुम बिलकुल ज्ञान-शून्य हो जाओ, छोटे-बड़े का भेद भूल जाओ, और बामनदास की पाप-लीला का अन्त कर सको । घटनाएं वैसी ही घटती हैं, और नियति बामनदास को वहाँ लाकर तुम्हारे चाकू का शिकार होने के लिए बलि के बकरे की भाँति बाँधकर खड़ा कर देती है । बामनदास के जीवन का सारा पापाचार प्रकट हो जाता है । जिस पाप को वह छिपा कर करता था, वह बिलकुल प्रत्यक्ष हो जाता है, और वह अकाल मृत्यु को प्राप्त होकर रौरव यातना सहने के लिए प्रेत-लोक में चला जाता है । तुम्हारा कार्य निन्दनीय नहीं हुआ, इसके प्रमाण के लिए भगवान् ने उसकी सन्तान को तुम्हारी सफाई के लिए खड़ा कर दिया । यहाँ की अदालत से तुम्हें फाँसी की सजा मिली है, इसमें भी भगवान् का कोई उद्देश्य छिपा हुआ है । किन्तु मैं इतना निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि तुम्हें फाँसी नहीं हो सकती ।"

बजरंग का मुख विश्वास की आभा से दीप्त हो गया । उसकी आँखों से ज्योति निकलकर रामनाथ की मृत आशाओं में जीवन संचार करने लगी । वह अवाक् होकर इकटक बजरंगसिंह की ओर देखने लगा । उसने विकलता से पूछा :—"तुम यह कैसे जानते हो ?"

"ठीक उसी प्रकार जैसे दो और दो मिलकर चार ही होते हैं । सत्य विश्वास का आधार है, इसी से कहता हूँ कि तुम फाँसी पर कभी नहीं चढ़ सकते, जितना तुम्हारा कर्म-विपाक है उसको भोगने के बाद अंत में छूटोगे और साफ छूटोगे ।"

इसके बाद पहरा बदलने का घंटा बजा । शब्द-तरंगों पर चढ़कर रामनाथ को विश्वास करने के लिए आह्वान करने लगा ।

७

आशा में भी एक प्रकार की उत्तेजना होती है, जो मनुष्य के मस्तिष्क में संघर्ष उत्पन्न कर देती है, और वह विकल हो जाता है । मनुष्य स्वभाव से जीवित रहना चाहता है, और वह मरता है अपनी इच्छा के विरुद्ध । इच्छा से वही मरते हैं, जो विगत काम हो जाते हैं; और विगत काम वह होते हैं, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष लोकों में समत्व स्थापित करने में समर्थ होते हैं, उस समय भय की

भावना अपना रूप नष्ट कर विश्वास में परिणत होती है, और मोह और ममत्व अपनी संकीर्णता को छोड़कर ब्रह्माण्ड-व्यापी होता है, कर्त्ता रूप होने से जो अहंकार क्षण-प्रतिक्षण उत्पन्न हुआ करता है, वह अपना व्यक्तित्व छोड़कर 'निमित्त' रूप में समाविष्ट हो जाता है। उस अवस्था में मानव के मस्तिष्क की शिराएं जो भय, मोह, अहंकार, लोभ, क्रोध आदि भाव प्रस्फुटित करती रहती हैं उसी प्रकार शुष्क हो जाती हैं जिस प्रकार ग्रीष्म काल में वर्षा ऋतु के कारण नदियाँ उत्पन्न हो जाया करती हैं। तब ज्ञान-तन्तु अनुभव द्वारा संचालित होते हैं, और अपनी अपूर्णता को त्याग कर पूर्णता की ओर अग्रसर होने लगते हैं। उस समय मानव-मस्तिष्क ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त किन्तु संपूर्ण संस्करण होकर प्रतिष्ठित होता है। यद्यपि मस्तिष्क पर भौतिक भावनाओं का प्रभाव पड़ा करता है—क्योंकि वह भौतिक शरीर का एक अंग है, परन्तु वह (प्रभाव) पंगु तथा क्षणिक होता है, और ज्ञान की महान् शिरा में वह उसी प्रकार डूबकर अपना अस्तित्व खो देता है जैसा स्रोत के जल में एक जल-कण।

यौवन-काल में मानव को संसार से अतिप्रेम होता है, क्योंकि उसके ज्ञान-तन्तु अनुभव प्राप्त करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। साधारणतया मानव पहले भौतिक वस्तुओं की ओर आकर्षित हुआ करता है, क्योंकि वे सबसे अधिक निकट होते हैं। यौवन-काल सावन-भादों की नदी के समान है, जिसमें उद्दाम अधिक और स्थायित्व कम है। जल निर्मल न होकर कदला होता है, और सभी प्रकार की वस्तुएं अच्छी और बुरी तैरती हुई जाती हैं। मोह और वैराग्य दोनों साथ-साथ बहते चले जाते हैं। क्रीड़ा करता हुई भँवरें जिस प्रकार कभी कोई वस्तु ऊपर ले आती हैं, और कभी किसी को डुबा देती हैं, उसी प्रकार कभी वैराग्य ऊपर आकर अपनी छटा दिखाने लगता है, और कभी मोह सजग होकर तरंगों की माला पर नाचने लगता है। इसीलिए यौवन में आवेश और उत्तेजना अधिक होती है, स्थित-प्रज्ञता का प्रायः अभाव होता है। उस काल में निराशा मोह को अपनी ओट में छिपाकर वैराग्य की झाँकी दिखाती है, किन्तु यदि आशा की क्षीण रेखा भी उस अन्धकार में चमक जाती है, तो यौवन तुरंत ही उसके प्रकाश में अपना स्वर्ण-जाल गूँथने में संलग्न हो जाता है।

लगभग ऐसी ही दशा रामनाथ की थी। बजरंगसिंह के कथन ने उसको इतना प्रभावित किया कि उसके निराश मन में आशा-मरीचिका की एक क्षीण रेखा उत्पन्न हुई। उसके जीवित रहने की इच्छा बलवती होने लगी, जिसने उसकी शांति को, जो निराशा के कारण उत्पन्न हुई थी, नष्ट कर दिया। निराशा के साथियों में सन्देह भी एक प्रधान सहचर है, जो आशा-जनित क्षीण विश्वास को पौष्टिकता प्रदान करता है। रामनाथ के सामने वे घटनाएं आ रही

थीं जिनमें अपराधी अपील से छूट गए हैं। आशा उसके अपील करने की भावना को बल प्रदान करने लगी।

रामनाथ ने जेल के अधिकारियों को सूचना दी कि वह अपील करना चाहता है, और उसकी ओर से अदालत को पत्र दिया गया। उसने निश्चिन्तता की साँस ली। वह शून्य आकाश की नीलाभ छाया में अपनी भाग्य-लिपि पढ़ने का उद्योग करने लगा। निराशा उदासीनता की जननी है, और उदासीनता का अन्त कटुता में होता है, उस समय जब कि उदासीनता का कारण स्वार्थ-पूर्ण अभिलाषा की अपूर्ति और असफलता है। उस समय मनुष्य प्रायः अनीश्वरवादी और ईश्वर, दया, करुणा, भक्तवत्सलता आदि विशेषणों का कटु आलोचक हो जाता है। वह भगवान् को एक कपोल कल्पना और ढोंग समझता है, किन्तु जहाँ आशा की आभा की एक किरण क्षण-भर के लिए चमक जाती है, वह पुनः ईश्वर की अनन्त दया पर विश्वास करने लगता है। तभी तो कहा जाता है कि मानव स्वार्थ-पुंज का एक वैयक्तिक रूप है—उसका विश्वास और सिद्धांत स्वार्थ की भावना से अंकित हुआ करता है। बजरंगसिंह ने रामनाथ के सामने अपील से छूट जाने की आशा उत्पन्न कर दी, और उस स्वार्थ ने उसकी सारी विचार-धारा को परिवर्तित कर दिया। रामनाथ अपनी सहायता के लिए ईश्वर को पुकारने लगा। अब वह बजरंगसिंह से बातें करने के लिए लालायित रहने लगा, उसके विश्वास को सुनने के लिए आकुल रहता, और जब वह आँखें बन्द कर भगवान् से प्रार्थना करता उसकी अपील स्वीकृत की जाकर उसके छूट जाने की तो वह भी स्वयं गद्गद् हो उठता, भावोद्वेग पिघलकर आँखों के मार्ग से बहिर्गत होने लगता। इसके बाद वह कुछ काल के लिए शांति और तृप्ति अनुभव करता। इसके बाद संदेह का धूम निराशाग्नि से उठकर उसके स्वार्थ-जन्य डगमगाते हुए विश्वास को बुरी तरह से आन्दोलित कर नष्ट करने का प्रयत्न करने लगता। ऐसे ही हैस-बैस में उसका जीवन व्यतीत हो रहा था कि एक दिन जेल के सन्तरी ने आकर इत्तिला दी कि उसके कुछ मित्र उससे मिलने के लिए आए हैं।

रामनाथ उत्कण्ठा का साकार रूप हो गया। जिज्ञासा पूछने लगी कि कौन आया है, किन्तु वह अपनी ही उलझन में इतनी व्यस्त थी कि वह नाद को संस्कृत ध्वनि अथवा अनुमोदित और सार्थ शब्दों का रूप न दे सकी, केवल एक अस्पष्ट रव होकर गले की वाक् नली में झंकृत होकर निश्चेष्ट हो गई। रामनाथ ने जोर लगाकर पूछा:—"कौन आया है?"

सन्तरी ने उत्तर दिया:— "दो औरतें हैं, और मैं कुछ नहीं जानता।"

सन्तरी चला गया, और रामनाथ पुनः एक नई उलझन में फँस गया।

जेल-जीवन में साथियों और प्रेमियों का आगमन एक महानतम आनन्द की भूमिका होती है। वे सहसा कितने प्रिय हो उठते हैं और हृदय आन्दोलित होकर नवीन सुखों की सृष्टि करने लगता है। मानव का मन उस समय अतीव तृप्ति और सुख अनुभव करता है, जब उसे ज्ञात होता है कि कोई उसके लिए कातर है, दुखी है। समाज का निर्माण करने वाला मानव समाज के व्यक्तियों से सहानुभूति पाने के लिए लालायित रहता है। और जब वे व्यक्ति दूसरे वर्ग के होते हैं, तब मन सन्तोष की पराकाष्ठा अनुभव करने लगता है। रामनाथ की कल्पना ने उससे आकर कहा :—"आगन्तुका अवश्य ही कनक और उसकी उर्मिला हैं।" उनके आने तक का विलम्ब भी उसके मन की आतुरता को सहन नहीं होता था। व्यग्र होकर उसने आँखों को मार्ग में पाँवड़े बिछाने का आदेश दिया।

वास्तव में आने वाली कनक और उर्मिला थीं, जिनको बड़ी कठिनता से रामनाथ से मिलने की आज्ञा मिली थी। चन्द्रनाथ ने अपने प्रभाव से कैदियों से साक्षात् करने के साधारण नियमों पर प्रतिबन्ध लगवा दिया था। रामनाथ की पैरवी करने के कारण कनक को तो आज्ञा मिल जाती थी, किन्तु उर्मिला को उसके साथ जाने की आज्ञा अधिकारी न देते थे। हारकर कनक को मिस पामिला निक्सन की शरण में जाना पड़ा, और उसने अपने पिता से केवल पन्द्रह मिनट का समय रामनाथ से साक्षात् करने के लिए किसी भाँति दिलवा दिया। कनक और उर्मिला के साथ जेल का एक अफसर भी घड़ी लिये हुए आया।

रास्ते में कनक ने उर्मिला का हाथ पकड़कर दबाते हुए कहा :—"सावधान बहन, कहीं बेहोश न हो जाना, नहीं तो यह अमूल्य समय हाथ से निकल जायगा। मन को दमन करो, आँसुओं को पी जाओ, और उद्वेग को ठेलकर पेट के गह्वर में डुबा दो।"

उर्मिला का काँपता हुआ मन साहस की लकुटी पकड़ने का प्रयत्न करने लगा। उनके कपड़ों की झलक-मात्र ने ही रामनाथ को उठाकर खड़ा कर दिया, और ज्ञान-शून्य-सा होकर स्वयं दौड़कर उनका स्वागत करने के लिए तैयार हुआ, किन्तु परवशता के बन्धन लोहे के सीखचों ने उसके सिर पर आघात करते हुए कहा :—"विक्षिप्त, होश में आ, यह ड्राइंग रूम नहीं है, बन्दी-गृह है।" अस्थिर मन को विश्वास नहीं हुआ, तब हृदय ने क्षत स्थान से रक्त को उस कठोर सत्य का निर्णय करने के लिए भेज दिया। कनक और उर्मिला जेल की कोठरी के समीप पहुँच गईं। उर्मिला के आवेग ने गंगा-यमुना की सृष्टि की, जो आँखों को गंगोत्री और यमुनोत्री बनाकर कण-कण रूप से

निकल कर कपोलों पर धारा में परिवर्तन कर कहने लगी । दृष्टि-शक्ति जल-धारा की ओट से अपने आधार रामनाथ को देखने का प्रयत्न करने लगी। कनक उसका हाथ दबाकर उसको सचेत करने लगी। उर्मिला कुछ सचेत हुई। उसकी विह्वल दृष्टि उसके मानस-पटल पर अंकित रामनाथ की पुरानी मूर्ति से इस वर्तमान छवि का मिलान करने लगी। वह देखती-देखती उस स्थान पर आकर ठहर गई जहाँ से रक्त निकल रहा था। कनक का सावधान रहने का आग्रह उस रक्त की ललाई में उलझ गया, और वह असहाय पक्षी की भाँति फड़फड़ाने लगी। विस्मृति भी करुणा से ओत-प्रोत होकर उसकी सहायता के लिए दौड़ी, और उसने उसके गिरते हुए शरीर को कनक के फैले हुए हाथों में पड़ जाने में सहारा दिया। रामनाथ भी समवेदना से कातर होकर सीखचों के अन्दर गिर पड़ा।"

कनक के साथ आने वाला जेल का अफसर एंग्लो इंडियन था। उसके पितृ-वंशी अंग्रेज शासक रूप में थे, जिससे उसको अपनी उच्चता का अभिमान था उसने बुदबुदाकर कहा:—"उन्मादिनी स्त्रियों से ईश्वर ही रक्षा करे।" कनक ने थोड़े से जल की इच्छा प्रकट की। काली जाति की स्त्री के लिए कुछ कष्ट करना उसके लिए अपमान-जनक था, क्योंकि काले रंग ने उसको पशुओं की श्रेणी में परिगणित कर रखा था। उसने अस्पष्ट स्वर में कहा:—"पाँच मिनट बीत गये हैं। जल की यदि आवश्यकता हो तो सामने थोड़ी दूर पर पाइप है, ले आइए। अगर रूमाल हो तो उसे भिगो लाइए। मैं समझता हूँ कि उसी से होश में आ जायगी।"

निरुपाय होकर कनक को रूमाल भिगोने के लिए नल के पास जाना पड़ा। रामनाथ के प्रहरी के पास सब रोगों की अमोघ औषधि थी डाट-फटकार। अपने अफसर को पास ही खड़ा देखकर उसका कर्त्तव्य ज्ञान सजग हो गया। उसने भीषण स्वर में चिल्लाकर कहा:—"कैदी उठता है या मार खायगा। तुम्हारा ढोंग अभी डंडों के बल से निकाल दिया जायगा। छोटे साहब खड़े हैं, सलाम नहीं करता।" फिर अफसर को सम्बोधन करते हुए कहा:—"हुजूर यह बड़ा मक्कार है, हम लोग तो इसके मारे परेशान हो गए हैं। हमेशा एक नया तूफान उठाया करता है। छोटे साहब की सराहना उसके प्रति जाग्रत हुई या नहीं, यह तो नहीं मालूम, किन्तु रामनाथ अवश्य चैतन्य हो गया। उधर कनक के प्रयास ने भी उर्मिला को आँख खोलने के लिए मजबूर कर दिया। कनक ने स्नेह-प्लावित स्वर से कहा:—"उर्मिला आधे से अधिक समय बीत गया है, अपने मन को दृढ़ करो, और दो एक बात तो कर लो। न मालूम फिर कब साक्षात् का अवसर प्राप्त हो।"

उधर रामनाथ ने सजग होकर कहा :—"उर्मिला तुमको देख लिया, यही मेरे लिए बहुत है। तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रहो, मैं बड़े आराम से हूँ। अगर मुझे कोई चिन्ता है, तो वह तुम्हारे भविष्य की है। तुम्हारे पितृ तथा श्वसुर-वंश में कोई नहीं है, जिसको तुम्हारे संरक्षण का भार सौंप सकूँ।"

उर्मिला ने आँसुओं को रोकते हुए कहा :—"मेरे भविष्य की आप तनिक भी चिन्ता न कीजिये। कनक बहन मुझे अपने जीवन से अधिक प्यार करती हैं। उनका सम्पूर्ण स्नेह और आदर मुझे प्राप्त है। मेरे ही कारण आज आप यह भुगत रहे हैं।"

वह आगे न कह सकी, आवेग ने पुनः कण्ठ अवरुद्ध कर दिया।

कनक ने कहा :—"तुम्हारे मुकदमे की अपील दायर हो गई है। अपील में तुम अवश्य ही छूट जाओगे। उर्मिला की तुम तनिक भी चिन्ता मत करो। उसको कोई दुःख न होने पायगा।"

रामनाथ ने विकलता के साथ कहा :—"चिन्तित होकर भी क्या करूँगा। आप न मालूम उस जन्म की मेरी कौन हैं, जो इतना परिश्रम हम दो अभागों के लिए कर रही हैं।"

कनक ने उर्मिला को उठाते हुए कहा :—"रामनाथ, मैं तुम्हारे साथ कोई अहसान नहीं कर रही हूँ अपने पिता के पापों का प्रायश्चित्त कर रही हूँ। तुम दोनों की दशा के जिम्मेदार मेरे मृत पिता वामनदास हैं.......।"

इसी समय अधिकारी ने गुनगुना कर कहा :—"दो मिनट अवशेष हैं।"

रामनाथ ने विक्षिप्त की भाँति कहा :—"जाओ, उर्मिला जाओ। यह मिलन तो दुःख की सृष्टि करता है। तुमको देख लिया, सब साध पूरी हो गई।"

कनक ने पूछा :—"उर्मिला कुछ कहना है ?"

उर्मिला ने कहा :—"क्या कहूँ, मैं तो यहाँ से जाना नहीं चाहती।"

समय बीता जा रहा था, अधिकारी ने पैर पटक कर कहा :—"एक मिनट।"

उर्मिला और रामनाथ सीखचों के समीप आ गए। कनक कुछ दूर हट गई।

रामनाथ ने अपने भावों का सार निकाल कर कहा :—"उर्मिला, प्रियतमे।"

किन्तु उर्मिला तो वह भी न कह सकी। उसकी विकल आँखों ने कुछ सन्देश देना चाहा, किन्तु उमड़ती हुई जलधार ने उन्हें भी बिखेर दिया।

अधिकारी ने निर्मम घड़ी की भाँति कहा :—"मुलाकात का समय खत्म हो गया। बस चलो। कनक ने उर्मिला को पकड़ लिया, और वह सिसकती हुई कनक से लिपट गई।

अधिकारी ने चिल्लाकर कहा :—"वैल, यह रोना-धोना बाहर जाकर

करो। चलो, जल्दी चलो।"

भय ने उर्मिला को सजग किया। कनक उसको घसीटती हुई आगे बढ़ी।

रामनाथ ने एक लम्बी साँस ली, और उसकी आँखें उसका अनुसरण करने लगीं। मोड़ पर पहुँचकर उर्मिला ने पीछे फिरकर देखा। दोनों की आँखें आलिंगन-पाश में बँध गईं और दोनों पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वियोग दोनों को स्वप्न लोक में ले जाकर उनकी पीड़ा शान्त करने का उद्योग करने लगा।

८

कानपुर में मजदूरों के रहने की कोई व्यवस्था नहीं है। मिल-मालिकों को केवल अपने काम की चिन्ता है, मजदूरों के जीवन से और उनकी सुविधाओं से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। द्वितीय महासमर के आगमन के साथ बृटिश सरकार ने उसको युद्ध-सामग्री बनाने का प्रधान केन्द्र बना दिया, जिससे भूखे भारतवर्ष के दरिद्र अधिवासी अपनी जीविका-उपार्जन करने के लिए प्रान्त के कोने-कोने से आने लगे। महायुद्ध के आरम्भ काल में अन्न का भाव गिरा हुआ था, जिससे खेती का धन्धा छोड़कर कृषक वर्गों के समूह-के-समूह पेट पालने के लिए कानपुर की ओर आकर्षित होने लगे। बृटिश सरकार की नीति पूँजीपतियों की नीति से मेल खाती थी, क्योंकि वह स्वयं पूँजीपतियों की सरकार थी, और भारतवर्ष के लिए उनके हृदय में वही ममता थी जो मिल-मालिकों को मजदूरों के प्रति थी। अंग्रेजी शासन-काल में पूँजीपतियों को जितनी सुविधाएं दी जाती थीं, उनका एक शतांश भाग भी मजदूरों तथा कृषक वर्गों के लिए नहीं दिया जाता था। यद्यपि सरकार ने दोनों विभागों को खोल रखा था किन्तु वह केवल उनके रक्त-शोषण के लिए ही एक नए और परिष्कृत रूप में व्यवस्था थी। मजदूर और कृषक नहीं जानते कि उनके द्वारा उनको कोई लाभ पहुँचा हो।

यहाँ के काम करने वाले मजदूर बिखरे हुए जहाँ-तहाँ बसे हुए थे, किन्तु फिर भी ऐसी कई एक बस्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं जहाँ मजदूरों की आबादी विशेष रूप से थी। वहाँ से निकलना वैसा ही था जैसा रौरव नर्क से गुजरना। चारों ओर फटे हुए टाटों की दीवालें उठी हुई थीं, नाली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक मल मूत्र बिखरा हुआ पड़ा था, जिससे दुर्गन्ध निकलकर वायु-मंडल को दूषित कर रही थी। चार हाथ लम्बी-चौड़ी कोठरी में वे अपने परिवार के साथ रहते थे। उसी तंग जगह में खाते-पीते और सोते थे। वायु के आने की वहाँ मनाही थी, और दुर्गन्ध का अधिकार निर्विघ्न रूप से व्याप्त था। उनके बच्चे, जो भारतवर्ष के अगामी नागरिक थे, मल और मूत्र का उबटन लगाये भूत-पिशाचों के लघु संस्करण बने हुए उस केलि-भूमि में मृत्यु को चुनौती दे रहे थे। छोटे-

से-छोटे घर में आठ-दस परिवार तक रहते थे, और बड़े घरों में तो उनकी संख्या तीस तक और कभी-कभी उससे अधिक तक पहुँच जाती थी। उनके परिवार के व्यक्तियों में स्वच्छता ढूँढ़ने से भी न मिलती थी। नहीं जानते कि मानव-जीवन का कौन-सा सुख भोगने के लिए भगवान् ने उन्हें उत्पन्न किया था। नरक के कीड़ों के जीवन का मूल्य कुछ शायद हो भी सकता है, किन्तु उनके जीवन का कोई मूल्य है, यह तो हमें नहीं मालूम।

दरिद्रता कलह की भूमिका है। मजदूरों की बस्तियों में निरन्तर कलह का नाटक हुआ करता था, और ऐसे अवसरों पर जो भाषा, उनके पात्र व्यवहार में लाते थे वह उन शब्दों से परिपूर्ण रहा करती थी जिनको कोष में भी स्थान नहीं दिया जाता। आगामी भारत की सन्तान के मुख से निकली हुई वाणी कर्ण-कुहरों में प्रवेश कर चिन्ता तथा दुःख की सृष्टि करती थी। उस समय भारत की देवियाँ विक्षिप्त रण-चण्डी-सी दुर्दान्त और दुर्जेय हो जाती थीं। उनके मुख से निकलते हुए स्तुति के शब्द भारत के अधःपतन के चित्र खींचने लगते थे। मर्यादा की परिधि की इतिश्री हो जाती थी, और कलि अपने वीभत्स रूप से वहाँ अवतीर्ण होकर नारकीय छटा को संक्षिप्त रूप में दिखाने का अति सफल प्रयत्न करता था। मन बरबस पूछ बैठता कि क्या यह ईश्वर के प्रतिरूप मानवों का समूह है?

उनका खान-पान ही उस अवस्था के अनुरूप था। गर्हित-से-गर्हित वस्तुओं का प्रयोग करते, और केवल पेट के पोलेपन को अखाद्य वस्तुओं से भर देते थे। मक्खियों, मच्छरों और खटमलों की यह क्रीड़ा-भूमि थी, जो उनका रक्त चूसने के लिए उसी भाँति सचेष्ट रहते थे, जैसे उनके मालिक पूँजीपति। यदि धरा-तल पर रौरव नर्क की कहीं कल्पना की जा सकती है, तो वह इन बस्तियों में आज दिन भी सर्वथा प्राप्य है, और उसका कभी नाश होगा यह तो केवल भगवान् ही जानते हैं।

बलवन्त के दोनों लड़के महावीर और सन्तू इन्हीं बस्तियों में दो कोठ-रियाँ लेकर रहते थे। महावीर के परिवार में उसकी पत्नी और दो सन्तानें थीं और सन्तू के परिवार में उसकी पत्नी और एक कन्या थी। भाइयों में अभी तक सौहार्द्र अवशेष था, किन्तु उनकी पत्नियों में नेवले और सर्प का वैर था। वे छोटी-से-छोटी वस्तु भी एक दूसरे को नहीं दे सकती थीं। यह द्वेष उन तक सीमित न रहकर लड़कों तक फैल गया था। महावीर का लड़का जब कभी सन्तू की लड़की मुरैला को एकान्त में देखता, तो वह उसको मारकर भाग जाता था, और जब वह जाकर अपनी माँ से शिकायत करती थी, तो दोनों में घमासान मच जाता था। महावीर की पत्नी गौरी बड़े उग्र स्वभाव की थी, और, सन्तू की स्त्री राधा भी

उससे किसी बात में कम नहीं थी। उनका वाग्युद्ध उस बस्ती में भी एक उदाहरण रूप था। दोनों पास रहने के लिए इच्छुक नहीं थीं, किन्तु दोनों भाई एक दूसरे से दूर रहने के लिए तैयार नहीं थे। वे कहते थे कि चाहे जो कुछ हो मुसीबत में भाई के सिवाय दूसरा कोई काम नहीं आता। दोनों भाई प्रायः उन दोनों के झगड़ों में कोई दिलचस्पी न लेते थे, इसी से उन दोनों का क्रोध आपस में ही भंयकरता धारण करता था। यह नहीं था कि दोनों भाइयों को अपनी-अपनी पत्नियों के क्रोध की लपट में जलना न पड़ता हो, किन्तु फिर भी वे दोनों एक दूसरे को छोड़ने के लिए प्रस्तुत न थे। इतना अवश्य हुआ कि दोनों अपनी-अपनी ज्वाला को भूलने के लिए मदिरा-पान करने लगे थे, और प्रायः दोनों भाई साथ ही बैठकर पीते थे। एक यह भी कारण उनके सौहार्द्र बने रहने का था। एक ही नशा पीने वालों में अनायास ही मित्रता उत्पन्न हो जाया करती है, और जब वे भाई-भाई हों तो सौहार्द्र में उन्नति होना स्वाभाविक था। दोनों की आय का एक विशेष भाग मदिरा-पान में खर्च हो जाया करता था, जिससे गृहस्थी का भार कुछ प्रखर और बोझल हो गया था। सदैव किसी-न-किसी वस्तु का अभाव रहता, और दोनों के घर में प्रायः नित्य ही किसी-न-किसी बात पर कलह हो जाया करता था।

एक दिन उस बस्ती में मजदूरों के कतिपय नेताओं ने घोषणा की कि जो मजदूर नशे का पीना नहीं छोड़ेगा, उसका सामाजिक बहिष्कार होगा, और उससे कोई सम्पर्क नहीं रखा जायगा। उसी दिन शाम को उस बस्ती के सभी मजदूरों को सभा में बुलाया गया था जो पास ही के एक मैदान में की जा रही थी। संध्या समय जब महावीर और सन्तू मिल से वापस आए, तब महावीर की पत्नी गौरी ने कहा:—"आज भी पी आए हो। वह सन्तुआ तुमको कुमारग पर लिये जाता है, अब देखूँ कैसे पीते हो। जानते हो आज डुग्गी पीटी गई है कि जो नशा पियेंगे उनका हुक्का-पानी बन्द हो जायगा, उनसे कोई बोल-चाल, मेल-जोल नहीं रखा जायगा। अब देखूँ सन्तुआ तुमको कैसे पिलाता है।"

महावीर ने झिड़ककर कहा:—'घरमें आना दुश्वार है। कौन साला हमारा नशा बन्द कर सकता है। बन्द करदे हमारा हुक्का पानी, हमें क्या परवाह है।"

गौरी ने तिनक कर कहा:—"सन्तुआ पर भूले हो, लेकिन मैं अब अकेली नहीं हूँ। मैं तुमको नशा हरगिज नहीं करने दूँगी। मैं खुद तुम्हारी शिकायत करूँगी, और बिरादरी से दण्ड दिलवाऊँगी।"

महावीर ने चौके पर बैठते हुए कहा:—"खाने को क्या बनाया है, लाओ, खाने को दे। सन्तुआ, सन्तुआ क्या लगा रखा है। तू न मालूम सन्तुआ को

देखकर क्यों जलती है। वह तो बेचारा तुम्हारा नाम भी नहीं लेता। तुम दोनों पराये घर की लड़कियाँ हम दोनों भाइयों का साथ उठना-बैठना भी नहीं देख सकती।"

गौरी ने पंचम स्वर में कहा :—"खाने को क्या है, जो दूँ। आटा नहीं रहा, और चावल महीने-भर से आए ही नहीं। दाल पड़ी है। अगर भाई कुछ पूछता होता तो आकाश में पैर धरते। उसी ने मेरा घर बिगाड़ा है। तुमको दारू की लत लगाई किसने ? सन्तुआ कितना चालाक है, तुमको पीना सिखाकर खुद दाम खर्च नहीं करता, सब-का-सब तुम्हारे मत्थे मढ़ता है।"

शराब का नशा भोजन माँग रहा था, किन्तु गौरी ने कुछ बनाया ही न था। महावीर का क्रोध उमड़ रहा था। उसने एक चैला उठाकर गौरी की ओर फेंका, जिसके वार को उसने हटकर बचाना चाहा, किन्तु फिर भी वह दीवार से टकराकर उछला और उसके पैर में लगा। चैले का लगना था कि गौरी भी उठी, उसने सप्तम में चिल्लाकर कहा :—"जरा होश में आ……। नहीं तो तुम्हारे बाप और भाई को जिन्दा खा जाऊँगी।"इसके बाद वह अकथ्य गालियाँ बकने लगी।

महावीर ने घर से जाते हुए कहा :—"ले अपना घर, अब तेरे घर में नहीं आऊँगा।"

गौरी गालियाँ बकती रही। उधर महावीर उठकर सन्तू के घर गया। वहाँ भी ऐसा कोहराम मचा हुआ था। महावीर ने जाकर पुकारा :—"सन्तू।"

सन्तू ने उत्तर दिया :—"हाँ, दादा आया।"

फिर महावीर ने सुना :—"जाओ, आगए तुम्हारे पुरखा, दारू में जो कमी हो, वह जाकर पूरी कर आओ।"

सन्तू के बाहर निकलने पर महावीर ने कहा :—"सन्तू कुछ खाने को है, बड़ी भूख लगी है।"

सन्तू ने सिर खुजलाते हुए कहा :—"यही हाल यहाँ है दादा। खाने को कुछ नहीं बना है, आओ चलें, वहाँ उधार लेकर कुछ खायंगे।"

महावीर ने चिन्तित स्वर में कहा :—"मुझको तो उसी के दाम देने हैं। पिछली पंद्रहिया में भुगतान नहीं कर सका, अब भला क्यों देगा।"

सन्तू ने बढ़ते हुए कहा :—"चलो तो, मैं अपने हिसाब में ले लूँगा। मैंने उसके सब दाम चुका दिये हैं।"

महावीर और सन्तू झूमते हुए चले। जब चौराहे पर वे पहुँचे तो एक वृद्ध ने, जो सिर पर एक गठरी लिये हुए शिथिल पगों से आ रहा था, पूछा :—"महावीर और सन्तू यहाँ किस घर में रहते हैं ?"

दोनों स्तम्भित होकर धूलि-धूसरित वृद्ध की ओर देखने लगे। यद्यपि नशा उमंग पर था, किन्तु दोनों ने तुरंत ही पहचान लिया कि यह वृद्ध उनका पिता

बलवन्त है।

दोनों ने चकित स्वर में कहा :—"अरे बापू, तुम यहाँ कैसे आए। घर में सब कुशल तो है।"

आगन्तुक वास्तव में बलवन्त था। घर से वह अनेक आशाओं की गठरी बाँधकर चला था, किन्तु वे स्वप्न उस समय बिखर गए, जब उनके मुँह से मदिरा की दुर्गन्ध निकल कर उस वायु-मंडल को दूषित करती हुई उसके मस्तिष्क में घृणा का भाव भरने लगी। अपने घर की हालत उन्हें भली-भाँति मालूम थी।

महावीर ने जाते हुए सन्तू से कहा :—"सन्तू, बापू को तुम ले चलो, मैं बाजार से जिन्स लेकर आता हूँ।"

सन्तू ने महावीर से आगे जाते हुए कहा :—"नहीं दादा, बापू को तुम अपने घर ठहराओ, मैं सामान लेकर आता हूँ।"

दोनों भाई दो ओर चलते गए। बलवन्त चौराहे पर अकेला स्तंभित-सा खड़ा रह गया।

६

बलवन्त के मन में एक बार यह विचार आया कि वापस लौट जाय, और वह उसी मार्ग की ओर मुड़ा भी, जिधर से आया था। अपने गाँव सिंधौली से वह चार बजे प्रातःकाल पैदल चला था, रास्ते में केवल सतुआ खाने के लिए वह एक घण्टे-भर के लिए मन्धनपुर में ठहरा था, और फिर चल दिया था। सिंधौली से कानपुर बारह कोस था, उसे आशा थी कि तीसरे पहर तक वह कानपुर पहुँच जायगा, और शाम तक अपने लड़कों का मकान ढूँढ़ लेगा। उसके पास मुहल्ले का नाम लिखा हुआ था, और उसी सूत्र से वह उनका पता लगा लेना चाहता था। उसके बनाये हुए कार्य-क्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। घर के समीप पहुँचकर अनायास वह उनसे मिल भी गया था, किन्तु उनको इतनी शीघ्रता से खो देगा, यह अनुमान उसने स्वप्न में भी नहीं किया था।

यद्यपि घर लौट जाने के लिए वह चल पड़ा था, किन्तु शिथिल हो जाने से उसका साहस जबाब दे रहा था। कुछ दूर जाकर वह फिर ठहर गया, और सोचने लगा कि जब वह इतनी दूर आया है, तब उसको सारा हाल-चाल जान लेना उचित है। यशवन्त के चले जाने से उसका मन बड़ा दुःखी था। खेती का काम वह अकेले करने में सर्वथा असमर्थ था, इसलिए सूने घर में वह महावीर और सन्तू दोनों को, या दोनों में से किसी एक को कानपुर से लाकर बसाना चाहता था। उनके लड़कों-बच्चों में मिलकर वह यशवन्त का दुःख भुलाना चाहता था। यशवन्त को रोकने का प्रयत्न बलवन्त और लछिमिन ने बहुत किया, किन्तु उसका रुकना असम्भव हो गया था, क्योंकि वह अपना वेतन पहले ही ले चुका

था। दूसरे महायुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष की गरीबी से भरपूर लाभ उठाया। काँग्रेस ने आदेश दिया था कि कोई भारतीय युद्ध में भाग न ले, और न सेना में ही भरती हो। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने रुपये के बल से दरिद्रों को वशीभूत करना प्रारम्भ किया। देहातों में दौरा करके गाँव-गाँव से सेना में आदमियों की भरती करने का काम उसने अंग्रेजों को सौंपा था, क्योंकि उसका विश्वास भारतीयों पर नहीं था। भरती करने वाले अंग्रेज-अफसर के जब सब उपायों में असफल हो जाते वह रुपयों का लोभ देते, और एक महीने का वेतन देने के लिए तैयार हो जाते। भूखा और दरिद्र भारतीय युवक उस लोभ को संवरण नहीं कर सकता था, आँख बन्द करके वह अपने प्राणों का सौदा कर डालता। एक बार की स्वीकृति उसे सदैव के लिए गुलाम बना देती थी। उसके निकलने का मार्ग फिर नहीं रहता था। यही हाल यशवन्त का भी हुआ था। गाँव के ज़मीदार के पास जब बलवन्त गया, और उनसे सब हाल कहा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब यशवन्त किसी हालत में रुक नहीं सकता। अगर वह निश्चित तारीख पर कानपुर पहुँचकर हाजिर नहीं होगा, तो पुलिस उसको वारंट लेकर पकड़ने आयगी। पुलिस के डंडे ऊपर से खाने पड़ेंगे। अब यशवन्त के रोकने का कोई उपाय नहीं था। यशवन्त स्वयं रोता हुआ, और परिवार के सारे व्यक्तियों को रुलाकर चला गया। उसके जाने के बाद बलवन्त को घर काटने के लिए दौड़ता था। दो दिन तक घर में चूल्हा नहीं जला। पड़ोसियों ने जब समझाया, तब लछिमन और बलवन्त ने जल ग्रहण किया, किन्तु सुखदेई फिर भी भूखी-प्यासी बैठी रही। बलवन्त जब थाली परोस कर स्वयं सुखदेई के सामने रख आया, और उसे बहुत ऊँचा-नीचा समझाया, तब उसने उसके सन्तोष के लिए दो ग्रास खाकर जल पी लिया। शोक की भी एक अवधि हुआ करती है। बीतते हुए दिन उसको क्रमशः कम करते जाते हैं। कुछ दिनों बाद लछिमन और बलवन्त एकमत होकर सुखदेई को उसके मायके भेजना स्थिर किया, और सन्देश भेजकर यशवन्त के साले को बुला लिया। सूना घर उन्हें पहले से भी अधिक सताने लगा। अन्त में उन्होंने यही स्थिर किया कि वह कानपुर जाकर दोनों लड़कों लिवा लाय।

अपने दोनों पुत्रों के व्यवहार को देखकर उसे निराशा हुई, मदिरा की दुर्गन्ध से उसे घृणा हुई, किन्तु फिर भी पुत्र-प्रेम ने उसे बाध्य किया कि वह उनसे एक बार पुनः साक्षात् करे, और अशुद्ध वातावरण से निकाल ले चलाने का प्रयत्न करे। वह फिर लौट पड़ा। वह तो उसने अनुमान ही कर लिया था कि वे लोग कहीं निकट रहते हैं, अतएव वह उसी रास्ते की ओर चला जहाँ से आते हुए वे मिले थे। अभी तक वह गौरी और राधा के विकराल रूपों से

अपरिचित था, क्योंकि उसके यहाँ रहते हुए उनकी उग्रता और प्रखरता राख लपेटी हुई अग्नि की भाँति थी। उनमें झगड़ा होता अवश्य था, किन्तु अवस्था इतनी विकराल नहीं हुई थी। धन्नू और मुरैला शिशु थे, और उनमें वह वैर भाव पैदा नहीं हुआ था, जो आजकल वर्तमान था। बलवन्त अपनी कल्पना के आँगन में उनके मनोहर रूपों को देखता हुआ चला जा रहा था। मानवस्वभाव से सुख और शांति का अन्वेषक है। उसका सारा जीवन इन्हीं दो वस्तुओं की खोज में बीत जाता है, परन्तु प्रश्न सदा रहा है, कि क्या वे उसको प्राप्त होते हैं? पहले वह अशांति और दुःख का कारण वस्तुओं का अभाव समझता है, और उनको प्राप्त करने में संलग्न रहता है। अभिलषित वस्तु के प्राप्त करने के उद्योग में ही कितनों का जीवन व्यतीत हो जाता है, और कितनों को प्राप्त हो जाता है; किंतु प्राप्त हो जाने पर वे क्या सुखी होते हैं। एक वस्तु की प्राप्ति किसी अन्य वस्तु की इच्छा को अपने उदर में लिये रहती है, अतएव किसी-न-किसी वस्तु का सदा अभाव ही बना रहता है—पूर्ण कभी नहीं होता, क्योंकि सुख और शांति इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति पर निर्भर नहीं करते; वरन् ये मन की इच्छा और कामना को दमन करने पर निर्भर करते हैं। वस्तुओं का अंत नहीं है, अतएव अभाव भी अनन्त हैं। इसके अतिरिक्त सुख और शांति मानव के मन अथवा मस्तिष्क के गुण हैं, जिनको प्राप्त करने के लिए उसको मन की ओर ही अग्रसर होना पड़ेगा। अस्थिरता तथा चंचलता मन का स्वाभाविक गुण है। जब तक मानव इन पर अपना आधिपत्य नहीं स्थापित करता, तब तक वे उससे दूर-ही-दूर भागते रहेंगे। बलवन्त सुख और शांति प्राप्त करने की इच्छा से कानपुर आया था। वह धीरे-धीरे आगे जा रहा था, रास्ते में उसने एक पथिक से पूछा:—"सन्तू और महावीर यहाँ-कहाँ रहते हैं।" उसने उसकी ओर देखा तक नहीं, और वह बचा कर निकल गया। बलवन्त को क्षोभ हुआ। उसके मन ने कहा:—"गाँवों में तो ऐसा नहीं करते।" वह फिर आगे बढ़ा, और इस बार वह सन्तू और महावीर के घर के पास पहुँच गया, किन्तु इसका उसे ज्ञान नहीं था। इस समय वहाँ पर स्त्री-पुरुषों की एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, क्योंकि सन्तू और महावीर के चले जाने के बाद उनकी पत्नियों में वाग्युद्ध घोषित हो गया। दोनों अनर्गल बकती हुई एक दूसरे पर अपने-अपने पतियों को शराबी बनाने का अपराध मढ़ रही थीं। बलवन्त के स्मृति-कोष में उनका स्वर कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। वह ठहर गया और सोचने लगा कि उसने इस कण्ठ-स्वर को कहाँ सुना है। स्मृति-कोष क्षुब्धता की तरंगों से आन्दोलित था, इसलिए परिचित स्वर बार बार टकराता, किन्तु वह उन्हीं तरंगों में विलीन हो जाता। सहसा उसने जाना कि यह तो सन्तू और

महावीर की स्त्रियों का कण्ठ-स्वर है। वह इधर-उधर देखने लगा। यद्यपि दोनों मुख खोले हुए लड़ रही थीं, किन्तु उनकी आकृति में बहुत अंतर आ गया था। जब वे सियौली से आई थीं, तब वे हृष्ट-पुष्ट थीं, और बलवन्त की आँखों में उनका वही रूप वर्तमान था। इस समय पुराने रूप की वे कंकाल-मात्र थीं। बलवन्त को विश्वास न हुआ। आगे बढ़ने के लिए उसने अपना पग उठाया, किन्तु मन न माना। उसने पास ही खड़े एक दर्शक से पूछा :—"भैया क्या तुम जानते हो कि महावीर और सन्तू कहाँ रहते हैं। वीनस मिल में या पीनस मिल में वे दोनों काम करते हैं।"

दर्शक उसको विस्फारित नेत्रों से देखने लगा। बलवन्त की समझ में नहीं आया कि वह क्यों इस प्रकार उसकी ओर देख रहा है। उसने नम्रतापूर्वक कहा :—"भैया कोई कसूर हुआ हो तो माफ करो। मैं गाँव में रहता हूँ। शहर का कायदा नहीं जानता।"

दर्शक मुस्कराने लगा। उसने पूछा :—"किसको पूछते हो बाबा।"

"बाबा" शब्द में आत्मीयता का बोध था। बलवन्त को साहस हुआ। उसने पुनः कहा :—"भैया, महावीर और सन्तू मेरे दोनों लड़कों का नाम है, जो चार-पाँच साल से यहीं कानपुर में काम करते हैं। उनके मिल का नाम ठीक से याद नहीं रहा, वीनस या पीनस ऐसा ही कुछ नाम था। इसी मुहल्ले का पता मुझे मालूम था, अब कहीं दूसरी जगह रहने लगे हों तो नहीं जानता।"

दर्शक के स्वर से विस्मय झाँक रहा था।

बलवन्त ने खखार कर कहा :—"हाँ भैया, मैं उनका बाप हूँ। बहुत दिन से घर की सुधि नहीं ली, कोई चिट्ठी भी नहीं मिली, इससे खोज-खबर लेने चला आया। तुम्हें मालूम है भैया, कि उनका घर कौन-सी गली में है।"

दर्शक ने हंसते हुए कहा :—"जब तुम महावीर और सन्तू के बाप हो, तो क्या तुम अपनी बहुओं को नहीं पहचानते, या गाँव से आने के बाद उन्होंने शादी की है।"

बलवन्त ने खाँसते हुए उत्तर दिया :—"नहीं भैया, उन दोनों का ब्याह तो मैंने ही किया था। चाँद-सूरज की जोड़ी घर में लाया था। उनके ब्याह में मैंने दिल खोलकर खर्च किया था, जिससे कुछ कर्जदार भी हो गया था। इधर खेती में कई साल से कुछ पैदा नहीं हुआ, इससे कर्जा बढ़ता गया। मगर कर्जा तो किसान-परिवार की शान है। अगर दो-एक फसल पूरी-पूरी उतर आई तो कर्जा बात-की-बात में उतर जाता है, मगर लड़कों का ब्याह क्या बार-बार होता है।"

दर्शक को बलवन्त से बातें करने में आनन्द आ रहा था जैसा कि प्रायः

शहर के रहने वालों को गाँवों वालों से बातें करने में आया करता है।

उसने पूछा :—"क्या उसी कर्ज को अदा करने के लिए अपने लड़कों से मदद माँगने आये हो। तुम्हारा आना शायद इसीलिए हुआ है।"

बलवन्त ने उत्तर दिया :—"नहीं सो बात तो नहीं है। कर्जा तो मैं ही चुकाऊँगा, क्योंकि ऋण तो मैंने लिया है। अगर मर गया तो फिर जरूर उनको ही चुकाना पड़ेगा।"

उस दर्शक की बातें एक दूसरा पास ही खड़ा हुआ दर्शक सुन रहा था। उसने पूछा :—"तो बाबा, तुम अपना बहू और पौत्र से मिलने आये हो।"

बलवन्त ने उसकी ओर देखते हुए उत्तर दिया :—"हाँ, और क्या। बाप की मामता कैसी होती है यह तो तुम जानते ही हो। कहावत है कि पूत कपूत होता है मगर बाप कुबाप नहीं होता। पोता-पोती तो मेरे सामने पैदा हो गए थे, लेकिन बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं। चिट्ठी लिखने से वे आते नहीं और पता भी पूरा-पूरा याद नहीं था, इसलिए चला आया।"

पहले दर्शक ने हँसते हुए कहा :—"बाबा, अब तुम्हारी यात्रा पूरी हो गई है, अब तुम्हें यहाँ से एक पग भी आगे नहीं जाना है। तुम्हारे दोनों लड़के सन्तू और महावीर यहीं रहते हैं।"

बलवन्त ने गठरी अपने सिर से उतारते हुए कहा :—"तो कौन-सा मकान है, भैया। तुम बड़े भले आदमी जान पड़ते हो, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे।"

दर्शक ने आशीर्वाद का आनन्द अनुभव करते हुए कहा :—"बाबा, यही सामने वाला मकान जहाँ वह औरत खड़ी लड़ रही है, महावीर का है, और दूसरा उसके बगल वाला मकान जहाँ दूसरी औरत खड़ी लड़ रही है, वह तुम्हारे सन्तू का है।" बलवन्त चकित होकर उन दोनों मकानों को देखने लगा।

इतने में दूसरे दर्शक ने कहा :—"और जो लड़ रही हैं ये महावीर और सन्तू की घर वाली हैं। यह मैं नहीं कह सकता कि वे लोग वही चाँद-सूरज की जोड़ी हैं, जिन्हें आप लाये थे, जो अपनी चमक से रात-दिन मुहल्ले को रोशन करती रहती हैं, या तुम्हारे महावीर और सन्तू ने शहर में आकर उनको बेंच दिया, और यह नई चाँद-सूरज की जोड़ी बनाई है।"

बलवन्त काष्ठ के सदृश निश्चल होकर वहीं खड़ा रह गया। दोनों दर्शक हँसते हुए चले गए।

१०

सेठ पोपटलाल ने समाचार-पत्र को दिखाते हुए कहा :—"सज्जनो देखिये, हमें इस पत्र के विरुद्ध कार्रवाई करनी है। इसकी आलोचना हमारे

विरुद्ध विद्वेष की भावनाएं उत्पन्न करती हैं ।"

सेठ नेमीचन्द ने लाला कंचनलाल से कहा:—"लीजिये लाला जी, अब आप इनसे निपटिये । मिल-मालिक-संघ के सदस्यों ने सेठ नेमीचन्द और लाला कंचनलाल में मेल करवा दिया था । आपस में बोल-चाल तो अवश्य शुरू होगई थी, किन्तु मन का मैल अभी तक साफ नहीं हुआ था, जो व्यंग्य के द्वारा प्रकट होने का अवसर ढूँढ़ा करता था ।

लाला कंचनलाल ने कहा:—"हूँ, किन्तु आपकी पुरानी दूकान है, मान-प्रतिष्ठा है, बुद्धि-विवेक है, चातुर्य और पटुता है, आपसे अधिक उपयुक्त मैं कदापि नहीं हो सकता ।"

लाला कंचनलाल का स्वर इतना स्पष्ट था कि सदस्यों को चिन्ता होने लगी कि कहीं फिर युद्ध आरम्भ न हो जाय ।

चन्द्रनाथ ने हँसकर कहा:—"आप लोगों से यह काम न होगा । इसको तो मैं ही सुलझाऊँगा । ऐसे पत्रकार प्रायः लोभी हुआ करते हैं, उनमें वे पूँजीपतियों के विरुद्ध लेख इसीलिए लिखा करते हैं, जिससे उनको कुछ रुपये मिल जायं । यद्यपि यह सही है कि हम उन्हें पैसे से खरीद सकते है, किन्तु वह काम स्थायी नहीं होता । शेर की दाढ़ में एक बार खून लग जाने से वह खून पीने का आदि हो जाता है । अतएव हमको दूसरा उपाय काम में लाना होगा ।"

अबदुलमजीद ने कुछ सोचते हुए कहा:—"गुण्डों से जरा सम्पादक की मरम्मत करा दीजिये । होश ठिकाने आजायंगे ।"

चन्द्रनाथ:—"नहीं यह उपाय भी ठीक नहीं है । ऐसा कीजिये कि न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी ।"

पोपटलाल:—"मेरी समझ में तो सबसे उत्तम उपाय है कि इस प्रेस को खरीद लिया जाय, और फिर खरीदने के पश्चात् इसके सम्पादक को निकाल दिया जाय ।"

चन्द्रनाथ:—"इसके अर्थ होंगे कि आप उसके हाथ में नई पूँजी देकर दूसरा प्रेस खुलवाने की सुविधा दे रहे हैं ।"

सेठ नेमीचन्द:—"अब अपना उपाय तो हमारे सामने रखें ।"

चन्द्रनाथ ने सिगार जलाने के बाद कहा:—"उपाय ऐसा है कि पत्र जड़-मूल से नष्ट हो जाय, और सम्पादक जी बड़े घर की हवा खा आयं । यह तो आप लोग स्वीकार करते ही हैं कि इस काम में रुपया खर्च होगा, और रुपये की कोई कमी हमारे पास नहीं है, किन्तु इसी रुपये को एक विशेष रीति से खर्च करने से काम ठीक से होगा । मेरी और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन से मित्रता है । और मुझे यह विश्वास है कि वे मेरी बात कभी नहीं टालेंगे । एक

दिन नियत करके हमें उनको निमंत्रित करके बहुमूल्य उपहार भेंट करने चाहिएं। रिश्वत का रूप न हो, इसलिए हमें उपहार उनकी स्त्री और लड़की को देना चाहिए। इसके पश्चात् मैं उनको इस बात के लिए राजी करूँगा कि वे इस पत्र के विरुद्ध शांति-व्यवस्था भंग करने का अपराध लगाकर पत्र का जीवन समाप्त कर दें, और मुद्रक, प्रकाशक तथा सम्पादक पर मुकदमा चलाकर उन्हें जेल भिजवा दिया जाय।"

सेठ पोपटलाल :—"यह उपाय इतना रामबाण तो नहीं है, जितना कि आप समझते हैं। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के फैसले की अपील हुआ करती है, और मामला हाईकोर्ट तक जा सकता है, जहाँ पर मजिस्ट्रेट की दाल गलाये नहीं गल सकती।"

लाला कंचनलाल :—"लेकिन क्या रुपया हाईकोर्ट के जजों को काटता है।"

सेठ नेमीचन्द :—"रुपया उन्हें काटता नहीं, किन्तु वे प्रायः प्रलोभनों में फँसते नहीं।"

चन्द्रनाथ :—"नहीं, नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हाईकोर्ट में केवल मिसल-मुकद्दमा जाती है, अतएव जब नीचे की कार्रवाई मजबूत होगी तब फैसला नहीं पलटेगा, इसके अतिरिक्त सरकार कभी राजद्रोहियों को सूखा नहीं छोड़ती। लड़ाई का जमाना है, सरकार किसी भी तरह शांति-भंग होने देना नहीं चाहती। इस पत्र से मजदूरों को हड़ताल करने की पूरी उत्तेजना मिलती है। अन्य उपायों की अपेक्षा यह उपाय सर्वोत्तम है। हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है अपने को सुरक्षित रखना, और दुश्मन को मार देना।"

अन्य सदस्यों को अनुमोदन करने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं था।

चन्द्रनाथ ने फिर कहना शुरू किया :—"भाइयो, हमारे सामने परिस्थिति गम्भीर होती जा रही है, और ऐसा मालूम होता है कि हड़ताल निश्चय होगी। हमारे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि मजदूरों ने हड़ताल करने का पूरा निश्चय कर लिया है। उनकी कोई सहायता रुपये-पैसे से कर रहा है, और वह हम लोगों में से एक है, दूसरे शब्दों में वह भी एक पूँजीपति व्यक्ति है। हमें इसका पता लगाना चाहते हैं किन्तु मजदूर-सभा के चोटी के व्यक्तियों के सिवाय कोई उसका भेद नहीं जानता, इसलिए अभीतक इस विभीषण का नाम छिपा हुआ है।"

पोपटलाल :—"सिवाय वामनदास की रखैल की लड़की कनक के दूसरे किसको मजदूर इतने प्यारे हैं।"

सेठ नेमीचन्द :—"एक वही हरामजादी है, जो बहुत फुदकती है। दो-

तीन गुण्डों से उसकी मान-मर्यादा भंग करा दी जाय, फिर वह हमारे मुकाबले में नहीं आयगी। उसको अपनी विद्या-बुद्धि का बड़ा घमंड है।"

चन्द्रनाथ:—"यह तो स्पष्ट है कि वह मजदूरों का नेतृत्व कर रही है, और नगर-व्यापी हड़ताल उसी की बुद्धि की उपज है, किन्तु पैसा उसके पास नहीं है, यह तो मुझे अच्छी तरह मालूम है, क्योंकि मैंने उसको एक पैसा नहीं दिया है, और न उसने लिया ही है। वह बड़ी अभिमानिनी है, वामनदास के पैसे को छूना भी पसन्द नहीं करती है।"

कंचनलाल:—"तब तो शीघ्र ही उसका दर्प नष्ट हो जायगा। वकालत में आजकल धरा क्या है, पेट भरने को भी तो न मिलता होगा। लेकिन है बिलकुल नागिन की बच्ची।"

चन्द्रनाथ:—"लाला जी तुम्हारा ख्याल दुरुस्त है। इसकी माँ बिलकुल नागिन थी, बल्कि उससे भी अधिक भयानक थी। मिजाज की तेजी, रूप, गुण सब अपनी माँ का इसने पाया है। मगर·······।"

पोपटलाल ने बात काट कर कहा:—"आप तो इसकी—माँ को अच्छी तरह जानते होंगे ही, वामनदास इसको कहाँ से लाया था।"

चन्द्रनाथ ने बात टालते हुए कहा:—"इसकी बड़ी लम्बी कहानी है। इसका हाल फिर कभी बतलाऊँगा। लेकिन इतना तो बिलकुल स्पष्ट है कि वह पैसे से इन मजदूरों को मदद नहीं पहुँचा रही है। सूझ-बूझ, रीति-नीति तो अवश्य उसी की है। अभी उस पर हाथ डालने से मामला बिगड़ जायगा। और मजदूरों की कोई हानि नहीं होगी। उसका भी जाल में फाँसने का अकाट्य-उपाय विचार रहा हूँ।"

अब्दुलमजीद:—"पैसे से मदद करने वाला कोई दूसरा आदमी हमारे जान में तो नहीं है। हाँ, मुमकिन है उसका कोई आशिक उसकी मदद कर रहा हो।"

चन्द्रनाथ ने तड़प कर कहा:—"हाँ, यह हो सकता है, किन्तु उसका प्रेमी कौन है, यह भी तो हमें जानना बाकी है।"

पोपटलाल:—"वामनदास के भतीजे देवकीनन्दन का तो इसमें हाथ नहीं है।"

चन्द्रनाथ:—"हाँ, यह सम्भव है। देवकी कुछ पागल-सा आदमी है। वह इस दुनिया की बातों से अधिक दूसरी दुनिया की बातें सोचा करता है। वह तो साधु-संन्यासी हो जाने का विचार करता है। वह कुछ दिन पहले यहाँ आया था, और कनक को अपने साथ ले जाना चाहता था, मगर वह गई नहीं। कनक बड़ी अभिमानिनी है, वह किसी का एक पैसा भी लेना पसन्द नहीं करती। जब

वह देवकी के साथ भी जाने को तैयार नहीं हुई, तब वह गुस्सा होकर चला गया है। रुपए-पैसे से वह मजदूरों की मदद करेगा? विश्वास तो नहीं होता। चाहे जितना बड़ा वैरागी वह हो, लेकिन मजदूरों से उसको भी काम पड़ता है।"

सेठ नेमीचन्द :—"यह समझ में नहीं आता कि वामनदास इसको अपनी सम्पत्ति कैसे दे गया।"

चन्द्रनाथ ने दुःखित स्वर में कहा :—"यह मेरी ही भूल का नतीजा है। वामनदास की इच्छा तो उसको भी एक पैसा देने की नहीं थी, सिर्फ मैंने जोर दिया था कि ऐसा करना अनुचित और अव्यावहारिक-सा प्रतीत होगा। मेरे बहुत समझाने-बुझाने से वामनदास ने उसको कुछ टुकड़े फेंक दिए, लेकिन अब पछताता हूँ। यह मेरी बड़ी भारी भूल थी, व्यर्थ में इतना पैसा एक अकर्मण्य और अयोग्य व्यक्ति को दिला दिया।"

पोपटलाल :—"नहीं चन्द्रनाथ; तुमने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया है, नहीं तो तुम्हें लेने-के-देने पड़ जाते। देवकी को सम्पत्ति का कुछ भाग न मिलना बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत होता, और वह भी तुम्हारा शत्रु हो जाता। दरअस्ल तुमने उसको दिलाया ही क्या। उसके मिलों से कोई विशेष आमदनी वामनदास को न होती थी, क्योंकि उसमें खर्च ज्यादा है, और लाभ कम। इसके अतिरिक्त तुमने अपने रास्ते का काँटा दूर कर दिया। अब जितनी सम्पत्ति तुम्हारे पास है, उसमें कोई दावेदार नहीं है। तुम्हारे इन्तजाम में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। हम लोग क्या इतना भी नहीं समझते।"

अबदुलमजीद :—"बेशक पोपटलाल, तुम्हारा कहना बिलकुल सच है। अगर यहाँ के मजदूरों के भड़काने में देवकी का हाथ है, तो सोचिए कि हमें करना क्या चाहिए? मजदूरों की सभा से जो नोटिस हम सबको मिला है, उसकी माँगों को पूरा करने के सम्बन्ध में आप लोगों की क्या राय है।"

सेठ नेमीचन्द :—"उनको यदि हम पूरा करने जायंगे तो हमारी आमदनी का आधे से अधिक हिस्सा उनको पाकेट में जायगा। इसके अलावा जो सुविधाएं अभी मिल रही हैं, उससे अधिक हम देना नहीं चाहते। हड़ताल करते हैं, करने दो, हड़ताल कितने दिन चलेगी?"

चन्द्रनाथ :—"यों तो हड़ताल बहुत दिन नहीं चल पाती, किन्तु उन्हें जो मदद मिल रही है, उससे उनका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया है। हम उनकी कोई माँग पूरी नहीं करेंगे। सरकार की सहायता से उन्हें कुचल देंगे।"

पोपटलाल :—"तुम तो हमेशा सरकार की सहायता का स्वप्न देखा करते हो। सरकार तो दो-रुखी तलवार है, जो मजदूरों को भी काटती है और हमको भी अछूता नहीं छोड़ती। हमको अपने पैरों पर भी तो खड़े होना चाहिए।"

चन्द्रनाथ:—"आपका कहना बिलकुल ठीक है। हमको सबसे पहले कुछ मजदूरों को अपनी तरफ मिला लेना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह काम आजकल कठिन हो रहा है, किन्तु एक ऐसा दल अब भी है, जिसको हम सहज ही अपने वश में ला सकते हैं। यह तो आप लोगों को मालूम ही है कि मजदूर-सभा नशाखोरी बन्द करने का आन्दोलन कर रही है। नशाखोरी बन्द करके वह मजदूरों के दिल और दिमाग पर अपना आधिपत्य जमाना चाहती है। नशे का आदी इंसान गुलाम होता है—बल्कि उससे भी अधिक वह पशु होता है। नशा एक ऐसा अस्त्र है, जिसके जरिये हम लोग उन पर अपना प्रभाव जमाए रख सकते हैं। सरकार हमें इस विषय में सहायता भी करेगी। हमको उचित है कि हम अपने-अपने मिलों के उन मजदूरों की एक सूची तैयार करायें, जो नशा करने के आदी हैं; और उनको हम अपने खर्च से कुछ दिनों तक पिलायें उनको ही नहीं; वरन् सभी मजदूरों के नशा-पानी का इन्तजाम करें जो पीना चाहते हैं। हमको नशे का प्रचार करना चाहिए, और मजदूरों के बीच में ऐसे चुने हुए आदमी भेजें जो उनको मुफ्त में नशा पिलायें। शराब, अफीम, गाँजा और और चरस इत्यादि ऐसे नशे हैं जो कभी छुड़ाए नहीं छूटते। सरकार की तरफ से जो ठेके नीलाम हों उन्हें हमें खरीद लेना चाहिए, और उनकी दूकानें हमें अपने मिलों के निकट खुलवा देनी चाहिएं. जहाँ नशा मिलने का पूरा प्रबन्ध हो। पहले कुछ दिनों तक हमें मुफ्त में नशा बाँटना चाहिए, और जब वे नशा करने के आदी हो जायंगे, तब वही हमारी अतिरिक्त आमदनी का द्वार हो जायगा। जो पैसा हम उनको मजदूरी में देंगे उसको भी नशे के द्वारा घसीट लेंगे, इस तरह से वे हमेशा पैसे से लाचार रहेंगे, और फिर हमें मजदूरों की कमी का सामना कहीं करना पड़ेगा। नशाखोर को नशा मिल जाने पर वह किसी की परवाह नहीं करता, औरत-बच्चे परिवारादि सबको वह नशे की वेदी पर चढ़ाने के लिए तैयार और तत्पर दिखाई पड़ता है। अतएव नशाखोर हमारा ब्रह्मास्त्र है, जिसकी काट किसी के पास नहीं है।"

अब्दुलमजीद ने प्रसन्नता से मेज पर हाथ पटकते हुए कहा:—"खूब सोचा है चन्द्रनाथ, मैं मन्जूर करता हूँ कि इस तरकीब से हम मजदूरों के प्यारे भी बने रहेंगे, और हड़ताल का किस्सा हमेशा के लिए बन्द हो जायगा। एक बार इंसान इसका आदी हुआ नहीं कि वह इसको कभी नहीं छोड़ सकता। अगर इंसान के दिल-दिमाग पर कब्जा करना है तो वह नशे के जरिए ही हो सकता है। तभी तो हमारे मजहब में नशाखोरी कतई बन्द है।"

पोपटलाल:—"नशाखोरी तो दुनिया के सभी धर्मों में बन्द है परन्तु हम को तो अपना नया धर्म चलाना है, जिसमें नशाखोरी का पुण्य सबसे अधिक

है। उससे जो फायदा हम उठायेंगे, वह किसी अन्य उपाय से नहीं उठा सकते। मैं इस योजना का समर्थन बड़ी प्रसन्नता से कर रहा हूँ। ठेके लेने का काम बहुत जल्द शुरू करना चाहिए।"

कंचनलाल ने पगड़ी बाँधते हुए कहा:—"बहुत अच्छी योजना है। मैं अपने मिल के नशा करने वालों की फेहरिस्त बनवाऊँगा, और कई मजदूरों को इसके लिए तैयार करूँगा जो नशे का प्रचार करें। ताड़ी हमारी स्कीम में नहीं है, इसका भी तो प्रबन्ध होना चाहिए।"

चन्द्रनाथ:—"जो नशे मैंने बताये हैं, वे सब उदाहरण रूप में बताये गए हैं। कोकीन भी मिलने का प्रबन्ध हमें करना चाहिए यद्यपि सरकारी तौर पर उस पर निषेध है, किन्तु ये निषेध हमारे लिए नहीं हैं। पूँजी के द्वारा वह हमें उपलब्ध हो जायगी। यदि कोकीन का प्रचार हो जाय तो फिर मजदूरों को आप खूँटे से बाँध लेंगे। वह फिर कभी इधर-उधर भटक नहीं सकते। सब मजदूर एक ही नशा नहीं पीते, तरह-तरह के नशे हैं, और हमें सबका प्रचार करना है। मदक और चण्डू पीने के लिए ऐसे अड्डे बनवाइये जिन्हें वे सुलभता से प्राप्त कर सकें। हमारी योजना उसी समय कारगर होगी जब पुलिस हमारे कब्जे में हो। पुलिस तो रुपयों की गुलाम होती है, कोतवाल से सिपाही तक की तनख्वाहें बाँध दीजिए। नशाखोरी के प्रचार-अन्दोलन के बाद जुआ भी खिलाने का हमें प्रबन्ध करना होगा, बहर हाल हमें इस तरह से उन्हें अपना गुलाम बनाना है। आदमी जितनी शीघ्रता से कुप्रवृत्तियों द्वारा वशीभूत होता है, उतना और किसी प्रकार नहीं।"

मिल-मालिक-संघ के सदस्यों ने उठते हुए कहा:—"बस आपकी इस योजना से हम अवश्य ही विजयी होंगे। मजदूरों का नैतिक स्तर तो निम्न होता ही है। थोड़े ही प्रयास से हमें सफलता मिलेगी।"

शैतान अपनी सन्तानों को आशीर्वाद देने लगा।

११

महावीर और सन्तू वीनस मिल से निकले, और सदा की भाँति दोनों भाई साथ-साथ जाने लगे। उनके आगे-पीछे दूसरे मजदूर भी जा रहे थे, जो आपस में नशाबन्दी की चर्चा कर रहे थे।

उसमें से एक ने पूछा:—"कहो महावीर, अब तो तुमको भी दारू पीना बन्द करना पड़ेगा।"

सन्तू ने कहा:—"मैं तो पीऊँगा। मैं कोई सभा का मेम्बर नहीं हूँ, और न किसी सभा की बात को मानने को तैयार हूँ। मेरे मन की मौज है, मैं किसी की बात मानने के लिए मजबूर नहीं हूँ।"

उनके साथ दल्ली ने हँसकर कहा :—"अच्छी बात के आगे आदमी को कायल होना ही पड़ता है। मजदूर-संघ कांग्रेस की एक शाखा है। कांग्रेस और महात्मा गाँधी नशा पीने की मनाही करते हैं। हमारी नेत्री कनक जी ने भी नशा बन्द करने की बात कही है। ये हमारे शुभचिन्तक हैं। हमारे हित के लिए अपनी जान होम कर रहे हैं। उनकी बात मानना हमारा धर्म है और फिर वे जो कुछ कहते हैं हमारे लाभ के लिए कहते हैं। दारू पीने में पैसा फिजूल खर्च होता है, वही पैसा बचेगा तो हमारे बाल-बच्चों के काम आयगा। हम बड़े आराम से रहेंगे।"

सन्तू ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा :—"हाँ, बड़े शुभचिन्तक हैं। शुभचिन्तक तो मैं उसका कहता हूँ जो हमें दारू पिलाय। असली बात यह है कि कुछ लोगों को हमारा सुख से रहना फूटी आँखों नहीं सुहाता, इसीलिए वे बातें-घुमा फिराकर कहा करते हैं। कहावत है कि बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद। जिसने दारू पी ही नहीं, वह उसका मजा क्या जाने? देवता भी जब दारू पीने के लिए तरसते हैं, तब आदमी की क्या बिसात है। रही कांग्रेस की बात; वह तो सदा से मजदूरों की दुश्मन है। लोग उल्टी-सीधी बातें करके हमको उल्लू बनाते हैं, और पाकेट अपनी गरम करते हैं। कांग्रेस क्या अपने घर से खर्च करती है। अगर ऐसा न करें तो उनको रुपया कौन दे। मैं कांग्रेस-वांग्रेस एक नहीं मानता।"

एक दूसरे मजदूर ने कहा :—"मेरा भी यही मत है सन्तू। बेलौस होकर दुनिया में कोई काम नहीं करता। हमसे कांग्रेस वालों का जरूर कोई फायदा होता होगा, तभी वे हमारे पीछे पड़े हैं। नहीं तो सेंत-मेंत में कोई अपना खून पानी नहीं करता। मेरी समझ में बात यह आती है कि ठेकेदारों से कांग्रेस का झगड़ा हो गया है, इसलिए कांग्रेस ठेकेदारों के ग्राहक तोड़ती है, और उनको नुकसान पहुँचाना चाहती है।

दल्ली ने हँसकर कहा :—"वाह, क्या दूर की कौड़ी लाये हो मनभावन जब पिये नहीं हो तब तो यह सूझ है, और जब घोड़े पर सवार हो जाओगे तब तो किसी को छुआई न दोगे। अरे कांग्रेस को तो बनाने वाले हमी सब हैं। वह कोई मिल-मालिकों का गिरोह नहीं है, जो हमारा खून पीना चाहते हैं। हम लोगों की नशा पीने की आदत हमको और हमारे बाल-बच्चों को भूखों मार रही है। सन्तू के ही घर का हाल जरा देखो। आप तो नशे के पीछे दीवाना हो रहा है, और घर वाली चीथड़े लगाये घूमती है, लड़की मुरैला घर-घर माँगती खाती है। बाप······।"

सन्तू ने गर्ज कर कहा :—"बस चौधरी, अब एक बात मुँह से बाहर न

निकालना। घर वाली कुलच्छणी है, जब से यह घर में आई है, घर तबाह हो गया है। रात-दिन का झगड़ा भी तो किसी-न-किसी को खायगा। हाँ; अब मुझे मालूम हुआ, तुम्हीं लोगों ने बहकाकर उसको मुझसे फिरंट कर दिया है। आज ही मालूम हुआ कि दोनों घर-घर माँगती फिरती हैं। दोनों को निकालकर ही दम लूँगा।"

महावीर ने शांत करते हुए कहा :—"चुप रहो सन्तू। सुनना सबकी, करना मन की। चौधरी ही क्यों, दुनिया ही औरतों का पक्ष लेता है। सब कसूर मर्दों का ही होता है। अगर बहलाने के लिए हम लोग एक-आध प्याली पी लेते हैं, तो वह सबको खटकेगी ही।"

दल्ली ने कहा :—"देखो भाई बुरा मानने की बात नहीं है। तुम्हारे घर की हालत देखकर कहना पड़ता है कि जरा ठण्डे दिमाग से सोचो कि तुम्हारी एसी हालत क्यों है। तुम्हारी तनख्वाह का ज्यादा हिस्सा ठेकेदार की जेब में जाता है, जो तुमको पानी मिली शराब बेचता है। जब तुम्हारा वेतन ठेकेदार के यहाँ जाता है तब घर-खर्च के लिए पैसा कहाँ से आयगा। घर वाली जो तुमसे लड़ती है, वह इसलिए कि जो पैसा तुम शराब पीने में खर्च करते हो, वह बचाओ, और, घर के काम में लगाओ। दारू पीकर तुम हैवान बन जाते हो, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, और तब तुम उसको मारते-पीटते हो। नतीजा यह होता है कि मुहल्ले वालों का भी सोना हराम हो जाता है। सब लोग दारूखोर कहकर पुकाने लगते हैं। दारू आदमी की आब उतार लेती है। बिना आब का आदमी घर-घर बे-आबरू होता है। कोई एक पैसा उधार नहीं देता; क्योंकि दारूखोर का कोई विश्वास नहीं करता। दारू वह जहर है जो धीरे-धीरे आदमी की जान लेता है फिर इसका स्वाद भी तो कडुवा होता है। प्रकृति ने नशे की सारी वस्तुएं कड़वी बनाई, इसलिए कि आदमी उनको न पिये और न खाये। जानवरों को देखो, कोई नशीली चीजें नहीं खाते। फिर हम लोग तो आदमी हैं, इसके गुणों को जानते-बूझते हैं, और आँखों से देखते हैं। फिर भी अगर हम नशे को मुँह लगायं तो इसमें हमारी ही तो बरबादी है।"

सन्तू ने मुँह मटकाकर कहा :—"आये बड़े बरबादी वाले। गुर्च भी तो कड़वी होती है, फिर उसे क्यों खाते हो। करेला भी तो कडुवा होता है; मगर उसका साग सब खाते हैं। अमृत भी तो कड़वा होता है, और भाई असल में दारू ही अमृत है, असली अमृत है। अरे, ये कुछ नहीं। मैं नहीं मानता इन बातों को। दादा, आओ चलें, एक-एक कुज्जी पियें, तब जी ठिकाने होगा।"

महावीर आगा-पीछा करने लगा।

दल्ली ने कहा :—"सुना है सन्तू, सभा की तरफ से डुग्गी पीटी गई

है कि जो कोई नशा पियेगा उसका बिरादरी में चलन, हुक्का-पानी बन्द कर दिया जायगा। हम लोग तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।"

सन्नू ने गरजकर कहा:—"मैं तुमसे कौन सम्बन्ध रखना चाहता हूँ। मैं तो तुम लोगों में शामिल रहना ही नहीं चाहता। तुम लोग बहकाकर मेरी घरवालों को मुझसे लड़ाते हो; क्या मैं यह नहीं समझता? तुम्हारा रास्ता अलग है, और मेरा अलग। दादा, चलते हो कि नहीं।"

मनभावन ने सन्नू का हाथ पकड़ते हुए कहा:—"जाने दो महावीर को आओ हम तुम चलें। आज मैं तुम्हें अपने दामों से पिलाऊँगा।"

सन्नू और मनभावन दोनों ठेके के अन्दर घुस गए। दल्ली और महावीर नहीं गये।

रास्ते में दल्ली ने कहा:—"महावीर तुम मेरा कहना मानो, दारू पीना छोड़ दो। तुम्हारे आगे दो बच्चे हैं, बूढ़ा बाप घर में आया हुआ है, और रोज-रोज हाय-हाय हुआ करती है। क्या धरा है दारू में। मर्द हो हिम्मत करके छोड़ दो।"

महावीर:—"हाँ चौधरी, मेरा मन भी यही कहता है। अच्छा बताओ हड़ताल की बहुत चर्चा हो रही है। क्या इरादा है?"

दल्ली:—"हड़ताल करेंगे, और क्या इरादा है। सभा का जो हुक्म होगा वह हमें मानना ही पड़ेगा। सभा जो कुछ करती है, हमारी भलाई के लिए करती है। मिल-मालिक तो खुद लम्बा-लम्बा मुनाफा खाते हैं, और हमको कुछ देते नहीं। उस दिन गोली चलाई गई, जिसमें मेरा भाई भी मारा गया। क्या करें, सरकार से लाचार हैं, सरकार भी उनका ही साथ देती है। हमारी इज्जत-आबरू भी तो मिल-मालिकों के मारे नहीं बचने पाती। रामनाथ की स्त्री को चुरवा मँगाया, और फिर उसको फाँसी भी दी जा रही है। जब सरकार भी हमारी नहीं सुनती, तब तो उपाय हमें ही करना पड़ेगा। इन्हीं सब बातों के लिए हड़ताल की जारही है। कल सभा में कनक जी का भाषण हुआ था। सुनने लायक था। तुम सभा के मेम्बर नहीं हो क्या?"

महावीर:—"नहीं, मैं यह पूछता हूँ कि कि हड़ताल करेंगे तो खायंगे क्या?"

दल्ली:—"हमारे खाने-पीने का प्रबन्ध सभा करेगी। हाँ, नशा-पानी नहीं पिलायगी, और पिलाना भी नहीं चाहिए। कोई आदमी हड़ताल की वजह से भूखों न मरने पायगा। किसी देवता ने हमारी सभा को लाखों रुपये दे दिये हैं, हमारा खर्च बराबर चलता रहेगा। अगर हड़ताल एक महीना भी चली गई तो मिल-मालिकों की बुद्धि ठिकाने आ जायगी। कनक जी का कहना है कि तुम

लोग शांत रहना, किसी के बहकावे में आकर दंगा-फिसाद न करना, फिर हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

महावीर :—"क्यों, सरकार न बोलेगी, वह तो उनके कहने से गोली चलाती है, और जो-जो नाच वे नचाते हैं, वह नाच सरकार नाचती है।"

दल्ली :—"तभी तो कनक जी कहती हैं कि उकसाने पर भी झगड़ा न करो, जब तक हम लोग शांत रहेंगे तब तक सरकार को गोली चलाने का मौका न मिलेगा। सभा-जुलूस सब बन्द रहेंगे। हड़ताल जिसमें सफल हो, इसीलिए नशाखोरी बन्द हो रही है।"

दल्ली का घर आ गया था। उसने घर के सामने ठहरकर कहा :—"भाई महावीर, दारू पीना छोड़ दो। मेरी बात मानो, इसमें तुम्हारा फायदा ही होगा।"

महावीर ने जाते हुए कहा :—"नहीं चौधरी, अब नहीं पिऊँगा। बापू भी रोज यही समझाते हैं, घर में भी रोज-रोज हाय-हाय होती है, और फिर तुम लोग भी हमारा बायकाट करोगे, तो ऐसी हालत में मैं अकेला ही क्या करूँगा। सन्तू को समझा-बुझाकर रास्ते पर लाना है।"

दल्ली :—"सन्तू की फिक्र तुम मत करो। आज नहीं तो कल वह हमारी बात मानेगा ही। कहाँ जायगा?"

यह कहकर दल्ली अपने घर चला गया। महावीर अपने घर की ओर जाने लगा। थोड़ी दूर जाकर उसने सिर घुमाकर देखा, दल्ली कहीं दिखाई न पड़ता था, तब वह एक गली से घूमकर पीछे लौटा, और दौड़ता हुआ सीधे ठेके पर जाकर ठहरा। दूकान के अन्दर उसने सन्तू और मनभावन को पीते देखा।

मनभावन ने उसे बुलाकर कहा :—"आओ महावीर, तुम आ गए। दल्ली को कहाँ छोड़ आये। बड़ा सभा वाला बना है। पीना है तो आओ, आज मैं पिला रहा हूँ।"

सन्तू ने पकौड़ी खाते हुए कहा :—"क्या अच्छी पकौड़ियां बनी हैं, जो नशे की कड़वई को सोख रही हैं। मनभावन आज अनन्नास की पिला रहा है, क्या खुशबू है, क्या जायका है।"

महावीर ने प्याली भरते हुए कहा :—"चौधरी को जरा उल्लू बनाया था, इसीलिए उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता चला गया। इसको कौन छोड़ सकता है? मैं तो एक घूँट के लिए सारी जिन्दगी बेंच दूँ।"

मनभावन :—"बेशक, यह चीज ही ऐसी है। तुम्हीं बताओ. दिन-भर तो मिल में मरें, अब जरा तबियत भी ताजी न की जाय तो जिन्दा कैसे रहें।"

सन्तू ने जोश में कहा :—"भोंकने दो कुत्तों को। क्या कर लेंगे? जो

बहुत चीं-चपड़ करेंगे, तो जमाऊँगा एक लट्ठ; किसी दिन भेजा निकल जायगा। अभी तक किसी से काम नहीं पड़ा है।"

मनभावन :—"देखो भाई सन्तू और महावीर ! मैं एक बात तुमको बताता हूँ, लेकिन किसी से कहना नहीं।"

सन्तू और महावीर ने एक स्वर में कहा :—"अरे, हम लोग क्या ऐसे-वैसे हैं। आध सेर आटा जब हजम कर जाते हैं, तब क्या एक बात हजम नहीं कर सकेंगे?"

मनभावन :—"देखो हमारे नये मालिक बड़े दयालु हैं। वे हमारी तकलीफों को समझते हैं। उन्हें यह पूरा-पूरा ख्याल है कि हमारे मिल में मजदूरों को कोई तकलीफ दुःख न होने पाय। इस वास्ते उन्होंने हमारे नशे-पानी का बन्दोबस्त किया है। आज मुझसे कल्लू मिस्त्री कह रहे थे कि मजदूर-सभा मजदूरों का नशा-पानी बन्द कराकर उनसे पैसा लेना चाहती है, और जो थोड़ा-बहुत आराम उन्हें मिलता है, वह न मिलने पाय, इसकी कोशिश हो रही है। इस वास्ते हमारे मालिक साहब उन सब मजदूरों को दस रुपये माहवार तनख्वाह से अलग सिर्फ हमारे नशे-पानी की सुविधा के लिए दिया करेंगे। थोड़े दिनों में ठेका भी मिल के पास खुल जायगा, जहाँ मजदूरों को छुट्टी के बाद शराब, ताड़ी, गाँजा, चरस, चण्डू, मदक सभी पीने को मुफ्त मिला करेंगे। दाम भी नहीं देना पड़ेगा। देखो हमारे मालिक कैसे दयावान हैं। भला बताओ, दूसरा कौन इतनी रकम खर्च करेगा।"

सन्तू ने उछलकर कहा :—"क्या यह सच है?"

मनभावन ने सन्तू की प्याली को भरते हुए कहा :—"नहीं तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ। मेरी क्या हिम्मत थी कि मैं पूरी एक बोतल खोल लेता? यह तो हमारे मालिक की ही मेहरबानी है। हाँ, तो कल्लू से बातें हो ही रही थीं कि हमारे मालिक, भगवान् उन्हें हजार वर्षों की जिन्दगी दे, वहाँ आ गए, और हँसकर बोले :—"क्यों चौधरी नशा-पत्ती का क्या हाल है। लो यह दस रुपये। तुम भी पियो और अपने पीने वाले साथियों को पिलाओ। तुम लोग किसी बात की फिक्र मत करो। मजदूर हमारे बाल-बच्चे हैं, वे हमें जान से ज्यादा प्यारे हैं। उनकी तकलीफ आराम हमारी तकलीफ-आराम है। तुम जी खोलकर पियो और साथियों को पिलाओ। तुम्हारे नशे-पानी के लिए मैं अलग से अलाउन्स दूँगा। यह कहकर उन्होंने दस रुपये का नोट मेरे पास फेंक दिया। मैंने उठाकर उन्हें सलाम किया। वे हँसते हुए चले गए। भाई, यह वही रुपया है। दरअसल मैं नहीं हमारे मालिक पिला रहे हैं।"

महावीर ने शराब पीते हुए कहा :—"देखो इन सभा वालों की अक्ल मारी गई है, ऐसे मालिक के खिलाफ हड़ताल करना चाहते हैं। भाई मैं तो हड़ताल में

शामिल नहीं होने का।"

मनभावन:—"यहाँ कौन होता है? मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, या पागल हो गया हूँ। तभी तो इन लोगों से मेरी नहीं पटती।"

सन्तू ने दूसरी बार प्याली भरते हुए कहा:—"हड़ताल करने वालों का मैं सिर फोड़ दूँगा। ऐसे दयावान मालिक का जहाँ पसीना गिरेगा, वहाँ हम अपना खून बहायंगे।"

मनभावन:—"शाबाश बहादुर, हमको भी डटकर काम करना चाहिए, और अपनी एक सभा बनानी चाहिए। कल्लू मिस्त्री भी यही बात कहते थे।"

सन्तू और महावीर ने कहा:—"बेशक, बेशक हमको अपनी सभा बनानी चाहिए, अरे ये कुत्ते हमारा क्या कर लेंगे। हमको काम करने से कौन रोक सकता है।"

मनभावन ने प्याला पीते हुए कहा:—"हम अपने मालिक के नौकर हैं, मालिक के लिए प्राण देंगे। हमें कौन रोक सकता है।"

मदिरा का सरूर चढ़ रहा था, तीनों आपे से बाहर होकर मजदूर-सभा और हड़ताल करने वालों को गालियाँ देने लगे। मदिरा और गालियों में चोली-दामन का साथ है।

१२

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन चाय पीने के लिए प्याला अपने होठों तक ले ही गए थे कि अर्दली ने चिक उठाकर झाँका, और उनको चाय पीते देखकर पीछे लौट पड़ा पामीला भी पास ही बैठी चाय पी रही थी। उसने भी उसे देखा, और प्याला नीचे तश्तरी पर रखते हुए कहा:—"पापा, मिस्टर चन्द्रनाथ को भी चाय पीने के लिए बुलाया कीजिए।"

मिसेज़ निक्सन ने हँसते हुए कहा:—"जबसे चन्द्रनाथ से तुमको जेवर मिले, तबसे तू उनकी ही याद किया करती है।"

मिस्टर निक्सन ने कुछ गम्भीर होकर कहा:—"पामी, आज मैं तुम्हारी माँ के सामने कुछ बातें बताना चाहता हूँ, उन्हीं पर तुम अमल करो, यही मेरी इच्छा है।"

गृहपति की गम्भीरता ने दोनों को प्रभावित किया।

मिस्टर निक्सन कहने लगे:—"हम लोग अंग्रेज हैं, और आज दो सौ वर्षों से यहाँ पर राज्य कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य केवल एक है—वह यह कि भारत की धन-सम्पत्ति को छल-बल-कौशल से हथियाकर ले जाना इंग्लैंड की समृद्धि का एक विशेष कारण भारतवर्ष की अपार सम्पत्ति है। किन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस महायुद्ध के पश्चात् हमको यह देश त्यागना पड़ेगा, क्योंकि हर-

एक कार्य की एक अवधि हुआ करती है। वास्तव में यह महायुद्ध बृटेन की अधिकार-सत्ता को नष्ट तथा छिन्न-भिन्न करने के लिए ही आरम्भ हुआ है, और महायुद्ध के पश्चात् उसको महान् संकट का सामना करना पड़ेगा। उस संकट काल में ही बृटेन के प्रदेश उससे स्वयमेव अलग हो जायंगे। महान् आर्थिक संकट उपस्थित होगा। हमारी रक्षा करने वाला उस समय कोई न होगा। क्योंकि योरुप ध्वस्त हो जायगा और एशिया का कम्यूनिज्म अथवा साम्यवाद प्रबल होकर संसार को निगल जाने के लिए अग्रसर होगा। उस समय बृटेन को अपने जीवन के लिए अमेरिका का मुख निहारना पड़ेगा। अमेरिका अपनी पूँजी से संसार के ध्वस्त राष्ट्रों की रक्षा करेगा, और बृटेन को भी आर्थिक सहायता देकर रूस के कम्यूनिज्म से लड़ने के लिए तैयार करेगा। एक-से-एक घातक, जन-समूह संहारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण होगा, और एक बार रूस और अमेरिका फिर रण-प्रांगण में उतरेंगे। उस तीसरे महायुद्ध में बृटेन की अवशेष सत्ता भी नष्ट हो जायगी।"

मिस्टर निक्सन ने चाय का प्याला उठाकर दो एक घूँट पिया, और फिर कहने लगे :—"मैं बहुत आगे जा रहा हूँ, शायद तुम लोग मेरी चेतावनी को पागल का प्रलाप न समझती हो, परन्तु नहीं, जो कुछ मैं समझ रहा हूँ, वही बयान किया है। दो और दो मिलकर चार होते हैं, इसी प्रकार होने वाली घटनाओं की गतिविधि देखकर मैं इस निर्णय पर पहुँच रहा हूँ। मैं स्वयं सोच रहा हूँ कि मेरी कैसे रक्षा होगी, तुम लोगों की कैसे रक्षा होगी ? अपनी रक्षा का सतर्क प्रबन्ध हमें अभी से करना है। भारतवर्ष में अभी भी इतनी सम्पत्ति है कि यहाँ पर रहने वाले अंग्रेज यदि सतर्क होकर उसको हथिया लें तो कम-से-कम दो एक पीढ़ी तक वे आराम से रह सकते हैं, कम-से-कम आर्थिक संकट का उन्हें सामना नहीं करना पड़ेगा। मेरा सारा प्रयत्न इसी ओर है। मैं प्रत्येक उपाय से पूँजी इकट्ठा करने के पक्ष में हूँ। हमारा जीवन केवल पूँजी की स्थिरता और उसके बाहुल्य पर निर्भर करता है, क्योंकि पूँजी में सर्व प्रकार के भौतिक रोगों के कीटाणु नष्ट करने की सामर्थ्य है। पूँजी एक ऐसा बल है जिसके द्वारा सभी आपत्तियाँ दूर की जा सकती हैं। इसलिए हमारे सामने केवल पूँजी की उत्तरोत्तर वृद्धि करना ध्येय होना चाहिए। जब मनुष्य के सामने किसी उद्देश्य की पूर्ति का प्रश्न रहता है, तब वह उपायों की वैधता या अवैधता पर दृष्टिपात या विचार नहीं करता है। यदि वह उपायों का निरूपण करने लगे, तो फिर उसका उद्देश्य उनकी दुरुहता में उलझ जायगा, जिससे उद्देश्य की पूर्ति इच्छानुसार असम्भव हो जायगी। जब मनुष्य के सामने जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित होता है, तब जीवन-रक्षा के लिए गर्हित और श्रेष्ठ सभी कार्य करने पड़ते हैं।

हमारे यहाँ कहावत भी है :—"युद्ध और प्रेम में प्रत्येक उपाय उत्तम है।" इसका अर्थ यही है कि उद्देश्य-प्राप्ति को मुख्य और उपाय को गौण समझना चाहिए। यही राजनीति है, और इसी कूटनीति के कारण हम संसार में तीन सौ वर्षों से शासन करते आ रहे हैं।"

मिस्टर निक्सन विश्राम लेने के लिए पुनः पीने लगे। पामीला और मिसेज़ निक्सन अभी तक उनके संकेत का भेद नहीं जान पाई थीं। वे स्थिर दृष्टि से उनकी ओर देख रही थीं।

मिस्टर निक्सन ने उनके मनोभाव को समझकर कहा :—"तुम लोग अभी तक मेरी बातों का अर्थ और संकेत नहीं समझीं। देखता हूँ कि स्पष्ट रूप से मुझे कहना पड़ेगा। भाग्यवश मेरी नियुक्ति कानपुर नगर में है, जो इस प्रान्त के पूँजीपतियों की राजधानी है। हमको इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए, क्योंकि अवसर जीवन में एक ही बार आते हैं। जो अवसरों से लाभ उठा लेता है, सफलता उसके चरण चाटती है। अतएव मैं भी सभी वैध तथा अवैध उपायों से धन-संग्रह के उद्योग में लगा हुआ हूँ। मैं धन-प्राप्ति के लिए सब-कुछ करने को तैयार रहता हूँ, किन्तु मेरी प्रत्येक सहायता अथवा काम का एक निश्चित मूल्य होता है। निकट भविष्य में ही पूँजीपतियों और मजदूरों से संघर्ष होने जा रहा है। हमारी सरकार की नीति भी पूँजीपतियों की सहायता करना है, अतएव मुझको मेरे काम में और सहायता मिल गई। धन की प्राप्ति पूँजीपतियों के द्वारा हो सकती है। यहाँ के पूँजीपतियों में चन्द्रनाथ का प्रमुख स्थान है, और दर अस्ल वह मेरी ही सहायता से महान् पूँजी का स्वामी बना है। इसकी सहायता करके मैंने अच्छी खासी रकम पैदा कर ली है, और उसे इंग्लैंड के बैंकों में भेज दिया है। उस दिन चन्द्रनाथ ने कृतज्ञता स्वरूप ही वे आभूषण तुमको दिए थे, जिन्हें तुम भावावेश में अस्वीकृत कर रही थीं। यह तुम नहीं जानतीं कि वह तुम्हें क्यों इतने बहुमूल्य आभूषण दे रहा है, इसलिए कि उसको अब भी मेरी सहायता की आवश्यकता है। यों तो वह भी संसार का एक अद्भुत, सक्षम, प्रखर बुद्धि वाला महान् षड्यन्त्रकारी है, किन्तु उसके हाथ में राजसत्ता नहीं है जिससे वह पंगु है। इस कमी को वह मेरे द्वारा पूर्ण करना चाहता है, और मैं उसकी पूँजी के लोभ से उसकी सहायता करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं उसकी सारी पूँजी पर धीरे-धीरे अपना अधिकार जमा लूँ। इस उद्देश्य की पूर्ति में पामी, मेरी अनुपम सहायक हो सकती है। मृत वामनदास की लड़की कनक पर उसकी दृष्टि है। वह उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है, किन्तु वह उससे उतनी ही घृणा करती है, जितनी कि एक स्त्री कर सकती है। वास्तव में पूँजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष के मूल कारण भी दोनों की प्रतिद्वन्द्विता

और घृणा है। चन्द्रनाथ पूँजीपतियों का नेता है, और कनक मजदूरों की। हमको भी इसी विभेद के अनुसार अपने को विभक्त कर लेना चाहिए। मैं चन्द्रनाथ का पक्ष ग्रहण करूँगा, और तुम कनक का। कनक को राजकीय सत्ता की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी, और वह स्त्री होने के नाते तुम्हारी शरण में आयगी, कि एक जैसे बार वह अभियुक्त रामनाथ से उसकी स्त्री के साक्षात् कराने के लिए तुम्हारे पास आज्ञा दिलाने के लिए आई थी, और मैंने तुम्हारे कहने से उसको अनुमति प्रदान कर दी थी। कनक तो हमारे शतरंज की बाजी में 'कुईन' है। उसको इस्तैमाल केवल चन्द्रनाथ को रौंदने के लिए किया जायगा, क्योंकि पूँजी का स्वामी वह है न कि कनक। जब आवश्यकता होगी तब हम लोग कनक को सहायता प्रदान कर बलशाली बना देंगे, और तभी चन्द्रनाथ अपनी पूँजी हमको देगा। वास्तव में खिलाड़ी हम हैं, और ये लोग तो मेरी शतरंज की मोहरें हैं। केवल हमको सतर्कता से चालें चलनी चाहिएं। यदि तुम अपनी बुद्धि का थोड़ा भी उपयोग करो तो तुम भी चन्द्रनाथ से लाखों रुपए की सम्पत्ति अनायास ही प्राप्त कर सकती हो, क्योंकि प्रत्येक स्त्री को मालूम रहता है कि पुरुष का सबसे कमजोर स्थान क्या है। चतुर स्त्री केवल बातों के जमा-खर्च से पुरुष को मूर्ख बनाए रख सकती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह अनुचित है, किन्तु हमारे उद्देश्य पूर्ति के लिए उचित है। तुम्हारी माँ इस विषय में तुम्हें विस्तार से बता सकेंगी।"

प्याले की चाय ठंडी हो गई थी, उसको दूर रखते हुए उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया :—"अभी तक मैंने तुम लोगों को कुछ न ही बताया था, क्योंकि समय परिपक्व नहीं हुआ था। अब समय आ गया है कि तुम लोग भी मेरे काम में सहायता करो। चन्द्रनाथ का आना-जाना अवश्य किसी कारण से हुआ करता है। तुम भी चन्द्रनाथ से अपनी घनिष्ठता बढ़ाओ और उसको विश्वास दिलाओ कि तुम उसकी सहायता करोगी। उससे बातें करते समय कनक की चर्चा छेड़ दिया करो, क्योंकि इससे तुमको अपने काम में सहायता मिलेगी।"

फिर अपनी स्त्री की ओर संकेत करके कहा :—"अगैथा तुम तो अवश्य ही मेरा तात्पर्य समझ गई होगी। पामी को शिक्षित करने का भार तुमको सौंपता हूँ। चन्द्रनाथ अभी आता होगा, देखो वह अछूता न जाने पाय। लाख-पचास हज़ार पर हाथ फेर दो।"

मिस्टर निक्सन की पत्नी अगैथा, निक्सन ने कहा :—"सैमुएल, तुम आजकल बड़े कूटनीतिज्ञ हो रहे हो।"

मिस्टर निक्सन ने उठते हुए कहा :—"पूँजी तो केवल कूटनीतिज्ञता और दूसरों के भाग्य को हरण करने से उत्पन्न हुआ करती है। यदि समभाव

से धन वितरित होने की व्यवस्था हो तो फिर पूँजी का नाश ही हो जायगा। पूँजी का जन्म तो दूसरों के शोषण से होता है और शोषण वही कर सकता है जो कूटनीतिज्ञ हो। जो जितना अधिक कूटनीतिज्ञ होगा, वह उतना ही बड़ा पूँजीपति होगा। सत्य और न्याय का स्थान पूँजी के लोक में कहीं नहीं है, इसीलिए प्राय: यही देखा जाता है कि सत्य और न्याय पर चलने वाले सदैव पूँजी-विहीन होते हैं। सत्य और न्याय कूटनीतिज्ञ की चालें हैं—अस्त्र हैं, जिनके द्वारा वह संसार के मनुष्यों का रक्त शोषण करता है। इसका पाठ पढ़ाकर वह अपना उल्लू सीधा करता है। सत्य और न्याय की व्याख्या केवल मुँह से की जाती है, किन्तु कार्य रूप में पूँजीपति कभी नहीं लेता। उसका उद्देश्य है, सदैव दूसरों को देना हमारा परम कर्त्तव्य है, और जब पूँजी मिलती हो, तब उनको कुछ देर के लिए आलमारी में बन्द कर देना चाहिए, उसी प्रकार से जैसे बगुला सदा ध्यानावस्थित रहता है, किन्तु मछली को देखते ही वह अपनी नीति थोड़ी देर के लिए भूल जाता है, और उसे खाकर पुन: अपनी पूर्व नीति पर आचरण करने लगता है। तुम स्वयं समझदार हो, और अधिक क्या कहूँ। पामी को अपने सदुपदेशों से इसकी भावुकता नष्ट कर संसार के कार्य-क्षेत्र की एक खिलाड़िन बनाओ। अब मैं बाहर जाता हूँ।"

यह कहकर मिस्टर निक्सन सिगार जलाते हुए अपने मुलाकाती कमरे में चले गए। अगैथा और पामीला दोनों विचारों में निमग्न हो गईं।

१२

भेंट करने वालों में से सबसे अन्त में बुलाए जाने वाले व्यक्ति चन्द्रनाथ थे। उनको आशा ही नहीं, विश्वास था कि वे जब मिस्टर निक्सन के बंगले पर पहुँचेंगे, उनका सत्कार और आदर होगा, और पहले की भाँति उन्हें सब से प्रथम बुलाया जायगा। पूँजीपति अपने धन के बल से राज्याधिकारियों को भी उपेक्षा दृष्टि से देखने में नहीं सकुचाते, इतर जन-साधारण को तो वे किसी खेत की मूली समझते ही नहीं। चन्द्रनाथ ने मिस्टर निक्सन को लाखों रुपये दिये थे, और सदैव कुछ-न-कुछ दिया ही करते थे, जिसकी प्रतिक्रिया में वे यह आशा करते थे कि उसे प्रतिष्ठा भी वैसी ही प्राप्त होगी, तथा उन्हें आदर-सम्मान भी सर्वोत्कृष्ट दिया जायगा। प्रतीक्षा-गृह में बैठे हुए व्यक्ति जिस क्रम से बुलाये जाते हैं, प्राय: वह उनकी प्रतिष्ठा का द्योतक हुआ करता है। यद्यपि इस नियम का पालन सदा सब जगह नहीं होता, किन्तु जन-साधारण उसको इसी दृष्टि से देखता है। साक्षात् के लिए प्रथम बुलाया जाने वाला व्यक्ति कुछ देर के लिए गौरव अनुभव करता है, और अन्य व्यक्तियों की ओर एक उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, और उसकी आँखें कहने लगती हैं कि, तुम लोगों में से मैं ही

सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति हूँ।" साक्षात् के अन्य प्रतीक, यदि उन में से कोई पूँजीपति व्यक्ति है, तो वह उसे अपने अनादर तथा अप्रतिष्ठा का कारण समझता है। वह बैठा-बैठा कुढ़ता है, और ज्यों-ज्यों उसकी उपेक्षा होती है, त्यों-त्यों वह क्रोध से भरता जाता है। चन्द्रनाथ भी इसी प्रकार के रोष-भावों से ओत-प्रोत थे, जब मिस्टर निक्सन ने उन्हें सबसे अंत में बुलाया। मिस्टर निक्सन ने भी चन्द्रनाथ के साथ ऐसा व्यवहार जान-बूझकर किया था। उसकी उपेक्षा करके वह नगर के दूसरे भेंट करने वालों को बता देना चाहता था कि उसकी दृष्टि में पूँजीपति चन्द्रनाथ का महत्त्व नगण्य है। दुनिया चाहे भलेही उसकी पूँजी से प्रभावित हो, किन्तु वह उसकी किंचत् भी परवाह नहीं करता। राजवर्गी पूँजीहीन होते हुए भी पूँजीपतियों पर शासन करते हैं, और वे उनके क्रीतदास होकर नहीं रह सकते। खुशामद पूँजीपति करेगा, राज्याधिकारी नहीं। इसी कारण से वह अप्रसिद्ध, नौकरी खोजने वाले, नगण्य पुरुषों को बुलाकर समय खोने के लिए बहुत-सी निरर्थक बातें भी करता था। उस दिन नगर में यह चर्चा रही कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट बड़े सहृदय तथा दयालु हैं, वे लोगों से उनके घर का सुख-दुःख भी पूछते हैं। करोड़पति बैठे-बैठे मक्खी मारते हैं, और गरीब बुलाये जाते हैं। अवसर का महत्त्व पहचानकर उससे लाभ उठाने वाले मिस्टर निक्सन ने क्षण-भर में वह ख्याति प्राप्त कर ली, जो शायद उसको कई वर्षों की सेवा के पश्चात् मिलती।

चन्द्रनाथ के अभिमान ने दुःखित होकर कई बार उससे उठकर चलने का अनुरोध किया, उसके पैर उठ गए, और वह कमरे के बाहर चला भी गया, किन्तु अपनी मोटर के पास पहुँच कर उसके स्वार्थ ने कहा:—"क्या करता है मूर्ख, इस छोटी-सी बात के लिए क्या इतना बड़ा स्वार्थ खो देगा। तेरा काम बिना निक्सन की सहायता के नहीं चलेगा। तुझको झख मारकर यहीं आना पड़ेगा, फिर क्यों उसको रुष्ट करता है।" अर्दली ने जाकर आमंत्रित करने वाली मुस्कान से कहा:—"हुजूर बैठ जाइए, साहब से जाकर मैं खुद अर्ज करता हूँ। शायद साहब ने आपका कार्ड देखा नहीं। मैं जाकर याद दिलाता हूँ।" और वह जाने भी लगा। रुपयों का लोभ उसे झूठ बोलने के लिए उत्साहित कर रहा था, यद्यपि वह भली भाँति जानता था कि वह साहब से इस विषय में कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता। चन्द्रनाथ का आहत अभिमान अर्दली के खुशामदी मरहम से कुछ शीतलता अनुभव करने लगा। क्योंकि बड़े-बड़े अधिकारियों के अर्दली भी छोटे-मोटे अधिकारियों से कम जन-साधारण में नहीं समझे जाते। चन्द्रनाथ का स्वार्थ उसको घसीटता हुआ पुनः प्रतीक्षा के कमरे में ले आया, और अपने रोष को समाचार-पत्र के बड़े-बड़े पृष्ठों में छिपाने का प्रयत्न करने लगे। थोड़ी

देर में अर्दली ने हँसते हुए कहा:—"चलिए, साहब बुलाते हैं। मैं आपसे कहता था कि उन्होंने आपका कार्ड नहीं देखा। जहाँ मैंने याद दिलाई, तुरन्त बुला भेजा।" मिस्टर निक्सन चन्द्रनाथ को कमरे में प्रवेश करते हुए देखकर उठ खड़े हुए और स्वागत में दो-चार पग आगे आकर मुस्कराते हुए बोले:—"तुम मेरे आज के व्यवहार से अवश्य ही कुछ असन्तुष्ट हुए हो, क्योंकि तुम्हारे नेत्रों की लालिमा यही कह रही है, किंतु इसका एक विशेष कारण था, वह यह कि आज तुमको मेरे साथ भोजन करना पड़ेगा, और दूसरे यह कि जन-साधारण को हमें अपनी प्रीति प्रकट नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार मैं तुम्हारी अधिक सहायता कर सकता हूँ।"

यह कहकर निक्सन ने अपना स्नेह प्रदर्शित करने के लिए उसके हाथ को जोर से दबाया। उसके मनोभावों का उष्ण वैद्युतिक प्रवाह उसके हाथों से बहिर्गत होकर चन्द्रनाथ के आहत अभिमान को तुष्ट करने का प्रयत्न करने लगा।

चन्द्रनाथ का स्वार्थ उसके बताये हुए कारण को सही मान लेने को बाध्य करने लगा। उसकी आँखें, जो अभी तक रोष के लोहित वर्ण से रंगी हुई कुछ भयानकता की रूक्षता प्रसारित कर रही थीं, पुलकित होकर मुस्कराने लगी और उसने सहास्य कहा:—"आपका अनुमान गलत है, मैं कभी भी आप से असन्तुष्ट होने का विचार भी नहीं कर सकता। जिसकी कृपा से मैं आजकल पूँजीपति बना हुआ हूँ, उसके प्रति असंतुष्टता का विचार ही अकृतज्ञता का द्योतक है। मिस्टर निक्सन, और चाहे जो कुछ भी होऊँ, किंतु अकृतज्ञ मैं कभी नहीं हूँ।"

मिस्टर निक्सन ने उसको सोफे पर बैठाते हुए कहा:—"उन बातों का स्मरण न करना ही अच्छा है, क्योंकि दीवालों के भी कान होते हैं। अपने मित्र के प्रति उपकार करना मित्रता का धर्म है। इसके अतिरिक्त तुम्हारा अहसान भी मेरे ऊपर कुछ कम नहीं है। इंगलैंड में जब हम और तुम पहले-पहले मिले थे, तुम भी आई० सी० एस० की परीक्षा देने गए थे, तब से आज तक तुम सदैव धन से मेरा उपकार करते आए हो। उन दिनों को क्या मैं भूल सकता हूँ, जब तुमने मेरी माँ की सेवा-सुश्रूषा कर उसकी जीवन-रक्षा की थी, और मैं इटली में सैर कर रहा था—अगैथा के साथ प्रेम का अभिनय कर रहा था। चन्द्रनाथ, तुम मेरे आज के मित्र नहीं हो, बीस वर्ष पहले के हो। मेरे परिवार के तुम अभिन्न सदस्य हो। किन्तु भाई, कूटनीति कहती है कि हमें बाहर दिखावे में अपरिचित ही रहना चाहिए, क्योंकि जितना हम एक दूसरे से दूर रहेंगे दुनिया की दृष्टि में, उतनी ही अधिक मैं तुम्हारी कठिनाइयाँ सुलझा सकूँगा। क्यों भाई, बात सही है कि नहीं।"

कूटनीतिज्ञ अपने तर्क और वाक्‌पटुता द्वारा अनौचित्य को भी औचित्य का जामा पहना देते हैं। बीती हुई घटनाओं का स्मरण वर्तमान स्थिति की दुरूहता को सरल और सुबोध बनाने में सदा समर्थ हैं। चन्द्रनाथ के मन का मैल गल कर बह गया। उसके हृदय की प्रसन्नता उसके मुख-मंडल के अवयवों से फूट-फूट कर बहने लगी। उसने हँसते हुए कहा:—"मिस्टर निक्सन उन बातों को स्मरण करने से हृदय एक अनिर्वचनीय सुख अनुभव करने लगता है। यद्यपि उन दिनों मेरे पास इतनी पूँजी नहीं थी जितनी कि आज दिन है, किन्तु वह सुख कुछ और ही था। तुम्हारी माँ भी मुझे पुत्र के समान प्यार करती थी; उनके प्रेम की याद आज भी मेरे मन को शांति प्रदान करती है। जब तुम इटली से नहीं लौटे, तो मैं भी बहुत निराश हुआ और घर से माता-पिता के देहान्त का समाचार मिलने से तुम्हारी माँ को उसी करुण अवस्था में छोड़कर आना पड़ा। भारत में लौटकर मैं जीविका-उपार्जन के उद्योग में लगा, क्योंकि आई० सी० एस० की परीक्षा दे ही न सका था। वामनदास से अचानक मेरा परिचय हो गया, और उसका प्राइवेट सेक्रेटरी होकर उसके यहाँ रहने लगा। मेरा उद्देश्य भी धनोपार्जन था। वामनदास के संसर्ग ने मुझे पूँजीपति बनने की महत्त्वाकांक्षा प्रदान की। एक दिन सहसा गजट में तुम्हारे स्थनांतरित होने का आदेश पढ़ा। नाम पढ़ते ही मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई मेरे हृदय में कह रहा है कि "ये मिस्टर सैमुएल निक्सन मेरे पुराने मित्र ही हैं।" अवकाश लेकर तथ्य निर्णय करने के लिए निकल पड़ा। मैं उस प्रसन्नता को बयान नहीं कर सकता जब मैंने अनुमान को सत्यता में परिणत होते देखा। और जब तुम्हारी नियुक्ति कानपुर में हुई तब तो मेरा सोता हुआ भाग्य जाग उठा। मेरे भाग्य को जगाने का श्रेय केवल तुमको है, निक्सन, मेरे अभिन्न मित्र निक्सन। तुमने मेरे लिए अपनी सारी प्रतिष्ठा, मान, कर्त्तव्य आदि को तिलांजलि दे दी, और वामनदास की जाली 'विल' पर अपने हस्ताक्षर करके उसको अकाट्य बना दिया। निक्सन, मैं अकृतज्ञ नहीं हूँ।"

निक्सन ने उसका मुख बन्द करते हुए कहा:—"चन्द्रनाथ, तुमसे कहा कि उस बात का जिक्र मत करो, क्योंकि यदि किसी ने सुन लिया तो मेरे ऊपर तो संकट आयगा ही, किन्तु तुम भी वामनदास की पूँजी के स्वामी नहीं रहोगे। इसी बात को गुप्त रखने के लिए मैंने अगैथा तक से अपने पूर्व परिचय तथा घनिष्ठता की कोई बात नहीं की है, केवल इसलिए कि जिसमें वामनदास की विल पर किसी को सन्देह करने का अवसर न मिले। अब हमें उन बातों को भूल जाना चाहिए, और काम की बातें करें। तुम्हारे' मिल-मालिक संघ' की कैसी प्रगति हो रही है।"

चन्द्रनाथ ने सिगार जलाते हुए कहा:—"मजदूरों का नोटिस आया था,

उस पर विचार किया गया, और यह निर्णय हुआ कि हम उन्हें कोई सुविधा नहीं देंगे। कुछ पत्रों ने मजदूरों की माँग को उचित बताते हुए हमारे संघ की कटु आलोचना की है। अब आप उस पत्र के विरुद्ध प्रेस-एक्ट के अनुसार कार्रवाई आरम्भ कर देवें। इस उपकार के लिए हमारा संघ आपको एक लाख रुपया देगा। और जब मजदूरों की हड़ताल हो, उस समय आपकी सहायता की अत्यंत आवश्यकता होगी, उस समय संघ आपको पाँच लाख से लेकर दस लाख रुपये तक सहर्ष प्रदान करेगा। यदि गोली चलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो आपके पुरस्कार की रकम में शत-प्रतिशत वृद्धि हो सकती है, किन्तु शर्त यह है कि यह जिम्मेवारी सरकार स्वयं ओटे, संघ पर कोई धब्बा न आना चाहिए।"

मिस्टर निक्सन ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा :—"इसके लिए तुम निश्चिंत रहो वर्तमान युद्ध के कारण मेरे हाथ में अनेक शक्तियाँ आ गई हैं, और जो कुछ मैं करूँगा, उसकी पुष्टि हर हालत में सरकार करेगी, क्योंकि शांति और व्यवस्था इतने व्यापक शब्द हैं, जिनकी आड़ में घोर-से-घोर—कठिन-से-कठिन व्यापार संपादित किये जा सकते हैं। परिस्थिति उत्पन्न करना भी हमारा काम है। सरकार के सी० आई० डी० इस विद्या में पारंगत होते हैं। उन्हें भली भाँति मालूम रहता है कि किस प्रकार जन-समूह को उत्तेजित किया जा सकता है। हिन्दू मुस्लिम दंगा कराने का भी मुझे बड़ा अनुभव है। सी० आई० डी० की सहायता से मैंने उन स्थानों पर भी दंगा करवा कर हजारों को बे-घर-बार करवा दिया, सैकड़ों को यमलोक पहुँचवा दिया, अरबों की सम्पत्ति नष्ट करवा दी, और निरपराध स्त्री-बच्चों को, जिनकी गणना असम्भव है, अमानुषिक अत्याचारों द्वारा कत्ल करवा दिया है जहाँ इसकी कोई आशंका भी न थी। इसी कर्त्तव्य-परायणता के कारण मुझे सरकार शीघ्र ही 'नाइट हुड' देने जा रही है, और उन्हीं सेवाओं के पुरस्कार में मुझे कानपुर में नियुक्त किया गया, जिससे युद्ध-उद्योग में किसी प्रकार की शिथिलता या न्यूनता न आने पाय। हमारी सरकार परिणाम चाहती है, उपाय के औचित्य तथा अनौचित्य पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। हमारे धनोपार्जन में वह उस समय तक बाधा नहीं डालती, जब तक उसके कार्य की पूर्ति में बाधा नहीं पड़ती। इस देश को हम चाहे जितना उजाड़ें, हमारी सरकार इसके लिए चिन्तित नहीं होती, और न वह कुछ सुनती ही है। रिश्वत अंग्रेज अफसर नहीं, उनके मातहत भारतीय ही लेते हैं, क्योंकि मुकद्दमे यदि चलते भी हैं, तो उन्हीं के खिलाफ चलते हैं। अतएव सरकारी कानून द्वारा हम सदा सुरक्षित हैं। हमारे विरुद्ध जब तक सरकार अपनी अनुमति न दे तब तक कोई मुकद्दमा नहीं चल सकता, और हमारी सरकार हमारे विरुद्ध भला कब अनुमति दे सकती है। यदि कांग्रेस अथवा जनता ने किसी अफसर के

विरुद्ध बहुत वा-वैला भी मचाया, तो वह केवल स्थानान्तरित कर दिया जायगा। और यदि उसका कार्य सरकार की भलाई के लिए हुआ है तो वह किसी अच्छी जगह तथा पद पर स्थानान्तरित होगा। आज तक क्या तुमने किसी अंग्रेज-अफसर के विरुद्ध रिश्वत का मुकद्दमा चलते देखा है। हमारे सामने जनता के जीवन का मूल्य नगण्य है। पशु के मारने में तो हम संकोच करेंगे, किन्तु भारतीय जनता को मारने में रंच-मात्र भी नहीं। तुम निश्चिंत रहो, चन्द्रनाथ, हड़ताल के दिन मजदूरों पर गोली चलेगी, बहाना बनाते क्या देर लगती है। तुम बीस लाख रुपयों का प्रबन्ध करो।"

चन्द्रनाथ ने संतुष्ट होकर कहा :—"रुपया तैयार है, जब चाहे लीजिए। इसकी जिम्मेवारी मेरी है। पत्र के विरुद्ध कब तक कार्रवाई आरम्भ होगी। पत्र का नाम है 'मजदूर-रक्षक' और सम्पादक का नाम है 'रामनरेश' यह लीजिए हजार-हजार के सौ नोट।"

मिस्टर निक्सन ने उनको गिनते हुए कहा :—"आज ही जमानत जब्ती का हुक्म निकाल दूँगा, और यह समझ लो कि पत्र का दूसरा अंक अब नहीं निकलेगा, और सम्पादक दो वर्ष के लिए जेल में अपने विचारों को संयत करने के लिए भेज दिया जायगा। दूसरे पत्र भी यदि तुम्हारे संघ की टीका-टिप्पणी करने का दुस्साहस करेंगे, तो उनकी भी वही गति कर दी जायगी, जो 'मज़दूर-रक्षक' की होगी। ब्रिटिश सरकार तलवार के बल से राज्य करती है—जनता की सदिच्छा से नहीं। जनता की आवाज को कुचलना तो हमारा परम कर्त्तव्य है।"

चन्द्रनाथ ने प्रसन्न होते हुए कहा :—"आपका कथन बिलकुल सत्य है। जनता को भी सर्प की भाँति उसके सिर उठाते ही कुचल देना चाहिए। हाँ एक काम और है, उसके लिए भी आपको सुविधा प्रदान करनी होगी।"

निक्सन ने रुपयों को तिजोरी में बन्द करते हुए पूछा :—"वह कौन-सा कार्य है? चन्द्रनाथ, तुम मेरे अभिन्न मित्र हो, मैं तुम्हारी कोई बात नहीं टाल सकता।"

निक्सन के स्वर में आत्मीयता का भाव था। स्वार्थ की पूर्ति आत्मीयता की सृष्टि करती है, और उसकी हानि, वैर तथा द्वेष उत्पन्न करती है। स्वार्थ के प्रति अनुराग मनुष्य को पशु बनाता है, और उससे विराग उसको देवता। पशुत्व और देवत्व की मध्य अवस्था का नाम मानव है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति रजोगुण से होती है, जिसमें सत्य और तम समान भाव से वर्तमान हैं। मानव का मस्तिष्क जब सात्विक भावों से प्रभावित होता है, तब स्वार्थ तथा पशुत्व क्षीण होता है, और इसके विपरीत जब वह तामसिक प्रभावों से अभिभूत होता है तब स्वार्थ

भाव प्रखर हो जाता है। मित्रता आदि सम्बन्ध जब स्वार्थ के भावों से प्रेरित होने के कारण स्थापित होते हैं तब स्वार्थ-सिद्ध होने पर वे दृढ़ता प्राप्त करते हैं. किन्तु उनकी अपूर्ति उस बन्धन को शिथिल कर शत्रु-भाव को जन्म देती है।

चन्द्रनाथ भी अपने स्वार्थ की सिद्धि निक्सन के द्वारा देखता था, इसलिए दोनों की मित्रता दृढ़ हो रही थी। उसने प्रहृष्ट मन से कहा :—"निक्सन, मजदूर-सभा से लड़ने के लिए मैंने एक अमोघ अस्त्र का विचार किया है, वह है मादक वस्तुओं का प्रचार। यदि एक बार भी मजदूर मादकता का आदि हो जाय तो फिर उसको गुलाम बनाने में विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मादकता आत्म सम्मान, आत्म गौरव, आत्म-हित की भावना, सबका नाश बिना किसी प्रयास के करने में समर्थ होती है। पहले उसको आदी बनाने में जरूर जेब से कुछ खर्च करना पड़ता है, किन्तु जब मनुष्य एक बार उसका आदी हो जाता है, तब खर्च से अधिक लाभ होने लगता है। इसलिए हमारी योजना यह है कि मादक वस्तुओं को सुलभ बनाने में हमारे संघ की आप सहायता करें। हम प्रत्येक मिल के निकट ठेके स्थापित करना चाहते हैं, यह और आशा करते हैं कि मादक वस्तुओं का मूल्य अन्य स्थानों की अपेक्षा कम रखा जाय। आपकी क्या राय है ?"

मिस्टर निक्सन ने सोचते हुए कहा :—"तुम्हारी योजना कोई नया आविष्कार नहीं है। ब्रिटिश सरकार तो अपना राज्य आरम्भ होने के काल से इसी योजना के अनुसार कार्य कर रही है। अभाव सदा आसक्ति उत्पन्न करता है, अतएव मनुष्य उसको पाने के लिए लालायित रहा करता है। यदि तुम 'एक्साइज़' विभाग का इतिहास पढ़ो तो तुमको मालूम होगा कि ब्रिटिश सरकार कितने प्रयासों के पश्चात् मादक वस्तुओं के निषेध की ओट में मादकता का प्रसार कर अपना कोष भर रही है। जब किसी उद्देश्य को प्राप्त करना हो तो दिखावे के लिए उसके विरुद्ध आन्दोलन करो, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए सुविधाएं देते जाओ। इसी नीति का पालन ब्रिटिश सरकार ने सदैव किया है। मादक वस्तुओं के प्रचार के कारण ही छोटा-सा इंग्लैंड इतने बड़े भारतवर्ष पर शासन कर रहा है। मैं अवश्य इस कार्य में सहायता दूँगा, किन्तु मूल्य कम करने के विषय में कुछ नहीं कर सकूँगा, क्योंकि वह मेरी शक्ति के बाहर है। प्रान्तीय सरकार ही इस विषय में कुछ कर सकती है, किन्तु तुम यदि मादक वस्तुओं का प्रचार करना चाहते हो तो कुछ ऐसे एजेण्ट नियुक्त करो जो मजदूरों को मादक वस्तुएं बिना मूल्य दें मजदूरों को एलाउन्स दो, और नशा पीने वालों के प्रति सहानुभूति विशेष रूप से प्रदर्शित करो। कोकीन आदि वस्तुएं भी दिलाने का प्रबन्ध मैं करवा दूँगा।"

इसी समय पामीला ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा :—"पापा चलिए, मामा भोजन की मेज पर आपका इन्तिज़ार कर रही हैं। फिर चन्द्रनाथ से सहास्य

कहा :—"आज आपको भी भोजन यहीं पर करना पड़ेगा।"

चन्द्रनाथ ने हँसकर कहा :—"बेशक, क्या आपकी आज्ञा को मैं कभी टाल सकता हूँ ?"

यह कहकर मिस्टर निक्सन और चन्द्रनाथ दोनों उठ खड़े हुए, और पामीला चन्द्रनाथ का हाथ पकड़कर भोजन-गृह की ओर ले चली।

तृतीय खण्ड

१

परेड से लौटने के पश्चात् यशवन्त सीधा अपने कैम्प चला आया, और वहाँ वह कुछ मानसिक तथा शारीरिक क्लांति से शिथिल होकर पड़ गया। उसके मन के प्रांगण में बीती हुई घटनाएं उन्मादिनी नर्तकियों की भाँति नाचने लगीं, और उसकी सारी शक्ति को हरण करने लगीं। विगत घटनाओं की स्मृति उसके मस्तिष्क में झंझावात उत्पन्न कर रही थी, जिसको वह अपने अश्रुओं की माला अर्पण कर शांत करने की चेष्टा कर रहा था। उच्छ्वास जब तरल होकर बहने लगता है उस समय मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तु अवसाद से क्लान्त होकर अस्पष्ट और विस्मृत-से हो जाते हैं, उस समय यह नहीं कहा जा सकता कि किसी विशेष घटना की स्मृति ने उसकी यह शोचनीय दशा की है।

मानव स्वभाव से अतीत का पुजारी है। जब आज का अतीत वर्त्तमान काल था, तब वह दुःखद और भयावह था, किन्तु आज वही आकर्षक और मधुर हो जाता है, जैसे कोई भयानक घाटी पार करने के बाद ही उसकी मनोहरता पर मानव का ध्यान जाता है। यदि उसकी पुनरावृत्ति हो, अथवा उसी भयानक घाटी से पुनः लौटना पड़े तो फिर मन सशंक और भीरु हो उठता है। अतएव वर्त्तमान से प्रायः मानव असन्तुष्ट ही रहा है।

यशवन्त का जीवन यहाँ भी सुखी न था। वह सदैव एकान्त में आँसू बहाया करता था। विदाई के समय का दृश्य उसकी आँखों के सामने सदैव रहता। उसका बाप बलवन्त और माँ लछिमिन दोनों बार-बार पछाड़ खाकर गिरते थे, और उसकी नवोढ़ा सुखदेई लोक-लाज विसरा कर अपने क्रन्दन से समग्र दर्शकों तथा पड़ोसियों को भी रुलाने के लिए बाध्य कर रही थी। तीनों की छाती पर लात रखकर यशवन्त केवल कुछ पैसों के लिए फौज में भरती होकर अपना बलिदान चढ़ाने आया था। मानव तो कतिपय भावनाओं का बना हुआ पुञ्ज मात्र है, और अतीत की भावनाएं उसके भविष्य के निर्माण करने में सदैव सहायक होती हैं।

यशवन्त इन्हीं कारणों से अपने साथियों से विशेष रूप से परिचित नहीं हुआ था। वह सदैव गम्भीर और मौन रहा करता था। यन्त्रचालित पुतले की भाँति अपनी दैनिक कार्यक्रम पूरा करता था। फौज के सिपाहियों का कार्यक्रम

भी एक नियम से आबद्ध रहा करता है। शिक्षण-काल में उनका एक-एक क्षण किसी-न-किसी कार्य के लिए नियत हुआ करता है. इसलिए यशवन्त को अपनी दशा के पर्यवेक्षण के लिए विशेष समय मिला नहीं करता था। सोने के पहले वह अवश्य एक बार रो लिया करता। शरीर तो परेड के कारण वैसे ही क्लांत रहा करता. और रोने से उसका मस्तिष्क भी क्लांत हो जाता, जिससे उसे थोड़ी ही देर में नींद आ जाती, और तब उसे शांति मिलती थी। प्रात:काल चार बजे से फिर वह अपने कार्यक्रम में लग जाता। यही उसकी दिनचर्या थी।

वह विशेष शिक्षित न था, किन्तु पत्र लिख सकता था। दोपहर को जब उसे विश्राम के लिए अवसर मिलता था, तब वह पत्र लिखने के लिए बैठता, किन्तु आँसुओं का वेग उसके समग्र भावों को बहा ले जाता, और पत्र लिखने का काम आँसू करने लगते, जिनकी बूँदें सूखकर कागज को स्याही से लिखने के योग्य न रखतीं। यशवन्त जब कलम स्याही में डुबाकर कुछ लिखने का यत्न करता, तभी स्याही फैलकर आँसुओं की बूँदों से मिलकर केवल उसके मानसिक अंधकार को चित्र द्वारा अंकित करने की चेष्टा करतीं। यशवन्त निराश होकर कागज मोड़कर फेंक देता।

एक दिन दोपहर को वह पत्र लिखने के प्रयास में बैठा हुआ था। उसके शिविर का दरवाजा खोलकर उसके पड़ोसी मानसिंह ने झाँककर देखा। यशवन्त की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसको देखकर वह उनके छिपाने का निष्फल प्रयत्न करने लगा। मानसिंह उसके दु:ख का कारण जानने के लिए आकुल हो गया। मानव स्वभावत: एक उत्सुक प्राणी है, यह गुण उसके जन्म काल से स्पष्ट देखा जा सकता है। एक दूसरे के दु:ख को जानने के लिए मानव सदैव इतना अधिक उत्सुक देखा गया है, जितना वह सुख का कारण जानने के लिए नहीं होता।

मानसिंह ने डरते-डरते पूछा :—"साथी, क्या कोई घर से दु:खद समाचार आया है।"

यशवन्त अपनी मानसिक निर्बलता से अपने ऊपर क्षुब्ध हो गया। मनुष्य अपरिचितों से अपना दु:ख छिपाने की चेष्टा करता है, और परिचितों के समक्ष वह अपना हृदय खोलकर रख दिया करता है। जब परिचित सुख-दु:ख के पारस्परिक आदान-प्रदान से कालान्तर में परिचित हो जाता है, तब वह भेद-भाव मिट जाता है। दु:खी मनुष्य अपना दु:ख छिपाने के लिए अपरिचितों से मिथ्या भाषण करने में संकोच नहीं करता।

यशवन्त ने हँसने का असफल प्रयत्न करते हुए कहा :—"घर वालों को तो अपना पता लिखकर ही नहीं भेजा, चिट्ठी कहाँ से आयेगी? आज जब

खाकर लौट रहा था, रास्ते में हवा के झोंके से कोई तिनका आँखों में पड़ गया, जिससे आँखों से पानी बह रहा है।"

असत्य की झंकार सत्य की झंकार से विभिन्न होती है, जिसकी परख हृदय स्वयं कर लेता है। मानसिंह को स्पष्ट ज्ञान हो गया था कि उसका साथी यशवन्त अपना दुःख छिपाने का प्रयत्न कर रहा है। वह एक सहृदय व्यक्ति था। सहृदयता अपने अंक में प्रायः अपना दुःख छिपाये रहती है, और दुःखी मनुष्य सहृदय हो ही जाते हैं, क्योंकि मानव के मस्तिष्क की दुःखों की स्नायु सदैव हृदय के रक्तोत्ताप से द्रवित होने के कारण चेतन और फड़कती की नाड़ी रक्ताभाव से शुष्क रहती है, इसलिए दुःखी मनुष्य दूसरों के दुःख से भी बहुत शीघ्र कातर हो जाया करता है।

मानसिंह बिना निमन्त्रण की प्रतीक्षा किये हुए ही यशवन्त के समीप बैठा गया. और उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखता हुआ बोला :—"साथी, तुम झूठ कहते हो। तुम्हारी आँखों में धूल की नहीं दुःख की किरकिरी पड़ी हुई है। जो तुम्हें आज ही नहीं सदैव रुलाया करती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे कोई अधिकार तुम्हारे दुःख के कारण जानने का नहीं है, किन्तु इस एकान्त देश में हम लोग एक दूसरे के लिए सगों से अधिक हैं। मेरी मुसीबत में तुम काम न आओगे, तो फिर कौन आयगा ? मेरे घर वाले मुझसे सैकड़ों मील दूर हैं। साथी, यहाँ हमें अपने घर वाले नहीं मिलेंगे। तुम मेरे काम आओगे और मैं तुम्हारे। सैनिक जीवन वंश तथा कुटम्बियों को दूर ढकेलकर अपरिचितों को ही उनका रिक्त स्थान प्रदान करता है।"

यशवन्त की झिझक अभी दूर नहीं हुई थी। प्रथम आलाप में सगों के सामने में भी झिझक हुआ करती है।

यशवन्त ने कागज समेटते हुए कहा :—"सो तो है ही। तभी तो कहते हैं कि पड़ोसी दूर के सगों से अधिक काम आता है।"

मानसिंह ने यशवन्त के हाथ से कागज लेते हुए कहा :—"मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि तुमने अभी तक अपने घर वालों को अपना पता नहीं दिया है। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि वे तुम्हारे लिए कितने चिन्तित होंगे ? मैं समझता हूँ कि तुम्हारे माँ, बाप, स्त्री, भाई, भौजाई सभी हैं।"

यशवन्त ने सिर हिलाकर उत्तर दिया :—"हाँ, सभी हैं।"

मानसिंह ने हँसते हुए पूछा :—"तुम घर से छिपाकर तो नहीं आये ?"

यशवन्त ने उत्तर दिया :—"घर वालों से छिपाकर तो नहीं आया, किन्तु जब भर्ती हुआ था, तब उनसे पूछकर नहीं हुआ था। भाई, मैं बहुत गरीब घर का हूँ। मेरे बाप पर बहुत कर्ज था, जिससे उनके जीवन को शांति [illegible] मिलती

थी। संसार में रुपये से अधिक मूल्य किसी वस्तु का भी नहीं है। उनके जीवन की अशांति मिटाने के लिए कर्जा चुकाना जरूरी था, और उनके कर्जे का मूल कारण मैं ही था। मेरे विवाह के अवसर पर उन्होंने कर्जा लिया था, और फसल पर चुका देने का वादा किया था, मगर फसल नष्ट होगई। महाजन तंग करने लगे, जिससे त्राण पाने का कोई उपाय नहीं था। मेरे मन में एक दिन अकस्मात् विचार उठा कि फौज में क्यों न भरती हो जाऊँ? गाँव में भरती करने वाला साहब आया था, उसने लोभ दिया, और मैंने उससे एक महीने का पेशगी वेतन लेकर अपना नाम लिखा दिया। जब मेरे बापू को सब हाल मालूम हुआ, तब उनके ऊपर वज्रपात हुआ। अम्माँ ने तो रो-रो कर गाँव-भर को दुःखी कर दिया।"

मानसिंह ने चिन्तित स्वर में पूछा :—"और क्या तुम्हारी पत्नी अपने मायके में थी?"

यशवन्त ने आँसुओं को पोंछते हुए कहा :—"नहीं वह भी वहीं थी। उसकी रुलाई देखकर पत्थर भी पसीज उठता था। दूसरे ही दिन मुझको शहर में आकर हाजरी देनी थी। सब दिन और सब रात हम लोग रोते ही रहे। मैं भी अपनी नादानी के लिए पछता रहा था। किन्तु उपाय अब कोई नहीं था, सिर्फ एक बात का संतोष है कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह अपने पिता के कल्याण के लिए है। यदि मर गया तो भी कम-से-कम उनके कर्जे का बोझ तो हल्का कर जाऊँगा।"

सैनिक जीवन की अनिश्चितता उसकी आँखों से झाँकने लगी।

मानसिंह ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा :—"हमारे जीवन का अन्त कहाँ होगा, और कैसे होगा, यह केवल भगवान् ही जानते हैं। हम लोगों का शिक्षण-कार्य लगभग समाप्त हो गया है, अब शीघ्र ही यहाँ से हम लोग जंगलों में भेजे जायंगे, जहाँ हमें नई प्रकार की शिक्षा दी जायगी। जापान ने जब से युद्ध में प्रवेश किया है, तब से हमारी सरकार बड़ी चिन्तित है। जंगलों की लड़ाई में जापानी बड़े चतुर हैं, और उनके समक्ष हमारी फौजें नहीं ठहरतीं। जगलों की लड़ाई लड़ने का दूसरा ही कौशल होता है, जिसकी शिक्षा हमें दी जायगी।"

यशवन्त ने पूछा :—"क्या जापानी बड़े बहादुर लड़ाके हैं?"

मानसिंह ने उत्तर दिया—"आजकल का युद्ध शारीरिक बल पर नहीं, बौद्धिक बल पर निर्भर करता है। मानव की बुद्धि ने वैज्ञानिक अस्त्रों का आविष्कार किया है। उन्हीं आविष्कारों के बल पर आजकल युद्ध का संचालन होता है। अगले समय में युद्ध कुछ दिनों में समाप्त होजाता था। किन्तु आजकल युद्ध का प्रभाव जन-समुदाय पर विशेष रूप से पड़ता है। इसका कारण यह है कि युद्ध के समय का विस्तार बढ़ गया है, जिससे अतुल धन सम्पत्ति का नाश

होता है, और सभी को उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ता है।"

यशवन्त ने सोचते हुए पूछा:—"तब तो हमको जापानियों से युद्ध करना पड़ेगा।"

मानसिंह :—"हाँ, जापान से लड़ने के लिए बरमा में हमें जाना पड़ेगा।"

यशवन्त ने कहा :—"मेरी और कोई कामना नहीं है, मरना तो निश्चय है, केवल यह अभिलाषा है कि मेरे सामने मेरे बापू का कर्जा अदा हो जाय।"

मानसिंह ने कहा :—"अभी तक तो तुमने अपने घर को पत्र नहीं लिखा?"

यशवन्त :—"कैसे लिखता, मुझे नहीं मालूम कि किस पते से पत्र मँगवाऊँ।"

मानसिंह :—"सैनिकों के पत्र मिलने का प्रबन्ध दूसरी प्रकार किया गया है। जन-साधारण को यह न मालूम हो कि कौन-सी सेना कहाँ पर है, इसलिए सब पत्र एक निश्चित पते पर जाते हैं, और वहाँ से युद्ध विभाग का डाकघर हमारे पास तक पत्र पहुँचाने की व्यवस्था करता है। अपना नम्बर, टुकड़ी का नम्बर आदि लिखना आवश्यक है, वह तुम लिखकर भेज दो, हम जहाँ होंगे वहाँ पर वह पत्र आजायगा। स्थान का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं है। उस दिन नायक ने पत्र लिखने का तरीका बताया था। क्या तुम मौजूद नहीं थे।"

यशवन्त :—"था, किन्तु मेरी समझ में कुछ नहीं आया। असल बात यह है कि मेरे सामने घर सदैव नाचा करता है, सिवाय घर की याद के और कुछ याद नहीं रहता।"

मानसिंह :—"किन्तु इस प्रकार कितने दिन काम चलेगा?"

यशवन्त :—"क्या बताऊँ, मैं स्वयं अपने से परेशान हो गया हूँ। नहीं जानता कि बापू और अम्मा का क्या हाल है। पत्र इसलिए और नहीं लिखता कि मेरा पता मालूम हो जाने से कहीं कोई अशुभ बात लिखकर न आ जाय। यदि मेरे बापू को कुछ हो गया तो फिर मैं अवश्य पागल हो जाऊँगा।"

कहते-कहते उसकी आँखों से छिपी हुई वेदना प्रकट होने लगी।

मानसिंह ने उसकी पीठ पर सप्रेम हाथ फेरते हुए कहा :—"साथी, इतने कातर न हो। तुम्हारे त्याग की भावना ही तुम्हारी रक्षा करेगी। तुम किसी स्वार्थ-प्रवृत्ति से फौज में भरती नहीं हुए हो, अपने पिता का त्राण करने के लिए तुमने अपने जीवन की बाजी लगाई है, भगवान् तुम्हारी लाज रखेगा और तुम्हारे शूल फूल हो जायंगे।"

यशवन्त की अश्रु-धार सवेग हो गई। सहानुभूति और समवेदना लोक-लाज के बाँध को छिन्न-भिन्न कर हृदय की गुह्य वेदना को नग्न रूप में लाकर खड़ा कर देते हैं। इसके पश्चात् वे मित्रता और सौहार्द्र की नींव डालते हैं,

जिसमें पर्दे की व्यवस्था नहीं होती। सिसकता हुआ यशवन्त मानसिंह के हाथों का आश्रय पाकर उसके कंधों में लुढ़क गया। विश्वास सदैव विश्वास को जन्म देता है। मानसिंह अपने भाई की तरह उसे सांत्वना देने लगा। दोनों मौन होकर एक दूसरे की व्यथा समझने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय तीसरे पहर की कवायद की घंटी बजी, जिसको सुनकर उनकी लुप्त-प्राय: चेतना सजग हुई। दोनों ने अपने-अपने आँसू पोंछे। एक के आँसू अपनी पीड़ा के थे, और दूसरे के अन्य की पीड़ा के, जिसका प्रतिबिम्ब वह अपने दुखी हृदय के दर्पण में देख रहा था।

उसी दिन यशवन्त और मानसिंह की मित्रता का सूत्रपात हुआ।

२

देवकीनन्दन ने सगर्व कनक की ओर देखते हुए कहा:—"कनक, अब तो तुम्हारी साथिन उर्मिला देवी एक बड़ी पटु वक्ता शीघ्र हो जायगी।"

कनक ने गर्व अनुभव करते हुए उत्तर दिया:—"आपका कहना सत्य है। यही मेरा अनुमान है। वास्तव में मनुष्य के मस्तिष्क में सभी प्रकार के गुणों के बीज वर्त्तमान हैं, अवसर का जल, और शिक्षा की वायु जिन्हें शीघ्र ही पनपा देती हैं।"

उर्मिला बेचारी अपनी प्रशंसा सुनकर लाज से संकुचित हुई जा रही थी। वह दूसरे कमरे में जाकर अपने को उनकी दृष्टि से बहिर्गत न करना चाहती थी। कनक ने उसकी मानसिक उथल-पुथल को जानकर कहा:—"उर्मिला, वक्ता को संकोचशील न होना चाहिए। वास्तव में तुम कल मजदूर-सभा में इतना अच्छा बोलीं कि जिससे हम लोग तो सन्तुष्ट हुए ही, जनता भी बहुत प्रसन्न हुई थी।"

देवकीनन्दन ने उठकर जाते हुए कहा:—"उर्मिला बहन क्यों जायं, मैं ही यहाँ एक तीसरा व्यक्ति हूँ, अतएव मुझको ही जाना उचित है।"

उर्मिला ने संकोच से युद्ध करते हुए कहा:—"भाई साहब, ऐसा अन्याय न कीजिये। मैं केवल अपनी झूठी प्रशंसा नहीं सुनना चाहती।"

देवकीनन्दन ने ठहरते हुए कहा:—"झूठी प्रशंसा न मैं कभी करता हूँ, और न कभी सुनता ही हूँ। अपने मित्रों की उन्नति देखकर किसको आनन्द नहीं होता? उसी आनन्द को प्रकट करने का नाम प्रशंसा है।"

उर्मिला ने धोती के पल्ले में गाँठ बाँधते हुए कहा:—"भाई साहब तर्क से तो मैं आपको जीत नहीं सकती, किन्तु इतना जानती हूँ कि प्रशंसा मनुष्य को कभी-कभी पथ-भ्रष्ट कर देती है, आलोचना, और वह भी खरी आलोचना, विद्यार्थी को सुपथ पर रखती है। शायद इसीलिए माता-पिता और शिक्षक कभी

भी विद्यार्थी के सन्मुख उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं।"

कनक ने हँसकर कहा :—"अच्छा भाई साहब, अब उर्मि की आलोचना कर डालिये।"

कनक आजकल उर्मिला को केवल उर्मि कहकर ही पुकारती थी, और वह कनक को दीदी।

उर्मिला ने सन्तुष्ट होते हुए कहा :—"हाँ, यह मेरे लिए हितकारी होगा।" इसी समय दोपहर की डाक को नौकर मेज पर रखकर चला गया। कनक और पत्रों को छोड़कर एक पत्र किंचित् उद्विग्नता से खोलकर पढ़ने लगी। पत्र समाप्त कर उसने प्रसन्न मुद्रा से कहा :—"भाई साहब, उर्मि के भाग्य ने जोर मारा है। रामनाथ को अपील करने की आज्ञा हाईकोर्ट ने प्रदान कर दी है। यह मिस्टर जैक्सन का पत्र आया है, इसमें वे यही लिखते हैं।"

उर्मिला के नेत्र हर्ष से चमक उठे। रक्तस्रोत मस्तिष्क की ओर बड़े वेग से प्रवाहित होकर उसके मुख और ग्रीवा को अपना ही रंग प्रदान करने लगा।

देवकीनन्दन ने पत्र पढ़कर कहा :—"हाँ, यह सबसे अधिक सुखद समाचार आज का है। भगवान् वह दिन शीघ्र लाय, जब वह छूटकर हम लोगों के मध्यम में आ जाय।"

कनक ने गम्भीर होते हुए कहा :—"आशा तो यही है। पूँजीपतियों के कुचक्र का प्रभाव शायद वहाँ तक न पहुँच सके। यद्यपि यह सरकार ही पूँजीपतियों की है, इसका प्रत्येक विभाग पूँजीपतियों से प्रभावित है, किन्तु न्याय का आवरण पहने रहने के कारण शायद हाईकोर्ट के जज इसके प्रभाव में न आने का ढोंग रचें। कभी-कभी कृत्रिमता से भी लाभ हो जाया करता है।"

देवकीनन्दन ने बैठते हुए कहा :—"पूँजी कदापि बुरी अथवा हेय वस्तु नहीं है—पूँजीपतियों की शोषण-नीति बुरी है। हमें शोषण-नीति की निन्दा करनी उचित है, न कि पूँजी की।"

कनक ने तीव्रता से कहा :—"भाई साहब, आपके कहने का मतलब यह है कि संखिया देखने में सुंदर और धवल है, केवल खाने में नाशात्मक है। पूँजी जहाँ होगी, वहाँ शोषण तो होगा ही। बिना शोषण के क्या पूँजी होना सम्भव है?"

देवकीनन्दन :—"पूँजी केवल-मात्र शोषण से नहीं प्राप्त होती है। वैयक्तिक परिश्रम, अध्यवसाय, बुद्धि की तीव्रता, श्रेष्ठता आदि से भी प्राप्त होती है। यह तुम स्वीकार करोगी ही कि दुनिया के सभी मनुष्य बराबर बुद्धि के नहीं होते, सबमें कोई-न-कोई विभिन्नता होती है। प्रकृति सत्, रज और तम तीन प्रधान गुणों से बनी है, और इन्हीं तीनों गुणों के अन्तर, विभेद और कमोवेश से समग्र प्राणियों की रचना हुई है। जिस मनुष्य में ये तीनों गुण जिस अनुपात से होंगे

वैसे ही गुणों का समावेश उसमें होगा। सात्विक गुणों की प्रधानता वाले पुरुष यदि पूँजीपति हैं, तो उनमें शोषण-नीति नहीं भी हो सकती। राजसिक और तामसिक गुणों वाले मनुष्यों में उतनी ही न्यूनाधिक मात्रा में शोषण-प्रवृत्ति होगी। वास्तव में शोषण की प्रवृत्ति का सम्बन्ध पूँजी से नहीं, मानव के विचार-केन्द्र मस्तिष्क से है। पूँजीहीन मनुष्य भी तो शोषण करते देखे जाते हैं। जब एक भाई दूसरे का प्राप्य हिस्सा हड़प लेता है, तब क्या वह शोषण नहीं करता? जब एक मजदूर दूसरे मजदूर की मजदूरी चुकाना नहीं चाहता, और उसको मजदूरी के पैसे कम देने के लिए काम में खोट निकालता है, तब क्या वह किसी पूँजीपति से कम शोषण-नीति का अपराधी है?"

कनक ने तिनककर कहा:—"आप में यही एक अवगुण है कि प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता और उसकी प्रखरता को आप आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखते हैं, किन्तु इस संसार के सभी मनुष्य तो—आप ही के कथनानुसार—आध्यात्मिक नहीं हो सकते। वस्तुओं की जटिलता से जब मनुष्य घबरा जाता है, तभी वह अध्यात्मवाद का आश्रय लेकर अपने हारे हुए मन को समझाने का प्रयत्न करता है। संसार में जो कतिपय मानवों के कुचक्रों के परिणामस्वरूप अव्यवस्था और विशृंखलता दृष्टिगोचर होती है, उसको दूर करने में असमर्थ पाकर मानव ईश्वर, कर्म और अध्यात्मवाद की शरण में जाता है। अध्यात्मवाद की सब से बड़ी भूल यह है कि वह सामाजिक व्यवस्था को, जिसको केवल मनुष्य ने निर्माण किया है, ईश्वरीय शक्ति द्वारा निर्मित बताने का साहस करता है। समाज की स्थापना मनुष्य ने की है, ईश्वर ने नहीं की है। जब उस मनुष्य-रचित समाज में कुछ विशृंखलता आ गई है, तब तो सुधार मनुष्य ही करेगा। ईश्वर तो सदेह होकर सुधार करने नहीं आयगा। शोषण करने की प्रवृत्ति तो पूँजीपतियों के समाज द्वारा उनको दिया हुआ अधिकार है। यदि आज समाज शोषण की नीति को गर्हित मान ले, तो शोषण समाप्त हो जायगा। एक मजदूर दूसरे मजदूर का शोषण इसलिए करता है क्योंकि वह पूँजीपतियों के समाज का एक अंग है, और उससे वह भी प्रभावित है। वह अपने से कमजोर व्यक्तियों का शोषण करने में संकुचित नहीं होता, क्योंकि वह दूसरे मजदूर के सम्बन्ध में अपने को पूँजीपति मान लेता है।

उर्मिला ने साहस बटोरते हुए कहा:—"तब तो संसार अथवा समाज में ईश्वर का कोई स्थान ही नहीं रहेगा, क्योंकि जितनी व्यवस्थाएं हैं, वे सभी मनुष्य द्वारा निर्मित हैं।"

कनक ने उसी तीव्रता से कहा:—"बेशक, ईश्वर तो केवल अकर्मण्यों के लिए है। वही उनका अमोघ अस्त्र है, जिसकी दुहाई देकर वह अपनी हीनता को छिपाता है, और दूसरों को भी जो कर्म करने के लिए उत्तेजित होते हैं, उनको

अपने ही जैसा अकर्मण्य बनाने के लिए तर्कों द्वारा जिनके सत्य तथा असत्य निर्णय करने का कोई साधन नहीं है—बाध्य करता है। पूँजीपति ईश्वर की दुहाई केवल अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए देता है तात्पर्य केवल उन्हीं मनुष्यों का नहीं है, जिनके पास पूँजी विशेष है। पूँजीहीन होते हुए भी मनुष्य पूँजीपति हो सकते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में जिनका बौद्धिक विकास पूँजीपतियों-जैसा होता है। जिस समाज में पूँजीपति होना सफल जीवन की पराकाष्ठा मानी गई है, उस समाज के मनुष्य पूँजीहीन होते हुए भी पूँजीपति की भावना से ओत-प्रोत होंगे।"

उर्मिला कुछ कहने जा रही थी, किन्तु देवकीनन्दन ने उसको चुप रहने का संकेत करते हुए कहा :—"उर्मिला, तुम कनक बहन से नहीं जीत सकती। केवल तर्कों से किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन करना असम्भव है। तर्कों की श्रेष्ठता केवल बौद्धिक श्रेष्ठता का लक्षण है। बुद्धि को जब अनुभव का रस-पान करने को मिलता है, तब अपूर्ण ज्ञान पूर्णता को प्राप्त करता है।"

कनक ने बीच ही में टोककर कहा :—"कहती तो हूँ, ईश्वरवादी कोई ऐसा रहस्यमय ढोंग खड़ा कर देंगे जिसकी ओट में वे अपनी महत्ता प्रतिपादित करेंगे। उनका ईश्वर स्वयं रहस्यमय व महान् है, अतएव उनकी बातें भी रहस्य-पूर्ण और महान् होंगी। अब आप 'अनुभव' का अस्त्र लेकर आए हैं, जब दूसरे अस्त्र विफल हो गए हैं। मैं जीवन की जटिलताओं का अनुभव कर रही हूँ, और इसी अनुभव को प्राप्त करने के लिए मैं चन्द्रनाथ से अपने प्राप्य अधिकार के लिए लड़ना नहीं चाहती। श्रमजीवियों की सेवा करने के लिए अपने को श्रमजीवी बनाना पड़ेगा। श्रमजीवी से केवल मिल के मजदूरों का अर्थ न मानना चाहिए, वरन वे सभी व्यक्ति उसमें सम्मिलित हैं, जो अपनी रोटी अपने ही परिश्रम से पैदा करके खाते हैं। परिश्रम चाहे वह शारीरिक हो, चाहे बौद्धिक, वह परिश्रम ही रहेगा।"

उर्मिला ने डरते-डरते कहा :—"पूँजीपति भी तो कुछ-न-कुछ परिश्रम करते ही हैं।"

कनक :—"यों तो रोटी खाने में हाथ को भी परिश्रम करना ही पड़ता है। उर्मिला बहन, परिश्रम के यह अर्थ नहीं हैं। परिश्रम के अर्थ हैं, केवल शारीरिक अथवा बौद्धिक परिश्रम के द्वारा जीविका उपार्जन करना। पूँजीपतियों के परिश्रम में इन कथित परिश्रमों का अभाव होता है, वे केवल पूँजीपतियों के द्वारा ही अपनी जीविका चलाते हैं। तात्पर्य यह है कि पूँजीपतियों में पूँजी प्रधान होती है और परिश्रम गौण, और श्रमजीवियों में परिश्रम प्रधान और पूँजी गौण होती है।"

उर्मिला :—"बहुधा श्रमजीवी भी पूँजीपति हो जाते हैं। वस्तुओं का

उत्पादन तो पूँजी ही उत्पन्न करेगा।"

कनक :—"मैं इस तथ्य को सब अस्वीकार करती हूँ। देश की समृद्धि के लिए उत्पादन आवश्यक है, और उत्पादन पूँजी की सृष्टि करेगा, और उत्पादक के पास पूँजी होगी। यहाँ तक हमारा कोई मतभेद नहीं है। मतभेद यहाँ से आरम्भ होता है जब समाज अथवा सरकार-क्योंकि समाज की कार्य-कारिणी शक्ति ही सरकार है-उस उत्पादन को एकाकी पूँजीपति हो जाने देती है। मेरे विचारों में उचित यह है कि समाज अथवा सरकार ऐसी व्यवस्था बनाय, जिससे उत्पादक पूँजीपति न होने पाय। पूँजी के अतिरिक्त और जो भी उत्पादन के सहायक अथवा अंग विशेष हैं, उनको जीवन-यापन के लिए पर्याप्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था होनी चाहिए। उनको भी वही सांसारिक सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिएं जो उत्पादक को। वे भी मनुष्य हैं, और मानवोचित भावनाओं से उसी प्रकार ओत-प्रोत हैं, जितने कि उत्पादक होते हैं, अतएव उनमें किसी प्रकार का वैषम्य या अन्तर न होना चाहिए। शारीरिक परिश्रम की हीनता का भाव नष्ट होना चाहिए। उसका पारिश्रमिक और मूल्य भी उतना ही महत्त्वशाली होना चाहिए, जितना कि अन्य प्रकार के परिश्रमों अथवा पूँजी का होता है। वास्तव में मजदूर भी तो एक प्रकार की पूँजी ही हैं, तब समझ में नहीं आता कि क्यों जीवित पूँजी को परिश्रम के विनिमय में वह भाग प्राप्त नहीं होता जो निर्जीव पूँजी को दिया जाता है। आज दिन मुनाफे का सबसे बड़ा भाग पूँजीपति अपनी पूँजी के ब्याज और रिस्क अथवा खतरे के विनिमय में ले जाता है। यह कर्त्तव्य सरकार का है कि वह इस असमानता को दूर करे। उत्पादक की पूँजी और रिस्क अथवा खतरे का उचित विनिमय देने के पश्चात् शेष भाग सरकार अथवा समाज के कोष में आना उचित है, जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को लाभ हो। यद्यपि पूँजीपतियों की सरकार भी करों के रूप में उत्पादक से कुछ धन वसूल करती है, किन्तु शेष भाग का अधिकारी उत्पादक अथवा पूँजीपति ही है। इस प्रथा का नाश करना हमारा ध्येय है। सम्प्रति काल में उत्पादक रिस्क अथवा खतरा उठाने के विनिमय में उत्पादन का शेष भाग ले जाता है यह अनुचित है, उसका भी एक निश्चित विनिमय निर्धारित हो जाना चाहिए और शेष भाग केवल समाज को मिलना उचित है।"

देवकीनन्दन ने हँसते हुए कहा:—"यह तो तभी सम्भव है, जब समाज अथवा सरकार का अधिकार सभी उत्पादन-प्रणालियों पर हो अथवा दूसरे शब्दों में तुम समाज की व्यवस्था 'फासिज्मवाद' के सिद्धान्तों पर करना चाहती हो, जहाँ मजदूर उत्पादन करें और वे भी अपना वेतन प्राप्त करें। इस प्रकार तो वैयक्तिक इनीशियेटिव अथवा प्रेरणा का नाश होगा और उत्पादन पर भी इसका प्रभाव

पड़ेगा। अभी तक उत्पादक शेष भाग पाने के लोभ से ही उत्पादन करने में रत होता है, जब उसको वह शेष भाग नहीं मिलेगा, वह किस लाभ के लोभ से उसमें प्रवृत्त होगा ?"

कनक ने हँसते हुए कहा :—"अब शेर ने अपने दाँत दिखाए हैं। इसी तर्क-प्रणाली का आश्रय पूँजीपति सदैव लेते आए हैं। परन्तु भाई साहब, यह बड़ी थोथी दलील है। जिस लोभ से मजदूर उत्पादन-कार्य में प्रवृत्त होता है, उसी लोभ से उत्पादक भी उत्पादन में प्रवृत्त होगा। समाज यदि ऐसी ही अपनी व्यवस्था निर्धारित कर ले तब उत्पादक को भी उसी व्यवस्था का हिमायती होना पड़ेगा, और वह उत्पादन में अवश्य प्रवृत्त होगा। अभी समाज उसको शेष भाग देने का अधिकार दिये हुए है, अथवा दूसरे शब्दों में समाज का दृष्टिकोण ही पूँजीवाद का समर्थक है, इसलिए वह अन्य व्यक्तियों के सामने, जो इसका विरोध करते हैं, अपनी थोथी दलीलें देता है। वास्तव में बात यह है कि आजकल के समाज का मनुष्य ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा स्वार्थी जीव है, वह अपने स्वार्थ को त्यागने के लिए कभी तैयार नहीं होता, अतएव उसका दृष्टिकोण भी वैसा ही स्वार्थमय रहेगा। हर एक काम में सबसे पहले वह अपने स्वार्थ को देखता है, यहीं तक नहीं, वह प्रत्येक उपाय से अपनी स्वार्थ-भावना को दूसरों का अहित करके भी चरितार्थ करना चाहता है, अतएव उसकी सारी योजनाएं स्वयं को लाभ पहुँचाने वाली—अथवा दूसरे शब्दों में पूँजीवादी होती हैं। स्वार्थ-वाद का परिष्कृत नाम पूँजीवाद है। जब तक मानव स्वार्थवादी रहेगा, तब तक पूँजीवाद का नाश असम्भव है। पूँजीवाद को नष्ट करने के लिए हमें मानव के स्वार्थ-भाव को नष्ट करना पड़ेगा। हमें यह सिद्धांत प्रतिपादित करना है कि मनुष्य अपने लिए ही नहीं वरन् समाज के लिए जीवित रहे। उसका प्रत्येक कार्य समाज-हित की भावना लिये हुए हो। जब हम स्वार्थ के ऊपर समाज का महत्त्व स्थिर करेंगे तब हमारे बीच से पूँजीवाद नष्ट हो सकेगा।"

देवकीनन्दन ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा :—"न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। मनुष्य जब स्वभावतः स्वार्थी है तब स्वार्थ का त्याग करने का अर्थ होगा उसके जन्मजात स्वाभाव को नष्ट करना, जो असम्भव है। स्वार्थ भाव को लेकर ही तो सृष्टि का सृजन हुआ है और समस्त ब्रह्माँड के प्राणियों में यह भावना प्रधान रूप से वर्त्तमान है। आत्म-रक्षा के सिद्धांत को नष्ट करना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक मनुष्य एक जीवित प्राणी है।"

कनक ने मन्द मुस्कान सहित कहा :—"स्वभाव गठित करने में जन्म से अधिक समाज का प्रभाव होता है। शिशु के स्वभाव का गठन इतर व्यक्तियों को देखकर तथा उनके अनुकरण से होता है। इसके अतिरिक्त समाज न्यूनाधिक

मात्रा में मानव के स्वाभाविक गुणों का परिवर्त्तन करने में समर्थ होता है। भेड़ियों के समाज में पाला हुआ एक मनुष्य का बालक भेड़ियों का स्वभाव ग्रहण कर लेता है, और अपना जन्म-जात स्वभाव भूल जाता है। आत्म-रक्षा की भावना मानव में स्वभावतः रहते हुए भी उसकी सर्वव्यापी स्वार्थ-भावना समाज द्वारा सीमित की जा सकती है। यदि आत्म रक्षा की भावना आत्म-रक्षा तक ही सीमित रहे तब तो समाज की कोई हानि नहीं, और न समाज के इतर व्यक्तियों की। हानि तो तब होती है जब यह भावना उसकी सर्वव्यापी हो जाती है। जब उसके सारे कार्य स्वार्थ की भावना से संचालित होने लगते हैं, तभी समाज की हानि होती है। अल्प मात्रा में विष औषधि है, और अधिक मात्रा में वही मरणान्तक होता है। वास्तव में मात्रा ही वस्तुओं के गुण-अवगुणों की वृद्धि करता है। यदि समाज में यह मत प्रचलित कर दिया जावे कि उत्पादक अपने लिए नहीं वरन् समाज के लिए उत्पादन करता है, तो उसके स्वार्थ की भावना भी सीमित रहेगी। और वह अपनी स्वार्थ-पूर्ति करता हुआ भी समाज का हितकारी अंग रहेगा। अभी तक यह सिद्धांत प्रतिपादित है कि मनुष्य का कर्त्तव्य है अपनी सन्तान को सुखी बनाना, अतएव वह सबसे पहले अपनी सन्तान को दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के बाद भी वह अपनी सन्तान, निकटस्थ सम्बन्धियों के लिए पूँजी एकत्रित करके छोड़ जाना चाहता है। जब सन्तान आदि के स्थान पर समाज का स्थान निर्धारित हो जाय तब उसका भी दृष्टिकोण बदल जायगा।"

उर्मिला ने जोश में आकर कहा:—"यही तो हमारी प्राचीन भारतीय सभ्यता की परिपाटी थी। हमारा संचय दान के लिए होता था, हमारा जीवन समाज के व्यक्तियों की हित-कामना के लिए हुआ करता था। उस समय मानव अपने लिए नहीं वरन् दूसरों के लिए जीवित रहा करता था, वह अन्याय का नाश करने के लिए यमराज से भी लोहा लेता था। उस समय व्यापारी अपनी आय का शेष भाग, जो परिवार आदि के भरण-पोषण के व्यय के पश्चात् बचता था, समाज को दान करता था। यह तो आप हमारे हिन्दू सिद्धांत की व्याख्या कर रही हैं, और और केवल शब्दों के हेर-फेर से वही साम्य भाव स्थापित करना चाहती हैं, जो भारतीय तथा हिन्दू सभ्यता का जीवन-प्राण है। मानव की स्वार्थ भावना, और समाज के कल्याण अथवा परस्वार्थ की भावना में समन्वय प्रतिष्ठित करने का श्रेय एक-मात्र प्राचीन हिन्दू समाज को है। वहाँ समाज का निर्माण ऐसे नियमों द्वारा किया गया है, जहाँ सब अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हुए भी लोक-सेवा अथवा समाज-सेवा में रत रहते थे। वहाँ वैयक्तिक गुणों का विकास अपने लिए और फिर समाज के लिए होता था। उस समय के समाज

में यह सिद्धांत प्रतिपादित था, और कार्य रूप में परिणत किया जाता था कि मानव अपने लिए नहीं समाज के लिए निर्मित हुआ है, और उसी प्रकार से उसका सारा जीवन विभाजित होता था। मानव-मात्र जन्म से बराबर हैं, उनके उनके अधिकार बराबर हैं, और उनके जन्मजात गुणों तथा विशेषताओं के कारण उन्हें समाज में वैसा ही कार्य करने को मिलता था। कार्य के किसी प्रकार की तथा पारिश्रमिक में न्यूनता नहीं मानी जाती थी। कार्य के कारण घृणा, तिरस्कार का सर्वथा अभाव था, इसके विपरीत उन व्यक्तियों के प्रति जो निम्न श्रेणी का कार्य सम्पादन करते थे, विशेष आदर तथा सम्मान में निश्चित था, जिससे कि उनके मन में ग्लानि उत्पन्न न हो और वे स्वयं भी अपने को हीन न समझें। कार्य का महत्त्व कार्य के रूप में था। इसके विपरीत जो कथा मिलती है, वे केवल अपवाद रूप हैं, क्योंकि अपवाद ही नियम को सिद्ध और प्रमाणित करता है।"

कहते कहते उर्मिला का कण्ठ-स्वर उत्साह के कारण काँपने लगा था। वह विश्राम लेने के लिए ठहर गई।

देवकीनन्दन ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा:—"शाबाश उर्मिला, शाबाश। कनक बहन चाहे भले ही तुम्हारे कथन का अनुमोदन न करें, और वह तुमसे सहमत न हों किन्तु मैं तो अक्षरशः तुमसे सहमत हूँ। कनक, मैंने अभी कहा था कि उर्मिला थोड़े दिनों में बड़ी अच्छी वक्ता हो जायगी, अब मैं उन शब्दों को संशोधित कर यह कहता हूँ कि वह एक अनुपम वक्ता हो गई है, जो तुम्हें भी एक दिन पछाड़ देगी।"

कनक ने सगर्व कहा:—"भाई साहब, मैं सहर्ष उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूँ। यदि मैं हार मानूँगी तो भी अपनी जाति के व्यक्ति से, पुरुष जाति से नहीं।"

उर्मिला प्रशंसा के भार से दबकर लाल हो गई।

देवकीनन्दन ने हँसकर कहा:—"अभागा पुरुष ही तो तुम्हारा चक्षु-शूल है। वह कभी तुम्हारी कृपा प्राप्त कर सकेगा—यह तो निकट भविष्य में भी सम्भव प्रतीत नहीं होता।"

उर्मिला, कनक और देवकीनन्दन तीनों हँसने लगे।

३

बलवन्त को अपने लड़कों के साथ रहते हुए लगभग दो मास बीत गए। प्रत्येक दिन वह अपनी बहुओं को गृहस्थी चलाने के सम्बन्ध में उपदेश दिया करता, जिससे उनके आपस का झगड़ा तो लगभग मिट गया था, परन्तु महावीर और सन्तू पर कोई प्रभाव उसकी बातों का न पड़ता था। एक दिन दोनों

भाइयों ने अपनी-अपनी पत्नियों को पिता के साथ घर भेजने की योजना बनाई और शाम को आकर महावीर ने बलवन्त से कहा:—"बापू, अब हम लोगों ने यह तय कर लिया है कि आज से दारू न पियेंगे। पीने की कौन कहे, हाथ भी न लगायंगे।"

मरुस्थलवासियों को बादल की बूँदों से उतनी शांति न मिलती होगी, जितनी बलवन्त को महावीर के इस आश्वासन से हुई। उनका वात्सल्य सजीव होकर और संदिग्ध दृष्टि से निहारने लगा।

महावीर ने बलवन्त के पैरों को छूते हुए कहा:—"बापू, आपको यों विश्वास न होगा, क्योंकि दारूखोर अपना विश्वास दारू ग्रहण करने के साथ गँवा देता है, इसलिए आपके चरणों की सौगन्ध के साथ कहता हूँ कि मैं आज से अपने होश-हवाश रहते दारू को हाथ न लगाऊँगा।"

वात्सल्य अन्धा और सरल होता है। वह शब्दों के हेर-फेर में पड़ना नहीं जानता। बलवन्त ने महावीर को अपने हृदय से लगा लिया, और कहा:—"भगवान् तुम्हारी प्रतिज्ञा निबाहने में सहायता करें। इसी दारू के कारण तुम्हारी सोने की गृहस्थी राख हुई जाती है, और जितना दुःख यशवन्त के बिछोह से नहीं हुआ था, उससे कहीं अधिक तुम्हारी दुर्दशा देखकर होता है। बेटा, अब तुम सन्तुआ को भी समझा-बुझा कर रास्ते पर ले आओ।"

महावीर ने संतोष के साथ कहा:—"बापू, दारू न छूने की प्रतिज्ञा सन्तू ने भी की है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह भी अब कुराह पर नहीं जायगा। अब दारू पीने का मार्ग ही नहीं रह गया है, क्योंकि सभा की ओर से डुग्गी पीटी गई है कि जो कोई शराब या और कोई नशे का व्यवहार करेगा, उसका बहिष्कार किया जायगा। भला अब आप ही सोचिये कि कौन आदमी सभा के इस हुक्म की अवहेलना कर सकता है। इसके अलावा, हम दोनों भाइयों की आँखें खुल गई हैं, और गृहस्थी को सुधारने की प्रतिज्ञा की है। ये औरतें भी आपका कहना मानती हैं, इसलिए इन दोनों को कुछ दिनों के वास्ते घर ले जाइये, और वहाँ खेती का काम करवाइये। हम दोनों भाई आपको पचास रुपया हर महीना भेजा करेंगे।"

बलवन्त ने गद्‌गद् होकर कहा:—"ऐसा करो तो बेटा, दुःख फिर काहे का रहे। रूठी हुई लक्ष्मी घर ही न आ जाय। इस साल वर्षा भी अच्छी हो रही है, खेती का समय आ गया है, अब मैं भी जाना चाहता हूँ। यहाँ रहकर यशवन्त का बहुत पता लगाया, लेकिन कुछ पता नहीं चलता। घर में जाकर देखूँ शायद वहाँ चिट्ठी आई हो। अगर तुम दोनों भाई पचास रुपये माहवार घर को दो, तो फिर कर्ज लेने की हमें कोई जरूरत न पड़े। भगवान् की कृपा हो जाय तो एक ही

साल में सारा कर्जा अदा कर दूँ। कर्जा ही कितना है ? उधर यशवन्त की भी तनख्वाह आयगी। हमारा काम बड़े मजे से चल जायगा। यह भी तुमने ठीक कहा है कि बहुओं को साथ लेता जाऊँ। तुम्हारी माँ अब बूढ़ी हो गई है, और यशवन्त की दुलहिन अभी बच्ची है, घर का बोझा उसके उठाये नहीं उठता। तुम्हारी दोनों की दुलहिनें घर का सब काम सँभाल लेंगी। एक ही साल में सब ड्योढ़ बैठ जायगा, और तबाही दूर हो जायगी। भगवान् से प्रार्थना है कि तुम्हारी ऐसी ही सुबुद्धि सदैव बनी रहे।"

इसी समय सन्तू भी वहाँ आगया। उसको देखकर महावीर ने कहा :—"सन्तू कल वाली प्रतिज्ञा तुम्हें याद है। हम लोग दारू का परित्याग कर देंगे।"

सन्तू ने सिर नवाकर कहा :—"हाँ दादा, आपके साथही तो सौगन्ध खाई थी। क्या भूल सकता हूँ ?"

महावीर :—"बापू से मैंने कहा है कि हम दोनों भाई घर-खर्च के लिए पचास रुपये माहवार देंगे। पचीस तुम देना, पचीस मैं दूँगा। क्यों मञ्जूर है ?"

सन्तू :—"मेरे लिए तो जैसे बापू वैसे तुम। तुम्हारा हुक्म सिर माथे पर उठाऊँगा। मैं चाहे नंगा, भूखा रहूँ, लेकिन घर को जरूर पचीस रुपया हर महीना दिया करूँगा। बाल-बच्चों के साथ रहते कुछ अड़चन रहेगी, लेकिन इससे क्या आपकी बात नहीं टालूँगा, चाहे जो मुसीबत हमें उठानी पड़े।"

महावीर :—"नहीं, मुसीबत नहीं उठानी पड़ेगी। बाल-बच्चों को मैं भी बापू के साथ भेज रहा हूँ, तुम भी भेज दो। वहाँ रहने से दोनों के मिजाज दुरुस्त हो जायंगे, क्योंकि जहाँ खेती का काम करना पड़ा, झगड़ा करना सब भूल जायंगी। यहाँ पर तो रोटी पकाने के सिवाय कोई दूसरा काम नहीं है, इसलिए बैठे-बैठे क्या करें ? सिवाय लड़ने के और कोई बात सूझती नहीं। इधर अम्माँ भी शिकस्त हो गई हैं, और यशवन्त की दुलहिन अभी नई-नई आई है, बच्ची है, खेती का काम सँभाल नहीं सकती, इसलिए इन दोनों को वहाँ भेजने का निश्चय किया है। बापू की भी यही राय है।"

सन्तू ने आज्ञाकारी सन्तान की भाँति कहा :—"वाह, इसमें मुझसे क्या पूछना है ? बापू और तुम जो कुछ करोगे, मुझे मंजूर है। अब हमारी आँखें खुली हैं। अभी तक हम लोगों ने घर को एक पैसा नहीं दिया था, जिससे सारी मुसीबत आई है, और यशवन्त को भी फौज में भरती होना पड़ा। किन्तु अब हम ऐसा नहीं होने देंगे। एक बार जोर लगाकर बिगड़ी हुई गृहस्थी को उठाकर ऊपर ले आना है। दादा, आपकी किसी भी बात से मैं बाहर नहीं हूँ।"

बलवन्त का मन प्रसन्नता से नाचने लगा। शुष्क और निष्प्रभ आँखें सजल होकर चमकने लगीं, स्वर्णमय भविष्य ने अतीत और वर्त्तमान के दुःख

को बहाना शुरू कर दिया। शरीर के रोम पुलकित होकर घनीभूत मानसिक अवसाद को प्रस्वेद बनाकर ठेल-ठेल कर निकालने लगे।

उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर देखते हुए कहा :—"जब दिन बहुरते हैं, तब मिट्टी भी सोना हो जाती है। इतने दिनों बाद भगवान् ने अरजी सुनी है। अब बस इतनी ही प्रार्थना है कि दोनों की यह सुबुद्धि इसी प्रकार बराबर बनी रहे।"

महावीर —"बापू, अब बिलकुल निश्चिन्त हो जाओ हमारी तरफ से। अब हम लोग कुमार्ग पर कभी नहीं जा सकते। पूरी नींद सो लेने के बाद फिर नींद कहाँ आती है। दारू ने हमें पैसे-पैसे का मोहताज बना दिया, इज्जत-आबरू खाक कर दी है, हम ही नहीं हमारे साथ हमारा घर उजड़ गया, बाप-माँ भूखों मरे, कर्जा हो गया, प्यारे छोटे भाई को बलिदान हो जाना पड़ा, इस दारू ने कौन-सा दुःख नहीं दिखाया है? बापू, अब सब जान-बूझकर क्या फिर कुएं में पड़ना है। बिना कुछ गाँठ से खोये हुए अक्ल नहीं आती, सो ठीक ही है।"

सन्तू ने भाई के स्वर-में-स्वर मिलाते हुए कहा :—"ठीक कहते हो, दादा! इस दारू ने हमें न घर का रखा न घाट का।"

बलवन्त ने प्रसन्न होकर कहा :—"बिलकुल सच है। बेटा, हमारे कुल में दारू का चलन नहीं है। मैं दो-चार साल साठ वर्षों से ऊपर हो गया हूँ; लेकिन अभी तक दारू नहीं पी। पीता कैसे, हमारे कुल में इसकी तलाक काढ़ी हुई है। तुम लोगों ने इधर आकर कुसंग में पड़कर दारू पीना शुरू किया, और उधर हनुमान जी का कोप हमारे ऊपर बरस पड़ा। खेती बिगड़ी, कर्जा हुआ, लड़का गया, सभी तो खराब-ही-खराब हुआ।"

महावीर और सन्तू ने एक स्वर में कहा :—"जो होना था सो हो गया, बापू। अब आगे कुछ नहीं होगा।"

बलवन्त ने दोनों की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा :—"हाँ बेटा, अब आगे से हाथ भी न लगाना, पीने की कौन कहे, नहीं तो हनुमान जी इस बार सब नष्ट करके छोड़ेंगे।"

महावीर :—"नहीं बापू, आप विश्वास रखिये, हम लोग कुराह पर कभी नहीं जायंगे। हाँ तो आप आज ही घर चले जायं। आज छुट्टी का दिन भी है। हम दोनों भाई चलकर रेल पर बिठा आयंगे।"

सन्तू :—"हाँ, आज ही ठीक रहेगा। कल वेतन भी मिला है यह लीजिये इस महीने के खर्च के रुपये पच्चीस।"

महावीर :—"ठीक है बापू, मेरे हिस्से के भी पच्चीस रुपये लीजिये।"

यह कहकर दोनों ने रुपये बलवन्त को दे दिये। बलवन्त के मन के सन्देह को इन पचास रुपयों ने निकाल बाहर कर दिया। वह रुपयों को कमर

में बन्धी हुई खाली नौली में भरने लगा। सन्तू और महावीर की आँखों ने विचार-विनिमय किया, और वे एक कोने से मुस्कराने लगीं।

महावीर:—"सन्तू, राह-खर्च के लिए भी तो हमें कुछ देना चाहिए।"

सन्तू:—"हाँ, हाँ, क्यों नहीं। जितना कहिये, उतना दे दूँ। मेरी समझ में पाँच-पाँच रुपये और दे दिये जायं।"

महावीर ने 'ठीक' कहकर पाँच रुपये और दे दिये। सन्तू ने भी पाँच रुपये दे दिये।

बलवन्त ने उनको अपनी मिरजई की जेब में रखते हुए कहा:—"हाँ बेटा, अब आज ही जाना ठीक रहेगा। दिन भी साफ है बादल-बूँदी नहीं है, संध्या तक बड़े मजे से घर पहुँच जायंगे। कल से खेती का काम शुरू कर दिया जाय।

महावीर ने उठते हुए कहा:—"सन्तू जाओ; जल्दी से सब तय्यारी करवा दो। मैं भी जाकर बाजार से कुछ चीज-वस्तु यशवन्त की दुलहिन के लिए खरीद कर वापस आता हूँ। दोपहर की गाड़ी से जाना है। जल्दी नहीं करोगे तो फिर गाड़ी छूट जायगी। हमें किसी तरह भी आज गाड़ी नहीं छोड़नी है।"

सन्तू उठकर अपने घर चला गया। महावीर बाजार की ओर गया। बलवन्त ने संतोष की साँस ली। उसने पुनः आकाश की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा। दैव-विधान उसकी इस आकस्मिक प्रसन्नता को स्थायी बनाने का उपाय सोचने लगा।

उसी दिन दोपहर को महावीर और सन्तू ने अपने परिवार को बलवन्त के साथ घर भेज दिया। जब तक रेलगाड़ी पलेटफार्म पर थी वे बड़े दु:खी दिखाई देते थे, और जहाँ वह स्टेशन छोड़कर दृष्टि से ओझल हुई, दोनों का अट्टहास समीपवर्ती मनुष्यों को चकित करने लगा।

सन्तू ने हँसते हुए कहा:—"दादा, तुम्हारी बुद्धि के सामने मैंने हार मान ली।"

महावीर सन्तोष के साथ हँसता ही रहा।

४

महावीर और सन्तू बोतल खोले हुए पी रहे थे। बलवन्त को भेजने के बाद जो काम उन्होंने सबसे प्रथम किया, वह था ठेके पर से एक बोतल लाना। प्राय: उनका काम एक पौवे, या कभी-कभी अद्धे से चल जाया करता था, परन्तु आज एक विशेष कारण था उनकी प्रसन्नता का, वह यह कि वे अपने विरोधी दलों से मुक्ति पा गए थे। अब उनके आनन्द में बाधा पहुँचाने वाला कोई नहीं था। बलवन्त और उनकी पत्नियाँ चली गई थीं।

महावीर ने हँसते हुए कहा:—"सन्तू, तू जरा प्याला मेरे मुँह में लगा

दे, जिससे बुढ़ऊ की कसम भी न टूटे, और मेरा काम हो जाय। मैंने शराब न छूने की कसम खाई थी, पीने की नहीं। पीने के बाद होश रहेगा नहीं, इसलिए उस समय यदि दारू छू भी लूँ, तब कसम नहीं टूटेगी।"

सन्तू ने हँसकर कहा :—"दादा, तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी है, तुमने बड़ी आसानी से इन सब देह जलाने वालों से छुट्टी दिला दी। बोनस की रकम मिली थी, उसमें से केवल चौथाई देने से सब काम पूरा-पूरा उतर गया। 'अब तो गुजरेगी चैन से, आकबत की खुदा जाने'।"

महावीर :—"और क्या, उपाय तो वही है, जिससे साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। बिना कुछ लिये हुए बुढ़ऊ टलते नहीं, और ये लोग भी आफत मचाये रहती थीं, अब चाहे जितना लड़ें हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। न सुनेंगे और न गुस्सा आयगा। उनके जाने से मुहल्ले वाले भी प्रसन्न होंगे, और हमारे काम में कोई रुकावट नहीं डालेंगे। अगर कोई अड़चन है तो वह सिर्फ रोटी बनाने की है।"

सन्तू ने प्याला भरकर पीते हुए कहा :—"उसकी कोई अड़चन नहीं है, मैंने उसका प्रबन्ध कर लिया है। ननकू की अम्माँ हमारी रोटियाँ बना दिया करेंगी। अरे वह भी दो रोटियाँ खायगी और घर लावेगी। इसमें कोई अधिक खर्च होगा नहीं।"

महावीर ने नशे से झूमते हुए कहा :—"अरे खर्च की अब क्या परवाह है। मेरी बातचीत कल मिस्त्री से हो गई है। हमको नशे के प्रचार के लिए एक सौ रुपया मिला करेगा, जिससे हमारा पीने का खर्च बिलकुल निकल जायगा, जैसे सुई के नथने से डोरा निकल जाता है।"

महावीर अपनी रसिकता पर हँसने लगा, सन्तू भी हँसने लगा।

सन्तू ने कहा :—"नहीं दादा, तुम्हारी उपमा ठीक नहीं है, मैं कहता हूँ कि हमारी दारू का खर्च इस तरह पूरा हो जायगा जैसे गधे की लादी पूरी होती है।"

यह कहकर वह बड़े वेग से हँसा। महावीर को कुछ बुरा लगा। मादकता की ऊष्मा जब मस्तिष्क को व्याकुल करती है, तब हृदय उसकी ओर रक्त संचालन करने लगता है। मस्तिष्क की धमनियों में एक प्रकार का तूफान आ जाता है, और विवेक-तन्तु भी उसी तूफान के प्रभाव से अपना संतुलन खोकर कुछ निश्चेष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त हृदय से रक्त अधिक मात्रा में संचालित होने से भाव-कुभाव की नाड़ियाँ कुछ अधिक चेतन और तीव्र हो जाती हैं; इसीलिए कभी-कभी कम नशे की हालत में मनुष्य की बुद्धि तथा सूझ-बूझ कुछ प्रखर हो जाती है। ऐसी अवस्था उसी समय होती है जब मादक वस्तुओं की मात्रा

कम ली जाती है। परन्तु ज्यों-ज्यों अधिक मात्रा में उन्हें पिया या खाया जाता है, त्यों-त्यों रक्त का दबाव अधिक उसी अनुपात में बढ़ता जाता है, उस समय सिवाय एक प्रकार के तूफान के और कुछ शेष नहीं रहता। रक्त के उस बवण्डर में चेतना खो जाती है, और मनुष्य गहरी नींद में सो जाता है। चूँकि शराब में तीव्रता अधिक होती है, इसलिए उसका प्रभाव अन्य नशों की अपेक्षा अधिक और तीव्र होता है। धुएं के साथ पीने वाले नशे शराब से भी शीघ्र अपना प्रभाव डालते हैं। क्योंकि धुआँ सूक्ष्म रूप होता है, और वह सीधा मस्तिष्क पर अपना अधिकार जमा लेता है, जब कि अन्य पीने वाले नशों को पाकस्थली से होकर गुजरना पड़ता है, इससे उनमें कुछ विलम्ब हो जाया करता है। मदिरा में तेजाबी गुण होने के कारण वह शीघ्रता से पाकस्थली को अतिक्रमण करने में समर्थ होती है, इसलिए उसका नशा भाँग इत्यादि से पहले आ जाता है।

महावीर के विवेक तन्तु इस समय निश्चेष्ट हो गए थे और उसी प्रकार सन्तू के भी।

महावीर ने चिल्लाकर कहा:—"अरे सन्तुआ, तेरी उपमा तो मेरी उपमा से भी खराब है। अरे तू गधा है, गधा। तू पढ़ा-लिखा तो है नहीं, मेरी बराबरी करने चला है।"

सन्तू ने दूसरा प्याला पीते हुए कहा:—"और तू बड़ा पढ़कड़ है न। पढ़ा नहीं कढ़ा तो हूँ, मैं हमेशा बड़े लोगों के साथ बैठता हूँ।"

महावीर ने तीसरा प्याला खाली कर दिया। झूमकर उसने कहा:—"तू क्या बड़े आदमियों के पास बैठेगा? हमारे मालिक चन्द्रनाथ मुझसे अपने भेद की बातें बतलाते हैं, बातें करते हैं, और सलाह लेते हैं। तुझको कौन पूछता है?"

नशे के आवेश में हास्य से क्रोध भी तुरंत उत्पन्न हो जाय करता है, क्योंकि मस्तिष्क की अवस्था इस समय आँधी में डगमगाते हुए पोत की भाँति होती है, जिसको भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार वायु के झोंके प्रताड़ित करते रहते हैं हास-परिहास करने वाले तन्तु से जब रक्त का संचार मुड़कर क्रोध वाले तन्तु में होने लगता है, तब हँसता हुआ मनुष्य क्रोध से अभिभूत हो जाता है। वही दशा इस समय सन्तू की हुई। सन्तू ने सक्रोध कहा:—"तू अगर इतना झूठ न बोले तो तुझको कोई एक दमड़ी कौन पूछे। चन्द्रनाथ ने बातें मुझसे कीं, और अब तू मेरे सामने डींग मारता है कि वे तुझसे सलाह लेते है। तुझे बड़ा भाई समझकर छोड़े देता हूँ नहीं तो ऐसा चाँटा जमाता कि छठी का दूध याद आजाता?"

महावीर ने चिल्लाकर कहा:—"तू मुझे चाँटा मारेगा, यह न समझना, अभी तेरे भर को मैं बहुत काफी हूँ।"

कहते-कहते उसने एक घूँसा सन्तू के जमा दिया।

सन्तू के हाथ की प्याली गिर पड़ी। वह लड़खड़ाते हुए पगों से उठ खड़ा हुआ। उसने भी महावीर के ऊपर आक्रमण किया।

महावीर ने पीछे हटकर कहा :—"खबरदार सन्तुआ, आगे बढ़ा तो ऐसा घूँसा जमाऊँगा कि तेरी बत्तीसी छिटक कर बाहर गिर पड़ेगी।"

सन्तुआ गाली बकने लगा और क्रोध से काँपता हुआ मारने के लिए कोई अस्त्र ढूँढ़ने लगा। महावीर भी जबाव में असभ्य-असभ्य गालियाँ देने लगा। उनकी इस अवस्था की उत्तरदायिनी मदिरा बोतल में शांत होकर अपना चमत्कार देखने लगी। मोहल्ले में चर्चा होने लगी कि दोनों भाइयों ने आज गहरी मात्रा चढ़ाई है। सन्तू और महावीर एक दूसरे को भद्दी-भद्दी गालियाँ दे रहे थे, कि मजदूर-सभा के कुछ कार्यकर्त्ताओं के साथ कनक और उर्मिला ने प्रवेश किया। नशेबन्दी के आन्दोलन के सिलसिले में कनक मजदूरों की बस्ती का दौरा करने निकली थी। जब उसे मालूम हुआ कि इस मोहल्ले में रहने वाले दो भाई बावजूद तमाम समझायशों के मदिरा पीना नहीं छोड़ते, तब वह स्वयं उनको समझाने के विचार से आई थी। घटना-स्थल पर वह उस समय आई जब नशे का रंग पूरी तौर पर जमा हुआ था। महावीर और सन्तू अकस्मात् इतने मनुष्यों को आते देखकर कुछ स्तम्भित से रह गए।

महावीर ने लड़खड़ाते हुए कहा :—"तुम लोग यहाँ क्यों आये हो ?"

सन्तू भी वैर भूल गया, उसने भी अस्पष्ट शब्दों में कहा :—"जानते नहीं यह अंग्रेजी राज है। बिना हुक्म के किसी के घर में घुस आने की सजा होती है।"

मजदूर-सभा के मन्त्री भगवतीप्रसाद ने आगे बढ़कर कहा :—"चुप रहो, तुम्हें शरम नहीं आती है, शराब पीते हो।"

सन्तू ने उसी प्रकार कहा :—"शरम क्यों आय, क्या किसी की चोरी करके पीते हैं। पीते हैं, अपने पैसे से पीते हैं।"

इनका पुराना साथी दल्ली भी इन लोगों के साथ था। वास्तव में वही उनको लाया था।

उसने डाँटते हुए कहा :—"जानते हो कि ये लोग कौन हैं। हमारी सभा के मन्त्री और सभापति हैं। जरा होश में आकर बातें करो। महावीर, तुम तो कहते थे कि शराब पीना छोड़ दिया है।"

जब मनुष्य कोई गर्हित कार्य करते हुए पकड़ा जाता है, तो असभ्य होने के साथ-साथ कुछ निर्लज्ज भी हो जाता है।

महावीर ने उसी निर्लज्जता से कहा :—"तुम कोई मेरे बाप तो नहीं हो जो तुमको जवाब दूँ। मेरी मौज है, कभी पीता हूँ कभी छोड़ देता हूँ। मैं मजदूर-

सभा को कुछ नहीं मानता। क्या मैं किसी का दबैल हूँ, या किसी की जमींदारी में बसता हूँ। जाओ-जाओ अपना रास्ता देखो; यहाँ पर तुम्हारी एक न चलेगी।"

सन्तू की दृष्टि बोतल पर पड़ी। अभी तक उसमें थोड़ी-सी मदिरा अवशेष थी। उसे उसने उठा लिया और बोतल को ही मुँह से लगाकर पी गया। पीने के बाद कहा:—"देखो, मैं तो तुम्हारे सामने ही पी गया हूँ। है किसी में हिम्मत जो मुझको रोके। दल्ली, तुम अपनी सभा वालों को ले जाओ, नहीं तो नाहक फिसाद हो जायगा। दो-चार की जान जायगी मुफ्त में। जब मैं बिगड़ जाता हूँ तो फिर मुझे रोकने वाला कोई नहीं है। यह अच्छी तरह जान लो।"

कनक ने बड़े मीठे स्वर में कहा:—"भाई, हम लोग तुमसे लड़ने नहीं आए हैं। तुमको तुम्हारे ही हित की बात कहने आए हैं।"

महावीर ने शराब के प्याले को चाटते हुए कहा:—"तू ही तो सारे फिसाद की जड़ है, मुझे तो तेरी सूरत से नफरत है।"

सन्तू ने झूमते हुए कहा:—"तुम्हारा जादू यहाँ नहीं चलने का। जब हमारे मालिक चन्द्रनाथ ने तुमको दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया, तब मजदूरों की शरण में आई हो। लेकिन मैं तुमको यह बताये देता हूँ कि तुम और तुम्हारे मजदूर मेरे मालिक का कुछ बिगाड़ नहीं सकते। चना इतना सहजोर नहीं हो जायगा कि भाड़ फोड़कर निकल जाय। मैं कहे देता हूँ कि तुम्हारी कराई हुई हड़ताल कभी सफल नहीं होगी। हमारा भी एक दल तैयार हो गया......।"

महावीर ने टोककर कहा:—"अरे सन्तुआ, भेद की बातें क्यों बताता है। लोग सब कहते हैं कि शराबी नशे में सब कुछ भूल जाता है।"

सन्तू ने हँसकर:—"जान जायगी तो क्या कर लेगी। मेरे मालिक क्या मामूली आदमी हैं। बड़े लाट साहब तक उनसे हाथ मिलाते हैं।"

भगवतीप्रसाद कुछ कहने जा रहे थे कि कनक ने उनको चुप रहने का संकेत करते हुए अंग्रेजी में कहा:—"इन लोगों से कोई बात करना व्यर्थ है, क्योंकि इस समय ये अपने होश में नहीं हैं। इनकी बातचीत से मालूम होता है कि मिल-मालिक-संघ की ओर से नशे का प्रचार आन्दोलन चल रहा है। अब हमें कुछ अधिक सतर्क रहना पड़ेगा।"

भगवतीप्रसाद ने उसके कथन को अनुमोदन करते हुए कहा:—"आपका विचार सही मालूम देता है। किन्तु इस प्रकार जाने से तो हमारे आन्दोलन में बाधा पड़ेगी।"

कनक ने हँसकर कहा:—"इतनी छोटी-छोटी बातों से आन्दोलन की प्रगति रुक नहीं सकती इनको अभी नहीं जब होश में आयं तब समझाइएगा,

अवश्य रास्ते पर आ जायंगे । इस समय यहाँ अधिक छेड़-छाड़ से परिणाम सुखद नहीं होगा।"

दल्ली उनकी बातों का अर्थ नहीं समझ रहा था, उसने अनुमान किया कि कनक का जो अपमान हुआ है, उससे वे क्षुब्ध हुई हैं, और मन्त्री जी समझा रहे हैं। उसने तीव्र स्वर में कहा :—"सन्तू और महावीर, कान खोलकर सुन लो अगर तुम लोग दारू पीना नहीं छोड़ोगे तो फिर तुम्हारा हुक्का-पानी बन्द कर दिया जायगा, और तुम लोगों से कोई सबन्ध न रखा जायगा। इस मुहल्ले में भी तुम नहीं रह सकते।"

सन्तू ने तमककर कहा :—"हमें खुद तुम्हारे मुहल्ले में नहीं रहना है। हमारे मालिक हमारे रहने के लिए प्रबन्ध कर रहे हैं। हमें कौन तुम्हारे यहाँ अपने लड़के-लड़कियाँ ब्याहनी हैं जो तुम्हारे हुक्का-पानी बन्द करने से हम डर जायं। यह बात मन से निकाल दो कि हम अकेले हैं, हमारे पीछे भी बहुत बल है। तुम लोग हमारा बाल बाँका भी नहीं कर सकते।"

भगवतीप्रसाद ने दल्ली को, जो कुछ कहने ही जा रहा था, रोककर कहा :—"दल्ली, अभी इन लोगों को मत छेड़ो। फिर किसी दिन आकर समझायंगे। इन लोगों की बुद्धि अभी ठिकाने नहीं है। अच्छा सन्तू और महावीर, हम लोग किसी दूसरे दिन आयंगे।" कनक आदि सब लोग चले गए।

सन्तू ने विजयोन्मत्त स्वर में कहा :—"देखो दादा, कैसा भगा दिया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम लोग कोई ऐरे-गैरे नहीं हैं, हमारे पीछे भी उनसे अधिक शक्तिशाली पुरुष हैं, तब डरकर भाग गए। आज मैंने भी उस बंदर मुँह को खूब खरी-खरी सुनाई।"

महावीर ने हँसकर कहा :—"मैंने क्या कुछ उठा रखा। हम लोग बंदर घुड़की से डरने वाले नहीं हैं। इस बोतल का मजा तो किरकिरा हो गया, आओ चलें, ठेके पर कुछ पी आयं।"

सन्तू और महावीर में मैत्रीभाव स्थापित हो गया था। दोनों अपने घर का ताला बन्द करके लड़खड़ाते हुए पगों से चले गए।

५

रामनाथ के भाग्य के निबटारे का दिन आ ही गया। उस दिन का सूर्य सदा की भाँति उदय हुआ था। सदा की भाँति वह आज भी कितनों की ही भाग्य-लिपि का निर्माण करता, और निर्णय देकर उनकी आशाओं को छार-छार अथवा विकसित करता हुआ उदित हुआ था। वह प्रातःकाल कितनों के लिए महा मन-मोहक था, और कितनों के लिए घातक। कितनों ने हर्ष के साथ उस दिन का अंकित कर स्वागत किया, कितनों ने रोते हुए उस दिन को विदा कर

कभी न आने की प्रार्थना की। स्वार्थ-जाल में फँसा हुआ मानव अपनी स्वार्थ-पूर्ति अथवा अपूर्ति के साथ निस्पृह प्रकृति को आशीर्वाद और शाप देता है, किन्तु दुःख यही है कि सुख और दुःख के मुख्य कारण मन को वह कुछ भी भला या बुरा कहने का साहस नहीं कर सकता। इसीलिए मन और भी दुर्दान्त और मनमाना होकर मानव को अशांत और चिन्तित बनाए रखता है।

हाईकोर्ट के दो न्यायाधीशों ने रामनाथ के मुकद्दमे की अपील सुनी। कनक की तर्क-शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। कनक ने भी अत्यन्त मनोयोग से अपनी युक्तियाँ उपस्थित कीं, किन्तु परिणाम कुछ विशेष नहीं हुआ। महा-न्यायालय भी रामनाथ को निर्दोष प्रमाणित नहीं कर सका। वामनदास की हत्या, मानव की हत्या के रूप में ही प्रतिष्ठित रही। उसका अपराध, उसका अत्याचार, असंगत व्यवहार, उसकी काम-लिप्सा, उसकी पिशाच लीला, उसकी जघन्य अभिरुचि सब उसकी हत्या के आवरण में छिप गए। मृत्यु जहाँ मानव के जीवन का संहार करती है, वहाँ उसके अवगुणों का भी अन्त कर देती है। मृत्यु के पश्चात् पापी भी एक बार पुण्यात्मा होकर प्रसिद्धि प्राप्त कर ही लेता है, चाहे वह क्षणिक और नगण्य जनों द्वारा क्यों न हो।

रामनाथ के मृत्यु-दण्ड को आजन्म द्वीपान्तर वास में परिणत कर महा-न्यायालय ने अपनी न्याय-निष्ठा को प्रमाणित करने की चेष्टा की। पूँजीपति कुछ क्षुब्ध हुए, और वे कुछ मुस्काए भी मन-ही-मन, क्योंकि उनके मन ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह दण्ड तो मृत्यु से भी भयंकर है, उनका प्रतिशोध केवल भ्रूकुंचन अथवा शब्दों की सीमा तक सीमित रहा। सरकारी वकील ने किंचित् आपत्ति के साथ न्यायाधीश के निर्णय को स्वीकार किया। कनक के मन में तीव्र विरोध और न्यायाधीशों की बुद्धि-हीनता पर उग्र रोष प्रकट हुआ, किन्तु विशाल साम्राज्य के विरुद्ध अपनी हीनता को अनुभव कर वह स्वयं ही उसकी पीड़ा से छटपटाने लगी। उर्मिला को उस निविड़ कालिमा में भी प्रकाश की एक क्षीण रेखा ने चपला की भाँति चमक चौंधिया कर पुनः उसे वेदना के तलहीन गह्वर में ढकेल दिया। हिन्दू स्त्री का परंपरागत विश्वास है कि स्त्री जीवन की महत्ता सिन्दूर और चूड़ियों के धारण करने के अधिकार में सीमित है, यही उर्मिला के नैराश्य जीवन की क्षीण आलोक-रेखा थीं। कानूनी रूप से सधवा रहकर व्याव-हारिक रूप में विधवा की तपस्या साधन करने के लिए वह अपने मन में प्रेरणा भरने लगी। उसने नैराश्यपूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर देखा, और विधाता के अंकित भाग्य-अक्षरों को पढ़कर अपने मन को सान्त्वना प्रदान करने लगी।

आशाओं का स्वर्णिम जाल गूँथता हुआ रामनाथ अपने भाग्य का निर्णय सुनकर इस प्रकार हताश होकर गिर पड़ा जिस प्रकार आकाश में विचरता

हुआ पक्षी सहसा लू लग जाने से व्यथित होकर गिर पड़ता है। इधर वह भगवान् की करुणा पर विश्वास करने लगा था, और उसका व्यथित मन यह आशा बाँध रहा था कि वह अवश्य निर्दोष प्रमाणित होगा। बजरंगसिंह ने उसके सामने ऐसे उदाहरणों के समूह लगा दिये थे, जिनमें शत-प्रतिशत अपराधी हाईकोर्ट से बेलौस छूट गए थे। बजरंगसिंह स्वयं अशिक्षित था, इसलिए वह नहीं जानता था कि कानून की किस पेचीदगी ने अथवा उसकी किस कमी ने उन अपराधी लोगों को निर्दोष प्रमाणित करने में सहायता दी थी। उसको तो केवल परिणाम से मतलब था, जैसा कि निन्यानवें प्रतिशत जन-समुदाय को रहा करता है, और उसको भी यह विश्वास हो गया था कि हाईकोर्ट प्रायः मुलजिमों को छोड़ दिया करता है। परन्तु वास्तविकता कल्पना से कितनी दूर है, और अपराधी केवल पर्याप्त कारणों के द्वारा ही निर्दोष प्रमाणित होता है, इसका उसे ज्ञान नहीं था। रामनाथ उद्विग्न चित्त से फाँसी के फंदे और आजन्म द्वीपान्तर-वास के भेद को समझने का प्रयत्न करने लगा। एक बार उसका मन कहता कि असमय मृत्यु से तो बच गए, किन्तु दूसरे ही क्षण वह फिर कहने लगता कि इसकी यंत्रणा तो जीवन-व्यापी है। आजन्म वह सबसे परित्यक्त होकर महाकष्ट के साथ जीवन-यापन करेगा, इससे तो कहीं अच्छा था कि एक ही क्षण के दुःख में सारे जीवन की यंत्रणा से मुक्ति तो मिल जाती। उसका मन फाँसी के लिए छटपटाने लगता। मानव वर्त्तमान की अवस्था से संतुष्ट होना नहीं चाहता, यदि कभी होता है तो वह केवल भविष्य की कल्पना पर।

एक प्रकार से रामनाथ के भाग्य का यह अंतिम निर्णय था, क्योंकि कनक को विश्वास था कि प्रांतीय सरकार कभी भी सम्राट् की क्षमा के लिए सिफारिश नहीं करेगी। मजदूर-दल के नेताओं ने यह सुझाव उसके सम्मुख रखा अवश्य, और आन्दोलन करने के लिए उत्साह प्रदर्शित किया, किन्तु कनक को उससे कोई परिणाम निकलता दिखाई नहीं दिया। पूँजीपतियों की सरकार इतनी विशाल हृदयता दिखा सकेगी, यह उसकी अनुमान-परिधि से बाहर था। किन्तु फिर भी उसने प्रयास को कल्पना से अधिक महत्त्व देकर प्रांतीय सरकार को रामनाथ के प्रति दया प्रदर्शित करने के लिए आवेदन-पत्र भेजा। चीफ सेक्रेटरी से उसने साक्षात् भी किया, किन्तु सरकार ने अत्यंत शोक के साथ सार्वजनिक न्याय में हस्तक्षेप करने से इन्कार करदि या। अब रामनाथ के छुटकारे के लिए कोई द्वार नहीं रह गया था। कनक ने उस दिन उर्मिला को हृदय से लगाकर अपनी हार स्वीकार की। और उर्मिला भी सम्पूर्ण रूप से निराश होकर उसके हृदय से चिपटकर अपनी मनोव्यथा को सिसक-सिककर बाहर निकालने लगी।

कानपुर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन की तत्परता विशेष के कारण अधिकारियों ने भी शीघ्रता से कार्य लेना आरम्भ किया। मिस्टर निक्सन ने प्रांतीय सरकार को स्पष्ट रूप से लिख दिया था कि जब तक रामनाथ इस देश में रहेगा, शांति स्थापित होनी असम्भव है, इसलिए वे शीघ्र-से-शीघ्र अण्डमान द्वीप भेजने का प्रबंध कर रहे थे। इधर ज्यों-ज्यों मजदूर-आन्दोलन शक्ति पकड़ रहा था, त्यों-त्यों चन्द्रनाथ का आक्रोश रामनाथ और कनक के प्रति तीव्रतर होता जा रहा था। मिस्टर निक्सन इस समय उसके हाथों की कठपुतली हो रहे थे, और यथार्थतः उसी की इच्छाएं सार्वजनिक सुरक्षा, तथा शांति के नाम से आदेश होकर प्रचारित की जा रही थीं। पूँजी अपनी शक्ति के अजेय दुर्ग में निवास कर क्षुद्र मानवों के प्राणों से खेल-खेलने में संलग्न थी। एक साधारण पूँजीपति देश का अनियंत्रित शोषक हो रहा था, और जो अपनी वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष को राज्य-शक्ति द्वारा संचालित कर रहा था। कनक और उसकी स्नेह-भाजन उर्मिला को जिस प्रकार भी पीड़ित किया जा सकता था, वह सब-कुछ करने को वह प्राणपण से कटिबद्ध था। साधारणतः जिन अपराधियों को द्वीपान्तर-वास का दण्ड दिया जाता है, उन्हें साक्षात् करने आदि की कुछ विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, किन्तु रामनाथ को इसके विपरीत कठोर-से-कठोर नियंत्रण में रखा गया, और कनक की शत-सहस्र चेष्टाओं से भी उसकी पत्नी उर्मिला को उससे साक्षात् नहीं करने दिया गया। कनक आदि ने यह सोचकर कि जब रामनाथ कलकत्ता के लिए प्रस्थान करेगा, उस समय दूर से ही देखकर उससे मिलने की इच्छा को इस रूप से शांत किया जा सकेगा, किन्तु अधिकारी पहले से ही सतर्क थे। अनेकानेक प्रयत्न करने के बाद भी उन्हें न मालूम हो सका कि रामनाथ के प्रस्थान करने का कौन-सा दिन नियत हुआ है। एक दिन सहसा किसी जेल-कर्मचारी से ज्ञात हुआ कि रामनाथ दो दिन पूर्व ही कलकत्ता भेज दिया गया है। कनक को पुनः निराश होना पड़ा। उर्मिला भी अपने मन के विचारों से रो-रोकर वेदना का आदान-प्रदान करने लगी, और उधर रामनाथ स्वदेश को तिलाञ्जलि देकर, मृत्यु-पीड़ा से अधिक भयंकर पीड़ा का भार अपने मन में लिये हुए अण्डमान जाने वाले जहाज पर चढ़ गया। उर्मिला के देखने की साध वह उस समय तक अपनी आँखों में छिपाये रहा जब तक जलयान ने प्रस्थान न कर दिया था, और उसके प्रस्थान करते ही उसकी आँखें अश्रुओं को उगलने लगीं, और अश्रु-धार रत्नाकर के जल में समाविष्ट होकर उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब वह वाष्प के साथ बादल बनकर उर्मिला की आँखों में प्रवेश कर उसका सन्देश दे सकेगी।

६

जिस प्रकार मरुभूमि के मनुष्य बादलों की राह सतृष्णा दृष्टि से देखा करते हैं, उसी प्रकार प्रवासियों के सम्बन्धी, प्रियजन आदि डाकिये की राह देखा करते हैं। डाकखानों से दूर स्थित गाँवों में डाक सप्ताह में केवल एक बार आती है, और वह दिन नियत होता है। प्रातःकाल से ही विरह-विदग्ध प्रेमी डाकिये से किसी-न-किसी संदेश को पाने के लिए उत्कंठित दीख पड़ते हैं। गाँव के प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि उस मार्ग की ओर लगी रहती, जिससे प्रायः डाकिया आया करता है। गाँव के लड़के डाकिये को देखते ही चिल्लाने लगते, और दौड़कर अपने गुरुजनों को उसके आगमन की सूचना देते। डाकिया भी शोक और हर्ष के समाचारों को अपने झोले में भरे हुए किसी बड़े आदमी या मुखिया की चौपाल में आ बैठता। गाँव के व्यक्ति उसका जल आदि से स्वागत करते, और वह सबसे प्रेम से बोलता हुआ पत्रों का बंडल बाहर निकालता। जिसका पत्र होता उसे देकर, शेष व्यक्तियों को निराश कर किसी दूसरे गाँव की ओर चल देता। इसी प्रकार निराश होते हुए लछिमिन और सुखदेई को महीनों बीत चुके थे। जब से बलवन्त कानपुर से अपनी दोनों बहुओं-गौरी और राधा-को लेकर आया, तब से डाकिये की प्रतीक्षा का कर्त्तव्य उसने अपने ऊपर ओट लिया था, किन्तु लछिमिन और सुखदेई उसी आकुलता के साथ अपने घर में बैठी हुई यशवन्त का समाचार मिलने की प्रतीक्षा करती थीं। महावीर के लड़के धन्नू और सन्तू की लड़की मुरैला में अब भी छठाठे का व्यवहार चलता था, किन्तु दोनों लछिमिन की बात मानते थे, और उनमें यह होड़ लगी रहती थी कि उनमें से सबसे पहले कौन डाकिये के आने का समाचार उसको सुनाता है।

उस दिन मंगलवार था। सुधौली में डाक प्रायः मंगलवार को ही आया करती थी। बलवन्त धन्नू और मुरैला को लेकर मुखिया की चौपाल की ओर चल दिया, क्योंकि डाकिया वहाँ आकर ठहरा करता था। डाकिया आया और मुरैला दौड़कर अपनी दादी को समाचार देने के लिए चली गई, किन्तु धन्नू उस दिन नहीं गया, वह अपने दादा के पास ही खड़ा रहा। बलवन्त उन व्यक्तियों में था जिसे सदैव निराश होकर जाना पड़ता था। उसके उच्छ्वास की निश्वास डाकिये पर अपना प्रभाव सदैव डालती थी वह भी उसके लिए दुःखी रहता था। डाक के पत्र, मनीआर्डर बँट जाने के बाद जब बलवन्त को कुछ न मिलता था, तब वह फिर भी आशा की प्रेरणा से पूछ बैठता:—"क्यों भैया, मेरे नाम कोई चिट्ठी नहीं है।" डाकिया उससे भली भाँति परिचित था, वह पहले उसकी कहानी सुन चुका था। करुणा और दुःख से अभिभूत होकर वह उत्तर देता:—"नहीं काका, आज की डाक में तुम्हारे लिए कोई चिट्ठी है।" बलवन्त आकाश की

ओर देखकर अश्रुओं को पीता हुआ घर की ओर प्रस्थान कर दिया करता था। किन्तु आज डाकिये का मुख बहुत प्रसन्न था। उसने आते ही कहा :—"बलवन्त काका, आज एक मनीआर्डर तुम्हारे नाम है।"

अन्य प्रतीक्षकों के नेत्र उसकी ओर उठ गए। बलवन्त को मनीआर्डर के नाम से प्रसन्नता नहीं हुई। उसने पूछा :—"क्या चिट्ठी नहीं है ?"

डाकिए ने मुस्कराते हुए कहा :—"अरे काका, रुपया है रुपया। पूरा एक सौ रुपया है। पूना से आया है।"

गाँव के व्यक्तियों ने एक स्वर में कहा :—"अब बलवन्त का भाग्य खुला है। जस्सू सपूत निकला, भगवान् करे सबके ऐसा ही बेटा हो।"

बात-की-बात में यह समाचार अग्निकाण्ड के समाचार की भाँति गाँव में फैल गया। अपनी चौपाल में बैठे हुए साहबदीन सेठ ने भी यह समाचार सुना। सुनते ही बैठक में ताला बन्द करके उधर दौड़े, जहाँ डाकिया ठहरा हुआ था। जब उन्होंने बलवन्त को वहाँ बैठे हुए देखा, तो उसके प्राण-में-प्राण आए। डाकिए ने उन्हें देखकर कहा :—"सेठ जी, आपके नाम भी एक मनीआर्डर है।"

साहबदीन ने प्रसन्नता से कहा :—"आज किसी अच्छे का मुँह देखकर उठा हूँ, जो सबेरे-ही-सबेरे बोहनी हो रही है। कितने का मनीआर्डर है और कहाँ से आया है।"

डाकिए ने रुपयों को निकालते हुए कहा :—"आपके नाम भी एक सौ रुपयों का मनीआर्डर है, भेजने वाले का नाम है यशवन्तसिंह। नागपुर से आया है।"

यशवन्तसिंह के नाम ने बलवन्तसिंह को चौंका दिया। गाँव वालों ने कहा :—"अच्छा, बाप के नाम एक सौ अलग भेजे हैं, और साहूकार के नाम एक सौ अलग। क्या यशवन्त रुपयों की खान पर जाकर बैठ गया है।"

साहबदीन ने प्रसन्न होकर कहा :—"हाँ भाई आजकल फौज में बड़ी आमदनी होती है, तीन महीने में उसने दो सौ भेज दिए। अब बलवन्त भाई का कर्जा बहुत जल्दी निपट जायगा। हाँ बलवन्त भाई, तुम्हारे नाम जो एक सौ रुपए आए हैं, वह भी तुम्हारे खाते में जमा कर लूँ ? पुराने आदमियों की कहावत है कि ऋण शेष और अग्नि शेष को कभी न रखना चाहिए क्यों कि ये दोनों रात-दिन बढ़ा ही करते हैं। कर्जा अदा करने से तुम्हारे ही सिर का बोझ हल्का होगा। कहो, क्या कहते हो।"

डाकिया भी शोषित व्यक्तियों में से एक था। बलवन्त के कुछ कहने के आगे ही उत्तर दिया :—"नहीं सेठ, ऐसा न करो। आखिर बलवन्त के घर में भी तो खाने वाले हैं। यशवन्त ने पहले से ही आधा-आधा रुपया तुम दोनों को भेज दिया है। अब अधिक लोभ न करो।"

सेठ साहबदीन ने शुष्क हँसी हँसते हुए कहा :—"मैं तो बलवन्त भाई के सुभीते के लिए कहता हूँ। घर में रुपया खर्च हो जायगा, और मुझे देने से उनका कर्ज़ और ब्याज कम होगा, इसके अतिरिक्त मैं तो हमेशा देने के लिए तैयार हूँ। आधी रात को माँगे तो भी सोता हुआ उठकर इनका काम पहले करूँगा।"

बलवन्त को पत्र की जगह रुपए मिलने से कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। उसने रुपयों को सेठ साहबदीन को देते हुए कहा :—"सेठ जी, यह रुपया भी जमा कर लीजिए।" फिर एक ठंडी आह के साथ कहा :—"इसी कर्ज के ही लिए तो मेरे जस्सू ने सिर पर कफन बाँधा है। यह मेरे किस काम का है। तुमने बलवन्त को चोर ही समझ रखा था, जो रात-दिन रुपयों के लिए लड़के की जान खाए जाते थे। बलवन्त गरीब है, लेकिन बेईमान और चोर नहीं है। गरीब चोर और बेईमान नहीं होते। उनके ऊपर राम होता है, और नीचे धरती। बेईमानी करके उन दोनों देवताओं को असन्तुष्ट करना नहीं जानते। जाओ, ले जाओ सेठ जी, यह रुपया मेरे जस्सू का खून है। बेटे का खून बाप नहीं पी सकता। धरती मैया ने अभी तक मेरा पालन-पोषण किया है, वही फिर भी करेगी। तुम्हारा कर्ज़ा जितनी जल्दी मिटे उतनी ही जल्दी मैं जस्सू का मुँह देखने की आशा करूँगा।"

सेठ साहबदीन ने रुपया लेते हुए कहा :—"बलवन्त भाई, गुस्सा क्यों होते हो? सेंत-मेंत रुपया तो मैं नहीं माँगता, जब पहले दिया है तब माँगता हूँ। रुपए का काम रुपए से होता है, खाली मियाद बताने से नहीं होता। जस्सू कुछ मेरे कहने से फौज में भरती नहीं हुआ है। उसकी गरज उसको ले गई है। जब तुम्हारी गरज थी तभी रुपया माँगने आए थे। भाई, दुनिया में तो सारा व्यवहार गरज का है।"

बलवन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप उठकर जाने लगा, और सदा स्वभाववश डाकिए से पूछा :—"तो भैया, मेरे नाम कोई चिट्ठी नहीं है?"

डाकिया ने कहा :—"नहीं काका, अब कुछ नहीं है, जो था सो दे दिया, फिर सेठ साहबदीन से कहा :—"सब-की-सब रकम न ले जाओ, दस पाँच रुपए तो खर्च के लिए दे दो।"

सेठ साहबदीन ने पाँच रुपए का नोट निकालते हुए कहा :—"बच्चों की मिठाई इत्यादि के लिए पाँच रुपए काफी होंगे। लो भाई बलवन्त, ये पाँच रुपए लेते जाओ। मैं तुम्हारे हिसाब में एक सौ पञ्चानवें जमा करूँगा।"

मिठाई के नाम से धन्नू सजग हो गया था। उसने हाथ बढ़ाकर नोट ले लिया, किन्तु बलवन्त का सहज वात्सल्य रूप सहसा कर्कश और शुष्क हो गया, उसने धन्नू के हाथ से नोट छीनकर सेठ साहबदीन की ओर फेंकते हुए कहा:

"नहीं सेठ जी, आपकी दया बहुत है। जब तक तुम्हारा सारा कर्जा अदा नहीं हो जाता तब तक मेरे लिए जरसू का पैसा अपने निजी खर्च में लाना महापाप है।"

यह कहकर वह बिना किसी ओर देखे धन्नू को घसीटता हुआ घर की ओर चला गया। सेठ साहबदीन ने बिना किसी आपत्ति के वह भी नोट ले लिया, और मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ अपने घर चला गया।

७

साहबदीन गाँव के सेठ तो थे ही, और इस वर्ष वे मुखिया भी हो गए थे। इस पद को प्राप्त करने में उन्हें यथेष्ट मात्रा में तपस्या और पूजा करनी पड़ी थी, अथवा आजकल की व्यावहारिक भाषा में दौड़-धूप, सिफारिश, नज़र-भेंट और और रिश्वत देनी पड़ी थी। उसने यह व्यय इसलिए वहन किया था, जिसमें उसकी मान-प्रतिष्ठा में वृद्धि हो, और गाँव वाले उसे 'सूदखोर' कहकर न पुकारें। पूँजी के प्रति जन साधारण का आक्रोश प्रायः प्रत्येक समाज में देखने को मिलता है, और प्रत्येक पूँजीपति जहाँ अपनी पूँजी का महत्त्व तथा गुरुत्व अनुभव करता है, उसके साथ-साथ जनता के सहज आक्रोश की खरखराहट से भी अवगत रहता है, तथा उसी को ढाँकने के लिए वह मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा और उच्च-पद के आवरणों को ढूँढ़ा करता है। उनको हस्तगत करने के लिए वह अधिकारियों की मूर्ति पर भेंट तथा उपहारों के पुष्प चढ़ाता है और रुपयों के पानी से पद-प्रक्षालन करता है। रात-दिन सायं-प्रातः मध्याह्न तथा मध्य रात्रि का भेद उसके लिए मिट जाता है। अपने अधिकारी प्रभु और उसके पार्षद बाबुओं और चपरासियों को आँखों के इशारों पर वह उस अमूल्य पूँजी को लुटाने के लिए उद्योग तथा प्रयत्नशील रहता है, जिसको वह अनेक छल, बल, कौशल से आर्त, दीन और गरीबों की हड्डियों को निचोड़कर प्राप्त करता है। साहबदीन दो सौ रुपए लिये हुए सीधा घर चला आया। उन नोटों की ओर वह मुग्ध सतृष्ण नेत्रों से देख रहा था, यद्यपि वे उसके हाथ में थे, तथापि सन्तोष नहीं होता था। उसकी गृहिणी यशोदा ने जहाँ उन नोटों को देखा, उसके भी नेत्र सतृष्ण हो गए। मुँह में पानी भर आया। उसने लपककर सेठ साहबदीन के हाथ से उनको इस तेजी से छीन लिया जैसे चील अपने खाद्य को झपटकर छीन लेती है, और उस खाद्य को ले जाने वाला व्यक्ति चकित होकर स्तम्भित रह जाता है, उसी प्रकार साहबदीन भी विवश नेत्रों से अपनी गृहिणी की ओर देखने लगे।

यशोदा ने रुपयों को गिनते हुए कहा :—"आज सुबह-सुबह कहाँ से इतने रुपए ले आए ? मैं यह रुपए तुम्हें नहीं दूँगी। देखते नहीं, मेरे पास नई डिजाइन के गहने नहीं हैं। कहते-कहते मेरी जीभ घिस गई, परन्तु तुम्हारे कान में जूँ भी

न रंगी । परसों श्रीराम अपनी घरवाली के लिए नई डिजाइन के इयरिंग बनवा-कर लाया है, वैसे ही मैं भी बनवाऊँगी । श्रीराम अपनी स्त्री को कितना मानता है । गहनों और कपड़ों से उसकी सन्दूकें भरी हैं । है उसके एक छोटी-सी दुकान, लेकिन उसी की कमाई से अच्छे-से-अच्छा खाते और पहनते हैं । एक तुम हो, रात-दिन झूठ-साँच और तीन-पाँच करते हो, मगर……।"

मानव अपने सम्बन्ध में अनर्गल बातें तथा कटु आलोचना दूसरों के मुँह से सुन सकता है, उसे वह सहन भी कर लेता है, किन्तु जब उन्हीं कटु वाक्यों का व्यवहार अपने निकटस्थ सम्बन्धी अथवा मित्र करते हैं, तब वे असह्य हो जाते हैं । वह क्रोधाभिभूत होकर विवेक-शून्य हो जाता है और उस समय वे सारे आक्रोश, जिनको लोभ ने अथवा आशक्यता ने वर्षों से छिपाकर दबा रखा है, एक साथ उस वेग से निकल पड़ते हैं, जैसे किसी ऊँचे स्थान पर रुका हुआ जल बाँध टूट जाने से नीचे की ओर भागता है । वह आक्रोश उस समय और भी तीव्र हो जाता है, जब आलोचक उसी का आश्रित और उससे शारीरिक शक्ति में हीन होता है ।

साहबदीन ने यशोदा को बोलने नहीं दिया, और उसने हुमककर एक लात उसकी कमर में जमाई कि नई डिजाइन के इयरिंग पहनने के आनन्द से विभोर यशोदा नकभरा गिर पड़ी । पास ही पड़ी हुई साग काटने की हँसिया की नोक उसके कपोलों को छीलती हुई दाहिनी कनपटी पर झूलती हुई बाली में उलझ गई । रक्त के छोटे-छोटे स्रोत उमड़ पड़े । यशोदा के मुँह से केवल इतना ही निकला :—"हाय हत्यारे ने मुझे भी मार डाला ।"

साहबदीन ने चिल्लाकर कहा :—"तेरी जबान में लगाम नहीं है । मेरा ही खाती है और मुझही को गालियाँ देती है ।"

आहत यशोदा के मस्तिष्क में साहबदीन के प्रहार ने उस विस्मृति-कोष को कोंचकर चैतन्य कर दिया, जिनमें उसके सारे वैवाहिक जीवन की कटुताएं अनादर, अपमान, अत्याचार, यातना और पीड़ा संचित थी । छोटी-से-छोटी साध अपूर्ण रहने से जो चोभ वर्षों से जमा हो रहा था, आज वह उबल-उबल कर निकलने के लिए छटपटाने लगा । पका हुआ फोड़ा किंचित् आघात-मात्र से फूटकर बह निकलता है । उस प्रवाह के साथ आघात से जगाई हुई प्रतिहिंसा भी अपने प्रखर रूप से प्रकट होती है । यशोदा ने उठते हुए अपने कान की बाली से हँसिया निकाल कर अपने हाथ में पकड़ लिया, और तीव्र स्वर में बोली :—"जब से तुम्हारे घर में आई, रोते-रोते जन्म बीता है । जैसा खाना तुम्हारे घर में मिलता है, और स्वयं खाते हो, वैसा मेरे बाप के घर में कुत्तों को भी नहीं दिया जाता था । अभी तक तुम्हारा अत्याचार बहुत सहा है, अब नहीं सहने की । क्या

मुझको भी अपना एक गँवार मूर्ख और जरूरत की आग में भुनता हुआ आसामी समझ लिया है। मैं तुम्हारी सारी सम्पत्ति की बराबर की हिस्सेदार हूँ। इस घर में आई हूँ। तो अधिकार लेकर आई हूँ; तुम्हारे दान और दया के भरोसे नहीं आई हूँ। अचानक में मार लिया सो मार लिया, अब अगर हाथ उठाओगे तो मैं भी अपना बचाव करूँगी।"

यह कहती हुई यशोदा उन नोटों को अपनी कुरती की जेब में डालती हुई हँसिया लेकर और सेठ साहबदीन के सामने तनकर खड़ी हो गई।

पुरुष मानव बल और शौर्य के प्रांगण में स्त्री मानव से हार मानने के लिए कभी तैयार नहीं होता, क्योंकि चिरकालीन परम्परा से वह उन्हें अपने हा एकाधिकार की वस्तुएं मानने लगा है। साहबदीन की क्रोधाभिभूत आँखें घूम-घूमकर हँसिया से भी किसी उग्र अस्त्र की खोज करने लगीं। उसके न मिलने से उसके हृदय में कुछ खिन्नता उत्पन्न हुई, किन्तु उसके साथ ही पूँजीपतियों की स्वभाविक भीरुता भी सजग होने लगी जिसे पुरुषत्व बार-बार अपने वाक्शब्दों की तीव्रता और ऊँचेपन से ढकने का प्रयत्न करने लगा।

सेठ साहबदीन ने अपनी सारी शक्ति शब्दों के द्वारा प्रकट करते तथा अपने शौर्य का गालियों द्वारा प्रदर्शन करते हुए कहा:—"निकल मेरे घर से। जाकर रह अपने यार श्रीराम के यहाँ; जिसके कपड़ों और गहनों पर रीझ रही है।"

स्त्री सब-कुछ सहन कर सकती है किन्तु अपनी पवित्रता पर किये हुए आपेक्ष को सहन करने में सर्वथा असमर्थ है। भारतीय स्त्रियों की तो वह एक विशेष निधि है, जिसकी वेदी उनके बलिदानों तथा प्राणों की आहुति से अनन्त काल तक उज्ज्वल और लाल बनी रहने वाली है।

यशोदा की आँखें क्रोध से आग उगलने लगीं, और होंठ फड़कने लगे। उसने ज्वालामुखी की भाँति गरज कर कहा:—"चुप रहो, कहते हुए लज्जा नहीं आती। अपनी स्त्री को पर पुरुष के पास जाने की बात कहते हुए तुम्हारी जीभ गिर नहीं पड़ती। अगर मैं ऐसी होती तो तुम्हारे दिये हुए चीथड़ों और सड़े अन्न पर अपना यौवन निछावर न किये होती।" कहते-कहते वह सहसा रुक गई। घर के दरवाजे पर लछिमिन भयंकर वेश से खड़ी थी। उसके रूक्ष छोटे बाल उसकी भयावनी आँखों के चारों ओर बिखरे हुए थे। उसका मुख-मण्डल अपनी सहज दया, क्षमा, स्नेह, करुणा की आभा को त्यागकर कलह, द्वेष और प्रतिहिंसा की कालिमा से अभिभूत हो रहा था। उसके हाथ-पैर मन की अस्थिरता से काँप रहे थे, किन्तु जब उसने यशोदा और साहबदीन को अपने-अपने पैंतरे पर खड़े देखा तो वह स्तम्भित रह गई। जिन बातों के कहने के लिए वह चपला की उद्दाम गति से तड़पती हुई आ रही थी, वे स्त्री-पुरुष के

कलह-काण्ड को देखकर उलटे पैर कण्ठ के नीचे उतर गई।

इसका प्रभाव यशोदा पर भी पड़ा। उसने हँसिया फेकते हुए कहा:—"क्या है लछिमिन आओ, वहाँ क्यों खड़ी रह गई?"

साहबदीन ने अवसर देखकर वहाँ से टल जाना चाहा, क्योंकि उसको लछिमिन के आने का कारण ज्ञात हो गया था।

जिस प्रकार बिल्ली भागते हुए चूहे पर झटपती है, उसी भाँति लछिमिन ने साहबदीन को झिझकोरते हुए कहा:—"सेठ, मेरे बच्चे की भेजी हुई सारी रकम हड़प कर लाये। क्या तुम्हारे मन में तनिक भी दया नहीं रही। तुम्हारे ही कारण मेरा बच्चा अपना बलिदान चढ़ाने के लिए लड़ाई में प्राण होम ने गया. है। वह तुम्हारे रुपये बराबर अदा कर रहा है, और अगर थोड़ी-सी रकम वह घर-खर्च के लिए भेजता है तो उसको भी तुम छीन लेते हो। सेठ जी, यह समझ लो कि गरीब की हाय कभी खाली नहीं जाती, हमारा बिलखना और कलपना यों ही न चला जायगा.......।"

साहबदीन के कुछ उत्तर देने के पहले ही यशोदा ने लछिमिन के मुँह को अपने हाथ से ढक लिया और कहा:—"लछिमिन बहन शांत हो, मेरे पति को सराप मत दो। तुम्हारा रुपया मेरे पास है। बहन, तुम ले लो, लेकिन सराप मत दो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मेरे एक ही लड़का है.......।"

स्त्री अपने पति और पुत्र की अनिष्ट वार्त्ता सुनने में अक्षम होती है। साहबदीन ने अनुभव किया कि यशोदा अपने सहज भाव में आ गई है। उसका मूर्छित शौर्य जाग उठा। उसने तीव्रता के साथ कहा:—"नहीं रुपये मत देना। मैं कोई खैरात नहीं ले रहा हूँ, रुपये पहले दिये है तब ले रहा हूँ। वह दिन भूल गई लछिमिन, जब घर-घर एक-एक पैसे को बिलखती फिरती थी। कोई तुम्हारे जस्सू के विवाह के लिए एक पैसा भी उधार नहीं दे रहा था। मैंने ही तुम्हारे ऊपर तरस खाकर एक दम पाँच सौ रुपये तुम्हारे आँचल में डाल दिये था, और जब आज मैंने रुपया वापस लिया तो तुम मरने-मारने पर उतारू हुई हो। तुम्हारे जस्सू को मैंने लड़ाई में नहीं भेजा, मैंने तो इस सम्बन्ध में उससे एक बात भी नहीं कही। वह गया है अपने शौक से, और तुम लोगों के कारण। दुनिया में हर-एक अपनी उधार की दी हुई चीज माँगता है। इसमें मैंने कौन-सा पाप किया। कर्जा बिना दिये हुए तो उतरेगा नहीं। जितनी जल्दी दोगे उतनी जल्दी तुम्हारे सिर से बोझ उतर जायगा।"

साहबदीन के तर्क ने लछिमिन के क्रोध के उफान को ठण्डा कर दिया। उसने नरम पड़ते हुए कहा:—"लेकिन तुमने वे रुपये क्यों लिये; जो उसने अपने बापू को घर खर्च के लिए भेजे थे? आखिर हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं, खेती

पाती करनी है, दोनों बहुरिया और उनके लड़के-बच्चे कानपुर से आ गए हैं, इन सबको खाने को चाहिए।"

साहबदीन ने देखा कि उसकी जीत हो रही है, वह बड़ी नम्रता के साथ कहने लगा :—"यह दूसरी बात है। जब तक तुम्हारा जस्सू नौकर है, तभी तक मेरे रुपयों के लौटने का मौका है, और फिर तुमको कभी देने से इन्कार तो नहीं किया है। नाम लिखाकर तुम रुपया ले जा सकती हो।"

यशोदा ने मध्यस्थ का पद ग्रहण करते हुए कहा :—"जब रुपया तुम्हें देना ही है, तब नाम लिखाकर क्यों दिया जाय। जस्सू ने जैसा भेजा है, वैसा जमा करो।"

मानव अपने मनोनुकूल बात को सहज ही स्वीकार कर लेता है, किन्तु विपरीत होने से वह क्रोध को जन्म देता है। साहबदीन ने यह भी अनुभव किया कि यह उपयुक्त अवसर है, अपनी खोई हुई बाजी जीतने का। उसने कर्कश कण्ठ से कहा :—"चुप रह, मैं तेरी सूरत नहीं देखना चाहता, निकल मेरे घर से।"

यशोदा की भूली हुई पीड़ा सजग हो गई। लछिमिन के सामने अपनी हार स्वीकार करने को वह तैयार नहीं थी उसने भी वैसी ही तीव्रता से उत्तर दिया :—"मैं कब रहने को तैयार हूँ। ले, जाती हूँ, मेरे बाप के घर में जगह बहुत है। हमेशा घर की धमकी देते हो, यह लो अपना घर।"

फिर लछिमिन से कहा :—"बहन क्या दो दिन के लिए अपने घर में रहने को जगह दोगी? जब तक मेरा भाई नहीं आता, तब तक तुम्हारे यहाँ रहूँगी। उसके आने से चली जाऊँगी। देखो आज सुबह-सुबह मेरे लात जमाई। जिससे नकभरा गिरी और मरते-मरते बाल-बाल बची। अगर कहीं हँसिया पर गिरी होती तो वह आर-पार हो जाती और अच्छा होता यदि प्राण निकल गये होते। रोज-रोज की हाय-हाय से छुट्टी मिल जाती। न पेट-भर खाने को मिलता है, और न लाज छिपाने को कपड़ा। सम्पत्ति रहते हुए भी......।"

साहबदीन को पुनः क्रोध आ गया। उसने गरजकर कहा :—"यह सम्पत्ति तेरे बाप की दी हुई नहीं है, मेरे बाप-दादों की और मेरी कमाई हुई है। इसमें तेरा कोई हक नहीं है। निकल मेरे घर से, रोज-रोज का झगड़ा तो मिटे।"

सुलगती हुई अग्नि धधकने लगी थी। यशोदा ने सरोष उत्तर दिया :—"इसके भरोसे न रहना। झगड़ा तो अब शुरू होगा। आधी सम्पत्ति बँटवाकर मानूँगी।" यह कहती हुई वह लछिमिन को लिये हुए घर के बाहर निकल गई। साहबदीन देखता ही रहा।

रास्ते में लछिमिन ने कहा :—"यह क्या किया बहन! स्त्री-पुरुष का झगड़ा घर के बाहर नहीं जाना चाहिए।"

यशोदा ने आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए कहा :—"क्या करूँ अम्मा, सहने की तो एक सीमा होती है, कहाँ तक सहूँ। ठीक है, जरा कुछ दिन अकेले रहकर उन्हें अपने हाथ से पकाने खाने दो।"

लछिमिन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। दोनों अपने विचारों में मग्न चली गईं।

८

उर्मिला और कनक अपने-अपने मन पर इलाहाबाद से निराशा का भार लेकर लौट रही थीं। उनके मोटर की गति स्वयमेव कम होती जा रही थी, स्टियरिंग ह्वील पर बैठी हुई कनक का पैर एक्सेलरेटर पर किसी विचार के वेग से अपने आप शिथिल हो जाता और उसकी गति कम हो जाती। विचारों का वेग टूटकर जब मन को किसी अन्य दिशा में ले जाता तो वह अनुभव करती कि मोटर की गति बहुत कम हो गई है। वह चौंककर पुनः उसकी गति में तीव्रता उत्पन्न करती, किन्तु विचार-प्रवाह उसे बरबस दूसरी ओर ले जाता। उसके पास बैठी हुई उर्मिला आँखों के उमड़ते हुए वेग को थामे हुए बैठी थी। विचार पहले मौनावस्था में ही प्रवेश करते हैं और जब वे मन को मथकर उसको अपना भार सहन करने के लिए अशक्त बना देते हैं, तब वे प्रकट होकर मन की ओर सहानुभूति और दर्द पैदा कराने के लिए आतुर हो जाते हैं। कनक ने होश सम्भालते हुए कहा :—"क्यों बहन, क्या सोच रही हो?"

उर्मिला चौंक पड़ी। उसने अपने उठते हुए विचारों को भीतर ढकेल दिया, और संयत स्वर में कहा :—"कुछ नहीं।"

कनक ने एक हाथ से उसकी पीठ सहलाते हुए :—"बहन, संसार में न्याय नहीं है। पुरुष जाति ने सारी शक्ति हथिया ली है। उसने नियम, शास्त्र कानून इत्यादि को इस तरह बनाया है, जिसमें उसी की जाति का बोल-बाला अन्त तक बना रहे। स्त्री जाति के लिए उनकी गुलामी करने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जितना पुरुष जाति ने स्त्री जाति का शोषण किया है। उतना कभी किसी ने किसी का नहीं किया है। उनकी नीति हमको सदैव गुलाम बनाये रखने की है। पुरुष के सामने स्त्री की पवित्रता, उसकी इच्छा या अनिच्छा का कोई मूल्य नहीं है। पुरुष पूँजीवादी की भाँति उसके सभी भावों, विचारों का एक मूल्य निर्धारित कर देता है। एक पुरुष जब किसी नारी की प्रतिष्ठा भंग करता है, तब उसका बनाया हुआ कानून कुछ वर्षों के लिए उस अपराधी पुरुष को कारावास का दण्ड देता है, परन्तु उस सताई हुई नारी की क्या गति होती है, इसके लिए वह कोई उपचार नहीं करता है। उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा तथा पवित्रता वह उसे पुनः प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ है। तुम जानती हो उर्मिला, यदि मेरे हाथ में कानून बनाने की

सत्ता सौंप दी जाय तो ऐसे नीचात्मा पुरुषों के लिए कैसी दण्ड-व्यवस्था करूँ?"

अन्यमनस्क उर्मिला ने कोई मौखिक उत्तर नहीं दिया। केवल सिर हिलाकर अपना उत्तर प्रकट किया।

कनक भावावेश में कहने लगी:—"मैं ऐसे आततायी के लिए प्राण-दण्ड की व्यवस्था करूँगी। जिस प्रकार जीवन प्रदान करने में पुरुष सर्वदा असमर्थ है, और उसके हनन करने का प्राण-दण्ड नियत किया गया है, उसी प्रकार खोई हुई पवित्रता प्रदान करने में वह बिलकुल असमर्थ है, अतएव उसके भंग करने वाले व्यक्ति को प्राण-दण्ड देना सर्वथा उपयुक्त ही प्रतीत होता है। जिस नारी की पवित्रता नष्ट हो जाती है, उसका जीवन नष्ट हो जाता है। वह स्वयं अपनी दृष्टि में पतित हो जाती है। उसके जीवन का सारा सौख्य, अभिमान, सन्तोष, उच्चता तिरोहित हो जाती है। जिस प्रकार प्राण-विसर्जन के पश्चात् यह शरीर किसी योग्य नहीं रहता, ठीक उसी भाँति अपवित्र नारी का जीवन नीरस, निश्चेष्ट और अकर्मण्य हो जाता है, और वह प्राण-हीन कलेवर से किसी भाँति न्यून नहीं रहता। नारी की पवित्रता नष्ट करने का अपराध उतना ही गुरुतर है जितना किसी के जीवन नष्ट करने का होता है।"

उर्मिला ने एक छोटा सा 'हूँ' कहकर अपना उत्तर व्यक्त किया।

कनक उस पर बिना ध्यान दिये हुए कहने लगी:—"बहन, मैंने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया है, और ज्यों-ज्यों विचार करती हूँ, त्यों-त्यों इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि स्त्री मानव तथा पुरुष मानव का झगड़ा, अधिकार और सत्ता के लिए अनंत काल से चला आ रहा है।"

उर्मिला की विचार-धारा किसी अन्य दिशा की ओर प्रवाहित हो रही थी। उसने अपना कोई उत्साह प्रकट नहीं किया। कनक ने भी इस ओर तनिक ध्यान नहीं दिया कि उर्मिला सुन रही है या नहीं। वह कहती गई:—"यह तो तुम जानती हो कि लोहा ही लोहे को काट सकता है, लोहा लकड़ी से कभी नहीं कटेगा। शक्ति का मुकाबला शक्ति से ही हो सकता है। जब स्त्री मानव पुरुष-मात्र का सामना शक्ति के साथ करेगा, तब पुरुष मानव उसके अधिकार देने की बात सोचेगा। प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है। प्राचीन काल में भी एक अवस्था इसी प्रकार की तत्कालीन समाज में उत्पन्न हो गई थी, जिसमें पुरुष मानव ने स्त्री मानव को पंगु तथा गुलाम बना दिया था। उस समय स्त्री मानव ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पुरुष मानव के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया था। उस स्त्री मानव की नेत्री का नाम था दुर्गा। जब दुर्गा ने पुरुष मानवों का संहार आरम्भ किया, तब उस समय के जन-समाज ने उस शक्ति को अवतार मानकर उसको देवत्व के पद पर प्रतिष्ठित किया, और उसी का प्रभाव है जिसने मनु-जैसे शास्त्रकारों को यह कहलाने के लिए बाध्य किया—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते

तत्र देवता: ।" चमत्कार को नमस्कार संसार ने सदैव किया है और करता जायगा। लगभग वैसी ही अवस्था इस काल के समाज में उपस्थित हो गई है । स्त्री मानव के सभी अधिकार कुचल दिये गए हैं, पुरुष मानव ने केवल उसको अपने विलास का उपकरण बना रखा है । यदि स्त्री मानव को अपने अधिकार लेना है तो उसे पुरुषों के प्रति अस्त्र धारण करना पड़ेगा ।"

उर्मिला ने उत्तर दिया :—"दीदी इससे तो घर की सारी शांति तिरोहित हो जायगी प्रत्येक घर एक-एक रणस्थल बन जायगा ।"

कनक ने उत्तेजित होकर कहा :—"हाँ, यह तो होगा ही । क्या बिना युद्ध के किसी ने अपने अधिकारों को प्राप्त किया है ? हाँ, उस समय जब दुर्गा की शक्ति के सामने पुरुष मानवों की शक्ति क्षीण हो गई और जब उसको देवत्व पद पर उसकी सत्ता मानकर प्रतिष्ठित कर दिया, और दोनों में सन्धि हो गई, तब से पुरुष मानव ने कूटनीति का आश्रय ग्रहण किया । पुरुष मानव छल, बल और कौशल में बड़ा दक्ष है । दिखावे के लिए वह स्त्री मानव को अपनी देवी बनाये रहा किन्तु धीरे-धीरे उसे अपना गुलाम बनाने लगा । कानून के शिकंजे में उसे बाँधने लगा । पहले देवी बनाया फिर पैर की जूतियाँ बनाया । उसके प्रपंच और छल में अभागी भोली-भाली-नारी फँस गई और अपना अस्तित्व आज दिन सर्वथा खो बैठी है । इसका प्रतिकार तथा दासत्व के फन्दों का नाश उसी समय होगा जब स्त्री मानव पुरुष मानव के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करेगी ।"

उर्मिला ने सकुचाते हुए कहा :—"दीदी, क्षमा करना, मैं आपके विचारों से सहमत नहीं हो सकती । देखिए......... ।"

आगे उर्मिला ने कह सकी । उसी समय मोटर का इंजन सहसा बन्द हो गया । कनक की दृष्टि पेट्रौल बताने वाली सुई पर गई । वहाँ वह शून्य मात्रा में पेट्रौल बता रही थी ।

कनक ने हताश होकर कहा :—"बहन उर्मिला, बड़ा गजब हो गया । पेट्रौल समाप्त हो गया । चलते समय मैंने पेट्रौल नहीं भराया । सोचा था कि रास्ते में कहीं ले लूँगी । विचारों के बवण्डर में यह बात ध्यान से उतर गई । अब क्या होगा बिना पेट्रौल के तो मोटर चल नहीं सकती ।"

उर्मिला ने चारों ओर देखते हुए कहा :—"इस समय हम लोग कहाँ हैं, यह भी हम नहीं जानतीं यह तो मुझे अच्छी तरह मालूम है कि फतेहपुर पीछे छूट गया है । कानपुर यहाँ से अधिक दूर नहीं है । वह सामने एक गाँव दिखाई पड़ता है । आप ठहरिए मैं पता लगाकर वापस आती हूँ ।"

कनक ने भी मोटर से बाहर निकलते हुए कहा:—"मैं भी साथ चलूँगी । मोटर को जरा ढकेलकर किनारे लगा दें, और फिर पेट्रौल मँगाने का प्रबन्ध

करें। जरा-सी भूल का यह परिणाम निकलता है।"

दोनों ने मिलकर मोटर को सड़क के किनारे लगा दिया, और थोड़ी दूर पर बसे हुए ग्राम की ओर चलीं। ग्रामों का स्वच्छन्द वायु सन-सन कहता हुआ उनके स्वागत के लिए अधीरता के साथ आगे बढ़ने लगा। आस-पास के खेतों पर काम करते हुए बालक एक मोटर को सहसा ठहरते हुए देखकर कौतुक से उसकी ओर दौड़े। उनमें से एक को ठहराकर कनक ने पूछा:—"यह कौन-सा गाँव है?"

बालक ने ठिठककर उसकी ओर देखा, और फिर गाँव की ओर तेज़ी से भाग गया। जाते हुए वह चिल्लाकर अपने साथियों से कहता गया:—"अरे वहाँ न जाओ। भागो, नहीं तो पकड़े जाओगे। ये सिपाही हैं, वेष बदलकर आये हैं। भागो, भागो।" उसकी चेतावनी से अन्य उत्सुकता से आते हुए बालकों की गति अवरुद्ध हो गई। वे भी उसके साथ-साथ भागने लगे।

कनक ने चकित स्वर में उर्मिला से पूछा:—"यह क्यों? मैंने तो कोई बात उससे ऐसी नहीं कही, जिससे उसको भय पैदा हो।"

उर्मिला ने हँसते हुए उत्तर दिया:—"यह हमारे देश की अशिक्षित दशा का चित्र है।"

कनक ने उत्तर दिया:—"नहीं उर्मिला, इसका कारण कुछ और है, बात यह होता है कि इस गांव में पुलिस अथवा फौजी सिपाहियों ने फौज में भरती का काम कुछ सख्ती और जबरदस्ती के साथ किया है और इन बालकों के हृदय में उसी की प्रतिच्छाप दिखाई दे रही है।"

उर्मिला ने हँसते हुए कहा:—"संभव है ऐसा ही हो। आपका लगभग मर्दाना वेष भी उनको यही निष्कर्ष निकालने के लिए उत्साहित करता है।"

कनक ने उर्मिला के हँसने में योग दिया।

थोड़ी देर में वे गाँव के समीप पहुँच गईं। प्रातःकाल के लगभग ११ बज चुके थे। ग्रीष्म कालीन वायु तप्त हो चली थी जिससे गाँव के निवासी अपने द्वार बन्द किये हुए थे। थोड़ी दूर जाने पर उनको एक स्त्री मिली। उससे उर्मिला ने पूछा:—"बहन, इस गाँव का क्या नाम है?"

स्त्री ठिठकर उनकी ओर देखने लगी। उसने डरते-डरते पूछा:—"क्यों, क्या काम है? यहाँ पर हमारे गाँव में दाइयाँ बहुत हैं। हम लोग मेम दाइयों से काम नहीं करवातीं आगे कोई दूसरा गाँव देखो।" यह कहती हुई वह उसकी ओर बिना ध्यान दिये चली गई।

कनक फिर चकित होकर उर्मिला की ओर देखने लगी। उर्मिला ने कहा:—"यह हमको जच्चा विभाग की कोई दाई समझती है।"

कनक ने तुरंत उत्तर दिया:—"तुम्हारी वेश-भूषा देखकर शायद उसने

यही अनुमान किया है।"

कनक और उर्मिला दोनों हँसने लगीं।

थोड़ी दूर आगे जाने के बाद उन्होंने देखा एक वृद्ध बैठा हुआ नारियल का हुक्का पी रहा है।

कनक को देखकर वह हकबका कर उठ खड़ा हुआ। उसकी अभ्यर्थना देखकर कनक को उत्साह मिला, और उसने बड़े ही मीठे स्वर में उस गाँव का नाम पूछा। वृद्ध ने उनके समीप आकर कहा:—"मेम साहब, इस गाँव का नाम सिधौली है। मेरा नाम बलवन्तसिंह है। मैं जाति का ठाकुर हूँ। कहिए आपकी क्या सेवा करूँ।"

कनक ने संतुष्ट होते हुए कहा:—"हमारी मोटर का पेट्रौल खत्म हो गया है। क्या यहाँ नजदीक पेट्रोल मिलेगा।"

बलवन्त ने उनके सूखे हुए मुख को देखकर कहा:—"आइए थोड़ी देर बैठकर इस कुटिया को अपने चरण-रज से पवित्र कीजिए। यहाँ पर पेट्रौल हमारे मालिक जमींदार के यहाँ मिलेगा। अभी जल-पान कीजिए।" फिर घर की ओर मुँह करके बोला:—"अरे जस्सू की माँ, देखो तुम्हारे दरवाजे दो देवियाँ आई हैं। इनका आदर सत्कार करो।"

कहता हुआ वृद्ध अपने जीर्ण घर में घुस गया।

उर्मिला और कनक नीम की छाया के नीचे बिछी हुई एक चारपाई पर बैठ गईं।

६

कनक और उर्मिला की चर्चा गाँव-भर में होने लगी। उनके विषय में सन्तू और महावीर की पत्नियों-राधा और गौरी-को बहुत कुछ हाल मालूम था; और उनको पहचानती भी थीं। कानपुर में रहते हुए वे प्रायः सोचा करती थीं कि यदि कभी अवसर मिले तो वे कनक से अपनी मुसीबतों की कहानी सुनायें, क्योंकि शराबबन्दी के आन्दोलन की वे मुख्य सूत्रधार थीं। आज उनको अपने में पाकर उनके हर्ष का वार-पार न रहा। वे उनका महत्त्व बखान करने लगीं, क्योंकि उनके साथ-साथ उनकी भी महत्ता बढ़ती थी। उनकी कलह प्रवृत्ति संकुचित हो गई थी, और एक दूसरे के निकट आ गई थीं। लछिमिन और साहबदीन की पत्नी यशोदा ने भी अपने-अपने दुःखों की कहानी उन्हें सुनाई। यशोदा की ओर से वकालत करते हुए लछिमिन ने कहा:—"मेम साहब, हम लोगों के दुःख का कोई ठिकाना नहीं है। आदमी तो औरत-मात्र को अपने पैर की जूतियाँ या उससे भी नीच समझता है। हम लोगों को सब सहना पड़ता है।"

कनक को अपने विचारों के प्रचार का अवसर मिला। वह कहने लगी:—

"पैर की जूतियाँ आदमियों ने नहीं, औरतों ने अपने-आप अपने को बना लिया है। जब तक आप लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ेंगी नहीं तब तक कोई आपको अधिकार नहीं देगा।"

यशोदा ने कहा:—"अधिकार के लिए लड़ने जायंगी तो रोटियों से भी हाथ धोने पड़ेंगे। आज लछिमिन बहन ने सब हाल मेरे घर का अपनी आँखों देखा और कानों सुना है। हम लोग आदमियों से कमजोर पड़ती हैं, इसलिए वे मार के बल से मनचाहा करवा लेते हैं और फिर कमाते वे हैं। पैसे-पैसे के लिए हमें उनका मुँह देखना पड़ता है। रात-दिन उनकी मजदूरी करके दो रूखी-सूखी रोटियां और उनकी जूठन तक खानी पड़ती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि सारे घर-भर की जूठन बच्चों की उगलन एक बर्तन में इकट्ठी होती रहती है, और सबके खाने के बाद वह भोजन के लिए मिलती है। पहनने के लिए मरदों की उतारन मिलती है, जिसे जोड़-गाँठकर हमें अपने तन की लाज छिपानी पड़ती है। केवल एक अच्छी धोती मिलती है जिसको केवल रात्रि के समय पहनने की आज्ञा है, भोर होते ही उसे उतार कर रख देना पड़ता है, और फिर वही फटे चीथड़े पहनने पड़ते हैं।"

लछिमिन ने कुछ तिनककर कहा:—"अरे सेठाइन जी, यह तो अपनी-अपनी हैसियत की बात है। भगवान् ने जिसको सोना रेशम दिया है, वह वही पहनता-ओढ़ता है। हाँ, हम गरीबों की बात दूसरी है, फटे पुराने कपड़े न पहनें तो रोज नये कहाँ से लायं। मरदों की उतारन अपनी गृहस्थी के काम-काज में लग जाती है। हाँ, तुम्हारे घर की बात दूसरी है। रोजाना सैकड़ों रुपये ब्याज में आते हैं। अब तो सेठ जी मुखिया भी हो गए हैं, उनको ऐसा नहीं करना चाहिए। यह मैं मानती हूँ कि जो कुछ उन्होंने आज किया और कहा है वह बिलकुल बेजा और खराब था।"

यशोदा:—"वही तो मैं भी कहती हूँ। अरे घर-गृहस्थी में मोटा-महीन और फटा-पुराना सभी पहनते हैं, लेकिन गुस्सा तब आता है जब जान-बूझकर भेद-भाव रखा जाता है। भगवान् ने जिसकी जो हैसियत बनाई है उसी तरह उसे रहना चाहिए। बात तो उस समय है जब मरद रुपया उड़ायं और औरत के लिए कभी एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। उन्होंने मुखिया बनने के लिए हजारों रुपये फूँक दिये। कभी पटवारी, कभी कानूगो, कभी गिरदावर कानूगो, कभी तहसीलदार, कभी सिपाही, कभी जमींदार, कभी चीफ और कभी थानेदार को डालियाँ लगाने जाते, रुपया लुटाते; उनके बच्चों और औरतों के लिए मिठाई, कपड़े, गहने बनवाकर ले जाते और दे आते, किन्तु मेरे लिए उनकी तहवील में एक पैसा भी नहीं है। सारा झगड़ा आज इसी बात से प्रारम्भ हुआ। तुम्हारे जस्सू के

भेजे हुए रुपयों को मैंने छीन लिया, और देने से इन्कार करने लगी, बस उनको यह सहन नहीं हुआ और मार बैठे।"

उर्मिला :—"ठीक है बहन, किन्तु तुमको उनसे रुपये छीनने नहीं थे···।"

कनक :—"नहीं, यह तुमने ठीक ही किया। जब पुरुष अपनी स्त्री को रुपया नहीं देता तब इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। स्त्री का आधा अधिकार पुरुष की सारी सम्पत्ति पर है, और यदि वह उसे नहीं देता तो तो बल-प्रयोग द्वारा उसे प्राप्त करना सर्वथा विहित है। यशोदा बहन, तुमको उचित है कि अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अपने पति से लड़ो। उसके विरुद्ध मुकदमा दायर करो। भरण-पोषण और व्यय का अधिकार कानून से भी स्त्री को प्राप्त है, और कोई भी न्यायालय इसको दिलवायगा। जब तक पुरुषों के विरुद्ध स्त्री अस्त्र धारण नहीं करेगी तब तक उसको कोई अधिकार नहीं मिलेगा। तुम मेरे साथ कानपुर चलो, मैं तुम्हारी तरफ से मुकदमा लड़ूँगी, और फिर देखूँ, सेठ जी कैसे तुम्हें अपनी सम्पत्ति का एक भाग नहीं देते।"

यशोदा :—"किन्तु लड़के का क्या होगा।"

कनक :—"लड़के की ममता को त्यागना पड़ेगा। ममत्त्व और प्रेम यह यह केवल हृदय की कमजोरी के द्योतक हैं। वास्तविकता के संसार में इनका कोई महत्त्व नहीं है। तुम्हारा स्नेह अपने पुत्र की ओर होना स्वभाविक हो सकता है, किन्तु; उसके साथ-साथ यह भी स्मरण रखो कि वह पुरुष जाति का है। जिसको अपने हृदय का रक्त पिलाकर तुमने पालन-पोषण किया है वही एक दिन तुम्हारे विरुद्ध वैसा ही व्यवहार करेगा जैसा तुम्हारे पति ने तुम्हारे साथ किया है। पुरुष-मात्र, चाहे वह पति हो या पुत्र, भाई हो अथवा पिता, सबकी भावनाएं स्त्री जाति की ओर नितान्त एक हैं। केवल अपने स्वार्थ साधन के लिए वह प्रेम, ममत्त्व, स्नेह और वात्सल्य के ढोंग रचा करता है। स्वार्थ सिद्ध होने के पश्चात् पुरुष केवल पुरुष जाति का एक प्रतीक मानव-मात्र रह जाता है और नारी उसकी वासनाओं की आखेट निरीह नारी-मात्र रह जाती है। पुरुष ने अहर्निशि प्रचार से, शिक्षा से नारी मानव को अपना क्रीत दास बना लिया है। अब समय आया है उस बन्धन के तोड़ने का, उसके विरुद्ध अपने अधिकारों के प्रचार करने का, पुरुष मानव के विरुद्ध काली तथा दुर्गा की भाँति अस्त्र ग्रहण करने का। नारी की कराल शक्ति पुरुषों के प्रचार के आवरण में दबी हुई सो रही है। अब समय आया है उस आवरण को नष्ट-भ्रष्ट कर उस सोती हुई शक्ति के जगाने का। बहनो, उठो, और अपनी शक्ति का विकास करो। बर्बर पुरुष की बर्बरता को नष्ट करो। उसकी उग्रता और पशुता को छिन्न-भिन्न करके अपने सारे अधिकार उससे प्राप्त कर लो। सावधान, पुरुष जाति के कपट-जाल में मत

फँसना। उसके पास अनेक साधन हैं। तुमको देवी बनायगा, शक्ति बनायगा, नाना प्रकार से चाटुकारी करेगा, किन्तु उसके प्रलोभन में मत आना। यह सदैव स्मरण रखो कि यह अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कोई अन्य मार्ग न पाकर नितान्त बाध्य हो इस कौशल का अवलम्बन कर रहा है। शब्दों के जाल में फाँसकर वह तुम्हें गुलाम बनाये रखना चाहता है।"

यशोदा ने सोचते हुए धीमे स्वर में कहा:—"आपका कथन कुछ ठीक ही मालूम होता है। पुरुष को जब कोई अपना स्वार्थ-साधन करना होता है, तब वह बहुत कोमल, मिष्टभाषी और खुशामदी हो जाता है। और···और अपना मतलब निकल जाने के बाद वह फिर वैसा ही उग्र और बेमुरव्वत हो जाता है। पुरुष अपने को घर का कर्त्ता-धर्त्ता समझ रहा है, संसार चलाने का अधिकारी वह अपने-आपको मान बैठा है। मेम साहब आप ठीक कहती हैं। जूठन खाते, बर्तन घिसते, चक्की पीसते, फटे चीथड़े पहनते, सारी उम्र बीती है, और इस जीवन से ऊब गई हूँ।"

कनक ने उसको सांत्वना देते हुए कहा:—"संघर्ष ही जीवन है। कर्म क्षेत्र में आकर अपनी विपरीत परिस्थितियों से लोहा लो, और मर-मिटने के तैयार रहो, मैं आप लोगों को विश्वास दिलाती हूँ कि सफलता आपके पैर चूमेगी।"

इसी समय आठ वर्ष का बालक यशोदा का बालक धूलि-धूसरित हाँफता हुआ वहाँ आया और चारों ओर देखता हुआ अपनी माँ को खोजने लगा। लछिमिन ने उसे देखकर कहा:—"लाला, यहाँ तुम्हारी अम्मा बैठी हुई हैं। आओ।"

ताराचन्द के हाथ में एक छोटी-सी बबूल की लकड़ी थी। उसने उसे घुमाते हुए कहा:—"अम्मा, तू यहाँ बैठी है। अभी तक खाने को नहीं बनाया, बापू ने कहा है कि अपनी अम्मा को बुला ला, और अगर वह नहीं आय तो मारते-मारते अधमरा कर दे। देख; इसीलिए बापू ने यह बेंत दिया है। बोल, घर चलती है या नहीं।"

उसकी बातें सुनकर सभी उपस्थित नारियां चकित और स्तब्ध होकर उस बालक की ओर देखने लगीं। बालक ताराचन्द ने अपनी माँ को झकझोरते हुए कहा:—"घर चलती है या नहीं, अगर सीधी तरह नहीं चलेगी तो मारते-मारते ले जाऊँगा।" कहते हुए उसने मारने के लिए बबूल के बेंत को उठाया। निकट ही बैठी हुई कनक ने उसे पकड़ते हुए कहा:—"यह क्या करते हो, यह तो तुम्हारी माँ है।"

ताराचन्द ने उत्तर दिया:—"माँ होगी। लेकिन यह मेरे बापू की मोल

ली हुई दासी है। बापू ने कहा है कि अगर वह सीधी तरह न आय तो मारते-मारते ले आना।

कनक ने उसको अपने पास बैठाते हुए कहा :—"अच्छा बैठ जाओ। यह तो बताओ, तुम अपनी माँ को अधिक प्यार करते हो या बापू को।"

ताराचन्द ने उत्तर दिया :—"बापू को। बापू रोज पैसे देते हैं, हमारे लिये खाने-पीने के लिए बाजार से चीजें लाते हैं। अम्मा क्या करती हैं ? कुछ नहीं। बापू तो अम्मा को भी खाने-पीने को देते हैं। बापू अगर न दें तो अम्मा कहाँ से दे सकती हैं ?"

कनक ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा :—"अच्छा, एक बात और बताओ। यदि अम्मा तुम्हारी शहर चली जायं तो क्या तुम उनके साथ नहीं चलोगे ?"

ताराचन्द ने सिर हिलाते हुए कहा :—"नहीं। मैं तो बापू के पास रहूँगा। जितना बापू हमें चाहते हैं उतना अम्मा नहीं।" फिर कुछ सोचकर कहा :—"अच्छा, तुम फौज में भरती करने वाली मेम साहब हो। क्या तुम अम्मा को फौज में ले जाना चाहती हो ? यह याद रखना, बापू मारते-मारते ठीक कर देंगे।"

कनक ने हँसते हुए कहा :—"नहीं मैं तुम्हारी अम्मा को फौज में नहीं ले जाऊँगी। तुमने अभी तक कुछ खाया है या नहीं ?"

ताराचन्द ने उत्तर दिया :—"सुबह बासी रोटी खाई थी। अम्मा जब आयगी तब रोटी बनायगी। इसी वास्ते तो मैं बुलाने आया हूँ।"

कनक ने उसको चार आने देते हुए कहा :—"जाओ कुछ मिठाई खा आओ। अभी तुम्हारी अम्मा आती हैं।"

ताराचन्द पैसे पाकर आनन्द विभोर हो गया, और वहाँ से दौड़ता हुआ चला गया। यशोदा अपने लड़के की बातें सुनकर लज्जा से कटी जा रही थी। अपमान उसके मस्तिष्क में पति और गृहस्थ जीवन के प्रति क्रोध उत्पन्न कर रहा था। कनक ने कहना आरम्भ किया :—"बहनो, तुमने इस बालक के कथन से यह भली भाँति समझ लिया होगा कि तुम्हारा कितना मूल्य पुरुषों के समाज में है। गृहस्थ-जीवन में तुम्हारा कितना निम्नतम स्थान है, इस बात को इस बालक ने स्पष्ट कर दिया है। तुमको पुरुष-मात्र अपने और अपने बच्चों की दासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। क्योंकि तुम पुरुष-मानव की कुछ आवश्यकताओं का पूरा करती हो, इसीलिए वे तुम्हें अपने घरों में स्थान देते हैं, और चूँकि तुम दासी-वृत्ति करके उनको आराम पहुँचाती हो इसके बदले में वे तुम्हें खाना और कपड़ा देते हैं। केवल-मात्र दो रोटियों के लिए तुम अपना सारा जीवन नष्ट करती हो, यह क्या तुम्हारे लिए उचित है। जैसी अवस्था आज यशोदा बहन की है, वैसी ही अवस्था समग्र नारी जाति की है। यह छोटा-सा

बालक पुरुष-जाति का प्रतीक है। वह माँ के अधिकार को, उसके प्यार को, कुछ नहीं मानता। वह तो उसे अपना अधिकार समझकर ग्रहण करता है। पुरुष स्वभाव से पूँजीवादी है। पूँजपति होने के नाते वह नारी-जाति को अपने भोग की एक वस्तु ही मान बैठा है। जैसे एक पूँजीपति मिल-मालिक अथवा जमींदार ऐश्वर्य और वैभव में मदमत्त होकर अपने से हीन इतर मानवों के सुख की-रंच-मात्र परवाह नहीं करता उसी प्रकार पुरुष-मानव के लिए नारी-मानव केवल शोषण की वस्तु मात्र रह गई है। वह उसका शोषण यहाँ तक करता है कि जब वह मरती है तब केवल सूखी हुई हड्डियों का कंकाल-मात्र रहती है। उसको सारे जीवन-भर अपना रक्त पुरुष-मानव की तृप्ति के लिए देना पड़ता है। यह शोषण उस समय तक बन्द नहीं होगा, जब तक नारी-मानव पुरुष-मानव के विरुद्ध अपने प्रतिकार के लिए दत्तचित्त होकर उनका सामना नहीं करती। ममत्त्व, प्रेम, स्नेह और वात्सल्य सबको भूल जाइये, और केवल ध्येय को सन्मुख रखकर कर्तव्य-पालन कीजिये। तभी आपकी यह गुलामी की जंजीर टूट सकेगी। तभी आपका उद्धार होगा।"

इसी समय बलवन्त ने आकर कहा :—"मेम साहब, हमारे मालिक आपसे भेंट करना चाहते हैं। वे यहीं आ रहे हैं। पेटरोल भी देने को राजी हो गए हैं।"

गाँव की स्त्रियों ने जब जमीदर को वहाँ आते सुना तो वे सब शीघ्रता से उठकर घर के अन्दर चली गईं। कनक और उर्मिला उनके स्वागत के लिए उठ खड़ी हुईं।

१०

चन्द्रनाथ अपने अठपहलू कमरे में घूमते हुए विचार कर रहा था :— "पूँजी इस ब्रह्माण्ड की अजेय शक्ति है। भौतिक और अभौतिक सभी प्रकार के सुखों के प्राप्त करने का साधन पूँजी है। पूँजी के बल से ही क्षुद्र शक्ति वाला मानव इतना बलवान हो जाता है कि वह भगवान् के पद को प्राप्त करता है, और संसार में पूजित होता है। देवताओं और असुरों का भेदीकरण इसी पूँजी के सिद्धांत पर अनादि काल से होता आया है। उनके मध्य सदैव संघर्ष का कारण भी यही पूँजी की प्राप्ति रही है। ब्रह्माण्ड की महानतम पूँजी का अधिकारी भगवान् है। उसके पार्षद और गण तथा अनुचर देवताओं को उसका एक भाग मिला, और उसके विरोधी तथा स्वयं अपनी सत्ता स्थापित करने वाले असुरों को उस पूँजी का कोई भाग न मिलने के कारण उनके साथ अनंत कलह का कारण हुआ। संघर्ष सदैव पूँजीपति और पूँजीहीन व्यक्तियों के साथ सृष्टि के आदि से होता चला आया है, और अन्त तक चला जायगा। पूँजीपति अपनी पूँजी की रक्षा के लिए लड़ता है और पूँजीहीन व्यक्ति उसको हथियाने

और प्राप्त करने के लिए अपना जीवन विसर्जन करता है। इस संघर्ष का क्या कभी अन्त होगा ? कौन जाने।

"मानव सुर और असुर के मध्य की रचना है, और वही कालान्तर में देवत्व और असुरत्व को प्राप्त करता है। जिस मानव के पास पूँजी होती है, वह भगवान् की विभूतियों का भण्डार होकर देवत्व पद को प्राप्त करता है, और जो पूँजीहीन होते हैं वे असुरों की भाँति उसको प्राप्त करने के लिए सदैव युद्ध-रत रहते हैं। पुराणों में अनेकानेक रूपों से आख्यानों और उदाहरणों द्वारा पूँजी और पूँजीवाद के सिद्धांतों की पुष्टि की गई है। उन समस्त कथाओं में देवता अथवा पूँजीपति ही अन्त में विजयी हुए हैं, और यदि किसी दुर्योग से कभी कदाचित् देवता हार भी गए हैं, अथवा उनके नेता इन्द्र को रणस्थल छोड़कर भागना भी पड़ा है, तो वह थोड़े काल के लिए। उसके पश्चात् ही पूँजी के अधिपति अथवा उसके प्रतीक भगवान् को उनके उद्धार के लिए अवतीर्ण होना पड़ता था, और वे स्वयं असुरों को अथवा दस्युओं अथवा पूँजीहीन व्यक्तियों को, जिनको उसने पूँजी प्रदान करने की व्यवस्था नहीं की थी, और जिन्होंने अपनी संघ शक्ति के कारण अनधिकृत रूप से हस्तगत कर लिया था—मारकर पूँजी और सत्ता पुनः उनको समर्पित कर देते थे। सागर-मन्थन के उपख्यान में भी यही रहस्य छिपा हुआ है। सागर-मन्थन अथवा परिश्रम और कौशल से सुरों और असुरों ने पूँजी प्राप्त की, और जब उसके विभक्तीकरण का समय आया तब सब में श्रेष्ठ वस्तु अमृत को भगवान् ने जो स्वयं पूँजी का अधिपति है—छल तथा कौशल का अवलम्बन करके अपने अनुचरों देवताओं को दे दिया, और यही नहीं चौदह रत्नों में जो श्रेष्ठ और सुखदायक थे वे सब-के-सब सुरों के भाग में पड़े, यहाँ तक कि लक्ष्मी को स्वयं उस महान् पूँजीपति ने अपने लिए वरण कर लिया। लक्ष्मी के वरण का रहस्य भी यही है कि वह ऐश्वर्य और विभूति की नेत्री होने के कारण किसी अन्य अनुचर को देने योग्य नहीं थी। उसको तो कोई नेता ही वरण कर सकता था, अतएव भगवान् ने उसको अपनी अर्धाङ्गिनी बनाकर अपने वामाग में सुशोभित किया। बेचारे असुरों को, जिन्होंने अथक परिश्रम करके उस पूँजी को प्राप्त किया था, कौशल से छल लिया। उनको उपादेय पूँजी का कोई भाग नहीं मिला। उनके भाग में उन्हीं को नष्ट करने वाली वस्तु सुरा अथवा मादक वस्तुएं आईं। उसमें भी उस पूँजीपति की कूट अभिसन्धि छिपी हुई है, वह यही कि मादक वस्तुओं के नित्य प्रति व्यवहार से उनकी सद्बुद्धि और सद्ज्ञान का सर्वथा नाश होता रहे और वे कभी भी पूँजीपति न हो सकें। कालकूट अथवा हलाहल का भाग शंकर अथवा शासक के भाग में आया, जो पूँजीपतियों की सारी आपदाओं को स्वयं आत्मसात् करने

उनको भय प्रदान करता रहे।"

"इस आख्यान से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि पूँजी प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के व्यक्तियों के वर्गों की आवश्यकता हुआ करती है। एक वर्ग अपने चातुर्य, बुद्धिमत्ता और कुशलता से संचालन का भार ग्रहण करता है, और दूसरा उसके आधीन रहकर उसके बताए हुए मार्ग पर चलकर उसके उत्पादन में सहायता करता है। दोनों के प्रयासों से प्राप्त की हुई पूँजी का श्रेष्ठ भाग उस वर्ग को मिलता है जो उसका संचालन करता है, और हेय भाग उसको जो संचालित होता है, जो साधन और चातुर्य से हीन होता है। संचालक वर्ग को इतना ही देना उचित है जिसमें दूसरा वर्ग सदैव उसका अनुगत बना रहे। उसको इतना भाग कदापि न मिलना चाहिए जिसमें वह दूसरा वर्ग प्रथम वर्ग का प्रतिद्वन्द्वी हो जाय उस दूसरे वर्ग को अपने आधीन करने के लिए हमारे पूर्वजों ने एक उपाय बता दिया है—वह है नशाखोरी का। प्रथम वर्ग को उचित है कि वह मादक वस्तुओं को प्रचुरता के साथ दूसरे वर्ग को उपलब्ध कराता रहे, जिसमें उनकी बुद्धि, उनका ज्ञान, उनका कौशल आदि कभी सजग न होने पायें, और वे अपने जीवन के लिए उनका मुख सदैव निहारा करें।"

"वही उपाय तो मैं अवलम्बन कर रहा हूँ। मैं भी मिलों की स्थापना करके समुद्र-मन्थन-सा कार्य करके रत्नों अथवा श्रेष्ठ पूँजी का उत्पादन कर रहा हूँ। बुद्धि और कौशल से मैं उसका नेता होकर मजदूरों को संचालित करता हूँ। मजदूरों का समूह असुरों की भाँति दूसरा वर्ग है जो मेरे द्वारा परिचालित होता है। हम दोनों के प्रयास से जो धन अथवा रत्न प्राप्त होते हैं, उसके बड़े-से-बड़े भाग का मैं न्यायतः अधिकारी हूँ। दूसरे वर्ग को मुझे उतना ही देना चाहिए जो उनको जीवित बनाये रखने के लिए आवश्यक है, और उसके ऊपर वे कुछ भी पाने के अधिकारी नहीं हैं। मिल मालिकों अथवा पूँजीपतियों के साथ मजदूरों अथवा पूँजीहीन व्यक्तियों का संघर्ष देवासुर-संग्राम की भाँति शाश्वत है। इस संग्राम में विजयी होने के लिए पूँजीपतियों को आवश्यक है कि वे मदिरा और मादक वस्तुओं को मजदूरों अथवा असुरों को देने की व्यवस्था करें। मादकता के कारण उनमें आलस्य और निष्क्रियता उत्पन्न होगी, जो उनकी विरोधिनी शक्ति का नाश कालान्तर में कर देगी। यदि मैं विजयी होने की इच्छा करता हूँ तो मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं अपने भाग से अथवा इस प्राप्त की हुई पूँजी के एक भाग से, इन मजदूरों को मादक वस्तुओं का प्रदान करूँ। यही तो मैं कर रहा हूँ।"

"इसे आजकल के विप्लवी 'शोषण' कहते हैं। मैं पूछता हूँ, शोषण कौन नहीं करता? शक्तिशाली अशक्तों का शोषण अनादि काल से करता आया

है। मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक जगत् में भी परिवीक्षण करने से इसी सिद्धांत की पुष्टि होती है। शक्तिशाली सूर्य की प्रखर किरणें वनस्पतियों के जल का सदा शोषण किया करती हैं—अथवा उनके प्राकृतिक प्रतीक अग्नि और जल में शाश्वत युद्ध चला करता है। जिन-जिन स्थानों तथा वस्तुओं में जिस शक्ति की प्रधानता है वह अपने से दुर्बल अन्य शक्ति को पराजित करके उसका शोषण करती है। पशु लोक में सिंह महान् पराक्रमी होने के कारण ही अन्य पशुओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में समर्थ होता है। जहाँ देखिए वहाँ पर शक्तिशाली अपने से अशक्तों का शोषण करता हुआ पाया जायगा। तभी तो मैं कहता हूँ कि शोषण प्रकृति का नियम है। यदि हम पूँजीपति मजदूरों का शोषण करते हैं तो कौन पाप करते हैं? शोषण करने का हमें दैवी अधिकार प्राप्त है।

"मैं अपनी निर्धारित नीति पर बराबर चल रहा हूँ। उसमें मुझे निश्चित् रूप से अब तक सफलता मिलती आई है, और उसी अधिकार पर आशा है कि मिलती जायगी। मैं पहले एक साधारण स्थिति का पुरुष था। अपनी बुद्धि, चातुर्य और कौशल से ही आज इस पद पर प्रतिष्ठित हुआ हूँ। वामनदास की पूँजी को हस्तगत करके महान् पूँजीपति बन गया हूँ। पूँजीपति होने के साथ ही मुझको अनन्त शक्ति प्राप्त हो गई है। आज मेरे इशारे पर राज-सत्ता नाचने को तैयार है। उस दिन इतने मजदूरों को गोली के घाट उतरवा दिया, इतने मजदूरों को मौत की गोद सुला दिया, किन्तु मेरा बाल तक बाँका नहीं हुआ। मिस्टर निक्सन मेरे लिए वह सब-कुछ करने को तैयार हैं, जो एक सरकार का अधिकारी करने में समर्थ है। यह सब किसके बल से? उत्तर मिलेगा—अजेय पूँजी के बल से। पूँजी संसार की सार्वभौम शक्ति है। इतना ही नहीं, वह स्वयं भगवान् है, क्योंकि शक्ति के समूह का नाम ही भगवान् है।

"कनक, हाँ कनक मेरी उन्नति के मार्ग में एक जबरदस्त बाधा हो रही है। यह सत्य है कि मैंने उसका प्राप्य हरण किया है, किन्तु मैं तो उसको उसी पद पर प्रतिष्ठित करने को तैयार हूँ। वह सारी सम्पत्ति की फिर से स्वामिनी हो सकती है, किन्तु मुझको त्यागकर नहीं; मैं उसके अधीन होकर नहीं रह सकता, उसको मेरे आधीन होकर रहना पड़ेगा। वह मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव क्यों नहीं स्वीकार करती? यदि उसको संसार में जीवित रहना है तो उसको मेरे साथ विवाह करना ही पड़ेगा। जब मेरे कौशल के सामने वामनदास को पुनः-पुनः नीचा देखना पड़ा, तब उसकी क्या बिसात है जो मेरा मुकाबला कर सके। उस दिन इतने मजदूरों का खून केवल अपनी शक्ति का आभास देने के लिए ही करवाया था। मजदूरों की नेता होकर मेरे ऊपर विजय पाने का सुख-स्वप्न

देखा करती है। यह शायद उसे नहीं मालूम कि वह असुरों की नेता है। असुरों ने कभी क्या स्थायी विजय देवताओं पर पाई ? मैं सावधान हूँ, मेरे पास पूँजी की शक्ति है, सरकार की ताकत है, फिर कैसे वह विजयिनी हो सकती है ?"

"कनक मेरे कौशल-जाल को काटने का प्रयत्न कर रही है। वह मादकता-निरोध आन्दोलन करके अपनी सैन्य शक्ति को शक्तिमान और लड़ने योग्य बना रही है। किन्तु मैं उसको इस क्षेत्र में भी परास्त करूँगा। मादक वस्तुओं में प्रलोभन शक्ति जन्मजात है। मनुष्य चिरकाल से उसकी ओर आकर्षित रहा है। एक बार नशे का अभ्यस्त बन जाने के बाद उसे मृत्यु की घड़ी तक छोड़ना कठिन हो जाता है। मनुष्य उस समय मृत्यु को वरण कर लेगा, किन्तु नशा त्यागने के विचार को अपने समीप तक नहीं आने देगा। मैंने स्थान-स्थान पर सब प्रकार के नशों की उपलब्धि की व्यवस्था कर दी है। मजदूरों को उनके सेवन की छूट दे दी है। उसके लिए उन्हें कोई मूल्य भी नहीं चुकाना पड़ेगा। मजदूरों का नेता एक मजदूर ही हो सकता है। मजदूर दूसरे मजदूर को ही मादक वस्तुएँ खिला सकता है। मेरी योजना सफल हो रही है, धीरे-धीरे मजदूर मेरे जाल में फँस रहे हैं। कनक का साथ छोड़कर मेरी ओर आ रहे हैं मजदूरों को चाहिए क्या—कुछ थोड़े से अधिक पैसे और नशा। वे दोनों मैं दे रहा हूँ। सूखा उपदेश कभी कृतकार्य हुआ है ? मजदूरों का बल खोकर कनक फिर किसकी शरण में जायगी ? उसको मेरी बात माननी पड़ेगी। चन्द्रनाथ की शरण में आये बिना उसको त्राण नहीं मिलेगा।"

कहते-कहते चन्द्रनाथ अहंकार से विभोर होकर दर्पण के सामने खड़ा हो गया। अपनी प्रतिच्छवि देखकर वह स्वयं गद्गद हो गया। विजय के स्वप्न की छाया से उसका मुखमंडल आह्लाद से देदीप्यमान हो गया। वह बड़ी मोहकता के साथ अपने रूप को निहारने लगा। मस्तिष्क के अहंकार-कोप से प्रज्वलित किरणें निकल कर धमनियों में प्रवाहित रक्त को संचालित करने लगीं, जिनकी अरुणिमा उसके नेत्रों और कपोलों की ओट से झाँकने लगी। आज उसको अपने रूप में एक विचित्र आकर्षण प्रतीत हुआ। मुग्ध होकर वह कहने लगा :—"मेरी आकृति देखकर कौन कह सकता है कि मैं रूपवान नहीं हूँ। रूप का अवलम्बन सफलता है, और असफलता सदैव कुरूपता को जन्म देती है। रूप और यौवन कभी वयस पर स्थित नहीं हैं—वह तो एक गौण वस्तु है। मुख्य तो कार्य में सफलता है, क्योंकि वह सदैव उत्साह और शक्ति का वर्धन मनुष्य में किया करती है। उत्साह और शक्ति वयस का भार नष्ट करने में किसी सीमा तक समर्थ होते हैं। इसीलिए मुझमें अभी तक नवयौवन की उमंगें उठ रही हैं। मैं अपने में उसी

शक्ति का अनुभव आज भी कर रहा हूँ, जो आज से बीस वर्ष पूर्व करता था। जब मुझमें रूप है, शक्ति है, पूँजी-बल है, कौशल है, बुद्धि-चातुर्य है, तब भी क्यों कनक मेरे प्रस्ताव को ठुकराती है ? कनकः को पराहत किये बिना मैं कभी विश्राम नहीं करूँगा । उसके दर्प-दर्पण को पदाघातों से चूर-चूर कर दूगा ।" कहते-कहते उसके कण्ठ की नसें फूल गईं । उसके नेत्र आरक्तिम हो गए। थोड़ी देर में वह फिर कहने लगा :—"तुम मुझसे बच नहीं सकती। कनक, तुम्हारी रक्षा कोई नहीं कर सकता । मैंने वह जाल बिछाया है जिससे बचकर तुम कभी निकल नहीं सकतीं। मैं तुमको एकबार और अवसर प्रदान करता हूँ। मजदूर-आन्दोलन की शक्ति छिन्न-भिन्न करके तुमको निःशक्त बना देने में कुछ थोड़ा-सा विलम्ब है, इसके पश्चात् यदि तुम मेरे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करोगी तो फिर तुम्हें सदैव के लिए अपने मार्ग से हटा दूँगा । तुमको चींटी की भाँति मसलकर फेंक दूँगा। जिस प्रकार से रामनाथ को, जिसका पक्ष तुमने ग्रहण किया था—द्वीपान्तर भिजवा दिया है उसी प्रकार तुमको भी कहीं सुदूर टापू में मरने के लिए भिजवा दूँगा, जहाँ तुम्हारा यह रूप-यौवन वन की शुष्क लताओं की भाँति सूखकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। वहाँ तुम्हारी कोई चाह नहीं करेगा, और तुम्हारी मृत्यु पर कोई एक आँसू तक नहीं बहायेगा।"

इसी समय उनके अर्दली ने आकर कहा :—"हुजूर, सन्तू और महावीर नामक दो व्यक्ति आए हैं।"

चन्द्रनाथ ने चौंककर कहा :—"सन्तू और महावीर । हाँ,हाँ उनको ले आओ गोल कमरे में। मैं वहाँ अभी आता हूँ। उनको अपनी दृष्टि से ओझल न करना।"

नौकर आदेश पाकर चला गया, और चन्द्रनाथ पुनः अपने रूप को निरखने लगे।

११

सन्तू और महावीर चकित दृष्टि से चन्द्रनाथ के ऐश्चर्य को देख रहे थे, ठीक उसी भाँति जैसे अतीत काल में सुदामा द्वारिकापुरी के राजमहलों को वहाँ पहुँच जाने के बाद देख रहे थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका स्वामी कितना वैभव-सम्पन्न है।

सन्तू ने चारों ओर देखते हुए बहुत धीमे कण्ठ से कहा :—"दादा, यहाँ तो एक-एक चीज लाख रुपये की मालूम होती है। एक छोटी-से-छोटी वस्तु हमारी दरिद्रता दूर कर देगी। क्यों दादा, ठीक है न।"

महावीर ने भी तार-स्वर में उत्तर दिया:—"चुप-चुप। ऐसे दयालु मालिक के सम्बन्ध में ऐसी बातें कभी न सोचनी चाहिए। खबरदार जो किसी चीज पर हाथ लगाया।"

सन्तू को महावीर से कोई उत्साह न मिलने के कारण उसने बात बनाते

हुए कहा :—"अरे दादा, मैं चोर नहीं हूँ। तुम्हारा मन जानने के लिए कहा था।"

इसी समय चन्द्रनाथ ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा :—"कैसे आये महावीर! क्या समाचार है। तुम्हारा आन्दोलन कैसा चल रहा है।" सन्तू और महावीर ने झुककर अभिवादन किया। उत्तर में महावीर ने कहा :—"हुजूर की मेहरबानी है। चारों ओर फतह-ही-फतह है। भला जिस काम में हुजूर हाथ डालें वह पूरा न हो? ऐसी क्या बात है। हमारे दल में बहुत मजदूर आ गए हैं। जब से मिल के पास शराब और गाँजे की दुकान खुल गई है तब से बड़ा सुपास हो गया है। शाम को रोजाना चार-पाँच सौ आदमी दारू पीते हैं, और उसकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। सब मजदूर हुजूर का यश बखानते हैं, और आपके लिए जान देने को तैयार हैं।"

चन्द्रनाथ ने प्रसन्न होते हुए कहा :—"क्या हड़ताल होने की अब भी सम्भावना है?"

महावीर ने तुरंत उत्तर दिया :—"अब हड़ताल कौन करेगा! हड़ताल मजदूर करते हैं, और जब वे आपका जय-जयकार कर रहे है, तब हड़ताल कैसे होगी! और हुजूर, सच्ची बात तो यह है कि आप जैसा नेक, मजदूरों के दुःखों को दूर करने वाला मालिक कहाँ मिलेगा? हम लोगों का बड़ा भाग्य था जो आप-जैसा देवता मालिक मिला है। थोड़े दिनों में आप सुन लीजिएगा, कि मजदूर-सभा टूट गई है। कुछ थोड़े-से काँग्रेसी जोर लगा रहे हैं, और वे मजदूरों को बहकाते हैं, मगर मजदूर तो अपना फायदा देखता है। आप उसे रोटी देते हैं, उनकी बीमारी में दवा-दारू कर देते हैं, दारू पीने के लिए सुविधाएं देते हैं। कौन मना करता है, चाहे जितनी दारू पीये, दाम उसे देने नहीं पड़ते। तब आप ही बताइये, गोली खाने के लिए, जान गँवाने के लिए कौन मजदूर तैयार होगा।"

चन्द्रनाथ ने आलमरी खोलते हुए कहा :—"क्यों महावीर, तुम शराब पीते हो या चरस गाँजा?"

सन्तू और महावीर ने अलमारी के भीतर से झाँकती हुई मदिरा की बोतलों को देखा, तो उनके मुँह में पानी भर आया।

महावीर ने हाथ जोड़कर कहा :—"हुजूर, यों तो सभी नशे करता हूँ, मगर दारू मेरे अधिक माफिक बैठती है। जब से हुजूर की मेहरबानी इस अभागे पर हुई तब से मेरे पीने का दुःख दूर हो गया है। हुजूर की मेहरबानी से एक बोतल हम दोनों भाई पी जाते हैं, और कभी-कभी दो भी।"

चन्द्रनाथ ने बोतल निकालकर हाथ में ले ली, और कहा :—"अच्छा यह तुम्हारा भाई है। इसका क्या नाम है?" सन्तू ने पुनः हाथ जोड़कर प्रणाम किया और महावीर ने उत्तर दिया :—"हाँ हुजूर, यह मेरा सगा भाई है। हम

दोनों का मन मिला हुआ है, और हम लोग साथ ही नशा-पानी करते हैं।"

चन्द्रनाथ :—"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम दोनों भाई एक मन होकर रहते हो। आजकल के समय में भाई-भाई में बहुत कम बनती है।"

महावीर :—"हुजूर, भाई-भाई में न बनने का कारण उनकी पत्नियाँ होती हैं, और जब तक वे यहाँ रहीं, उनमें रोजाना लड़ाई होती थी, किन्तु हम दोनों ने सलाह करके दोनों को अपने बाप के साथ देहात भेज दिया है। अब हम लोग बड़े मजे से रहते हैं, और रोज शाम को साथ ही दारू पीते है।"

चन्द्रनाथ ने बोतल महावीर की ओर बढ़ाते हुए कहा :—"यह विलायती शराब है, पियोगे ?"

महावीर ने ललचाई हुई आँखों से उसकी ओर देखते हुए कहा :— "आज हमारा भाग्य जागा है । हुजूर के लिए हम दोनों अपनी जान देने को तैयार हैं। हम लोग ठाकुर हैं, ऐसा कौन काम है जो नहीं कर सकते।"

चन्द्रनाथ ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा :—"एक बड़ा कठिन काम है, कर सकोगे ?"

महावीर और मन्नू ने एक स्वर में कहा :—"आज्ञा दीजिये, हम उसे पूरा करेंगे । आपका जब पीठ पर हाथ है तब हम लोग आकाश के तारे भी तोड़कर ला सकते हैं । आज्ञा दीजिये।"

चन्द्रनाथ ने कुछ सोचते हुए कहा :—"तुम लोग बात के पक्के नहीं होते। नशे की हालत में हो इसलिए ऐसा कहते हो । नशा उतर जायगा, तब तुम्हारी हिम्मत भी पस्त हो जायगी।"

महावीर ने विश्वास दिलाते हुए कहा :—"यह कैसी बात कहते हैं । अभी आपसे कहा है कि हम लोग ठाकुर हैं, मालिक के लिए प्राण देना हमारा जातीय स्वभाव है । आपका इतना अहसान हमारे ऊपर है कि अगर हम लोग आपको अपनी खाल की जूतियाँ बनवाकर पहनायें तो भी उऋण नहीं हो सकते। आपने मुझको क्या नहीं दिया, मान, सम्मान, रुपया, पैसा, सभी तो आपकी कृपा से मिला है। आज मैं मजदूरों का नेता हूँ । हजारों मजदूर मेरे कहने में चल रहे हैं। रोजाना आपके दिए हुए सैकड़ों रुपये उन्हें बाँटता हूँ। हुजूर मेरे बारे में ऐसा न सोचिए। मर जाऊँगा किन्तु आपको धोखा कभी न दूँगा।"

चन्द्रनाथ ने मुस्कराते हुए कहा :—"ठीक है, मुझे विश्वास है।"

महावीर ने उतावली के साथ कहा :—"आप आज्ञा कीजिये, हुजूर । मैं कोरी डींग नहीं मारता।"

चन्द्रनाथ ने संतुष्ट होकर कहा :—"क्या तुम एक व्यक्ति को जान से मार सकते हो ?"

महावीर ने अपने मन के भय को दबाते हुए कहा :—"क्यों नहीं हुजूर। इतना ही तो, कि पकड़े जाने पर फाँसी पर चढ़ना होगा। इसकी मैं चिन्ता नहीं करता। सन्तुआ है ही, वह बाल-बच्चों की देख-भाल करेगा ही।"

चन्द्रनाथ ने हँसते हुए कहा: —"एक तो तुम पकड़े नहीं जाओगे, और कदाचित् पकड़े भी गए तो मैं तुमको छुड़वा लूँगा। बाल-बच्चों के लिए तुम चिन्तित न हो। मैं उनकी परिवरिश का प्रबंध कर दूँगा।"

महावीर ने प्रसन्न कण्ठ से कहा:—"हुजूर, उसका नाम और पता बताइये। मैं आज ही उसको यमराज के घर भेज दूँगा।"

चन्द्रनाथ ने आलमारी से एक दूसरी बोतल निकाल कर देते हुए कहा:—"यह शराब बड़ी तेज है। थोड़ी ही पीने से पूरा नशा हो जायगा। मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ महावीर! मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था, किसी का खून करने की नौबत ही नहीं आयगी। कनक को मेरी शक्ति के सामने झुकना ही पड़ेगा।"

महावीर ने पूछा:—"कनक जी वही तो नहीं हैं जो मजदूरों को शराब छोड़ने के लिए बहकाती फिरती हैं। एक दिन मेरे घर पर भी आगई थीं। हम दोनों भाई दारू पी रहे थे। उनके साथ दो चार कांग्रेस वाले भी थे। वे भी जुद बद बकने लगे। मैंने उनको ऐसा फटकारा कि सबको मुँह छिपाकर भागना ही पड़ा। वह भला हुजूर का क्या मुकाबला करेगी। ऐसी ही होती तो भला इस घर से क्यों निकाली जाती। न मालूम कहाँ से आकर यहाँ मालिक बन बैठी थी। आपने उसे घर से निकालकर अच्छा ही किया। वह आस्तीन की नागिन थी। जब आपकी ताकत के मुकाबले में उसका कोई बस नहीं चला तो हम मजदूरों को बहकाना आरम्भ किया। मुर्गी की गर्दन मरोड़ते तो एक बार देर भी लगेगी, लेकिन उसकी जान लेते क्या देर लग सकती है? आज रात को ही उसका काम तमाम समझिये।"

चन्द्रनाथ ने मुस्कराकर कहा:—"अरे महावीर। मैं तो यों ही कह रहा था। तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। अब मुझे विश्वास हो गया है कि तुम साहसी व्यक्ति हो। यह लो दो सौ रुपया। आज अपने मिल के मजदूरों को जी खोलकर पिलाओ। अगर रुपये की कमी हो तो आकर ले जाना। अब तुम जाओ।"

महावीर और सन्तू ने झुककर अभिवादन किया, और जाने लगे।

रास्ते में सन्तू ने कहा:—"दादा, सचमुच हमारे मालिक देवता है।"

महावीर ने रुपयों को जेब में रखते हुए कहा:—"क्या मैं झूठ कहता था। दो बोतलें विलायती शराब की मिलीं, और दो सौ रुपये मिले। चलो आज गहरी छनेगी। ईश्वर करे, हमारे मलिक जुग-जुग जियें, और इसी भाँति

पीने को सदा मिला करे।"

वे दोनों प्रसन्न मन से बाहर आ गए। बाहर आकर सन्तू ने कहा:—"दादा, तुम भी झूठ बोलने में बिलकुल पक्के हो। तुम मजदूरों के नेता कब से हुए।"

महावीर ने सन्तुआ का हाथ दबाते हुए कहा:—"अरे चुप भी रह भले मानुस। अगर ऐसी लम्बी-चौड़ी बात न कहूँ तो रुपये और दारू कौन देगा। आदमी केवल अपने स्वार्थ वश सब काम करता है। हड़ताल को तोड़ने के लिए ही आज हमारे मालिक खुले हाथ रुपया बाँट रहे हैं, और हमारे दारू-पानी का प्रबन्ध कर रहे हैं। मैंने केवल अपने बुद्धि-बल से यहाँ प्रवेश पा लिया है। न मालूम किसने मेरा नाम उन्हें बता दिया था कि मैं दारू-पीने वालों का सिरमौर हूँ। उस दिन मिल के अन्दर आये और मुझे बुलाकर मेरे साथ दारू पीने की बातचीत करने लगे। पीछे कहा यदि मिल के पास ही दारू का ठेका खुलवा दिया जाय तो कैसा रहेगा। मैंने प्रसन्न होकर कहा:—"इससे अधिक सुविधा की बात दूसरी न होगी।" फिर हमसे एक कागज पर दस्तखत करवाया और कहा कि तुम लोगों की ओर से सरकार में एक अरजी इस बात की मैं पेश करूँगा। उसी दिन दस रुपये दारू पाने के लिए मिल गए। मैं खुशी-खुशी चला आया।"

सन्तू ने अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा:—"लेकिन दादा, तुमने यह बात मुझे बताई नहीं। मुझसे भी कपट रखते हो।"

महावीर ने चकित स्वर में कहा:—"अरे बताई नहीं। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। शायद नशे में बहक जाने के कारण भूल गया हूँ। आज तुम को अपने साने लाने का यही मतलब था कि जिसमें तुम्हारी भी जान-पहचान मालिक से हो जाय और तुम को भी कुछ रुपये मिल जायं। देखा दो सौ रुपये मिले हैं, दारू पीने और पिलाने के लिए। इनमें से एक सौ तो खर्च कर दूँगा, बाकी एक सौ हम दोनों अपने लिए दारू पीने के लिए रखेंगे। क्यों ठीक है न। मालिक के साथ दगा भी नहीं करनी चाहिए, और अपना भी काम बना लेना चाहिए। अरे बेवकूफ, दुनिदा में सबसे बड़ी बुद्धि है। तू तो मालिक की चीजें चुराने के लिए तैयार हो गया था। अरे दुधारी गाय से बार बार दूध पिया जाता है कि केवल एक ही बार।"

सन्तू ने सक्रोध कहा:—"तुम झूठ चोरी का विचार मेरे ऊपर मढ़ते हो। मैंने तो चलताऊ बात कही थी। खैर, मैं चोरी को बात कहता था, और यह तुम क्या कर रहे हो। यह चोरी नहीं तो क्या है, मालिक के रुपयों में आधी रकम चुरा लेना।"

महावीर ने समझाते हुए कहा:—"अरे यह तो दुनिया है, अपना काम

बनाना ही पड़ता है। लेकिन यह ऐसी चोरी नहीं है कि जिसमें पकड़े जाने का डर हो। बुद्धिमान वही है, जो अपना काम भी साधे, और मार भी न खाय। भैया जो भी काम करो, बुद्धिमानी से करो। मैं तुझको कुछ कहता नहीं। वह देखो ठेका आ गया है, चलो आज दिल खोलकर पियें। हमारे साथी हमारी राह देख रहे होंगे। आज उन पर मेरा रुआब बैठ जायगा कि मालिक का मेरे ऊपर कितना विश्वास है। अरे सन्नू, अब भी तुझको मेरे नेता होने में कोई अविश्वास है ?"

सन्नू ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों ठेके की दुकान में चले गए।

१२

सन्नू और महावीर के जाने के पश्चात् चन्द्रनाथ उसी कमरे में घूमने लगे। वे पुनः विचारने लगे:—"आज मेरे मुँह से क्या निकल गया। इन तुच्छ मजदूरों के सामने मैंने अपना विचार कैसे प्रकट कर दिया। कनक की हत्या करने की बात उनसे क्यों कह दी। यह तो मैंने अपने लिए एक सबूत पैदा कर दिया। यदि कदाचित् कोई कनक की हत्या कर डालता है तो ये दोनों भाई यही समझेंगे कि मैंने ही उसकी हत्या करवाई है, और ये लोग मेरे विरुद्ध गवाही दे सकते हैं। अरे चन्द्रनाथ, तूने यह क्या किया। फूँक-फूँककर पैर रखने वाले, अपने बचाव का पहले-से-पहले प्रबंध करने वाले, तूने आज क्या पागल-पन कर डाला ? तूने अपना मान, और प्राण इन तुच्छ मजदूरों के हाथ में समर्पित कर दिया।"

उसके अधीर मन ने सान्त्वना देते हुए पुनः कहा:—"अरे वे तेरा क्या कर लेंगे ? उनकी बात ही कौन मानेगा। वे तो शराबी हैं, उनको शराब चाहिए और कुछ नहीं। यह शराब ही उनको मेरे वश किये रहेगी। इसी वास्ते उनको दो सौ रुपये और दो बोतलें दी हैं। शराब पीने के बाद वे भूल जायंगे।"

थोड़ी देर बाद उसके मन ने पुनः कहा:—"जो हो गया, वह हो गया। बात और बाण निकलने के बाद वापस नहीं आते। इन लोगों से थोड़ा सतर्क रहना होगा। अब भविष्य में ऐसा अनर्गल प्रलाप कभी न करना।"

इसी समय टेलीफोन की घंटी उसका आह्वान करने लगी। रिसीवर को कान से लगाते हुए पूछा:—"हलो.......... । अच्छा आप हैं। मैं वास्तव में बड़ा भाग्यशाली हूँ। मैं...। नहीं मैं सत्य कहता हूँ। यह तो आपकी मेरे ऊपर दया है। देखिए 'नाटी ब्वाय' के अतिरिक्त अब कभी मुझे कुछ न कहिएगा। आपके सामने मैं नाटी ब्वाय ही सदा रहना चाहता हूँ।.........हाँ, अभी आता हूँ......... बस इतनी देर लगेगी जितनी देर ६० मील की गति से मोटर को आपके बँगले तक ले जाने में लग सकती है।.........उससे जल्दी भी आऊँ ? हाँ, अब तो

मन मेरा आपके चरणों के समीप रहेगा, और शरीर भी थोड़ी देर में पहुँचने वाला है। आपके पापा घर पर हैं? अच्छा वे आज प्रातःकाल लखनऊ गए हैं। लाट साहब ने उन्हें बुलाया है।....ठीक है, कोई जरूरी काम होगा। अच्छा अभी आता हूँ।"

चन्द्रनाथ ने रिसीवर रख दिया और नवयुवक की भाँति दौड़ते हुए घर के बाहर प्रतीक्षा करती हुई मोटर पर आकर बैठ गए। शाफर ने पूछा:—"कहाँ ले चलूँ।"

चन्द्रनाथ ने उत्तर दिया:—"कलक्टर साहब के बँगले पर और देखो जितनी शीघ्रता से तुम ले जा सको उतनी शीघ्रता से ले चलो।"

आदेश पाकर शाफर शीघ्र गति से मोटर चलाने लगा। मोटर में बैठे हुए चन्द्रनाथ की विचार-धारा पुनः बहने लगी। वे सोचने लगे:—"कनक और पामीला। मेरे सामने दो स्त्रियाँ हैं। जहाँ तक सौन्दर्य का प्रश्न है, दोनों एक दूसरे को चुनौती देती हैं। एक के सौन्दर्य में भारतीय लावण्य है, और दूसरे में अंग्रेजी। स्वभाव एक का प्रखर, सौदामिनी की भाँति ज्वलंत और पुरुष विरोधी है, और दूसरे का मोहक, कोमल और नारी-सुलभ है। एक में रूक्षता, क्रोध और ज्वाला है, तथा दूसरे में कमनीयता, सरसता, और मधुर हास्य है। एक को पद-दलित करने की, उसका गर्व चूर्ण-विचूर्ण करने की, उसको नष्ट-भ्रष्ट करने की इच्छा मन में जागरित होती है, और दूसरे को प्यार करने की, अपना सर्वस्व उस पर निछावर कर देने की तथा उसके चरणों में लोट जाने की कामना बलवती होती है। एक पर विजय पाने की इच्छा होती है, और दूसरे से सदैव विजित होकर उसके आधीन रहने की एक अहंकार, दर्प और मिथ्या अभिमान का स्फुलिंग है, और दूसरी प्रेम और हास्य, दया और करुणा की फुलझड़ी से प्रकट होने वाली चिनगारी है जो नयनाभिराम होती है किन्तु जलाती नहीं। एक ज्वाला, टीस और प्रतिहिंसा उत्पन्न करती है, और दूसरी शान्ति के मलहम से उनकी पीड़ा को शान्त करने का उपाय रचती है।"

"जो प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न करती है, क्या पुरुष उससे भी प्रेम कर सकता है? प्रेम शायद वह नहीं है, पुरुषोचित भावना है जो अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करना चाहती है। कनक, सबसे पहले एक स्त्री है, वह मेरा तिरस्कार करके अपनी श्रेष्ठता का सिक्का मेरे मन पर बैठाना चाहती है, उसकी उपेक्षा मेरे प्रति इसलिए है कि मैं पुरुष, कूट-बुद्धि वाला और उसको पथ की भिखारिणी बनाने वाला हूँ। किंतु नहीं उसकी सम्पत्ति तो मैंने सबसे अन्त में ग्रहण किया है जब मुझे विदित हो गया कि वह मुझसे घृणा करती है। मैंने समझा था कि वह मेरे इस कौशल से, स्त्री और निर्बल होने के कारण अपना आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य हो जायगी। स्त्री-मात्र को धन-ऐश्वर्य

और वैभव से स्वभावतः प्रेम होता है, क्योंकि वह पूँजीपतियों के प्रतीक भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की—जो स्वयं ऐश्वर्य और सम्पत्ति की प्रतीक देवी है—सन्तान है, अथवा उसकी जाति की है। उस समय मैंने विचारा था कि कनक इतने वैभव को त्यागने के लिए तैयार नहीं होगी, और इसी अस्त्र से वह मेरा आधिपत्य स्वीकार कर लेगी, तथा संसार भी मेरे कर्म से अवगत नहीं होने पायगा। कनक उस सम्पत्ति को खो देने के भय से कभी उस बात को प्रकाशित नहीं करेगी, और विवाह के पश्चात् इस बात का कोई भय नहीं रह जायगा। किन्तु मेरी सब आशाओं पर, मेरी सब अभिसन्धियों पर, पानी पड़ गया, और कनक के त्याग से वे सभी बह गईं। कनक ने वैभव को त्यागना स्वीकार कर लिया, किन्तु मेरा दासत्व स्वीकार नहीं किया। वह मुझे लांछित कर, मेरे फैलाये हुए जाल को बिखेरकर, तथा पराजित कर वीरांगना की भाँति पदाघात करके चली गई। एक बार भी उसके मन में इस असंगत और अप्राकृतिक कार्य के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न नहीं हुई। वामनदास की औरस सन्तान होते हुए भी उसने अपने को जारज कहलाना स्वीकार कर लिया। मेरा वार बिलकुल खाली गया। यह सत्य है कि मैंने सम्पत्ति हस्तगत कर ली है, और कनक ने इस निर्णय को मूक प्राणी की भाँति स्वीकार कर लिया है। मेरे विरुद्ध कोई मुकद्दमा नहीं चलाया। मुझे मानसिक क्लेश तनिक भी नहीं होता यदि वह वामनदास की 'विल' के विरुद्ध मेरे प्रति अभियोग लगाती, वरन् उससे मुझे सन्तोष और प्रसन्नता होती, क्योंकि लड़ाई एकांगी नहीं रहती। मुकद्दमा जीतने के पश्चात् यदि मैं वामनदास की सम्पत्ति का अधिकारी घोषित होता तो अहर्निशि की कुढ़न का नाश हो जाता। पुरुषत्व का विकास तो रण के प्रांगण में ही हुआ करता है, और वास्तविक आनन्द उसी समय मिलता है जब पुरुष अपने प्रति-द्वन्द्वी को पराजित करता है। कनक जब से मजदूरों का प्रतिनिधित्व ग्रहण कर मेरा सामना करने लगी है, तब से मुझे सन्तोष और तुष्टि मिलने लगी है। रामनाथ के मुकद्दमे में मैं उसे पराजित कर चुका हूँ। मजदूरों की लाशें बिछवा-कर मैंने उस पर विजय प्राप्त की और उसको अपनी श्रेष्ठता का रूप दिखा दिया है। अब वह बेहद तैयारी के पश्चात् मुझसे पुनः लोहा लेना चाहती है, मुझे विश्वास है कि मैं उसमें भी उसे पराजित करूँगा।

"अपने प्रतिद्वन्द्वी का मान-मर्दन करने में किसको हर्ष और सन्तोष नहीं होता? किसी प्रतिद्वन्द्वी पुरुष का मान-मर्दन उसको पराजित करने में हो जाता है, परन्तु किसी स्त्री प्रतिद्वन्द्वी का मान-भंग उसके शरीर पर अपना आधिपत्य जमाने के पश्चात ही होता है। स्त्री-जाति उस समय तक अपनी पराजय अनुभव नहीं करती जब तक कि उसका स्त्रीत्व अक्षुण्ण है उसकी पूर्ण पराजय शारीरिक

पराजय के साथ होती है। जब तक स्त्री अपना आत्म-समर्पण पुरुष को नहीं करती तब तक वह विजयिनी बनी रहती है। उसको वन्दिनी बना लेने अथवा प्राणों के नाश के बाद भी उसकी आँखों से पुरुष को चुनौती देकर कुढ़ाने वाला उल्लास झाँकता रहता है। दूसरे ढंग से पुरुष विजयी होता हुआ भी अपनी पराजय का अनुभव किया करता है। ठीक वैसा ही अनुभव मैं अपने सम्बन्ध में कर रहा हूँ। कनक की सेना(मजदूरों)के प्रयत्न को विफल करने, अथवा उसको लांछित या नष्ट करने में मेरी विजय नहीं है, बल्कि उसको अपनी अंकशायिनी बनाकर, उसके दुर्दान्त मन को वेष्टित करने वाले शरीर पर अपना विलास-ताण्डव करने में मेरी सच्ची विजय है।

"वह विजय पाना क्या मेरे भाग्य में नहीं है? आज तक असफल होना मैंने जाना नहीं, अपने मनोरथों को सदैव पूर्ण किया है। साम, दाम, दण्ड और और भेद की प्रणाली से जब कोई मेरा मनोनीत कार्य सफल नहीं हुआ तब नीच-से-नीच उपायों का भी अवलम्बन मैंने किया है, और अपना उद्देश्य पूर्ण किया। कनक को मेरा आधिपत्य स्वीकार करना पड़ेगा। अभी शांति के उपायों से उसको वशीभूत करना चाहता हूँ, और जब इस उपाय से मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं होगा, तब दण्ड की व्यवस्था की जायगी। दाम अथवा लोभ तो असफल ही रहा, शायद शांतिपूर्ण कूटनीति भी सफल नहीं होगी। भय के बिना कोई कार्य नहीं होता। भय से ही मनुष्य कानूनों की पाबन्दी करता है। सामाजिक नियमों का पालन केवल भय की भावना से हुआ करता है।

"भय और लोभ मानव के हृदय में दो शक्तिशाली भाव हैं। जिसमें भय की भावना से ही प्राणी-मात्र ओत-प्रोत रहता है। जलचर, थलचर तथा नभचर इसी भावना के कारण एक दूसरे के प्रति अकारण आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण करके कलह और अशांति की सृष्टि किया करते हैं। सर्प को देखते ही हम उसको मारने का प्रयत्न करते हैं, केवल इसलिए कि उससे हमें भय उत्पन्न होता है प्राण-विसर्जन का। भय का मूल कारण ज्ञान है। मनुष्य को यह ज्ञात है कि सर्प के काटने से मृत्यु होती है अतएव उससे बचने के लिए हम पहले से ही उसे मारना चाहते हैं। कनक को उसी भाँति ज्ञान कराना है कि यदि वह मेरी वश्यता स्वीकार नहीं करेगी तो उसके प्राण संकट में पड़ सकते हैं। तब वह मेरे अधीन होने के प्रश्न पर विचार करेगी, अन्यथा नहीं।

"ईश्वर का प्रतिरूप पुरुष है। ईश्वर ने सृष्टि की उत्पत्ति अपने भोग के लिए की है। वह नाना रूपों से विभक्त होकर, तथा क्षुद्र-से-क्षुद्र वस्तु में प्रकट अथवा अप्रकट रूप से स्थित होकर अपनी ही निर्मित वस्तुओं का भोग कर रहा है। स्त्री भी उसी की एक रचना है जिसको उसने पुरुष के भोग के लिए निर्मित

किया है। युग-युग का इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार में उन्हीं स्त्रियों ने मान, प्रतिष्ठा और यश लाभ किया है, जिन्होंने पुरुषों के लिए अपना तन, मन, धन समर्पित कर दिया है। पुरुषों की अनुगत होकर रहना स्त्री का परम धर्म है, और यही उसके लिए स्वर्गारोहण का मार्ग है। पुरुष के बिना स्त्री की निष्कृति नहीं हो सकती। उसका समाज में एकाकी स्थान सर्वथा असंभव है। स्त्री के प्राकृतिक अवयवों की गठन पर ध्यान देने से यह विदित होगा कि उसकी सृष्टि पुरुष के भोग के लिए की गई है। पुरुष तो स्वच्छन्द है, उस पर प्रकृति ने कोई भार नहीं डाला है, वह तो अपने प्रतिरूपों की उत्पत्ति स्त्री जाति से करवाता है। सन्तान का भार वही वहन करती है। पुरुष तो इसके द्वारा अपना एक मनोरथ सिद्ध करता है। जिस प्रकार गाय से वह दूध लेता है, घोड़े से सवारी, उसी प्रकार से पुरुष अपनी सन्तान स्त्री से लेता है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व कहाँ और कब सिद्ध होता है। किसी वस्तु के स्थापन करने वाले का स्थान सदैव स्थापित करने वाले व्यक्ति से उच्च, श्रेष्ठ और महान् होता है। यही प्रकृति की योजना है। तब यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि स्त्री और पुरुष में समानता है। पुरुष कूटनीति का ज्ञाता होने के कारण केवल मीठी रीति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उसको बराबरी का ही नहीं वरन् अपने से श्रेष्ठ पद देता है, परन्तु वास्तविकता क्या है ? वह तो यह है कि स्त्री पुरुष की केवल गुलाम है। गुलाम की भाँति यदि वह रहना स्वीकार करती है तो उसका निर्वाह हो सकता है, अन्यथा नहीं। गुलाम का जीवन उसके स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है, अतएव यदि वह संसार में जीवित रहना चाहती है, तब उसको पुरुष के मनोनुकूल चलना ही पड़ेगा। उसकी स्वतन्त्रता आज के पहले न कहीं निर्दिष्ट हुई है और न होगी। वह कटु स्पष्टीकरण है, किन्तु सत्य है।

"कनक समझती है कि वह स्वतन्त्र होकर जीवित रह सकती है यह उसकी भूल है। इस भूल को मिटाना मेरा कर्तव्य है। अपनी बुद्धि और कौशल के दर्प में वह चूर-चूर है। उसको नष्ट करना मेरे जीवन का लक्ष्य है। स्त्री होकर पुरुष की भाँति मेरा सामना करती है, उसको पद्दलित करके उस पर अपनी सत्ता स्थापित करना मेरा ध्येय है।

"पामीला, जीवन को स्फूर्ति और सुख-शांति देने वाली पामीला, कितनी सुंदर आकर्षक और मोहक है। उसके साथ जीवन व्यतीत करने में जीवन को वास्तविक सौख्य प्राप्त होगा। उसका पिता निक्सन केवल रुपयों का गुलाम है। एक लम्बी धनराशि देने पर वह सहज ही मेरे साथ अपनी पामीला का विवाह करने के लिए तैयार हो जायगा। लोभी पुरुष औचित्य और अनौचित्य पर कभी ध्यान नहीं देते। उसका लक्ष्य केवल धन-प्राप्ति होता है। लोभी के लिए

प्रत्येक वस्तु का एक मूल्य चुका देने पर उस वस्तु के देने में वह कोई संकोच या आगा-पीछा नहीं करता। उसकी दृष्टि में पामीला का भी कोई मूल्य निश्चित होगा। निक्सन के द्वारा मेरे अन्य मनोरथों की भी सिद्धि होगी, अतएव उसको लम्बी-से-लम्बी रकम देना भी उचित होगा, और उससे अपने कार्य-साधन में सहायता मिलेगी। निक्सन के द्वारा कनक का दर्प भी चूर्ण-विचूर्ण हो सकता है, अतएव एक ढेले में दो शिकार होंगे। आज पामीला..........।"

चन्द्रनाथ के विचारों की दौड़ सहसा रुक गई। सवेग दौड़ती हुई मोटर एक पेड़ से टकरा गई। यद्यपि शाफर उसे बड़ी सावधानी के साथ लिये जा रहा था, किन्तु मार्ग जनाकीर्ण तथा वाहनों के यातायात के कारण अवरुद्ध होने से उसने सड़क के किनारे से मोटर निकालना चाहा, परन्तु उसी समय एक बालक उधर से दौड़ा। उसको बचाने के लिए उसने किंचित् तिरछा करके निकालने की चेष्टा की, उसी समय वह सहसा पेड़ से टकरा गई। शाफर और चन्द्रनाथ दोनों घायल होकर मोटर के टूटे हुए हिस्सों में ढक गए।

एक स्फुट हाहाकार से वह स्थान परिपूर्ण हो गया। पथिक उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े। उन्होंने आहत चन्द्रनाथ और शाफर को निकाला, और एक दूसरी मोटर पर लादकर अस्पताल भेजने का प्रबन्ध करने लगे। चन्द्रनाथ के सिर पर आघात लगा था, उसके नाक और सिर से रक्त अविराम गति से निकल रहा था। एक व्यक्ति ने उनके हृदय-स्पंदन का परीक्षा करते हुए कहा :—"अभी तक प्राण अवशेष हैं, किन्तु हस्पताल ले जाने का प्रबंध शीघ्र करना उचित है।" उसी समय एक मोटर को ठहराकर उसमें उनके हस्पताल भेजने का प्रबन्ध किया गया। जनता ने अभीतक नहीं पहचान पया था कि आहत व्यक्ति नगर का महान् पूँजीपति चन्द्रनाथ है जिसके आतंक से नगर का श्रमजीवी वर्ग काँपता है। दुर्दान्त शक्तिशाली चन्द्रनाथ इस समय सद्यजात बालक-जैसा निरीह और निःशक्त था। अभिमान तथा गर्व अदृष्ट के व्यंग्य से तड़पने लगे।

१३

दक्षिण-पूर्वीय एशिया अपने जंगलों के लिए विश्व-विख्यात है। घनघोर और अनवरत वर्षा पहाड़ी भूमि के साथ मिलकर उसे हरा-भरा बनाये रहती है। आधुनिक सभ्यता के चरण अभी तक वहाँ न पहुँच सके थे, इसलिए उसकी पवित्रता अब तक अक्षुण्ण बनी हुई थी। वनवासी पशुओं को निर्भय विचरने की स्वतंत्रता थी। यद्यपि वे वनवासी मानवों द्वारा उनके क्षुधा-निवारण के लिए बराबर मारे जाते थे, किन्तु फिर भी उनकी संख्या में इतना बाहुल्य था कि वे उन्हीं के द्वारा आकीर्ण थे। प्रकृति अपने नग्न रूप से वहाँ स्थित थी। कृत्रिमता ने अभी तक

उसके निवासियों को सभ्यता का जामा नहीं पहनाया था। प्रकृति के साथ रहते हुए उनमें नैसर्गिक भावों की प्रधानता उसी प्रकार से थी जैसे वन्य पशुओं में होती है। उनका धर्म शुद्ध प्राकृत धर्म था, और अभीतक उन्होंने कृत्रिम धर्मों को नहीं अपनाया था। वे शिक्षित और सभ्यता से परिमार्जित संसार से दूर रहने के कारण किसी धर्म विशेष को अपना नहीं सके थे। किन्तु आजकल उनके जीवन में एक विशेष परिवर्तन होता हुआ दृष्टिगोचर होता था। जापान की सेनाएं जंगल के रास्तों से वर्मा पर अपना आधिपत्य जमाती हुई आगे बढ़ रही थीं। इच अंग्रेजी सेना के सामने एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गई थी। अंग्रेज सैनिक इन जंगलों की लड़ाई से सर्वथा अनभिज्ञ थे। दक्षिणी मलय प्रदेश में भारतीय सैनिकों से उन्हें परास्त कराने का आयोजन किया था, किन्तु वे उसमें भी सफल नहीं हुए थे। उनको बराबर क्षति उठाते हुए पीछे हटना पड़ता था। अंग्रेज सेनापति को अपनी सेना को पीछे हटाने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय दृष्टिगोचर न होता था। विश्व-विजयिनी अंग्रेजी सेनाओं को जो जन तथा धन से क्षति पहुँच रही थी उससे उनका वर्षों से जमा हुआ आतंक स्वयमेव छिन्न-भिन्न हो रहा था। एशिया अपना इतिहास बना रहा था, और साथ ही संसार के समक्ष यह प्रमाणित कर रहा था कि उसका बाहु-बल और सैन्य-परिचालन-शक्ति उनसे किसी प्रकार न्यून नहीं है, और साथ-ही-साथ यह भी दिग्घोषित कर रहा था कि "एशिया केवल एशिया वासियों लिए है।" योरोपीय राज्यों की साम्राज्य सत्ता बालू की दीवालों की भाँति ढह रही थी, और उन्हीं ध्वंसावशेषों पर एशिया के देशों की स्वतंत्रता जन्म लेने जा रही थी। साम्राज्यवाद का नाश साम्राज्यवादी सत्ता से ही हुआ करता है, ठीक उसी भाँति जैसे लोहे को केवल लोहा काटता है। जापान यद्यपि अपने साम्राज्य-विस्तार के लोभ से ही अग्रसर हो रहा था, किन्तु वह वास्तव में अन्य योरोपीय साम्राज्यवादी देशों से लोहा लेकर उनकी शक्ति को क्षीण तथा अपंग बना रहा था। लाभ था उन देशों को ही जो परतन्त्रता तथा गुलामी में अपने जीवन के दिन बिता रहे थे। परिवर्तन-चक्र बड़ी शीघ्रता से उन्हें उठाकर उनको स्वतन्त्र होने का आदेश प्रदान कर रहा था। जापान अपने साम्राज्य-विस्तार का स्वप्न देख रहा था। उसे यही विश्वास था कि एशियायी जनता उसका साथ देकर योरोपीय राष्ट्रों को भगाकर उसका आधिपत्य स्वीकार कर लेगी। पहले हुआ भी वही। एशियायी जनता ने उसका साथ दिया, और इंग्लैंड, हालैंड तथा फ्रांस की सत्ता का नाश प्रारम्भ हो गया। हालैंड की सत्ता तो नष्ट हो चुकी थी, और जापान का अधिकार एशिया के दक्षिण-पूर्व के द्वीप-समूहों पर हो रहा था, इधर सिंगापुर से अंग्रेज भगा दिये गए थे, और वह

जापानी "शोनान" नाम प्राप्त कर चुका था। अंग्रेजी सेनाएं बर्मा को भी उनको सौंपती हुई भारत की ओर पूर्वीय मार्ग से पीछे हट रही थीं। वर्षा काल आ गया था, घनघोर और अनवरत वर्षा अंग्रेजी सेनाओं को पीछे हटने के लिए बाध्य कर रही थी। साम्राज्यवादी संसार इसे द्वितीय महायुद्ध के नाम से पुकारता है, और उनके इतिहासकार इसे वर्बरता का युद्ध कहते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। एशिया के देशों की स्वतन्त्रता का बीज आरोपित होने के कारण इसे स्वातन्त्र्य-युद्ध कहना उचित होगा; और यदि इसे जागरण-युद्ध कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति न होगी।

स्याम और मलाया आदि देशों के प्रवासी भारतीय भी अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करने का विचार करने लगे। वे भी अपना तन और धन अपनी हथेली पर लेकर मातृभूमि की गुलामी की बेड़ियाँ काटने के लिए अपने को संगठित करने लगे। प्रवासी स्त्रियाँ भी उसमें भाग लेकर भारतीय वीरता के सनातन इतिहास की पुनरावृत्ति करने लगीं। साज और शृंगार, विन्यास और भोग में उन्होंने होली लगा दी, अपने आभूषणों को उतार कर स्वतन्त्रता देवी द्वारा फैलाई हुई झोली में उत्साह और उमंग के साथ अधिक-से-अधिक भाग डालने के लिए उतावली, तथा सन्तान और पति का मोह निछावर करने के लिए कटिबद्ध, और स्वयं भी आजादी की लड़ाई में प्राण-विसर्जन करने के लिए आतुर हो गईं। जापान भी इस परिवर्त्तन की लहर से लाभ उठाने का विचार करने लगा। अंग्रेजों और भारतीयों के मध्य दिन-पर-दिन बढ़ने वाले वैमनस्य से वह पूर्णतः परिचित था। भारतीय जिस प्रकार स्वतन्त्र होने की चेष्टाएं कर रहे थे, उससे प्रच्छन्न न थीं। वह उनके इस वैमनस्य से लाभ उठाने का उपाय सोचने लगा। अंग्रेजी सेना के भारतीयों में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित करने के लिए अपने जासूसों द्वारा वह अनवरत परिश्रम करने लगा। उनके द्वारा उनमें यह प्रचार करना प्रारम्भ किया कि यदि वे अपनी मातृभूमि का उद्धार करने की चेष्टा करेंगे तो जापान उनकी सहायता, धन और शस्त्रास्त्रों से करेगा।

मलाया प्रदेश का कुछ भाग जापान के हाथ में आ गया था। इसी अंचल के एक पहाड़ी स्थान में अंग्रेजी फौज अपना पड़ाव डाले हुए थी। इसमें भारत से आई हुई वह फौज की टुकड़ी भी सम्मिलित थी, जिसमें यशवन्तसिंह और उसका नव मित्र मानसिंह थे।

फौज में रहते हुए यशवन्तसिंह में महान् परिवर्त्तन हो गया था। जीवन की क्षण-भंगुरता का ज्ञान उसे भली-भाँति हो गया था, और ऐसे ज्ञान के पश्चात् आने वाली बेपरवाही की प्रचुर मात्रा उसमें आ गई थी। शनैः-शनैः घर का मोह धूमिल पड़कर कर्त्तव्य की आभा के समक्ष नष्ट-सा हो रहा था। यौवन

का उद्दाम-स्रोत उसे वीरता और साहस प्रदर्शन की ओर बहाये लिये जा रहा था उसकी कर्त्तव्य-परायणता से उसके अफसर उससे अत्यधिक प्रसन्न और सन्तुष्ट हो रहे थे। साधारण सिपाही से उन्नति करके वह आजकल नायक बना दिया गया था।

अपराह्न के चार बज चुके थे। मानसिंह के शिविर में यशवन्तसिंह भी बैठा था। दोनों आगामी युद्ध का कार्यक्रम बना रहे थे।

मानसिंह ने एक नक्शे को उलटते हुए कहा :—"आज रात को निश्चय ही शत्रु का आक्रमण होगा।"

यशवन्तसिंह ने उत्सुकता से कहा :—"क्या इसकी पुष्टि का कोई समाचार मिला है, या यों ही अपने अनुमान से कहते हो।"

मानसिंह :—"भाई यशवन्त, घटनाओं के आधार पर किया हुआ अनुमान सत्य उतरता है। हमारे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि जापानियों की एक बड़ी फौज सिंगापुर से चल दी है। सिंगापुर यहां से केवल ७० मील है। यद्यपि मार्ग पथरीला, बीहड़ और अगम्य है तथापि उनका क्षिप्रता के साथ सैन्य-संचालन सदैव हमको चकित करने वाला होता है। इस युद्ध में हमें प्राणों की बाजी लगानी है।"

यशवन्त ने लापरवाही के साथ कहा :—"वह तो हम प्रत्येक युद्ध में लगा देते हैं, किन्तु आश्चर्य यही है कि हम लोग बाल-बाल बच जाया करते हैं।"

मानसिंह ने हंसकर कहा :—"किन्तु भाई, मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस युद्ध में हमारी निश्चित रूप से पराजय होगी। हाँ तुमने क्या यह समाचार सुना है कि दक्षिणी पूर्व में रहने वाले भारतीयों का संगठन हो रहा है, और वे अंग्रेजों की पराजय से लाभ उठाना चाहते हैं ?"

यशवन्तसिंह खिसककर मानसिंह के समीप आ गया, और बड़ी उत्कंठा से पूछा :—"यह तुमने कहाँ सुना ? क्या यह सत्य है ? अंग्रेजों का इस समय बुरा हाल है। उधर हिटलर उन्हें पराजित कर रहा है, और इधर जापान। यदि ऐसे अवसर पर भारतीय जागते नहीं, तब तो निश्चय ही उनके समान मूर्ख कोई नहीं होगा। जब हम लोग भारत में थे, तब कुछ सुनने में आया था कि कांग्रेस सत्याग्रह करने जा रही है। उसी अवसर पर हम लोगों को इधर भेज दिया गया। नहीं मालूम कि वहाँ क्या हुआ ? और देश की कैसी अवस्था है। हम लोगों को देश के कोई समाचार नहीं मिलते। आज छः महीने से बापू की भी कोई चिट्ठी नहीं आई।"

मानसिंह :—"फौजी अधिकारी आजकल बड़े सतर्क हो गए हैं। उनका विश्वास हमारे ऊपर अब नहीं रह गया है। तुमने सुना नहीं कि हमारी फौज की

७३ नम्बर की टुकड़ी के कुछ जवान जापानी फौज से मिल गए हैं। आजकल प्राय: प्रत्येक मोर्चे में हमारी सेना के कुछ-न-कुछ सिपाही जान-बूझकर अपने को जापानियों के हवाले कर देते हैं।"

इसी समय उनके दूसरे साथी ने उस शिविर में प्रवेश किया। उसका नाम था हरनामसिंह नेगी। वह अल्मोड़ा का रहने वाला था, और प्रायः इनके शिविर में आकर बैठा करता था। उसको देखते ही मानसिंह ने पूछा :—"कहो जवान, क्या समाचार है ?"

हरनामसिंह ने बैठते हुए कहा :—"समाचार आजकल कुछ अच्छे नहीं हैं। मेजर साहब ने आज यह आदेश गुप्त रूप से अंग्रेज सैनिकों को दिया है कि वे भारतीय जवानों से सतर्क रहें, और उन पर कोई विश्वास न करें। जहाँ उन्हें उनकी नीयत में फर्क मालूम हो, वे तुरंत गोली मार दें। इधर हमारी कई लड़ाइयों में हमारे बहुत-से जवान जापानियों से जाकर मिल गए हैं।"

यशवन्तसिंह ने आतुरता से कहा :—"तब तो..........।"

किन्तु इसके आगे वह कह न सका। मानसिंह ने उसका पैर दबाकर उसको मौन रहने का संकेत किया।

यशवन्तसिह को चुप करते हुए मानसिंह ने कहा :—"किन्तु भाई हमको तो विश्वास नहीं होता कि भारतीय सैनिक गद्दारी कर सकते हैं ? और चाहे जो कोई अपनी सेना का साथ छोड़ दे, किन्तु मैं तो छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। जापानी चूहों पर विश्वास करना मूर्खता है।"

हरनामसिंह ने हँसते हुए कहा :—"मानसिंह, मैं कोई अंग्रेजी सेना का जासूस नहीं हूँ, जो मेरे सामने ऐसी बातें कर रहे हो। यह जान लो कि हरनामसिंह सब-कुछ कर सकता है, किन्तु देश के प्रति गद्दारी नहीं कर सकता। मेरा जन्म हिमालय की गोद में हुआ है, जो भारत का मुकुट है। उसमें विचरण करने वाली स्वतंत्र वायु हमें स्वतंत्र होने के लिए प्रेरित किया करती है। हमको अपने मध्य से अविश्वास का मूल नष्ट कर देना चाहिए। यदि हमें जीवित रहना है तो हमको अपना संगठन करना होगा, नहीं तो हम दोहरी मार में मारे जायंगे। अंग्रेज सैनिक अपनी पराजय की टीस बुझाने के लिए हमारा नाश करेंगे, क्योंकि उधर भारत में विद्रोहाग्नि बड़ी करालता के साथ धधकने वाली है। भारत का एक-एक पुरुष, स्त्री और बच्चा आजादी की लड़ाई में कूदने वाला है। सब एक साथ मिलकर अंग्रेजी सिंह को देश से बाहर भगा देने का प्रयत्न करने जा रहे हैं। वास्तव में ये अंग्रेजी सेनाएं ही हमें गुलाम बनाये हुए हैं। इनका नाश हो जाने से फिर हम स्वतंत्र हो सकते हैं। जापान की सहायता से हम इनको मार भगायंगे। इस युद्ध में निस्सन्देह अंग्रेज हारेंगे।"

मानसिंह ने सतर्कता के साथ कहा :—"हरनामसिंह ज़रा धीरे-धीरे बातें करो। कपड़ों की दीवालें शब्द-तरंगों को रोक नहीं सकतीं। यदि कोई सुन लेगा तो लेने के देने पड़ जायंगे। तुम तो मुसीबत में फँसोगे ही, और हम लोगों को भी अछूता न छोड़ोगे।"

हरनामसिंह ने लापरवाही के साथ कहा :—"भाई, मरने से हरनाम कभी नहीं डरता। बस अब तो यही इच्छा है कि अंग्रेजों के साम्राज्य की रक्षा में अपने प्राणों की बलि न देनी पड़े। अपनी मातृभूमि को इनकी दासता से मुक्त करते हुए यदि जान जाती है तो मेरे लिए सबसे अधिक श्रेयस्कर मौत होगी। मानसिंह, तुम्हारी भाव-भंगी कह रही है कि तुम मुझको अंग्रेजों का भेदिया समझ रहे हो, किन्तु तुम्हारा भ्रम आज थोड़ी देर में दूर हो जायगा, जब तुम सुनोगे कि हरनामसिंह जापानी फौज में चला गया है। आज रात्रि की कालिमा जब गहन होकर संसार को आवृत कर लेगी, तब जापानी हमारी सेना पर आक्रमण करेंगे। उस समय अवसर पाकर हम आत्म-समर्पण कर देंगे। हमारी योजना बन गई है। मैं तुमको उसमें सम्मिलित करने के लिए निमंत्रण देने आया हूँ। मुझे तो प्रत्येक भारतीय पर विश्वास है, और यदि वह विश्वास-घात करेगा तो उसका कल्याण कभी नहीं हो सकता। जिस लोभ से वह ऐसा जघन्य कर्म करेगा, उसको वह कदापि न भोगने पायगा। हमारे साथी उसका पीछा करके उसे यमलोक ही पहुँचा देंगे।"

मानसिंह ने मुस्कराते हुए कहा :—"आजकल का समय बड़ा नाज़ुक है। सहसा किसी पर विश्वास नहीं आता। गुलाम अपनी उन्नति का मार्ग केवल विश्वास-घात में ही पाता है, अतएव वह समय मिलते ही सबसे प्रथम अपने भाइयों पर प्रहार करता है। उसके सामने केवल अपने स्वार्थ-साधन के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं होता। देश-प्रेम, समाज-प्रेम और मानव-बन्धुत्व आदि की स्वार्थेतर भावनाएं उस पर अपना प्रभाव नहीं डालतीं। वह अपने स्वार्थ के धरातल से ऊँचा नहीं उठ सकता। अतएव भाई, यदि मैंने आपका अविश्वास किया है तो क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

हरनामसिंह ने यशवन्तसिंह को पकड़कर हिलाते हुए कहा :—"कहो जवान, तुम्हारा क्या इरादा है? क्या तुम हमारा साथ नहीं दोगे?"

यशवन्तसिंह ने जोश के साथ कहा :—"क्यों नहीं, मैं तो शुरू से ही कांग्रेसी हूँ। अगर मेरे बापू ऋण में डूब न गए होते तो मैं कभी फौज में भरती न होता। हाँ, यह तो बताओ, हमारे चले जाने से अंग्रेज सरकार जो वेतन हमारे घर पर भेजती है, बन्द कर देगी क्या?"

हरनामसिंह ने कुछ विचारने के पश्चात् कहा :—"संभव तो यही है।

किन्तु अन्य घटनाएं भी हो सकती हैं। अरे, उस चिन्ता को छोड़ो। घर में रुपया न जायगा न सही, किन्तु हम आजादी लेकर तो जायंगे।"

यशवन्तसिंह विचारों की उलझन में पड़ गया।

हरनामसिंह ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा :—"अरे जवान, उसका क्या सोच करता है ? जैसे पहले उनके दिन गुजरते थे, वैसे कुछ दिन और बीत जायंगे, मगर इसके पश्चात् तो आनन्द-ही-आनन्द है। अंग्रेजों को मार भगाने के बाद ही हमारी उन्नति हो सकती है।"

यशवन्तसिंह ने उत्तर दिया :—"अपने लिए मैं परेशान नहीं हूँ। मेरे बापू बहुत वृद्ध हैं, उनके ऊपर बहुत कर्जा हो गया है। मेरे दो भाई घर कुछ भी नहीं भेजते। अकेले उनको मेरी आय पर निर्भर रहना पड़ता है। रुपया न पहुँचने से उनके माँगने वाले साहूकार उन्हें त्रस्त करेंगे। जो होगा, वह भुगतेंगे। माता-पिता से भी ऊपर अपना देश है। उसके प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन करना सर्वोपरि धर्म है। बस ठीक है भाई, मैं तुम लोगों का ही साथ दूँगा। तुम्हारे साथ ही अंग्रेजी सेना को त्याग कर जापानियों की शरण में जाऊँगा। किन्तु·······।"

हरनामसिंह ने उत्कंठित स्वर में पूछा :—"किन्तु क्या भाई ?"

यशवन्तसिंह :—"मैं यही कह रहा था कि यदि कहीं जापानियों ने हमें धोखा दिया तो फिर हम कहीं के न रहेंगे। इसी बर्मा के जंगलों में ठोकरें खाते हुए प्राण-विसर्जित करने पड़ेंगे।"

मानसिंह ने भी अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा :—"हाँ हरनाम, यह तो अपना कदम उठाने के पहले सोच लेने की बात है।"

हरनामसिंह ने विश्वास दिलाते हुए कहा :—"इस प्रकार की कोई आशंका मत करो, आजाद हिन्द फौज की स्थापना हो गई है। उसका उद्देश्य भारत को स्वतंत्र कराना है। जापानी उसको शस्त्रास्त्रों से सहायता दे रहे हैं, और उसमें प्रवासी भारतीयों की एक बड़ी संख्या सम्मिलित है, जिनको सैनिक शिक्षा दी जा रही है। इस समय उसमें अधिकाधिक सैनिकों की आवश्यकता है, ऐसे सैनिकों की जो भूखे और प्यासे रहकर अपने प्राणों की बलि दे सकें। यह हमको भली-भाँति जान लेना चाहिए कि वहाँ वे सुख और वस्तुओं की बहुलता नहीं है जो यहाँ है। वहाँ पर कष्ट है, परिश्रम है और तपस्या है। वहाँ पर अपने पैरों पर खड़े होना है, रक्त में स्नान करना है, मृत्यु से मल्ल-युद्ध करना है। तलवार की धार पर दौड़ना है। यदि ये सब सहने को तैयार हो तो हमारे साथ आओ, नहीं तो·······।"

यशवन्तसिंह ने दृढ़ता के साथ कहा :—"मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ। मातृ-

भूमि को मुक्त करने के गौरव को कौन सिपाही ग्रहण करने को तैयार नहीं होगा। मेरी ओर से यह निश्चय है कि मैं आपका साथ दूँगा।"

मानसिंह ने भी उसके संकल्प में योग देते हुए कहा:—"मैं तुम्हारा साथ दूँगा, हरनाम।"

हरनामसिंह ने प्रसन्न होकर उन दोनों को अपने हृदय से लगा लिया। तीनों के हृदय-स्पंदन एक दूसरे के साथ अपनी-अपनी दृढ़ता और प्रगाढ़ मैत्री का संदेश सुनाने लगे।

१४

रात्रि का शेष प्रहर निद्रा-मग्न था। सतर्क प्रहरी भी उसके मोहन-पाश में आबद्ध होकर झूमने लगे थे। युद्ध-भूमि भी नीरव और निस्तब्ध होकर शांति के साथ सोने का उपक्रम करके अपनी शक्ति संचित कर रही थी। आकाश में झिलमिलाते हुए वैद्युतिक स्फुलिंगों के क्षीण प्रकाश को बादलों ने अपने आवरण में छिपाकर निद्रा देवी को राज्य-विस्तार के लिए सभी सुविधाएं प्रदान कर दी थीं। परन्तु कितने ही मनस्वियों—कार्यार्थियों की आँखों में निद्रा की अचेतनता का प्रवेश न होने पाया था। वे उत्कंठित होकर जापानियों के वायु-यानों के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस प्रखरता के साथ, जैसे कारावास से छूटने वाला कैदी राह देखा करता है। ७३ नम्बर की अंग्रेजी सेना की टुकड़ी के भारतीय जवानों के मन में दुविधाओं का तूफान उठ रहा था। वे इस समय स्पष्ट रूप से अपनी मातृभूमि की सिसकियाँ सुन रहे थे, और कल्पना की दीप-शिखा उन्हें उसकी सन्तानों पर अहर्निशि होते हुए अत्याचारों की झाँकी दिखा रही थी। उस समय उनकी दृष्टि में ब्रिटिश राजतंत्र रक्षक के रूप में नहीं वरन् भक्षक के रूप में दिखाई पड़ रहा था। उसका नाश करने के लिए उनके मन में वही उतावलापन था जो परिस्थितियों से जर्जरित एक विक्षिप्त मस्तिष्क में चेतना की एक तरंग दौड़ाकर उसे अपनी अवस्था का भान कराकर उसके पाश से छुटाने का प्रयत्न कराता है। उसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विद्वेष भावना उनको उद्दाम रूप से जागरित करके उन्हें उसके बन्धन को तोड़ने के लिए उत्तेजित कर रही थी। यद्यपि अंग्रेज सैनिक भी उनकी भावनाओं से अवगत थे, तथापि वे इस समय प्रकट रूप से कुछ प्रतिकार करने के लिए अक्षम थे। वे मन-ही-मन उनके विश्वास-घात की भावनाओं पर अपने दाँत पीस रहे थे। उन्हें प्रत्येक पल यह शंका उत्पन्न होती थी कि भारतीय सैनिक उन पर आक्रमण करने वाले हैं। साधारण सैनिक ही उनकी आशंका के पात्र नहीं थे, वरन् उच्च पदस्थ भारतीय अफसरों पर से भी उनका विश्वास उठ गया था। उनकी यह धारणा निर्मूल नहीं थी। उस समय प्रत्येक भारतीय, चाहे वह सिपाही हो या अफसर, अपने

देश को मुक्त करने के लिए उतावला हो गया था।

रात्रि की निस्तब्धता को भंग करते हुए मानसिंह ने कहा :—"भाई, इस समय रात के तीन बज गए हैं, उनका निर्दिष्ट समय भी बीत गया। शायद आज हमला नहीं होगा।"

हरनामसिंह ने विश्वास दिलाते हुए उत्तर दिया :—"नहीं ऐसा नहीं हो सकता कि आक्रमण आज न हो। हमारे दूसरे भाइयों ने जो पहले उनके साथ सम्मिलित हो गए हैं, यह सूचना हम लोगों के पास एक जंगली के द्वारा भेजी है, देर चाहे भले ही हो जाय, किन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता कि आक्रमण होवे ही नहीं। आक्रमण अवश्य होगा, और प्रातःकाल की श्वेत आभा के साथ ही हम अपनी स्वतन्त्रता अवश्य प्राप्त करेंगे।"

यशवन्तसिंह ने सिगरेट जलाते हुए कहा :—"क्यों भाई, आक्रमण की हम लोग प्रतीक्षा ही क्यों करें? ये मुट्ठी-भर अंग्रेज सिपाही हमारा क्या बना लेंगे? हम लोग सहज ही इनको बन्दी बना सकते हैं।"

हरनामसिंह ने हँसकर कहा :—"तभी तो कहते हैं कि यौवन का शक्ति-प्रवाह बहुधा बौद्धिक आँखों की दृष्टि-ज्योति को हरण कर लेता है, मनुष्य की सूझ-बूझ और सतर्कता पर पानी फेर देता है। यह क्या तुमने लक्ष्य नहीं किया है कि आजकल भारतीय सैनिकों को गोला-बारूद बहुत थोड़ा—नियमित परिमाण से भी कम—दिया जाता है। उन्हें हथगोले आदि अस्त्र नहीं दिये गए। मैगजीन की ओर कोई भारतीय, चाहे वह अफसर हो और चाहे सिपाही, जाने नहीं पाता। भारतीयों के शिविरों को बीच में बन्दी बनाकर रखा गया है। ऐसा सुनने में आया है कि कल हमारे हथियार भी छीन लिये जायंगे।"

यशवन्तसिंह ने जोश के साथ कहा :—"चाहे जो कुछ हो, मैं अपने हथियार नहीं समर्पित करूँगा। हमें गोली से उड़ा देने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते। मरने के लिए तो आये ही हैं, अब फिर उसका क्या भय है?"

हरनामसिंह ने उसको शांत करते हुए कहा :—"जरा धीरे से बोलो। रात्रि की शांति जासूस की भाँति सन्देश-वाहक चुगलखोर होती है। हम लोगों को एक दूसरे से मिलने की बात करने तक की आशा नहीं है। चूँकि हम तीनों मरने के लिए कटिबद्ध हैं, इसलिए उन आज्ञाओं की अवहेलना करके यह कानाफूंसी कर रहे हैं। जरा सतर्कता से काम लो, यशवन्त।"

हरनामसिंह की भर्त्सना से यशवन्त कुछ मलिन-सा हो गया। मानसिंह ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा :—"साढ़े तीन बज रहे हैं। भाई, प्रतीक्षा की भी एक सीमा होती है। जरा दूसरे शिविरों में चलकर देखो तो वहाँ क्या हो रहा है।"

हरनामसिंह ने उत्तर दिया :—"इन खाइयों के बाहर निकलना इस समय निरापद नहीं है! जहाँ हम इन गढ़ों के बाहर निकलेंगे, तुरंत गिरफ़्तार हो

जायंगे। अंग्रेज सैनिक बड़ी सतर्कता से पहरा दे रहे हैं। हमारे निकलने का समय वह है जब जापानी वायुयानों से आक्रमण करेंगे। हमने यहाँ का एक नक्शा बनाकर भिजवा दिया है, और उसमें उन स्थानों का संकेत कर दिया है, जहाँ अंग्रेज सैनिकों का अड्डा है, बारूद और शस्त्रास्त्रों का भंडार है। जापानी यहाँ की इंच-इंच भूमि से भली-भाँति अवगत हैं। उनका निशाना कभी चूकता नहीं। हमारा बचाव इसी में है कि हम अपनी-अपनी खाइयों के शिविर में चुपचाप पड़े रहें। ऐसा ही जापानी सेना का भी आदेश है। हमारे भाइयों के प्राणों की जितनी ही कम क्षति हो उतना ही अच्छा है। यशवन्तसिंह की भाँति क्या तुम भी उतावले हो उठे। युद्ध-भूमि वीरता और साहस-प्रदर्शन का स्थान अवश्य है, किन्तु ऐसा प्रदर्शन किस काम का जिसमें कार्य तथा उद्देश्य को क्षति पहुँचे। अब आक्रमण में देर नहीं है, वह किसी क्षण हो सकता है।"

इसी समय आकाश में वायुयानों का सन्नाटा सुनाई दिया और उसके साथ ही सैनिकों को सावधान करने वाली ध्वनि भी वायु-मण्डल को कम्पित करती हुई उनको जापानियों के आक्रमण की सूचना देने लगी।

हरनामसिंह ने उछलकर कहा:—"देखो वे आ गए। सावधान! बाहर कदापि न निकलना, बाहर निकलते ही पहले अंग्रेज सैनिक ही हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे।"

मानसिंह तथा यशवन्तसिंह उत्तर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि एक बम पहले चीखता हुआ गिरा, और उसके पश्चात् बमों की वर्षा आरम्भ हो गई। कुछ क्षणों पहले जो वातावरण शांत और निस्पन्द था, मुखरित हो उठा। अग्नि की लपटें उठने लगीं, चारों ओर नाश तथा प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। विस्फोट इतने भीषण वेग से हो रहे थे कि वायुयानों का सन्नाटा भी सुनाई नहीं पड़ता था। लगभग पन्द्रह मिनट तक प्रलय-लीला अविराम गति से चलती रही। जापानी वायुयान बड़ी चतुरता के साथ बम बरसा रहे थे। उनके लड़ाकू वायुयानों की कला सराहनीय थी। वे पृथ्वीतल से कुछ ही ऊपर रहकर बमों को गिराकर सवेग ऊपर चले जाते थे, और नीचे भीषण अग्नि प्रकट होकर अंग्रेजी सेना को अपनी लाल जिह्वा से चाटती हुई उनको उदरस्थ कर रही थीं। मानव जीवन का कितनी सरलता से अन्त किया जा सकता है यह वहाँ पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

अंग्रेजी सेना के वायुयान भी यद्यपि उनसे मोर्चा ले रहे थे, किन्तु उसकी संख्या बहुत कम थी, और उनमें से कितने ही नष्ट भी हो गए। आकाश में वायुयान-युद्ध हो रहा था, किन्तु जापानी सबल थे। क्षण-भर में ही उन्होंने अंग्रेजी सेना के अवशिष्ट वायुयानों को नष्ट कर दिया। जापान की विजय हुई,

और वे उसी दिशा की ओर चले गए, जहाँ से आये थे । उनके जाने के साथ ही जापानियों की थल सेना ने न मालूम कहाँ से प्रकट होकर उस स्थान को चारों ओर से घेर लिया । अंग्रेजी सेना के गोरे सिपाही, जो उस आक्रमण से बच गए थे, उनसे लोहा लेने लगे । उनमें से कितने ही मारे गए और कितनों ने आत्म-समर्पण कर दिया। सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना यह थी कि भारतीयों ने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया, उन्होंने एक गोली भी नहीं चलाई थी । उन लोगों ने बड़े चाव के साथ आत्म-समर्पण कर दिया था। औरों की भाँति यशवंतसिंह, मानसिंह आदि भी बन्दी बना लिये गए थे । हरनामसिंह ने जापानी सैनिकों को आत्म-समर्पण करते हुए कहा :—"हम लोग आजाद हिन्द फौज के सैनिक हैं। हमारी ओर से आप निश्चिन्त रहिए। हम मित्र हैं, शत्रु नहीं।"

किन्तु जापानियों ने उनकी एक भी बात न सुनी, और उसको दूसरों की भाँति अपने शस्त्रास्त्रों को दे देना पड़ा।

प्रभात काल की अरुणाभा क्षितिज से झाँकते हुए अंग्रेजों की पराजय का वह दृश्य देखकर भारतीय सैनिकों के मन में उल्लास की भावनाएं भरने लगी। उन्होंने दिशाओं को कंपाते हुए जय-घोष किया । "आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद, आजाद हिन्द फौज जिन्दाबाद।" और दिशाएं भी उत्फुल्ल होकर उनके घोष को प्रतिध्वनित करके आजादी का इतिहास रचने लगीं।

१५

कार्लटन होटल के एक प्रशस्त कक्ष में मिल-मालिक संघ की बैठक निश्चित की गई थी । चन्द्रनाथ के अतिरिक्त सभी सदस्य वहाँ उपस्थित थे । खान बहादुर अब्दुल मजीद इत्यादि के परामर्श से लाला कंचनलाल ने उठकर सबको सम्बोधित करते हुए कहा :—"भाइयो, यह तो आपको विदित है कि हमारे नेता सेठ चन्द्रनाथ अकस्मात् मोटर लड़ जाने से घायल होकर अस्पताल में पड़े हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके स्थान की पूर्ति करने वाला हम उपस्थित व्यक्तियों में से कोई नहीं है। उन्होंने जिस तत्परता और बुद्धिमानी से हमारी सभा के कार्य को आगे बढ़ाया है, वह हमसे छिपा नहीं है। उन्हीं के बुद्धि-कौशल का यह परिणाम था कि हमारे द्रोही 'मजदूर-रक्षक' के सम्पादक आज जेल में हैं, और प्रेस जब्त कर लिया गया है। यह उन्हीं की चातुरी का फल है कि मजदूरों का एक वर्ग हमारी कृपाओं का आकांक्षी होकर दूसरे दल से, जो हड़ताल कराना चाहते हैं, मोर्चा लेने को तैयार है। मादक वस्तुओं के प्रचार से हमें बड़ी शक्ति प्राप्त हो गई है । यह भी सुझाव उन्हीं का रखा हुआ था। इस अवसर पर उनका हमारे बीच में न होना बहुत खटक रहा है। किन्तु फिर भी संसार के कार्य किसी व्यक्ति के न होने से रुके नहीं रहते। नेता ने जो रूप-

रेखा तैयार कर दी है, हम लोग सहज ही उसके अनुसार कार्य करके अब भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह उनको शीघ्र ही आरोग्यता प्रदान करे। उनकी अनुपस्थिति में हमें कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए किसी को स्थानापन्न सभापति चुनकर हड़तालियों से मोर्चा लेना पड़ेगा। मैं सभापति-पद के लिए अपने मित्र खान बहादुर अब्दुल मजीद का नाम आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूँ। आशा है कि वे इस कठिन अवसर पर हमारा नेतृत्व ग्रहण कर हमारे आयोजन को सफल बनायेंगे।"

उनके बैठते ही सेठ पोपटलाल ने कहा :—"मैं अपने मित्र लाला कंचनलाल के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ, और आशा है कि मेरे सभी मित्र मुझसे सहमत होंगे।"

प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया, और खान बहादुर अब्दुल मजीद ने सभापति का आसन ग्रहण किया। उन्होंने कहना आरंभ किया :—"भाइयो, हम सब अपने रहनुमा सेठ चन्द्रनाथ की गैर हाजिरी महसूस करते हैं। मैं यह पहले ही ऐलान कर देना चाहता हूँ कि मुझमें उनकी-सी योग्यता, दूरन्देशी और कारगुजारी नहीं है। उनका इस वक्त घायल हो जाना हमारे लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ है; क्योंकि मजदूर-सभा ने आने वाले सोमवार से हड़ताल करने का नोटिस दे दिया है। यह ठीक है कि हम लोगों को अपनी स्कीम में काफी कामयाबी मिली है, लेकिन मजदूरों का एक बहुत बड़ा दल मजदूर-सभाइयों की रहनुमाई में है। उनकी तादाद हमारे दल के मजदूरों से कहीं अधिक है। हमारी नशा-प्रचार की तरकीब काम कर रही है, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन कांग्रेसी जी-जान लड़ाकर उनको भी अपने दल में मिलाने की कोशिश कर रहे हैं। हमारे अजीज दोस्त और मुरब्बी वामनदास की लड़की कनक बैरिस्टर हमारे लिए बड़ी अड़चन और रोड़ा हो रही है। उसकी निहायत खूबसूरती और जबान का जादू आज कदम-कदम पर हमारे मनसूबों और स्कीमों पर पानी फेर रहा है। महज उसी के सबब से मजदूर अपनी जिद पर अड़े हुए हैं। उसी की ताकत पाकर वे मजदूर, जो हमारी मेहरबानियों के मोहताज और हमारे लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए तैयार रहा करते थे, आज हमसे बरअश्ता हैं, हमारे खिलाफ होकर हमसे लोहा ले रहे हैं। न मालूम क्यों अभी तक हमारे नेता सेठ चन्द्रनाथ ने इस नागिन को अछूता रखा है। मैं जहाँ तक समझता हूँ उन्होंने इसको औरत समझकर ही तरह दी है। लेकिन दरअस्ल इससे उसका हौसला बराबर बढ़ता ही गया है। हमको इस नागिन के जहर के दांत तोड़ने हैं, इसके जबान के जादू को बन्द करना है। इसलिए हम सबको कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिए जिससे हमें इससे नजात और छुटकारा मिले।"

सेठ नेमीचन्द ने कहा :—"आपका खयाल बिलकुल सही है। जब तक

यह नागिन रहेगी, तब तक हमें सफलता नहीं मिलेगी।"

सेठ, पोपटलाल ने पगड़ी सँभालते हुए कहा :—"इसको भी वहीं भेज देना चाहिए, जहाँ 'मजदूर-रक्षक' के सम्पादक जी गये हैं। जेल के भीतर से इसका जादू नहीं चलेगा।"

खान बहादुर अब्दुल मजीद कहने लगे :—"आपका सुझाव ठीक है, मेरा भी ऐसा ही ख्याल है, लेकिन मुश्किल यह है कि इसको किस जुर्म में गिरफ़्तार कराया जाय। वह कानून के खिलाफ कोई काम नहीं करती, और इसलिए उसकी गिरफ़्त में नहीं आती।"

सेठ नेमीचंद ने धीरे से कहा :—"कानून की सहायता से यदि किसी काम को पूरा नहीं किया जा सकता, तो उसके लिए दूसरे उपाय भी हैं। क्या हमारे पास उन उपायों से काम लेने की शक्ति नहीं है? इस युग में रुपये का महत्त्व भगवान् से भी अधिक है, जो काम उसकी सहायता से नहीं हो सकता, वह रुपया सहज ही करा सकता है।"

अब्दुल मजीद ने उत्तर दिया :—"आपका सुझाव सही जरूर है, लेकिन उसमें खतरा है। चन्द्रनाथ की नीति पर विचार कीजिये, वे मनचाहा नतीजा हासिल भी कर लिया करते थे, और अपनी अंजुमन या सभा पर कोई आँच नहीं आने देते थे।"

सेठ नेमीचन्द ने कहा :—"अपने को बचाकर कौन काम करना नहीं चाहता, लेकिन मैंने तो अंतिम उपाय बताया है। अंग्रेजी की एक कहावत है जिसका अर्थ होता है कि 'मृत व्यक्ति कोई कहनी नहीं कहा करते।' यह सबसे अमोघ उपाय है।"

सेठ पोपटलाल ने ह्विस्की की प्याली नीचे रखते हुए कहा :—"हम लोगों में कोई इतना चतुर नहीं है जो ऐसा उपाय विचार सके कि साँप मरे और लाठी न टूटे। हम लोग तो केवल रुपये पैदा करना जानते हैं, और जब कोई उपाय सोचेंगे तो ऐसा कि जिसमें फँसजाने से जान और माल दोनों जायं। बुद्धिमान माल के द्वारा अपना कार्य करते हैं, और जान को सदा बचाये रहते हैं। भाई, वह बुद्धिमत्ता तो केवल चन्द्रनाथ में थी। दो दिन ठहर जाइए, चन्द्रनाथ जल्दी ही अच्छे हो जायंगे। उनसे परामर्श करके ही काम करना चाहिए।"

सेठ नेमीचंद ने कहा :—"सेठ पोपटलाल का कथन सत्य है, किन्तु आज बुधवार है और अगले सोमवार से हड़ताल शुरू हो जायगी। हमको तो उससे पहले अपना काम कर लेना है। हड़ताल यदि शुरू होगई तो फिर कुछ दिनों चलेगी। हमें तो ऐसा काम करना है जिससे वह शुरू ही न हो। हमारी विजय तो इसी में है।"

लाला कंचनलाल ने कहा :—"हम लोग ठहर नहीं सकते। हमारे पास

इतना समय नहीं है। अगर ठहरने का समय होता तो आज की बैठक में हम अपने मित्र खान बहादुर को सभापति क्यों चुनते ? हम लोगों को कोई उपाय ढूढ़ निकालना है। मेरी भी राय है कि कनक को किसी भाँति खपा देना चाहिए।"

सेठ पोपटलाल ने कहा :—"तब विचारिये, मैं मना कब करता हूँ, और शायद सेठ नेमीचंद को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु मैं तो साफ कह देना चाहता हूँ कि मैं ऐसे किसी भी काम में सम्मिलित नहीं हो सकता, जिसमें जान और माल जाने का खतरा हो।

लाला कंचनलाल ने कुछ आवेश के साथ कहा :—"यह नहीं हो सकता कि दाई मीठ, और दारा मीठ, और स्वर्ग कौन जायगा। बुजदिली के साथ·······।"

सेठ नेमीचंद ने सक्रोध कहा :—"चुप रहो बड़ी हिम्मत वाले बने हो। रात को बिल्ली म्याऊँ करती होती तो··········।"

खान बहादुर अब्दुल मजीद ने देखा कि फिर आपस में झगड़ा होने वाला है, इसलिए उसको बन्द करने की चेष्टा करते हुए बोले :—"भाइयो, मेहरबानी करके चुप रहिये। हमें आपस में लड़कर अपनी ताकत को जाया नहीं करना चाहिए। मुश्किल तो यही है कि हम सरमायादार कभी एकता के साथ रह नहीं सकते। मजदूरों में यह बात नहीं होती, इसलिए वे हमेशा हमसे जीत जाते हैं। एक दूसरे पर छींटे उछालने से हमारा मकसद पूरा नहीं होगा। इस झगड़े को यहीं खतम करिये। हमको कोई उपाय ऐसा निकालना चाहिए जिस से हड़ताल शुरू न होने पाय, और जो लाखों रुपयों का फायदा हम लोग लड़ाई का सामान बनाकर उठा रहे हैं उसमें कोई कमी न आने पाय।"

सेठ पोपटलाल ने प्याले को भरते हुए कहा :—"बेशक, बेशक। आज हम लोग जितना लाभ उठा रहे हैं उतना कभी नहीं उठाया था। लड़ाई हो रही है योरुप में और रुपया आ रहा है हमारे घर में। एक दिन का नुकसान उठाना हमें बहुत मंहगा पड़ेगा। ठीक है, खान साहब, आप ही कोई उपाय निकालिए। हम लोग अगर इस योग्य होते तो आज इसी मुसीबत में क्यों पड़ते ?"

खान बहादुर अब्दुल मजीद फिर कहने लगे :—"हाँ, तो हमको कोई रास्ता ढूँढ़ निकालना है। हमारे दोस्त सेठ चन्द्रनाथ का उसूल था कि रुपये में ताकत है। कनक को गिरफ़तार कराने के लिए हमें भी रुपयों की मदद लेनी चाहिए। हम लोगों का एक डेपुटेशन यहाँ के जिला मजिस्ट्रेट की खिदमत में जाकर अपनी मुश्किल उनके सामने रखे। वे हमारी जरूर मदद करेंगे। हम लोगों की सभा से उन्हें पहले भी गहरी रकम दी जा चुकी है, और इस बार उनका मेहनताना क्या होगा, यह हमें जान लेना चाहिए।"

सेठ पोपटलाल ने कहा :—"डेपुटेशन ले जाने से कोई फायदा हासिल नहीं होगा। अजी जनाब, डेपुटेशन से वे अपना मेहनताना नहीं कहेंगे। यह मालूम है रिश्वत देने वाला भी उतना ही अपराधी है, जितना लेने वाला। यह तो दूसरी बात थी कि चन्द्रनाथ से उनका दिल मिला हुआ था, और वे उसके जरिये ले लेते थे, किन्तु इसके यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि वे हममें से हर किसी से रिश्वत लेना स्वीकार करेंगे। आखिर उनको भी तो किसी का डर है। अगर वे हर किसी से रिश्वत लेने लगें तो बदनाम होते क्या देर लगती है। रिश्वत देना भी साँप के बिल में हाथ डालने के बराबर है। अतएव जिस किसी में हिम्मत हो, वह जाकर उनसे मिले, और रिश्वत की बातचीत तय करे।"

लाला कंचनलाल ने कहा :—"अरे ऐसे मैंने बहुत देखे हैं। पहले रिश्वत के नाम से सभी चौंकते हैं, नाक-भौं सिकोड़ते हैं, किन्तु वह तभी तक जब तक कि जबानी पूछ-ताछ होती है। जिसको रिश्वत देना हो, उसकी पहले आर्थिक व्यवस्था, उसके पद की उच्चता, उसकी शक्ति और अपने काम की गुरुता विचार लेनी चाहिए। फिर सबको एकत्रित करके जो मूल्य हो वह चुपचाप सामने रख दीजिये। मुँह से रिश्वत का नाम न लीजिये। किसी बहाने से दीजिये। सुविधा हो तो उसके किसी काम के अवसर पर भेंट कहकर दीजिये। यदि कोई ऐसा अवसर न मिले तो उसकी स्त्री और उसके बच्चों को दीजिये। लक्ष्मी को सामने देखकर ठुकराना केवल तपस्वियों का काम है, और भाई इस जमाने में, जहाँ रुपये का ही महत्त्व अवशेष रह गया है, कौन बेवकूफी करके ठुकराने जायगा। एक हाकिम जब किसी एक व्यक्ति से रिश्वत लेता है, तब वह दूसरे से भी ले सकता है। देखिये, हमारा उद्देश्य है कनक को अपने रास्ते से दूर करना, यानी गिरफ़्तार कराना। यह एक गुरुतर कार्य है, अतएव इसका मूल्य एक लाख रुपये रखिये। एक जिले के मालिक की शक्ति अपने जिले में बहुत-कुछ है, और न्यायाधीश होने से उसमें वृद्धि होती है, अतएव उसका मूल्य भी एक लाख आँक लीजिये। निक्सन साहब का प्रांतीय सरकार में बहुत बड़ा प्रभाव है, अतएव उसके लिए भी एक लाख रख लीजिये, अब उनकी आर्थिक अवस्था पर विचार कीजिये तो आपको विदित होगा कि छोटी-मोटी रकम की वह परवाह नहीं करेगा; उसका भी मूल्य कम-से-कम एक लाख रुपये रखिये। अतएव इस भाँति चार लाख रुपये उसका मूल्य होता है, और लोभ दिलाने के लिए एक लाख अधिक रखिये। इस प्रकार पाँच लाख रुपये उसके सामने रख दीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह एक शब्द भी न बोल सकेगा। वह गुलाम की भाँति आपके आदेशों का पालन करेगा।"

सेठ पोपटलाल ने कहा :—"अच्छा हम लोगों को चाहिए कि हम

अपनी ओर से लाला कंचनलाल को इस काम के लिए नियुक्त करें, और उनको अपनी सभा से पाँच लाख रुपयों का प्रबन्ध कर दें। क्या आप लोग मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं ?"

सेठ नेमीचन्द ने कहा :—"किन्तु अगर अपना काम कुछ कम देने से ही चल गया तो……।"

लाला कंचनलाल ने क्रुद्ध होकर कहा :—"मैं ऐसे काम में नहीं फँसा करता, जिसमें ईमान जाने की बात हो। मैंने तो उपाय-मात्र आप लोगों के समक्ष रखा है।"

सेठ पोपटलाल ने कहा :—"अरे सेठ नेमीचन्द का यह तात्पर्य नहीं है कि आप इस काम में बेईमानी करेंगे।"

लाला कंचनलाल ने शुष्क हँसी के साथ कहा :—"अरे सेठ जी, मैं समझता हूँ।" फिर कुछ क्रोध के साथ कहा :—"अच्छा यदि ऐसी बात नहीं है तो फिर हमारे सेठ साहब ने ऐसी आशंका उस समय प्रकट क्यों नहीं की थी जब चन्द्रनाथ जी को 'मजदूर-रक्षक' के सम्पादक को गिरफ्तार कराने के लिए रकम दी गई थी।"

खान बहादुर अब्दुल मजीद ने कहा :—"दर असल हकीकत यह है कि अभी तक आप दोनों साहबान के दिलों से मैल दूर नहीं हुआ है। आपकी आँखों पर मन-मुटाव का चश्मा चढ़ा हुआ है, और आप हर एक को उसी के जरिये देखते हैं, जिससे मामूली-से-मामूली बात में भी आप लोगों को शक हो जाता है कि दूसरा उसको जलील करने के लिए कह रहा है। लाला कंचनलाल ने जो तरकीब बताई है वह ठीक वैसी ही है जैसी हमारे नेता सेठ चन्द्रनाथ जी सोचते और करते थे। लेकिन हम लोगों में किसी की हिम्मत नहीं है कि वह रिश्वत की रकम देवे, इसलिए हमको भी उस आदमी की नीयत पर कोई शक न करना चाहिए, जिसको हम यह काम सौंपने जा रहे हैं। मैं यह जानकर बड़ा खुश होऊँगा यदि सेठ नेमीचन्द इस काम को करें। जहाँ तक मैं समझता हूँ लाला कंचनलाल को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

सेठ नेमीचन्द ने कहा :—"आप लोग गलत समझे। मेरा अभिप्राय यह यह कदापि न था कि लाला कंचनलाल हमसे बेईमानी करेंगे। वह तो एक साधारण प्रश्न था जिसका उत्तर भी साधारण था कि यदि कम रकम से काम चल जाय तो बाकी संघ को वापस कर दी जायगी।"

लाला कंचनलाल ने जोश के साथ कहा :—"अजी सेठ जी, यहाँ ऐसे रुपयों की परवाह नहीं है। मैं तो पाँच लाख से एक पाई कम उनके सामने नहीं रखूँगा और यदि इतने से भी काम न चला तो एक-दो लाख अधिक भी दे दूँगा। खैर, मैं तो यह भार अपने सिर लेता नहीं, आप जानें और आपका

काम जाने।"

अब्दुल मजीद ने कहा :—"देखिये लाला साहब, इस तरह किनाराकशी से काम नहीं चलेगा। सभा की आज्ञा से आपको यह काम करना पड़ेगा। आप लोग इस मैल को अब तो साफ कर डालें। लड़ाई के जमाने में देखिये, इंगलैंड की सब पार्टियों में एकता स्थापित है। हम भी लड़ाई लड़ने जा रहे हैं, अगर आपस में फूट होगी तो फिर दुश्मन एक को हरा देगा।"

सेठ पोपटलाल ने उसका समर्थ किया।

सेठ नेमीचन्द ने भी कहा :—"यदि मेरे कथन से लाला साहब को कुछ दु:ख हुआ हो तो मैं अपने शब्द वापस लेने को तैयार हूँ।"

खान बहादुर अब्दुल मजीद ने अपना अंतिम निर्णय देते हुए कहा :— "बस अब लाला साहब को शिकायत की कोई गुञ्जाइश नहीं रह गई। मैं अभी पाँच लाख का चैक लिखे देता हूँ। यदि इससे अधिक खर्च हुआ तो हमारी अंजुमन आपको वह रकम देगी।"

लाला कंचनलाल को अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

१६

अपने बंगले के एक कमरे में बैठे हुए मिस्टर निक्सन सोच रहे थे :— "यह दूसरा महायुद्ध अंग्रेज जाति की सत्ता का अंत करने वाला मालूम देता है। पन्द्रहवीं शताब्दी की अंतिम दशाब्दी में इसका उत्थान और उत्कर्ष आरम्भ हुआ था, और आज बीसवीं शताब्दी तक चन्द्रमा की कलाओं की भाँति बराबर उन्नति करता चला आया है। उस समय उसका प्रभाव योरुप तक में न था, किन्तु आज दिन उसके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। इंगलैंड ने आजतक अगणित आक्रमणों का भार सहन किया, और प्रत्येक युद्ध के पश्चात् उसकी सत्ता में वृद्धि हुई। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् उससे उसके उपनिवेश छिन गए, और इस युद्ध की समाप्ति पर शायद उसका साम्राज्य भी नष्ट हो जायगा। अभी तक तो मलाया, बर्मा ही हाथ से बाहर हुए हैं, और अब भारत की बारी है। जापान और जर्मनी दोनों राहु की भाँति उसके साम्राज्य को दोनों ओर से निगलते चले आ रहे हैं। जर्मनी अफ्रीका और मिश्र तक पहुँच गया है, और जापान भारत के पूर्वीय द्वार तक। इधर भारत में भी हमारी सत्ता को नष्ट करने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन उठने वाला है। हमें यहाँ के निवासियों पर विश्वास कदापि न करना चाहिए। बर्मा-युद्ध में भारतीय सिपाही हमारे साथ विश्वास-घात कर रहे हैं। उन्होंने जापान के संरक्षण में आजाद हिन्द फौज की स्थापना की है। इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है?"

उद्विग्नता जब बढ़ जाती है, और मस्तिष्क में बवण्डर उठ खड़ा होता

है तब उसे कुछ शारीरिक परिश्रम से वैद्युतिक शक्ति प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुआ करती है। उस समय मनुष्य संकीर्ण-से-संकीर्ण स्थान में घूमने-फिरने अथवा पैर हिलाने लगता है। विचारों की गम्भीरता जितनी ही तीव्र उद्विग्नता को जन्म देगी उतनी ही गति से मनुष्य अपने पैरों द्वारा परिश्रम करके अपनी शक्ति संचित करके मानसिक सन्तुलन स्थापित करेगा। मिस्टर निक्सन भी उठकर कमरे में टहलने लगे।

टहलते हुए वे पुनः सोचने लगे :—"हमें अपने को जीवित रखना है, इंगलैंड की मर्यादा को जीवित रखना है, और साम्राज्य को जीवित रखना है। प्रत्येक इंगलैंडवासी का यह कर्तव्य है कि वह अपने जीते उसके गौरव को नष्ट न होने दे। छल, बल और कौशल ने हमें अब तक इस गौरवान्वित पद पर प्रतिष्ठित किया है, और उन्हीं के द्वारा इस महायुद्ध से हमारी निष्कृति होगी। राजनीतिज्ञता में हमारा प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है। राजनीति का प्रथम उपदेश है फूट के बीज बोना। राज-सत्ता तभी तक सुरक्षित रहेगी जब तक उस देश के निवासियों में फूट रहेगी। वह फूट किसी जाति, अथवा किसी समूह अथवा वर्ग तक सीमित नहीं होनी चाहिए, उसे देश-व्यापी बनाना चाहिए। देश के प्रत्येक नर-नारी, वर्ग, जाति, उपवर्ग सबके मन में फूट और विद्वेष की भावना भर देनी चाहिए। भारतवर्ष ऐसे देश में, जहाँ धर्मों और जातियों की कमी नहीं है, वहाँ तो फूट का बीज सहज ही बोया जा सकता है, और हमने उसे बड़ी सरलता से रोप भी दिया है। आज प्रत्येक मुसलमान और प्रत्येक हिन्दू, यद्यपि दोनों इसी देश की भलाई-बुराई से प्रभावित होते हैं, एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं। इस हिन्दू जाति के व्यूह में हमने उसके भीतर उसी के अंगों को उसके घातक शत्रु स्थापित कर दिए हैं। धर्म के नाम पर मुसलमानों और सिखों को अलग किया है, और मानवता के नाम पर अछूतों को।

"कांग्रेस हमारा प्रतिरोध कर रही है, उसकी सत्ता कितने दिनों चलेगी? मुसलमान उससे अलग कर दिये गए हैं अब उसको केवल हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त है। यदि हम हरिजनों को उससे छिन्न-भिन्न कर दें तो उसकी शक्ति और भी क्षीण हो जायगी। हम अपने उद्देश्य में सफल हो गए होते और अब तक हरिजन भी मुसलमानों की भाँति काँग्रेस से पृथक् हो जाते यदि उस 'अधनंगे फकीर' ने, जिसको गाँधी कहते हैं, हमारी चाल से सतर्क होकर अपने जीवन की बाजी लगाकर हमारे किये-कराये को उलट न दिया होता। किन्तु अभी क्या हुआ है? इस काँग्रेस को पद-दलित करना है, उसको समूल नष्ट करना है। यह सम्भव नहीं है कि काँग्रेस अपना सम्पर्क आजाद हिन्द फौज से स्थापित करे। फिर भी इसी बहाने हमें उसको कुचलने का अवसर मिल जायगा। साम्राज्य तो तलवार

के बल से स्थापित होना है, जनता की सदिच्छा अथवा सहानुभूति से नहीं।

"कानपुर में मजदूरों की हड़ताल होने जा रही है। सी० आई० डी० की रिपोर्ट है कि उसको नगर-व्यापी बनाने का आन्दोलन चल रहा है। मुझे पहले यहीं से श्रीगणेश करना चाहिए। कानपुर एक औद्योगिक केन्द्र है। युद्ध-सामग्री बनाने का प्रधान केन्द्र है। हड़ताल के अर्थ होंगे, युद्ध-सामग्री के प्रस्तुत करने में व्याघात। उधर युद्ध-क्षेत्र में हमारी पराजय हो रही है, और यदि यहाँ हड़तालें होने लगती हैं, तब तो हमारी पराजय निश्चित ही है। हड़ताल करना भी तो एक प्रकार का युद्ध है। इस छूत की बीमारी को समूल नष्ट करना है।

"कानपुर के पूँजीपतियों का वर्ग तो सरकार का साथी है। वे सरकार का साथ क्या अपनी प्रसन्नता और मन की इच्छा से दे रहे हैं। उनका स्वयं अस्तित्व सरकार की सदिच्छा पर निर्भर करता है। पूँजीपति तभी तक देश में जीवित रह सकते हैं जब तक उनको सरकार का आश्रय प्राप्त है। सरकार का लाभ इसी में है कि पूँजीपति जीवित रखे जायं, क्योंकि उनका पक्ष ग्रहण करके सरकार को मजदूरों की सामूहिक शक्ति को नष्ट करने का बहाना मिलता है। सरकार को सावधानी के साथ निरीक्षण करना चाहिए कि सामूहिक शक्ति कहाँ संगठित हो रही है। जहाँ सैन्य-संगठन हो रहा हो वहाँ उसे तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए, क्योंकि सामूहिक संगठन ही सत्ता को कालांतर में चुनौती देने लगते हैं।

"चन्द्रनाथ के अकस्मात् घायल हो जाने से मुझे बड़ी हानि हो रही है। उसके न होने से मुझे आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। यदि वह होता तो मजदूरों को दबाने के लिए मुझे एक अच्छी रकम अपने संघ की ओर से दिलवाता। मजदूरों के संगठन को नष्ट तो मुझे यों ही करना पड़ेगा, क्योंकि इसके लिए प्रांतीय सरकार से आदेश प्राप्त हो गए हैं, और इसके अतिरिक्त मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य अपने देश के प्रति है, परन्तु शोक यही है कि इसके विनिमय में मुझे आर्थिक लाभ न हो सकेगा।

"मिल-मालिकों का संघ क्या कान में तेल डाले बैठा है? मजदूरों की हड़ताल से पहले क्षति तो उसी को उठानी पड़ेगी। चन्द्रनाथ के स्थान पर क्या उन्होंने किसी अन्य को नियुक्त नहीं किया? मुझे क्या स्वयं उसके सदस्यों से सम्बंध स्थापित करना पड़ेगा? लाभ की दृष्टि से करना उचित ही मालूम होता है। चातुर्य तो इसी में है कि अवसर से पूरा-पूरा व्यक्तिगत लाभ ही उठाया जाय। अब रह गया मान-अपमान का प्रश्न, वह तो गौण है। उनसे पूछ-ताछ करने में अपनी मर्यादा कहाँ नष्ट होती है? यदि मैं उनको बुलाकर यह चेतावनी दूँ कि 'हड़ताल किसी भी भाँति नहीं होनी चाहिए, और यदि होगी तो वे ही उत्तरदायी

होंगे' तो इसमें मेरी क्या हानि है। नगरपति होने के कारण मेरा यह भी कर्तव्य तो है। जब उनमें से कोई व्यक्ति मुझसे मिलने के लिए आयगा तब मैं··· नहीं, नहीं, यह नीचता होगी, मेरा पतन होगा, अंग्रेज जाति का पतन होगा। रिश्वत लेने का प्रस्ताव मेरी ओर से कदापि न होना चाहिए। यह तो उनकी ओर से होना चाहिए। बुलाने में कोई हर्ज नहीं है, जब वे मेरे सामने आयंगे तो घटनाएं स्वयं ही वह अवसर उपस्थित कर देंगी, जिससे उनको बाध्य होकर एक लम्बी रकम देने का प्रस्ताव रखना पड़ेगा। चाहे जो भी हो, यदि इस अवसर से लाभ न उठाया गया तो फिर मुझसे अधिक बुरा कोई दूसरा व्यक्ति न होगा।

"रिश्वत को संसार बड़ी हेय दृष्टि से देखता है। उसके लेने और देने वाले के लिए एक ही दण्ड नियत है। किन्तु यदि ध्यान से विचारें तो देने वाले को इसलिए कानून बनाने वालों ने अपराधी माना है, जिससे इसका प्रमाण न मिल सके। कानून बनाने वाले हमारे ही भाई-बन्धु थे, जो स्वयं रिश्वतें लिया करते थे। यदि देने वाले को अपराध की परिधि में न लाये होते तो प्रायः प्रत्येक दिन सरकारी अफसरों के विरुद्ध इसके प्रमाण दिये जाते, और उनके जीवन का सारा सौख्य नष्ट हो जाता। हमें तो हर प्रकार अपना घर भरना है, सरकार तो करों के द्वारा राज्य-संचालन करती है, और सरकारी अफसरों का कर यह रिश्वत है। हम लोग कोई व्यापार नहीं करते जो धनवान हो सकें, हमारा वेतन हमारी शान-शौकत के आडम्बर में निकल जाता है, जो हमें पद-गौरव के नाते करना अनिवार्य होता है, तब हमारे धनोपार्जन का और क्या उपाय हो सकता है? इसके अतिरिक्त हमने साम्राज्य की स्थापना ही इसलिए की है कि सब प्रकार से इस देश का शोषण करें। हमारी उसी शोषण-नीति का यह भी एक प्रधान अंग है, और उपाय है। इसको लेने के हम पूर्ण रूप से विहित अधिकारी हैं।"

इसी समय उनके चपरासी ने धीरे-धीरे कमरे के द्वार खोलकर झाँका। मिस्टर निक्सन की विचार-धारा सहसा अवरुद्ध हो गई। उन्होंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा :—"क्या है?"

चपरासी अपने स्वामी के कंठ-स्वर से उनके मन की अवस्था का परिचय पा लेता था, वर्षों के अभ्यास ने उस अशिक्षित को भी इस कला में दक्ष कर दिया था। उसने जान लिया कि उसके स्वामी इस समय अनमने हैं, किन्तु क्रुद्ध नहीं हैं। साहस सञ्चित करके वह भीतर आ गया, और मेज पर एक कार्ड रखते हुए कहा :—"हुजूर से मुलाकात करने के लिए 'गणपति मिल' के मालिक लाला कंचनलाल आये हैं, और एक डाली भी लाये थे, जो मेम साहब के पास भेज दी गई है। हुक्म हो तो हाजिर करूँ। आदमी बहुत बड़े मालूम देते हैं।" इस भाँति परिचय देने के लिए लाला कंचनलाल ने उसकी जेब में दस रुपये का

नोट डाला था। मिस्टर निक्सन को मुँह-माँगी मुराद मिल गई। उनके मुख का मालिन्य तुरंत ही वाष्प की भाँति उड़ गया, और उसके स्थान पर आशा की लालिमा झलकने लगी। उन्होंने सिर हिलाकर उनके उपस्थित करने की अनुमति प्रदान कर दी।

लाला कंचनलाल ने प्रवेश करते हुए झुककर अभिवादन किया। उनके मुख पर किंचित् आशंका के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। मिस्टर निक्सन की तीक्ष्ण दृष्टि ने सहज ही अनुमान कर लिया कि ये उनका शिकार होने के लिए स्वयं लालायित हैं। उन्होंने भयहारिणी मुस्कान से उनका उठकर स्वागत किया और अपना दाहिना हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ा दिया। लाला कंचनलाल गद्गद् हो गए और उन्होंने अपने दोनों हाथों से उनके हाथ को दबा लिया। मिस्टर निक्सन ने स्वयं बैठते हुए उनको सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा :—"कहिए सेठ जी, आपने कैसे कष्ट किया। आपके सम्बन्ध में सेठ चन्द्रनाथ जी से प्रायः सुना करता था, किन्तु आपसे मिलने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

लाला कंचनलाल ने अपने गौरवान्वित भाव को दबाते हुए कहा :—"सेठ चन्द्रनाथ हमारे मिल-मालिक-संघ के सभापति हैं। हुजूर ने शायद यह भी सुना होगा कि मोटर लड़ जाने की दुर्घटना से वे इस समय अस्वस्थ हैं, अतएव संघ के सदस्यों ने मुझको अपना दूत बनाकर आपकी सेवा में भेजा है। मुझे इससे बड़ा सन्तोष और हर्ष हुआ कि मेरे सम्बन्ध में सेठ चन्द्रनाथ जी ने आपसे यदा-कदा जिक्र किया है। कानपुर में मेरे इस समय कपड़े के चार मिल हैं, और मेरे वंश की यह नीति सदैव रही है कि वह राज-भक्त रहे।"

मिस्टर निक्सन ने सन्तोष के साथ मुस्कराते हुए कहा :—"मुझे भली-भाँति मालूम है, और आप लोगों के ही सहयोग से यह ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित है। साम्राज्य के प्रति आपकी वफादारी में मुझे सन्देह करने का भी अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। साम्राज्य की नीति भी सदैव रही है कि वह अपने सेवकों की कठिनाइयों को दूर करता रहे। आप निःसंकोच अपने मनोभाव प्रकट करें।"

लाला कचनलाल ने मेज पर झुकते हुए कहा :—"हुजूर को शहर के समाचार तो सब मालूम ही हैं। मजदूर वर्ग यहाँ पर एक स्त्री के बहकाने से हड़ताल करने जा रहा है। वह स्त्री उनका नेतृत्व कर रही है। उसका नाम कनक है, जो हमारे परम मित्र मृत सेठ वामनदास की पोष्य पुत्री है। हुजूर को तो उसका हाल भली-भाँति मालूम ही होगा। सेठ चन्द्रनाथ जी ने जब से उसको घर से निकाल दिया है, तब से वह आवारा हो गई है, और मजदूरों को भड़काकर हमारी हानि करवाने का षड्यन्त्र कर रही है। मजदूरों में इतनी शक्ति कभी नहीं है कि

वे संगठित हड़ताल करें। यह उसी की प्रेरणा का फल है कि आज मजदूरों का समुदाय हमारी और आपकी सत्ता को चुनौती देने के लिए तैयार हो गया है। हमारे संघ को एक सूचना प्राप्त हुई है कि वे आगामी सोमवार से हड़ताल करेंगे, यदि उनकी माँगें पूरी न की जायंगी। उनकी माँगें भी विचित्र हैं। संसार के किसी भी देश में मजदूरों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे मालिकों के साथ बराबरी का हिस्सा माँगें। उनका कहना है कि मिल का लाभ बाँटने के समय मालिकों को भी उन्हीं के तुल्य भाग मिलना चाहिए, जो प्रत्येक रूप से अवाञ्छनीय और अवैधानिक है। हम लोगों के पास कोई उपाय नहीं है कि हम अपने-अपने मिलों में ताला डाल दें। इसमें जो हानि हमारी होगी, वह उस हानि से नगण्य है जो सरकार को उठानी पड़ेगी। आपको विदित है कि हम लोग युद्ध-सामग्री प्रस्तुत करने में संलग्न हैं और उसके अतिरिक्त और कोई काम नहीं कर रहे हैं। यदि इस नाजुक परिस्थिति में भी सरकार हमारी सहायता नहीं करेगी, तो हमारी हानि और सरकार की हानि निश्चित है।"

मिस्टर निक्सन बड़े ध्यान से सुन रहे थे, और मन-ही-मन आशा पूर्ण होने का सुयोग पाकर प्रसन्न भी हो रहे थे। उन्होंने अन्यमनस्कता का भाव धारण करते हुए कहा:—"यह यह आप न कहें कि सरकार की क्षति होगी। सरकार केवल कानपुर के भरोसे नहीं बैठी है। उसका साम्राज्य-विस्तार संसार-व्यापी है। आपके नगर का प्रयत्न तो अति नगण्य है। हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ कि आप लोगों की हानि अवश्य है। आप लोग साम्राज्य के वफादार सेवक हैं, अतएव मैं आपकी सहायता करने को तैयार हूँ।"

लाला कंचनलाल का उत्साह कुछ अवरुद्ध हो गया। उन्होंने बड़ी अधीनता के साथ कहा:—"हमारी हानि तो प्रत्यक्ष है, किन्तु सरकार अपने रवैये से हड़तालों को प्रोत्साहन देगी तो उससे यदि आज नहीं तो आगे उसे भी हानि की संभावना हो सकती है।"

मिस्टर निक्सन ने जो आपत्ति उपस्थित की थी उसको कम करते हुए मन्द मुस्कान के साथ कहा:—"हाँ, ऐसा होने से शान्ति और सुव्यवस्था में अंतर अवश्य आता है। कृपा करके आप अपना आशय स्पष्ट कहें कि आप मुझसे कैसी सहायता चाहते हैं?"

लाला कंचनलाल ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा:—"हमारे संघ की यह इच्छा है कि कनक को गिरफ्तार कर लिया जाय, क्योंकि उसके गिरफ्तार होने से सारी आपत्ति स्वयमेव टल जायगी और फिर हड़ताल नहीं हो सकेगी।"

मिस्टर निक्सन ने हँसकर कहा:—"आप चाहते हैं कि सरकार साँप के बिल में अपना हाथ डाले। यह आपको मालूम ही होगा कि मिस कनक

बैरिस्टर हैं, और वे बड़ा प्रतिभावान तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व रखती हैं। उनको सहज ही गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।" यह कहकर वे कुछ सोचने लगे।

लाला कंचनलाल ने अवसर देखकर कहा:—"हुजूर की सेवा हमारा संघ बराबर करता आ रहा है। आपने भी हमारा साथ सदैव दिया है। 'मजदूर-रक्षक' के सम्पादक से जिस प्रकार आपने हमको छुटकारा दिलाया, उसी भाँति आप इस नागिन को भी कुचल डालिए। आपके इस परिश्रम के लिए संघ आपकी यथासंभव सेवा करेगा। यदि आप मुझे अभय दें तो मैं कुछ आगे निवेदन करूँ?"

मिस्टर निक्सन ने अनुभव किया कि मछली जाल में फँस गई है। वे मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए अनजान की भाँति बोले:—"हाँ, हाँ, आप जो चाहें बिना किसी भय तथा आशंका के कह सकते हैं। निक्सन अपने मित्रों का आदर करना जानता है।"

लाला कंचनलाल ने समय पाकर अपनी जेब से नोटों का पुलिंदा निकालते हुए कहा:—"हुजूर बुरा न मानें। संघ ने आपकी सेवा के लिए ये दो लाख रुपये भेजे हैं। आशा है कि आप स्वीकार कर हम सबको कृतार्थ करेंगे।"

मिस्टर निक्सन ने चौंकते हुए कहा:—"यह क्या लाला कंचनलाल? आप लोग तो हमारे ऊपर अहसान-पर-अहसान लादते हैं।"

लाला कंचनलाल ने संतुष्ट होकर कहा:—"हुजूर, यह तो एक अति तुच्छ सेवा है। हड़ताल न होने पर अथवा उसको भंग करने पर संघ आपकी सेवा में दस लाख मुद्राएं भेंट करेगा। आपका बहुमूल्य समय नष्ट करने का क्षमा-प्रार्थी हूँ, और आशा है कि यदि कोई गुस्ताखी हो गई हो तो क्षमा करेंगे।"

यह कहकर वे जाने के लिए उठ खड़े हुए। मिस्टर निक्सन ने नोटों को सँभालते हुए उनसे हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया। दोनों ने प्रसन्न होकर एक दूसरे का हाथ मर्दन किया।

मिस्टर निक्सन ने सहास्य कहा:—"आप निश्चिन्त रहिए। एक ही दो दिन में सब ठीक हो जायगा।"

लाला कंचनलाल ने संतोष के साथ कहा:—"हुजूर मालिक हैं, आप यदि हमारा उद्धार नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा।"

लाला कंचनलाल ने कमरे के बाहर प्रतीक्षा करते हुए चपरासी को दस रुपये का नोट फिर दिया।

अपनी मोटर में बैठते हुए मन-ही-मन कहा:—"चलो तीन लाख की प्राप्ति तो हुई। पाँच का काम दो ही में निकाल लिया, शेष तीन अपने हैं।"

पूँजी के सहचर बेईमानी और विश्वास-घात दोनों उन्हें आशीर्वाद देने लगे।

१७

मजदूर-सभा की कार्यकारिणी-समिति की बैठक हो रही थी। प्रायः सभी सदस्य उपस्थित थे, और कनक ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। उर्मिला भी उसके समीप बैठी हुई थी। कनक ने कहना आरम्भ किया:—"भाइयो, अब हमारी अग्नि-परीक्षा का समय आया है। हमें विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि कोई गुप्त समझौता मिल-मालिक-संघ और सरकार के बीच हुआ है और वह यही हो सकता है कि मजदूरों की माँग को ठुकराकर उन्हें कुचल दिया जाय। पूँजीपतियों की सरकार तो पूँजीपतियों का ही पक्ष लेगी, क्योंकि पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों पर्यायी हैं, तथा एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। यह तो हम लोग पहले से ही जानते थे कि सरकार उनका पक्ष लेकर हमारे आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न करेगी। किन्तु जिस लगन और तत्परता से आप लोगों ने इसको प्रगति दी है, आशा है कि उससे भी अधिक आप इसके संचालन में दृढ़ता और धैर्य से काम लेंगे, क्योंकि सब प्रकार के आन्दोलनों की जननी धैर्य और सहिष्णुता है। कठिन से-कठिन लड़ाइयाँ भी इन दो गुणों के कारण जीती जा सकती हैं, जिसके प्रमाण इतिहास में सर्वत्र मिलेंगे। आपकी यह लड़ाई सिद्धांतों के लिए है। आपका लक्ष्य है कि पूँजीपतियों का वर्ग आपको उत्पादन का विशेष अंग माने, वह आपको भी अपने-जैसा मानव माने, अथवा दूसरे शब्दों में आप पूँजीपतियों तथा मजदूरों के वर्ग में समत्व की भावना स्थापित करना चाहते हैं। पूंजी के कारण किसी मनुष्य में उच्चता तथा विशेषता की भावनाएं न होनी चाहिएं। उनको विशेष अधिकार न मिलने चाहिएं, और न उनको इतना अधिक भाग ही दिया जाना चाहिए। उनको पूँजी के लिए ब्याज दिया जाता है, फिर वे विशेष भाग के अधिकारी किस प्रकार हो सकते हैं। जब लाभ बाँटने का समय आता है, तब उनको भी उतना ही भाग मिलना चाहिए जितना कि आपको दिया जाता है। इसी सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए हम युद्ध छेड़ रहे हैं। सफलता कभी एक बार के प्रयास से नहीं मिला करती। संघर्ष में पहले उसे विजय प्राप्त होती है जिसके हाथ में पाशविक बल होता है। पाशविक शक्ति भौतिक बल है, वह केवल भौतिक जीवन को ही समाप्त कर सकता है, किन्तु उसकी नैतिकता को नष्ट करने में वह सर्वथा असमर्थ है। नैतिकता के संस्थापन में प्राणों तक की बलि चढ़ानी पड़ती है। जब आपके बलिदानों की शक्ति पाशविक शक्ति से उग्र हो जायगी तब उसको स्वयं झुकना पड़ेगा, और उसे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ेगी। अन्तर केवल यह है कि आप लोगों को सिद्धांत के लिए मर मिटना है, और उन्हें

आपको अपनी पाशविक शक्ति द्वारा नष्ट करना है। वे अपना सिद्धांत स्थापित नहीं कर सकते, क्योंकि उनमें सत्य का अभाव है, और आपके सिद्धांत सत्य के भावों से प्रज्वलित हैं। सत्य अमिट और शाश्वत है, अन्त में विजय उसी को प्राप्त होती है। सत्य सदैव सहिष्णुता और बलिदान चाहता है, क्योंकि उसकी शक्ति बलिदान में निहित है और मिथ्या की शक्ति पाशविक बल पर निर्भर होती है। मिथ्या की पाशविक शक्ति अपने प्रत्येक प्रहार के साथ स्वयं अपने पैरों में कुठाराघात करती हुई शनैः-शनैः क्षीण और निष्प्रभ होती जाती है, और सत्य की शक्ति अपने बलिदानों की गिनती के अनुसार शक्ति संचित करती रहती है। इन दोनों के संघर्ष के साथ एक ऐसी अवस्था आती है जब झूठ अपने-आप ही हार मानने को बाध्य हो जाता है, किन्तु वह अवस्था प्रथम प्रयास में ही नहीं प्राप्त होती। इसलिए यदि आपको पहले अपनी हार भी जान पड़े तो आपको कभी जी न खोना चाहिए। शान्ति के साथ युद्ध जारी रखिए। शांति भी हमारा एक मुख्य अवलम्ब है, क्योंकि सत्य सदैव शांत ही होता है। सत्य के सिपाही कभी अशांति का आश्रय नहीं लिया करते, क्योंकि वह तो पाशविक बल का प्रथम रूप है। आपको प्रत्येक काल में शांत रहना पड़ेगा। आपको चाहे जितना कष्ट पहुँचाया जाय, आपको उत्तेजना दिलाई जाय, किन्तु आपको शांत ही रहना पड़ेगा, क्योंकि सत्य के संग्राम में शांति वह कवच है जिस पर पाशविक बल की तलवारें टूट जाया करती हैं। सत्य के सिपाही का शांति धर्म है और अहिंसा उसका शस्त्र है। आपको अपने मन से अपने शत्रुओं को हानि पहुँचाने के भाव को निकाल देना चाहिए। जब तक सत्य का सिपाही अहिंसक नहीं होगा तब तक उसे बल प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि अहिंसा उसका धरातल है जिस पर वह प्रतिष्ठित होकर मिथ्या के प्रहारों के सामने अपना सिर झुकाकर उसके वार को ग्रहण करता है। मेरे वीर भाइयो, आज वह समय आ गया है जब आपको हँसते-हँसते अपनी बलि प्रदान करनी है। मजदूर जाति को, जिसकी उपेक्षा पूँजीवादी हमेशा से करते आए हैं, अपना न्याय-विहित प्राप्य और नैसर्गिक अधिकार दिलाना है। मजदूर और पूँजीपति के मध्य समत्व स्थापित करना है, क्योंकि यह समग्र सृष्टि समत्व पर ही अवलम्बित होकर स्थित है तथा यही सत्य भावना है जो हमें पग-पग पर अपना नैसर्गिक बल प्रदान करती रहेगी। यही विश्वास हमारे सिपाहियों को मरने के लिए ललकारता रहेगा। इसी विश्वास की दृढ़ता ही हमें अन्त में विजय-माल पहनायगी। आज आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि हम लोग प्रत्येक उत्तेजना पर, प्रत्येक हानि के अवसर पर, प्रत्येक बलिदान पर शांत रहेंगे और अपनी ओर से अशांति न उत्पन्न करेंगे, और न उसको प्रश्रय ही देंगे।"

कहती-कहती कनक ठहर गई, और अपने सैनिकों की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगी ।

मजदूरों के नेताओं ने एक स्वर से कहा :—"देवि, हम आपके सम्मुख प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सदैव शांत रहेंगे ।"

कनक ने फिर कहना आरम्भ किया:—"आपकी प्रतिज्ञा से मुझे विश्वास हो रहा है कि हम अवश्य विजयी होंगे। कोई भी विजय उसी पक्ष को मिलती है जिसकी सेना का संचालन सुचारु रूप से हो, और संचालक भी, धीर, शांत तथा सत्य के अनुयायी हों। आप लोगों में वे सभी गुण विद्यमान हैं, विजय आपकी निश्चित है । सफलता प्राप्त होने में देर लग सकती है, किन्तु परिणाम निश्चित है ।"

इसी समय सभा-भवन के बाहर कुछ कोलाहल सुनाई दिया, जो निरंतर बढ़ता ही जा रहा था । कनक ने भाषण स्थगित करते हुए कांग्रेस के मंत्री भगवतीप्रसाद की ओर देखा। वे तथा कई-एक सदस्य उठकर उस कोलाहल का कारण जानने के लिए बाहर चले गए। दूसरे ही क्षण वे लौटे और उनके साथ पुलिस-इंस्पैक्टर गोविंदसिंह और चार कांस्टेबिल भी थे । कनक उनकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगी, और किंचित् उत्तेजित स्वर में कहा :—"इन्स-पैक्टर साहब, घर के अंदर दफा १४४ नहीं लगा करती ?"

गोविन्दसिंह ने अपनी सहज मुस्कराहट के साथ कहा :—"नहीं श्रीमती जी, इससे मैं भली-भाँति अवगत हूँ, किन्तु गिरफ़्तारी के वारंट की तामील किसी भी घर के अंदर हो सकती है, और पुलिस को उसमें प्रवेश करने का सर्वथा अधिकार है ।"

कनक ने साश्चर्य पूछा :—"यहाँ के किस व्यक्ति के नाम वारंट-गिर-फ्तारी हो सकता है ? आपको कुछ भ्रम हो गया होगा ।"

गोविन्दसिंह ने आगे बढ़कर कनक के कन्धे को छूते हुए कहा :—"मैं गोविन्दसिंह, सब इंस्पैक्टर पुलिस, आप श्रीमती कनक वामनदास को भारत रक्षा कानून के अनुसार सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करने के अपराध में ऐसी तैयारी करने के लिए बमुजिब हुक्म डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर निक्सन के, गिरफ़्तार करता हूँ। आप इस समय से मेरी हिरासत में हैं ।"

गिरफ़्तारी की आज्ञा सुनते ही सभा-भवन में खलबली मच गई। कनक ने शांति के साथ कहा:—"मैं सहर्ष आपके साथ चलने के लिए तैयार हूँ। चलिये।"

गोविन्दसिंह ने कहा :—"मैं आपको दस मिनट का अवकाश देता हूँ, इतनी देर में यदि आपको अपने घर इत्यादि के प्रबंध की कुछ व्यवस्था करनी

हो तो कर सकती हैं। मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ।"

उर्मिला अब तक हतबुद्धि होकर सारी घटना को देख रही थी। इस अनहोनी घटना ने उसको इतना प्रभावित किया था कि वह लगभग हत-प्रभ-सी हो गई थी। उसके ज्ञान-तन्तुओं में प्रवाहित रक्त कुछ क्षणों के लिए अवरुद्ध हो गया था। परन्तु हृत्पिंड अविराम रूप से अपनी नाड़ियों से रक्त-संचालन कर रहा था। उसके वेग ने रक्त को ठेलना आरम्भ किया, और वह एक झटके के साथ आगे बढ़ा जिसने मस्तिष्क के चैतन्य-कोष को रक्त से भर दिया। उसकी चेतना, संज्ञा उसी में डूब गई, और वह बेहोश हो गई।

कनक ने उसको सँभालते हुए कहा:—"उर्मि, यह क्या ?"

भगवतीप्रसाद ने पंखे से हवा करते हुए कहा:—"यह बेहोश हो गई। आपके वियोग को यह सहन कर सकेगी क्या ?"

कनक ने पानी के छींटे देते हुए कहा:—"कर्त्तव्य-पालन तो करना ही पड़ेगा। असाधारण अवस्था में परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाते हुए ध्येय-प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर होना ही कर्त्तव्य-पालन है, और वही करने से मनुष्य का जीवन सार्थक होता है। उर्मिला के गुणों से आप लोग परिचित नहीं हैं। इस क्षीण कंकाल के मध्य सेवा और कर्त्तव्य-पालन की वह अग्नि छिपी हुई है, जो मेरे पश्चात् उद्दीप्त होगी, और अपनी ज्वाला से ब्रिटिश राज्य की नींव हिला देगी। मैं अपने स्थान पर इसको नियुक्त किये जाती हूँ। आजादी की लड़ाई, चाहे वह आर्थिक हो और चाहे राष्ट्रीय, लड़ने के लिए आप इसको सदैव तत्पर पायेंगे।"

शीतल उपचार रक्त-संचालन की गति में मन्दता उत्पन्न कर रहे थे, और वह अपनी सहज गति को प्राप्त हो रहा था। डूबी हुई चेतना पुनः लौटने लगी। उर्मिला ने अपने नेत्र खोल दिये।

कनक ने सप्रेम उसके रूक्ष केशों को सँवारते हुए कहा:—"क्या तुम अपनी बहन को सहर्ष विदा करना नहीं चाहतीं ? तुम्हारी यह कमजोरी तुम्हें शोभा नहीं देती। स्नेह का बंधन यदि कर्त्तव्य-पालन में बाधक है तो उस बंधन को नष्ट कर देना चाहिए। स्नेह, मोह आदि हार्दिक दुर्बलताओं का स्थान कर्त्तव्य के क्षेत्र में नहीं है। उठो, उर्मि, उठो, मेरा कार्य-भार ग्रहण करो। जिस आन्दोलन की प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए सरकार मुझे गिरफ़्तार कर रही है, उसमें किसी प्रकार भी शिथिलता न आने देने का भार तुम्हारे ऊपर है। तुम्हारी इस दुर्बल मनोवृत्ति से मुझे शंका उत्पन्न होने लगी है।"

उर्मिला ने कनक के आँचल में बालिका की भाँति मुँह छिपाते हुए कहा:—"दीदी, एक तुम्हारा सहारा रह गया था, और तुम भी मुझे छोड़कर जा रही

हो। मैं अकेली नहीं रह सकती। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

कनक के मस्तिष्क के स्नेह-तन्तु बड़े वेग से आन्दोलित होने लगे। उनके स्पन्दन से उत्पन्न होने वाली वैद्युतिक शक्ति उसको प्रभावित करने लगी। उसका मन अनुभव करने लगा कि उर्मिला उसके जीवन से कितनी सम्बद्ध हो गई है, और उसके बिना जेल-जीवन वास्तव में ही जेल-जीवन होगा। उसने उस भाव को दमन करते हुए कहा:—"उर्मिले, तुम अपने जीवन में मेरी उपस्थिति पग-पग पर अनुभव करोगी, यदि तुम मेरे आरम्भ किये हुए कार्य को करती जाओगी। मैं अनुभव करती हूँ कि मेरे अवशिष्ट कार्य को पूर्ण करने का भार तुम्हारे ऊपर है, और तुम्हारे प्रयत्न से ही मुझे और तुम्हारे पति को मुक्ति मिलेगी। यह आज़ादी की लड़ाई भारत को विदेशी शासन से मुक्त करके रहेगी। अंग्रेजों का पतन द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् निश्चित है। उठो, जागो और अपना कर्त्तव्य-पालन करो। यही तुम्हारा ध्येय होना चाहिए।"

उर्मिला ने सिसकते हुए कहा:—"नहीं दीदी, मैं अकेले इस भार को ग्रहण करने के योग्य नहीं हूँ। यह आपको ज्ञात है कि मैं संसार से बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

कनक ने बड़ी बहन की भाँति उसे दुलराते हुए कहा:—"पगली, तू वहाँ कैसे जा सकती है? वह जेलखाना है, कोई अपना घर नहीं है। तुम्हारा अधीर होना इस समय शोभा नहीं देता। हम लोगों ने जब इस मार्ग पर पैर रखा था उसी समय से हम ऐसी आपदाओं को निमंत्रण दे चुकी हैं। मजदूर-आन्दोलन में भाग लेने के समय ही मैं तुमको सावधान कर चुकी थी।"

"किन्तु इतनी जल्दी हो जायगा, यह तो मुझे नहीं मालूम था।" रोती हुई उर्मिला ने कहा।

इसी समय सब इंस्पैक्टर गोविन्दसिंह ने कहा:—'देवीजी, समय हो गया है। अब शीघ्रता कीजिये।"

कनक ने दृढ़ता के साथ स्नेह-प्रवाह को दूर ढकेलते हुए कहा:—"मैं बिलकुल तैयार हूँ। चलिये। मुझे दो मिनट का अवकाश और दें तो बड़ी कृपा होगी।"

गोविन्दसिंह ने सिर हिलाकर सम्मति प्रदान कर दी।

इसी समय मजदूर-सभा के कार्यकर्ताओं ने, जिन्होंने परामर्श करके अपना कार्यक्रम निश्चित कर लिया था, उच्च स्वर में कहा:—"यह नहीं हो सकता, हमारे जीवित रहते कौन आपको ले जा सकता है। हम अपने नेता के लिए मरना जानते हैं।" कहते-कहते वे पुलिस के जवानों और कनक के मध्य में आकर खड़े हो गए। कनक ने परिस्थिति की भयंकरता समझकर कहा—"भाइयो, अभी मैं कह चुकी हूँ कि आपको शांति के साथ सब प्रहार

सहन करने पड़ेंगे, चाहे वे सरकार की ओर से हों, और चाहे वे पूँजीपतियों का ओर से। अनुशासन, सदैव युद्ध में विजय दिलाने वाला रहा है। अतएव मैं आपको आदेश देती हूँ कि आप शांत हो जायं, और मुझे जाने दें। यदि आप मेरे पश्चात् इस आन्दोलन को चलाते रहेंगे तो वह मेरे प्रति सबसे बड़ी सेवा होगी। आपकी निश्चय ही विजय होगी। मैं अपने स्थान पर अपनी बहन उर्मिला को नियुक्त किये जाती हूँ। उसके आदेशों का पालन आप उसी प्रकार करें जैसे आज तक मेरी बात मानते आए हैं। आप पुलिस के कार्य में बाधा उपस्थित न करें और शांति के वातावरण में मुझे जाने दें। आपसे प्रार्थना है कि बिलकुल शांत रहकर सरकार को दिखला दें कि आप लोग युद्ध की चुनौती स्वीकार करते हैं।"

मजदूरों का दल हट गया। मार्ग साफ हो गया।

कनक ने गोविन्दसिंह के पास आकर कहा :—"चलिये, अब मैं बिलकुल तैयार हूँ।"

गोविन्दसिंह के सिपाहियों ने कनक को चारों ओर से घेर लिया, और वह उनके मध्य चलकर बाहर प्रतीक्षा करती हुई पुलिस की मोटर में बैठ गई।

भगवतीप्रसाद ने आगे आकर नारा लगाते हुए कहा :—"मजदूर-आन्दोलन जिन्दाबाद।"

मजदूरों ने भी चिल्लाकर कहा :—"कनक देवी की जय।"

किन्तु उर्मिला के मुख से कोई शब्द न निकल सका। उसका स्थान उसके आँसुओं ने ले लिया। स्नेह और सौहार्द्र द्रवित होकर गंगा और यमुना की धाराओं के समान बहने लगा।

चतुर्थ खण्ड

१

सागर की उत्तुंग तरंगें झूम-झूमकर फणीन्द्र के सहस्र फणों की भाँति अण्डमान के पहाड़ों से टकराकर फेन का एक पुंज छोड़कर बल खाती हुई पुनः-पुनः प्रत्याक्रमण के लिए लौट रही थीं। नवोदित प्रभाकर की अंशुमाला उन्हें इन्द्रधनुष के परिधान से अलंकृत करने की चेष्टा में भूमि की ओर अवतीर्ण हो रही थीं, परन्तु चपल समीरण सन-सन करता हुआ उनके प्रयास को असफल बना रहा था। दिग्दिगन्त-व्यापी नीलाकाश अपना नील सौंदर्य जलधि के दर्पण में देखने में तल्लीन था, किन्तु वह भी सहसा पोर्टब्लेयर के प्रसिद्ध कारागार में होती हुई घंटा-ध्वनि से उसी भाँति विचलित हो गया जैसे रामनाथ अपनी मानसिक वेदना-भरी स्मृतियों के बीच में चिहुँककर हो गया था। रामनाथ उनसे अपना पीछा छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए कहने लगा:—"सब समाप्त हो गया। पुराने जीवन की स्मृतियाँ अवशेष-मात्र रह गईं। फाँसी के फन्दे से बचा अवश्य, किन्तु उससे क्या मेरे जीवन की विडम्बनाओं की इति हो गई? फाँसी के स्मरण-मात्र से एक प्रकार की सिहरन होती अवश्य थी, किन्तु अब विदित हो रहा है कि वह केवल आशीर्वाद के रूप में प्राप्त होती है। फाँसी तो कर्म-भोग का अन्त है, और उससे छूटना जीवन-पर्यन्त कलपने का स्पष्टीकरण है। मैंने व्यर्थ ही अपील की, और यदि मैंने अपील की ही थी तो सरकार के न्याय विभाग ने दण्ड-विधान में परिवर्तन क्यों किया? क्या मैंने अपील इस प्रकार तड़पने के लिए की थी। उस समय जीवन से मोह हो रहा था, और अब उसको शीघ्र-से-शीघ्र त्यागने के लिए तैयार हूँ। कदाचित् यह ज्ञान उस समय उदित हो गया होता तो मैं इस व्यर्थ के भ्रम-जाल में पड़कर अपने लिए नित-नूतन दुःखों की सृष्टि क्यों करता...? "आजीवन कारावास और द्वीपान्तर-निवास का दण्ड मिलना मेरी उसी मूर्खता का परिणाम है, जो मैंने कनक जी के कहने से अपील करने में की थी। कनक, हाँ कनक का इसमें क्या अपराध है? कनक को दोषी बनाना महान् गुरुतर अपराध है, जिसकी मार्जना के लिए न मालूम और कौन-सा उग्र प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। उसका-सा महत्हृदय, नैयायिक, कर्त्तव्य-परायण, परसेवा-व्रती, निर्लोभी होना दुष्कर ही नहीं असम्भव है। मैंने

उसके पिता का खून किया था और उसके साथ ही उसको भी अपार धन-सम्पत्ति से वियुक्त कराकर दर-दर की भिखारिणी बना दिया। यदि वामनदास जीवित रहता तो उसका प्राप्य उससे कौन छीन सकता था? मेरे ही कारण आज वह पथाश्रिता है। इस पाप का भी प्रायश्चित्त करना है, शायद इसीलिए मेरे फाँसी के दण्ड में यह परिवर्तन घटित है, क्योंकि मरने के पश्चात् मैं उसको करने में सर्वथा असमर्थ था।

"तब तो यह मेरा कारावास का जीवन प्रायश्चित्त-मात्र है। प्रायश्चित्त तभी सफल होता है जब दुःख की भावनाओं से रहित होकर किया जाता है, जिसका अन्तरंग कर्तव्य-पालन की रक्ताभा से देदीप्यमान हो। कनक ने भी अपने पिता के पापों का प्रायश्चित्त अपने कर्त्तव्य-पालन द्वारा किया है। इस अन्योन्याश्रय से ही ब्रह्माण्ड अभिभूत है और वही इसकी गति परिचालित करता रहता है। अनेकानेक जन्मों तथा पुनर्जन्मों का कारण भी शायद यही है। तब तो इस ब्रह्माण्ड का कोई अणु-परमाणु शाब्दिक अर्थ में स्वतन्त्र नहीं है, सभी एक दूसरे की आश्रय-शृंखला से आबद्ध हैं। मानव, जो इस ब्रह्माण्ड के सभी अणु-परमाणुओं में प्रत्यक्ष रूप से कर्तव्य शक्ति लेकर अवतीर्ण हुआ है, इसी नियम के आश्रित है, और इस कारण उसके पाप और पुण्य कर्मों का परिणाम सबको भोगना पड़ता है। क्या इसी कारण से व्यक्तियों के अपराधों के लिए समाज को दण्ड भोगना पड़ता है, अथवा उसका उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है, क्योंकि दण्ड का दूसरा नाम है प्रायश्चित्त है।

"पाप और पुण्य क्या हैं? पाप क्या वही है जो किसी व्यक्ति द्वारा नैसर्गिक नियमों के विपरीत अपने तथा इतर प्राणियों को हानि पहुँचाने के लिए किया जाता है? ब्रह्माण्ड रूपी महान् समाज का एक अंग विशेष होने के कारण मानव जब समत्व के नियम का उल्लंघन करता है तब उसको क्रिया से पहले कर्त्ता रूप होने के कारण वह स्वयं अभिभूत होता है, और फिर उसकी प्रतिक्रिया वर्ग, श्रेणी आदि को क्रमशः पार करती हुई ब्रह्माण्ड के समाज पर भी अपना प्रभाव डालती है। समाज-विरोधी कर्म ही पाप है, और इसीलिए वह निषिद्ध और वर्जित किया गया है।

"तब क्या वामनदास की हत्या करके मैंने वास्तव में कोई पाप-कार्य किया है। वामनदास की हत्या से समाज की क्या हानि हुई है? वामनदास क्या स्वयं नियम विरुद्ध कार्य नहीं करता था? क्या उसके कर्म पाप की गणना के अन्तर्गत नहीं आते? क्या उसके पापों ने संग्रहीत होकर मेरे द्वारा उसके कर्मों की प्रतिक्रिया नहीं कराई? इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे सकता है? इसी का ज्ञान तो नहीं है?

"कहते हैं कार्य और उससे उत्पन्न होने वाले परिणाम ही किसी नियम को प्रतिपादित करते हैं। जब किसी कार्य की प्रतिक्रिया बार-बार वैसी ही होती है तब उसका एक नियम बन जाता है, जो कालान्तर में सत्यता का आवरण पहनकर स्पष्ट हो जाता है। नैसर्गिक नियमों में अपवाद नहीं होते, वे स्थिर और शाश्वत हैं। उन्हीं को आधार मानकर मानव अपनी कल्पना, अनुमान और अनुभूति द्वारा अपने-अपने परिणाम निकाला करता है। इसी को वह न्याय के नाम से पुकारता है। नैसर्गिक नियमों के अनुकूल तथा तादृश होना ही पुण्य है और उसके अनुसार कार्य करना वैध है। पुण्य कर्म वही है जो सदैव पारस्परिक सहयोग प्रदान करने में सहायता प्रदान करे, तथा उनकी प्राकृतिक शक्तियों में एकता अथवा समत्व स्थापित करे।

"वामनदास की हत्या क्या वैध नहीं है? क्या मेरा कार्य, पुण्य-कार्य की गणना में नहीं आता? प्रकृति के किस नियम के साथ मेरे इस कार्य का सहयोग स्थापित किया जा सकता है? नर-हत्या, यह तो नृशंस कार्य है। किन्तु महाभारत के रण-क्षेत्र में भी तो अर्जुन ने कितने ही योद्धाओं का निपात केवल निमित्त होकर किया था, वे तो स्वयं पहले से ही मृत थे, परन्तु उनका हनन करने के लिए अर्जुन को 'निमित्त' होना पड़ा था। तब क्या घटित हुई, हो रही और होने वाली घटनाएं निश्चित रहती हैं? तब तो पाप और पुण्य का फल ही नहीं लगता है? यह कैसी विडम्बना है। कुछ समझ में नहीं आता।

'किसी कार्य की होने वाली प्रतिक्रिया ही अपने परिणाम को अपने उदर में छिपाये रहती है, इसलिए वह निश्चित है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनकी प्रतिक्रिया हम अपने दैनिक व्यवहार से सहज ही जान लेते हैं, और 'कितने ही ऐसे होते हैं, जिनका परिणाम जानना दुष्कर और संदिग्ध होता है। किन्तु मानव फिर भी उनके परिणाम का अनुमान कर सकता है, क्योंकि प्राकृतिक नियम सदा एक गति और एक रूप हैं। उन्हीं के द्वारा भगवान् की सर्वव्यापकता का भास होता है। अतएव उन्हीं को आधार मानकर हम सहज ही अपने कार्यों के परिणामों का अनुमान कर सकते हैं, और विज्ञजन ऐसा ही करते आये हैं। उनके निष्कर्ष सदैव सत्य होते रहे हैं। इसी विचार ने पाप और पुण्य को जन्म दिया है। पाप-कर्म का परिणाम नैसर्गिक नियमों से विपरीत होने के कारण भयावह और पापावृत होगा, और पुण्य-कर्म की प्रतिक्रिया नियमानुकूल होने से कल्याणकारी और शुभ होगी।

"वामनदास के पाप-कर्म की प्रतिक्रिया ने ही तो मुझसे उसका पराभव कराया है। किन्तु मैंने यह हत्या क्या इस विचार से की थी? नहीं, मैंने उसको आवेश, क्षोभ, हिंसा और प्रतिशोध की भावना से अभिभूत होकर किया था।

क्या वे भाव नैसर्गिक नियमों के अनुकूल हैं ? नहीं, यह भाव कर्त्ता की स्वार्थ-प्रवृत्ति के द्योतक हैं, और उनमें स्वार्थ की कटु भावना भरी रहती है। स्वार्थ की भावना ही तो कर्म से उत्पन्न होने वाले अभिमानी व्यक्ति को भोगने के लिए बाध्य करती है। स्वार्थ की भावना को नष्ट करने से ही कर्त्ता का अभिमान नष्ट होता है, और तब वह कर्मों की प्रतिक्रिया को भोगता हुआ भी उसकी कटुता और तीक्ष्णता अनुभव नहीं करता। वामनदास की हत्या की प्रतिक्रिया में मुझको कारावास भोगना पड़ रहा है, और आमरण भोगना पड़ेगा।

"कारावास भी तो कर्म-स्थली है। यहाँ के नियमों का पालन और उनके साथ सहयोग मेरे वन्दी जीवन की कटुता का नाश करेगा। यही तो तपस्या का जीवन है। इस जीवन के कर्मों की प्रतिक्रिया मेरे द्वारा की गई हत्या की प्रतिक्रिया में समत्व सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ होगी।"

इसी समय उसकी कोठरी का द्वार खुला। सामने सन्तरी और जेल का एक अधिकारी खड़ा हुआ था। सन्तरी ने उसको बाहर निकालने का आदेश सुनाते हुए कहा:—"तुम्हारी ड्यूटी आज से पत्थर तोड़ने पर लगाई गई है। तुमको यह ध्यान में रखना चाहिए कि सरकार तुम्हारे साथ दया का व्यवहार कर रही है, और आगे भी करेगी, यदि तुम अपने काम का कोटा पूरा करते रहोगे। अभी तुम्हारी बेड़ियाँ खोली नहीं जायंगी, किन्तु अगर तुम्हारा चाल-चलन ठीक रहेगा तो अधिकारी उस पर भी सहानुभूति के साथ विचार करेंगे। यहाँ से भागने का प्रयत्न न करना, क्योंकि इससे तुम्हारी सजा की कटुता बढ़ जायगी। जब तुमको अपना सारा जीवन यहीं व्यतीत करना है, तो इस प्रकार व्यतीत करो जिससे तुम्हें यहाँ का स्वतन्त्र नागरिक बनने का अधिकार प्राप्त हो जाय।"

रामनाथ ने पूछा:—"क्या मैं कभी स्वतन्त्र नागरिक भी हो सकता हूँ ?"

जेल के उस अधिकारी ने उत्तर दिया:—"हाँ, तुमको स्वतन्त्रता कुछ वर्षों के पश्चात् मिल सकती है, यदि तुम्हारे चाल-चलन से सरकार को विश्वास हो जाय कि तुमने अपना चरित्र सुधार लिया है। किन्तु तुमको रहना यहीं पड़ेगा। अण्डमान टापू के बाहर जाना तुम्हारे लिए सदैव निषिद्ध रहेगा। यह सुविधा तुमको मिलेगी क्योंकि तुम राजनैतिक कैदी नहीं हो।"

रामनाथ ने गम्भीरता के साथ कहा:—"नहीं, मैं यथाशक्ति जेल के सभी नियमों का पालन करूँगा।"

उस अधिकारी ने उत्तर दिया:—"तब तुम शीघ्र ही नागरिक बनने का अधिकार प्राप्त कर लोगे। तुम अभी नवयुवक हो, तुमको विवाह करने की भी सुविधा दी जायगी। परन्तु यह सब सुविधाएं तुम्हारे व्यवहार पर निर्भर करती

हैं। आशा है कि तुम अपने भविष्य को ध्यान में रखते हुए कार्य करोगे। मैंने तुमको सतर्क कर दिया है, क्योंकि यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं यहाँ के वातावरण से तुमको सावधान कर दूँ।"

रामनाथ ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया:—"आप मेरी ओर से निःशंक रहें। मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा जिसमें आपको आपत्ति हो अथवा जो नियम-विरुद्ध हो। मैं अपने पुराने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।"

अधिकारी ने कहा:—"तब आओ। चलो तुम्हें काम बता दूँ।"

रामनाथ कुछ सोचता हुआ उनके पीछे-पीछे चल दिया।

२

प्रभात काल की चाय पीकर जहाँ पामीला जाने लगी कि उसकी माँ अगैथा निक्सन ने पूछा:—"कहाँ जा रही हो ?"

पामीला ने प्रश्न-भरी दृष्टि से एक बार अपनी माँ की ओर देखा और फिर पूछा:—"जरा यों ही घूमने जा रही हूँ। आज शाम को जूलिया के साथ नौका-विहार की बात थी, उसने अभी एक नई मोटर-बोट ली है, उसी में सैर करने का निमन्त्रण उसने दिया है। उसी सम्बन्ध में खोज-खबर लेने जा रही हूँ। तुम भी चलोगी।"

अगैथा ने स्नेह के साथ उसकी अलकों पर हाथ फेरते हुए कहा:—"नहीं, तुम ही जाओ, किन्तु..........?" कहते-कहते अगैथा रुक गई ?।

पामीला ने उत्कंठित स्वर में पूछा:—"तुम रुक क्यों गई ? क्या कुछ काम है ?"

अगैथा ने पामीला को अपने पास खींचते हुए कहा:—"काम कुछ नहीं है मेरी प्यारी बेटी ! मैं केवल यही कहती थी कि तुम आज तक चन्द्रनाथ को देखने नहीं गईं। वह बेचारा बुरी तरह घायल हो गया है। कल तुम्हारे पापा गये थे, मैं भी उनके साथ थी। वह खतरे से बाहर अवश्य हो गया है किन्तु उसकी अवस्था अब भी शोचनीय है। उसका हम लोगों के साथ बड़ा स्नेह है, एक बार समय निकालकर उसको भी देख आओ, वह तुम्हें पूछता भी था।"

पामीला ने उसके पास ही एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा:—"क्षमा करना माँ, अब मैं यह कपटाचार करने में सर्वथा अपने को असमर्थ पाती हूँ। न मालूम क्यों चन्द्रनाथ के प्रति मेरे मन में घृणा दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। उसके व्यवहार में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके कारण ऐसा भाव मेरे मन में उत्पन्न हो, परन्तु फिर भी उसके लिए मेरे मन में तनिक भी सहानुभूति जाग्रत नहीं होती। उसमें मैं केवल कृत्रिमता ही पाती हूँ। वह आपाद-मस्तक कृत्रिम है। मुझे ऐसा कभी-कभी भासित होता है कि उसकी इस कृत्रिमता के आवरण के नीचे

उसकी कूट अभिसन्धियाँ भरी हुई हैं। वह देखने में जितना सीधा और परोपकारी है उतना वह वास्तव में नहीं है। उसके सारे कार्य अपने उर में कोई-न-कोई विशेष प्रयोजन छिपाये रहते हैं। उसके साथ अकेले रहने में मुझे भय मालूम होता है। ऐसा भय जैसे वह आक्रमण करके मेरा गला दबाने वाला हो।" कहते-कहते पामीला वास्तव में सिहरकर चारों ओर भय-विह्वल दृष्टि से देखने लगी।

अगैथा ने सप्रेम उसका हाथ पकड़कर कहा:—"पामी, मैं नहीं जानती थी कि तुम इतनी भीरु हो। एक हिन्दुस्तानी कुत्ते से तुम डर सकती हो, यह बात मेरी विचार-परिधि में नहीं आती। और यों भी पुरुषों से स्त्रियाँ कभी नहीं डरतीं। पुरुष तो उनके गुलाम हैं। स्त्री में यदि थोड़ी भी बुद्धि हो तो वह पुरुषों को अपनी उँगली के इशारों पर नचा सकती है। पुरुष देखने में ही बड़ा कठोर, निष्ठुर और उग्र है किन्तु चतुर स्त्री के समक्ष वह भेड़ से भी अधिक निरीह है। चतुर-से-चतुर पुरुषों को स्त्रियों ने मूर्ख बनाकर छोड़ा है। स्त्री के चातुर्य के समक्ष पुरुषों को सदैव नीचा देखना पड़ा है। यदि स्त्री में तनिक भी बुद्धि है तो वह पुरुष से सदैव जीतेगी। मैं उसे स्त्री नहीं कह सकती जो पुरुषों को अपने माया-जाल में फाँसकर उसे नचाती नहीं।

"चन्द्रनाथ तो वास्तव में महामूर्ख है। यों तो प्रायः सभी पुरुष मूर्ख ही हुआ करते हैं, परन्तु वे, जिनको अपने कौशल और नैपुण्य का अहंकार होता है, वास्तव में बड़े भारी मूर्ख होते हैं। बुद्धि की वह कुशाग्रता जो उनको दूसरे पुरुषों को ठगने में सहायता प्रदान करती है, वही स्त्री के समक्ष कुंठित हो जाती है। एक चतुर स्त्री सहज ही उनको मूर्ख बनाकर उनका उतराता हुआ और प्रच्छन्न धन बटोर सकती है। इसके अतिरिक्त एक अंग्रेज रमणी के मुकाबले में बड़ा-से-बड़ा हिन्दुस्तानी नगण्य और हेय है। उसका स्तर उससे सदैव नीचा रहता है, इसलिए वह उस पर सहज ही शासन कर सकती है। शासित होने के नाते वे सदैव हमसे आशंकित रहेंगे। हमारी भौंहों का एक तुच्छ-से-तुच्छ कुंचन उनकी सारी शेखी और अभिसन्धियों को छिन्न-भिन्न कर देने में समर्थ है। चन्द्रनाथ से भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। वह तो स्वयं हम लोगों से भयभीत है। आज इतनी सम्पत्ति का स्वामी वह केवल तुम्हारे पापा की कृपा से हुआ है। उसके अमूल्य उपहार हमारे प्रति उसके स्नेह के कारण नहीं मिले हैं, वरन् हमारा मुँह बन्द रखने के लिए मिले हैं। मेरी प्यारी बेटी, हम लोग भारत में रुपया पैदा करने के लिए आये हैं। हमें सब प्रकार से रुपया पैदा करना अभीष्ट है। हमारा असली समाज तो इंगलैंड में है, और शायद तुमको नहीं मालूम कि उस समाज में बिना पूँजी के कोई गौरवपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए चन्द्रनाथ हमारा शिकार है। उससे अधिक-से-अधिक रकम

ऐंठनी चाहिए।"

पामीला ने असहाय दृष्टि से देखते हुए कहा :—"किन्तु माँ, मुझे कपट करना नहीं आता। मैं जिससे घृणा करूँगी, उससे प्रेम नहीं कर सकती।"

अगैथा ने हँसते हुए कहा :—"चतुर स्त्रियाँ घृणा और प्रेम दोनों से दूर रहती हैं। घृणा और प्रेम निरर्थक शब्द हैं, और केवल विवेक-शून्य स्त्रियों के लिए बनाये गए हैं। घृणा और प्रेम करने वाली स्त्री सदैव कार्य में असफल होती है, क्योंकि स्वार्थ-साधन में ये दोनों बड़े भारी रोड़े हैं। उद्देश्य-पूर्ति के लिए हमें इन कमजोरियों को त्यागना पड़ेगा। चन्द्रनाथ से घृणा करने का कोई कारण नहीं है, और न उसी भाँति प्रेम करने का।"

पामीला ने निरुत्तर होकर कहा :—"किन्तु माँ, अपने विचारों को दबाना क्या उचित है। सच्चे मानसिक विचारों को दबाकर दूसरा भाव प्रदर्शित करना ही तो कपट है, और वही मुझसे नहीं होता।"

अगैथा ने उसकी उंगलियों के साथ खेलते हुए कहा :—"किन्तु पामी, अब तो तुम्हें यह सब सीखना और करना पड़ेगा, नहीं तो दुर्दान्त और खूँख्वार पुरुष सहज ही भेड़ियों की भाँति तुम्हारा खून पी जायंगे। यह शायद तुम नहीं जानतीं कि पुरुष स्वभाव से ही स्वार्थी है, उग्र है, परुष है, और कूटनीतिज्ञ है। उसने आज तक स्त्री जाति को कभी पनपने नहीं दिया। अपने से आगे कभी बढ़ने नहीं दिया, और यदि शताब्दियों के आक्रमण के पश्चात् भी वह जीवित है तो वह केवल अपने कौशल से। भगवान् ने जहाँ उग्रता और परुषता पुरुष को प्रदान की हैं वहाँ उसने उनको मूर्ख भी बनाया है। चतुर स्त्री अपने थोड़े ही कौशल से उसको गुलाम बनाये रखकर उस पर शासन करती है। संसार के महायुद्धों की सूत्रधार स्त्रियाँ ही रही हैं, जो मूर्ख पुरुषों को लड़ाकर स्वयं अछूती बनी रही हैं। जिसे तुम कपट कहती हो, वास्तव में वह कपट नहीं है वरन् कौशल है। पुरुषों ने हां कौशल को कपट कह कर स्त्री जाति के प्रति अपनी घृणा का परिचय दिया है। चन्द्रनाथ को सब्ज बाग दिखाना कपटाचार नहीं है, वरन् उसकी सहज दुरभिसंधियों का प्रत्युत्तर है। तुम जाओ, उससे मिलो, और उसको प्रेम का प्रलोभन देकर उसकी धन-सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाओ, और जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाय तब ठुकराकर भगा दो।"

पामीला ने उठते हुए कहा :—"नहीं मामा, मुझसे यह सब नहीं होगा। मैं·······।"

पामीला सहसा रुक गई, और कमरे में झाँकते हुए चपरासी की ओर देखने लगी जो प्रातःकाल की डाक उन्हें देने को आया था। पामीला पत्रों को

लेकर देखने लगी। उनमें से एक उसके नाम का था, जिसे खोलकर वह पढ़ने लगी। पत्र इस प्रकार था :—

प्रिय पामीला,

मैं यह पत्र जेल से लिख रही हूँ, क्योंकि मुझको भारत रक्षा कानून में गिरफ़्तार कर लिया गया है, और सरकार को मुझसे इतना भय है कि वह मेरी जेल से बाहर रहना निरापद नहीं समझती। वास्तव में यह बात नहीं है पामी ! इसके भीतर एक रहस्य छिपा हुआ है।

मेरे मन में कई बार यह विचार आया कि एक बार तुमको अपनी सारी स्थिति से मित्र के नाते अवगत कर दूँ, परन्तु यह सोचकर कि हम तुम दोनों एक पथ की पथिक नहीं हैं इसलिए इतने दिन तक कुछ नहीं कहा। तुम शासक-वर्ग की हो, और मैं शासित की। हम दोनों समानान्तर रूप से विलग चली जा रही हैं। हाँ, पहले जब मेरे पिता जीवित थे, तब तुमसे निःसंकोच मिलती थी, अपने में और तुममें कोई विशेप अन्तर नहीं पाती थी, क्योंकि उस समय मैं पूँजीवादी पुरुष की सन्तान थी, और तुम साम्राज्यवादी पुरुष की कन्या थीं, और चूँकि पूँजीवाद और सम्राज्यवाद में कोई अन्तर नहीं होता, इसलिए मैं तुमको अपने समकक्ष ही समझती थी। परन्तु जब से मेरे पिता की हत्या हुई, उसने मेरे जीवन की धारा को उससे विपरीत मार्ग की ओर बहा दिया, तबसे मैंने तुमसे मिलना-जुलना एक प्रकार से छोड़ ही दिया। मैंने इस मार्ग का अवलम्बन जान-बूझकर इसकी दुरूहता को समझकर किया है। मुझे विदित था कि इसका परिणाम केवल आजीवन कारावास या फाँसी होगा। आज मेरा वही अनुमान सत्यता में परिणत होने जा रहा है। आज अकेले बैठे-बैठे तुम्हारी याद आ गई। पुरानी स्मृतियों ने जोर मारा, और तुमसे मिलने की इच्छा जाग्रत हुई। पराधीन होने के कारण तुमसे साक्षात् मिलने में असमर्थ थी, इसीलिए पत्र का सहारा ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त मुझको सप्ताह में एक पत्र लिखने की आज्ञा मिली है, उसका भी तो उपयोग करना ही चाहिए।

पामी, तुम मेरी ही तरह एक नारी हो। यद्यपि हम लोगों में राजनीतिक और भौगोलिक विभिन्नताएं हैं, तथापि जाति की समानता तो है ही। तुम मेरे विचारों से अवगत हो, जो पुरुषों के प्रति हैं। कहने को तो योरोप में स्त्रियों के अधिकार भारतीय नारियों की अपेक्षा कहीं अधिक हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। घर में उनकी वही दशा है जो एक भारतीय नारी की होती है—केवल समाज की विभिन्नता के कारण कुछ नगण्य-सा अन्तर अवश्य आ गया है। पुरुषों ने वहाँ भी नारी जाति का शोषण किया है और आज दिन भी कर रहा है। उसने उनको वहाँ भी गुलामी के पाश से बाँध रखा है—हाँ यह अवश्य है

कि वह गुलामी किसी अन्य रूप में है—ठीक वैसी नहीं है जैसी भारतीय नारियों की है। वह कितने गौरव का दिन होगा जब तुम भी अपने देश की नारियों को मुक्ति का संदेश सुनाओगी, और पुरुषों की गुलामी से उन्हें मुक्त करोगी। आज एक पुरुष के कारण ही मुझे अपनी सम्पत्ति से वंचित होना पड़ा और उसके प्रस्तावों को ठुकराने से सैकड़ों अभागे मजदूरों का खून हुआ और आज मैं जेल में बैठी हुई हूँ। ऐसी पुरुष जाति से तुमको सचेत करती हूँ, और आशा करती हूँ कि तुम कभी उसके फैलाए हुए प्रलोभनों के जाल में नहीं फँसोगी। पुरुष जाति का कभी विश्वास न करना। उसका ध्येय केवल नारी जाति को पराजित, लांछित और घृणित बनाने का होता है। वह महा विषधर सर्प से भी अधिक भयंकर है; शेर से भी अधिक खूँख्वार है और भेड़िए से भी अधिक लोलुप है। उससे दूर रहने में ही तुम्हारा कल्याण है।

तुम भी सोच सकती हो कि इन बातों के लिखने में मेरा कोई विशेष उद्देश्य है, परन्तु ऐसा नहीं है। मैंने केवल एक मित्र के नाते तुम्हें चेतावनी-मात्र दी है। यदि कोई कारण हो सकता है तो वह यही कि अब शायद इस जीवन में तुमसे कभी भेंट नहीं होगी, तुम ऐसे व्यक्ति की मानसिक अवस्था का अनुभव सहज ही कर सकती हो, जो संसार के कर्मक्षेत्र से बरबस विदा ले रहा हो। उनके मन में अनेक बातें कहने की इच्छा होती है, उसी भाँति इसको भी समझना।

पत्र बहुत लम्बा हो गया है। कष्ट के लिए क्षमा माँगती हुई तुमसे सदैव के लिए विदा होती हूँ।

तुम्हारी—कनक।

अगैथा बड़े ध्यान से पामीला के मुख का उतार-चढ़ाव निरीक्षण कर रही थी। पत्र समाप्त होने के पश्चात् पामीला ने एक दीर्घ निश्वास ली, और कहा:—"मां, कनक को गिरफ़्तार किया गया है भारत रक्षा कानून में। उससे साम्राज्य को क्या भय उत्पन्न हुआ? आज मैं पापा से इस विषय में बातें करूँगी। जैसे हो कनक को छोड़ना ही पड़ेगा।"

अगैथा ने उसके हाथ से पत्र ले लिया, और पढ़ने लगी। पत्र पढ़ लेने के पश्चात् उसने कहा:—"ऐसी लड़कियों का स्थान जेल ही है। वे यदि बाहर रहेंगी तो संसार में अशांति उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करेंगी।"

पामीला ने पूछा:—"तब तो मुझको भी जेल में ही जाकर रहना चाहिए। मैं कपटाचार करने में असमर्थ हूँ, और यदि कपट के साथ, जिसे तुम कौशल कहती हो, अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकती, तब तो मेरे लिए संसार में कोई स्थान नहीं है। मैं कभी भी अपने जीवन को अपने-आपकी

आँखों में घृणय नहीं बनाऊँगी ।"

अगैथा ने इस विषय में कुछ अधिक बोलना उचित नहीं समझा । वह चुप रही ।

पामीला ने जाते हुए कहा :—"आज मैं भोजन नहीं करूँगी । मैं आज एकान्त में कुछ सोचना और विचारना चाहती हूँ । यदि कोई मुझसे मिलने आय तो कह देना कि तबियत अच्छी न होने के कारण वह किसी से मिलेगी नहीं ।"

पामीला यह कहकर सवेग चली गई, और अगैथा मौन होकर विचारों की उलझनों में फँस गई ।

३

साहबदीन और यशोदा का मनो-मालिन्य बलवन्तसिंह के अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी न मिटा । जिस दिन उनमें कलह हुआ था, उसी दिन वहाँ कनक और उर्मिला के पहुँच जाने से उसकी कटुता और भी अधिक बढ़ गई थी । कनक के शब्दों ने एक प्रकार से जलती हुई अग्नि में घृत का काम किया था । कनक के उत्तेजित उपदेश ने उसके सामने एक नए विचारों का श्रीगणेश कर दिया था । वह सोचने लगी थी कि वास्तव में पुरुष सदैव नारी को ठगता आया है, और वह उसकी कमजोरियों से भरपूर लाभ उठाता है । नारी निरीह और अशक्त होने से ही पुरुषों द्वारा कुचली जाती है । सशक्त कमजोर को सदैव दबा लेता है और नारी को जान-बूझकर कमजोर रखा जाता है, केवल इसलिए कि वह पुरुषों से कहीं प्रतिद्वन्द्विता न करने लगे, उसने निश्चय कर लिया कि यदि साहबदीन से कभी समझौता होगा तो बराबरी का होगा नहीं; तो वह कभी दबकर उसके घर न जायगी ।

लछिमिन ने उसको बहुत-कुछ समझाया, परम्परा और रूढ़ि की दुहाई दी, पुराणों में वर्णित कितनी ही पतिव्रता नारियों के उपाख्यान सुनाए, किन्तु उनका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । उन शुष्क कथाओं से उसके मन की धधकती हुई अग्नि न बुझ सकी । उसने उसके किसी तर्क के सामने अपनी हार स्वीकार नहीं की ।

"स्त्री और पुरुष दोनों बराबर हैं, कोई किसी से न्यून नहीं है ।"यही उसका एक-मात्र उत्तर था । सम्भव था कि उसको लछिमिन के सामने लाचार होकर हार माननी पड़ती, किन्तु उसी दिन संध्या की घटना ने उसे पुनः उत्तेजित कर दिया ।

संध्या समय तक साहबदीन जब उसकी राह देखते-देखते थक गया, और यशोदा घर में न आई तब प्रातः काल की घटना से वदित ग्लानि और पश्चात्ताप ने उसके सुप्त क्रोध को जगाकर उत्तेजित करना आरम्भ कर दिया । क्षुधा की ज्वाला उसमें वायु का काम करने लगी । क्रोध का पहला उफान उसके लड़के

ताराचन्द पर उतरा। वह रोटी के लिए मचल रहा था, और घर में चूल्हा तक न जला था। निदान उसने रोटियों के स्थान पर उसे थप्पड़ खिलाए और वह अनभिज्ञ बालक रोकर सो गया। साहबदीन ने कुछ देर और प्रतीक्षा की। रात्रि का अंधकार जब घनीभूत होने लगा, तो वह एक डंडा लेकर बलवन्तसिंह के घर की ओर चल दिया। उस समय वह क्रोध से ज्ञान-शून्य हो रहा था। गाँव का मुखिया था, उसका आत्म-सम्मान भी उसे पुनः-पुनः उत्तेजित कर रहा था। उसका मन उसे धिक्कारकर कह रहा था कि जब वह अपनी स्त्री को ही अपने वश में नहीं कर सकता, तब वह गाँव को किस प्रकार करेगा। गाँव वाले तो सदैव उसको इसी बात का ताना देंगे। उस समय क्रोध ने प्रतिहिंसा को जन्म दे दिया था।

बलवन्तसिंह की चौपाल में उसने कुछ स्त्रियों को बैठे देखा। उनके बीच यशोदा को ढूँढ़ निकालने का वह प्रयत्न करने लगा। यद्यपि अंधकार की अस्पष्टता उसे कोई सहायता प्रदान नहीं करती थी तथापि वह उसको अपने उर में छिपाए हुए थी, सेठ जी की प्रतिशोध शक्ति ने उसको ढूँढ़ ही निकाला। उसने दौड़-कर उसको अपनी लाठी के प्रहार का निशाना बनाना चहा, और यदि वह चौपाल पर छाये हुए छप्पर में उलझ न जाती, तो सम्भव था कि यशोदा की जीवन-लीला समाप्त हो जाती।

साहबदीन का निशाना चूक गया, और इससे उसके क्रोध की मात्रा द्विगुणित हो गई। उसका विवेक भी भयभीत होकर मस्तिष्क के भय-कोष में समाविष्ट हो गया। स्थान, काल का भेद-भाव अन्तर्हित हो गया। पागलों-जैसी उत्तेजना के साथ वह उस नारी-समूह पर झपटा। उस समय उसके लिए सारी नारियाँ यशोदा ही प्रतीत होने लगीं। हाथ की लाठी छोड़कर वह समीपस्थ नारी के गले को दबाने लगा। वह अभागिनी सन्तू की स्त्री राधा थी। राधा के गले का चीत्कार उसकी कर्कश उंगलियों के घेरे से दबकर मौन हो गया। राधा की श्वास बन्द होने लगी, और वायु के लिए वह छटपटाने लगी। लछिमिन तो हतबुद्धि-सी रह गई, किन्तु यशोदा ने परिस्थिति क्षण-मात्र में समझकर उत्तेजित कण्ठ से कहा:—"उस अभागिनी को छोड़ दो, मैं यहाँ खड़ी हूँ, अगर मारना चाहते हो तो मुझे मारो।" साहबदीन ने शब्द पहचानते ही राधा को छोड़ दिया, और यशोदा पर झपटा। उसने उसका गला पकड़ने का प्रयत्न करते हुए कहा:—"चुड़ैल, आज तो तुझे जान से मारकर ही छोड़ूँगा, इसके लिए चाहे मुझे फाँसी पर ही क्यों न लटकना पड़े।"

यशोदा ने पीछे हटते हुए कहा:—"खबरदार, दूर रहो, मेरे पास न आना।"

साहबदीन ने चिल्लाकर कहा:—"अब बचकर कहाँ जायगी? कह

दिया आज तेरी जान लेकर मानूँगा । इसी समय घर से बाहर निकलकर बलवन्तसिंह ने साहबदीन को पकड़ लिया । वह छूटने के लिए तड़पड़ाने लगा, किन्तु बलवन्तसिंह वृद्ध होते हुए भी उससे कहीं अधिक शक्तिशाली था।

साहबदीन ने झटका देते हुए अपने को छुड़ाते हुए कहा:—"ठाकुर, हमारे बीच में न बोलो, कह दिया, छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैं आज इस चुड़ैल का खून पीकर मानूँगा। इसने······।"

बलवन्तसिंह ने उसको दूर घसीटते हुए कहा:—"सेठ जी शांत हो, घर की लक्ष्मी का इस भाँति अपमान नहीं किया जाता । मैंने तो आज तक आपको इस प्रकार क्रोधित कभी नहीं देखा था।"

साहबदीन ने वज्र-गंभीर स्वर में कहा :—"छोड़ दो, कह दिया छोड़ दो । अब अगर नहीं छोड़ते फिर मुझको दोष न देना।" यह कहते हुए उसने एक थप्पड़ उसको मार दिया।

बलवन्तसिंह ने उसको सहन कर लिया, और हँसकर कहा:—"सेठजी, शांत हो। तुम चाहे जितना मारो, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता । मेरे घर में तुम अपनी स्त्री को छू नहीं सकते, मारने की बात तो दूर है। लाख गया-बीता हूँ, किन्तु फिर भी ठाकुर हूँ। शरण में आए हुओं की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है, और मैं तो सूर्य वंशी क्षत्री हूँ । मेरे जीवित रहते तुम एक अबला पर हाथ नहीं उठा सकते।"

साहबदीन ने बहुत शक्ति लगाई, किन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली, तब उसने हाँफते हुए कहा:—"ठाकुर, यह याद रखना इसका बदला लिये बिना मैं कभी मानूँगा नहीं। सच पूछो तो यह आग तुम्हारी ही लगाई हुई है । तुम्हारे दो सौ रुपयों ने ही यह सारा कलह उत्पन्न किया है। न तुम्हारे रुपये मैं लेता और न झगड़ा पैदा होता। मेरी घर वाली से अधिक शत्रु तो तुम हो। मैं इसका बदला लूँगा, बदला।"

क्रोध यद्यपि पहले शक्ति उत्पन्न करता है, किन्तु वह मदिरा के नशे की भाँति क्षणिक ही होता है। क्रोध और मादकता दोनों ही मस्तिष्क को उत्तेजित करके हृदय के रक्त-संचालन की गति में तीव्रता उत्पन्न कर देते हैं, और वही तीव्र-संचालन स्नायुओं को उत्तेजना और शक्ति प्रदान करता है और रक्त का आधिक्य ही शक्ति का मूलाधार है, और वही क्रोध की तीव्रता की मात्रा में उस अनुपात से वृद्धि भी करता है । जब हृदय-कोष अधिकाधिक रक्त फेंकने के कारण रिक्त-प्रायः हो जाता है तब अवशता उत्पन्न होती है और उसके साथ ही अवसाद और क्लांति, क्योंकि इन्हीं के द्वारा हृदय के रक्त-कोष को पुनः भरने

का समय मिलता है । यह नैसर्गिक प्रतिक्रिया ही समत्व स्थापित करने में कृतकार्य होती है, और इसका अभाव मनुष्य को कभी-कभी पागल तक बनाने में सफल होता है । साहबदीन के हृदय का रक्त-कोष रिक्त हो चुका था । उत्तेजना अब अवसाद और क्लान्ति में परिवर्तित होने लगी । वह बड़े वेग से हाँफ रहा था । हाँफने की क्रिया नाड़ियों में प्रवाहित रक्त को हृदय-कोष मे रक्त भरने में सहायता कर रहा था । उसके हाथों में अब बल नहीं रह गया था, परन्तु हार मानने के लिए वह अब भी तैयार नहीं था ।

उसने भर्राये हुए कण्ठ से कहा :—"ठाकुर, मेरा सारा रुपया कल ही चुका दो, नहीं तो मैं दावा करके कुड़की लाऊँगा, और तुम्हारा सारा माल नीलाम करवा लूँगा ।"

बलवन्तसिंह ने उसको चौपाल के बाहर लाते हुए कहा :—"सेठ जी, अब घर जाकर चुपचाप सो रहो । मैं अभी पूड़ियां बनवाकर लिये आता हूँ । दावा करने तो कल जाओगे, मैं मना नहीं करता, अगर रुपया देते-देते सरकार कुड़की निकालकर घर-बैल नीलाम कर देगी, तो फिर मेरे रोकने से रुक नहीं जायगा। चलो, तुम्हें घर तक पहुँचा आऊँ ।" यह कहता हुआ वह साहबदीन को घसीटकर उसके घर की ओर ले जाने लगा । अवसाद और क्लांति भी उसकी सहायता करने लगे । साहबदीन मचले हुए बालक की भाँति उसके साथ जाने लगा ।

४

बहुत प्रयत्न करने पर भी यशोदा किसी भाँति साहबदीन के घर जाने को राजी नहीं हुई । उन दोनों के बीच की खाई उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी । यशोदा का कहना था कि वह अपने गुजारे की रकम लेकर उससे अलग रहेगी, और साहबदीन ने यह घोषित कर दिया था कि वह उसे एक पैसा भी न देगा । ताराचन्द की बुरी अवस्था थी, वह लगभग प्रत्येक दिन अपने पिता के हाथों मार खाता था, क्योंकि वह अपनी माँ के पास जाना चाहता था, और साहबदीन उसको भेजना नहीं चाहता था । साहबदीन उसका अभिभावक बनकर रहना चाहता था, किन्तु ताराचन्द को माँ के बिना घर सूना लगता था । उसका मन माँ का प्यार पाने के लिए छटपटा रहा था ।

आजकल साहबदीन खुल्लम-खुल्ला बलवन्तसिंह को अपनी स्त्री के बहकाने का अपराधी बता रहा था । गाँव के कुछ लोगों से उसने यहाँ तक कह डाला था कि उसकी स्त्री के साथ बलवन्तसिंह का अनुचित सम्बंध है, और इसी कारण से उसने उसको निकाल दिया है । यह ज्ञान उसको वकीलों के द्वारा प्राप्त हुआ था, जो यशोदा द्वारा उसके विरुद्ध गुजारा पाने के अभियोग लाने की पेशबन्दी थी । वकीलों ने उसे बताया था कि यदि वह उसकी दुश्चरित्रता

प्रमाणित कर देगा तो उसे कोई गुजारा नहीं देना पड़ेगा । इसी बात को करने के लिए वह पृष्ठ भूमि तैयार कर रहा था ।

बलवन्तसिंह को जब यह हाल मालूम हुआ तब उसके मन को अत्यंत क्षोभ और दुःख हुआ । वह अस्थिर चित्त से सीधा घर आया, और एकान्त में लछिमिन को ले जाकर कहा:—"तुमने भी कुछ सुना है ।"

बलवन्तसिंह को साहस न हुआ कि वह सेठ साहबदीन के द्वारा लगाये हुए लांछन को तुरंत ही कह दे ।

लछिमिन ने उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते हुए कहा:—"आखिर कहो, बात क्या है ? तुम तो बहुत घबराये हुए मालूम देते हो, क्या उसने अपने रुपयों का दावा कर दिया है ।"

बलवन्तसिंह ने स्थिर होते हुए कहा:—"यह तो मालूम नहीं, अगर दावा कर भी दिया है तो इसकी चिंता नहीं, क्योंकि सरकार कुछ मेरी भी सुनेगी। आजकल किसानों के लिए सरकार ने बहुत सुविधाएं कर दी हैं । वह किश्तें बाँध देती है, और बैल तथा खेत नीलाम नहीं होते । बात बहुत गंभीर है । इस बुढ़ापे की सफेदी में कालिख लगने वाली है ।"

लछिमिन ने अस्थिर होते हुए कहा:—"ऐसी कौन-सी बात है । तुम असली बात तो कहते नहीं, इधर-उधर की बातें कर रहे हो ।"

बलवन्तसिंह ने सिर खुजलाते हुए कहा:—"क्या कहूँ जस्सू की माँ ? हम लोगों ने सेठाइनजी को घर में आश्रय देकर बहुत बुरा किया । नदी में रहकर मगर-मच्छ से बैर किया है ।"

लछिमिन ने अधीर होकर कहा:—"तो क्या सेठ मारने-पीटने को कहते हैं ?"

बलवन्तसिंह ने पृथ्वी की ओर देखते हुए कहा:—"उसकी भी चिन्ता नहीं है । किसी की रक्षा करते हुए यदि मारा जाऊँ तो स्वर्ग का द्वार मेरे लिए खुला ही है । कर्म-भोग से सहज ही बच जाऊँगा । बात यह है कि वह मेरी इज्जत-आबरू लेने पर उतारू हुआ है । वह कहता है कि बलवन्तसिंह का उसकी स्त्री के साथ अनुचित सम्बंध है, इसीलिए वह उसके घर रहने के लिए लड़-भिड़कर भाग गई है । वह लोगों को इस विषय की गवाहियाँ देने के लिए प्रबंध कर रहा है। उसने मुनुआ पासी से कहा कि यदि वह मेरे और उसकी सेठाइन के अनुचित सम्बंध के विषय में आँखों-देखी गवाही दे तो वह उसे एक हजार रुपया तो देगा ही और उसका पिछला कर्ज भी माफ कर देगा । बेचारा मुनुआ मेरे पास अभी आया था और यह कह गया है कि अपने बचाव का प्रबंध करूँ।"

लछिमिन ने सोचते हुए कहा:—"अच्छा, सेठ को ऐसी बात कहते हुए

लाज नहीं आती ? इसमें उसकी भी तो बदनामी है।"

बलवन्तसिंह ने सिर झुकाये हुए कहा:—"उसकी तो बदनामी जो कुछ है वह तो है ही, मेरी भी तो नाक काट रहा है। बासठ वर्षों से इस गाँव में रह रहा हूँ, आज तक बड़ी स्त्री को माँ और छोटी को बहन माना है, गाँव-भर को मेरे चरित्र के विषय में विश्वास है। सारे जीवन की तपस्या को वह एक ही प्रहार में नष्ट किये दे रहा है। मैं तो किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा। कोई-न-कोई गवाही तो देगा ही। रुपयों में बड़ी शक्ति है, उसके लिए कोई-कोई गंगाजली उठाकर निर्मूल बातों को देखा हुआ कहने में संकुचित नहीं होगा। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या उपाय करूँ। क्या सेठाइन को अपने घर से जाने को कहा जाय ?"

लछिमिन ने दाँतों तले जीभ दबाते हुए कहा :—"अरे राम-राम, कैसी बातें करते हो, सेठ के झूठे आरोप से डरकर भगवान् के घर में गुनहगार नहीं होंगे। शरणागत की रक्षा तो प्राण देकर भी की जाती है। सेठ को गवाहियाँ करने दो, उसकी गवाही कोई भला आदमी देगा नहीं, और अगर देगा भी तो अपने गवाह राम हैं। भगवान् की इच्छा यदि कालिख लगाने की नहीं है तो फिर कौन लगा सकता है, यदि कसाई के लिए राम हैं, तो गाय के लिए भी राम हैं। मानती हूँ कि यह घोर कलिकाल है, परन्तु फिर भी धर्म अभी पूरी तरह लुप्त नहीं हुआ है। जब-तक सेठाइन का भाई नहीं आता तब तक तो वह कहीं जाती नहीं। तुम क्या समझते हो कि उसको रखने में मैं प्रसन्न हूँ, परन्तु बात के लिए मरना पड़ता है। उसने अपने भाई के आने के समय तक की शरण माँगी है, और मैंने उससे हामी भर ली है। अब तो उसे जाने के लिए नहीं कह सकती।"

बलवन्तसिंह ने धीमे स्वर से कहा :—"किन्तु मेरी तो धो जायगी। जो कलंक भरी जवानी में नहीं लगा, वह आज लगने जा रहा है।"

लछिमिन ने उत्साहित करते हुए कहा :—"इसकी तुम, जस्सू के बाप चिन्ता न करो। कुत्ते तो भोंकते ही रहते हैं, हाथी अपनी ही चाल चला जाता है। जब अपना दिल साफ है तब डर किस बात का ?"

इसी समय वहाँ यशोदा आई, उसका मुख विवर्ण था, नेत्र चुचचुचाये रोने के लिए आतुर थे। उसको देखकर दोनों चुप हो गए। यशोदा ने पास आकर कहा :—"दादा, मैं भी अपने पति की कीर्ति-कथा सुन चुकी हूँ। जिस जबान से उन्होंने यह अपवाद लगाया है, वह गल जायगी……।"

लछिमिन ने उसका मुँह अपनी हथेली से दबाते हुए कहा :—"अरे राम-राम, कोई ऐसी बात अपने मुँह से निकालता है। चाहे जैसा हो, अन्त में वह

तुम्हारा स्वामी है, देवता है, और इस जन्म के लिए भगवान् है। स्त्री की पति के अतिरिक्ति और कहीं गति नहीं है। भगवान् ने जब क्रोध की रचना की तो उसे पुरुष ले गया, और जब उसका भार सहन करने के लिए किसी अन्य की आवश्यकता हुई तो उसने क्षमा को जन्म दिया, जिसे पास ही खड़ी हुई नारी ने ग्रहण कर लिया। तब से स्त्री का कर्त्तव्य हो गया है क्षमा करना। पति के अनेकानेक अपराधों को, उसके प्रहारों को, जो स्त्री निरंतर सहन करती हुई क्षमा करती रहती है, वही सच्ची पति-सेवा है, और उसके बहाने भगवान् की सेवा है। मैं फिर तुमसे अनुरोध करती हूँ कि सेठ जी को क्षमा करो। तुम्हारी क्षमा उसके हृदय में पश्चात्ताप की वह अग्नि प्रदीप्त करेगी, जो उसको तो रात-दिन जलायगी ही, और उसका परिणाम होगा कि तुम दोनों का जीवन एक बार फिर सरस होगा। तुम्हारी बसी हुई गृहस्थी उजड़ेगी नहीं। क्षोभ के कारण वे ऐसा कलंक प्रचार कर रहे हैं जब उनको कोई जवाब इधर से नहीं मिलेगा, तब लोग उन्हीं को थूकेंगे।"

यशोदा ने सिसकते हुए कहा :—"अब क्या बाकी रह गया है जो वे कहेंगे। मुझे कहा सो कहा, लेकिन बाप के बराबर दादा को कलंक लगाने में उनको शरम न आई। भगवान् यदि सचमुच हैं तो इसका बदला वे अवश्य देंगे। अम्मा, जितना मैं उनको जानती हूँ, उतना तुम नहीं जानती। वे हमारी चुप्पी से हमारी हार मानेंगे, और दिन-पर-दिन सिर पर चढ़ते जायंगे। किन्तु वे उस समय कुछ न बोलेंगे जब उन्हें सेर का कोई सवा सेर मिल जायगा। अब तो कलंक लगा ही दिया है, अब डरने की कौन बात है। अब तो उन पर मुकद्दमा चलाऊँगी ही, और आधा बँटा लूँगी। जायदाद पुरखों की है, अकेले उनकी कमाई हुई नहीं है। जब जाऊँगी तो ताराचन्द को भी अपने साथ लेती जाऊँगी। उसके नाम से मुकद्दमा लड़ूँगी। तब देखूँगी सेठ जी को।"

बलवन्तसिंह ने नम्रता के साथ कहा :—"सेठाइन जी, अब मुकद्दमे की बात छोड़ो। इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। हमारे गांव में आज तक कोई ऐसा मुकद्दमा नहीं लड़ा।"

यशोदा ने उत्तर दिया :—"ठीक कहते हो दादा, आज तक कोई ऐसा मुकद्दमा नहीं लड़ा तभी तो सेठ जी का ऐसा कलंक लगाने की हिम्मत हुई है। युगों से स्त्रियाँ अपने पतियों को अत्याचार सहन करती आई हैं, और कभी कोई उलट कर जवाब नहीं दिया, इसी से अत्याचार करने को अपना जन्म-सिद्ध अधिकार बना लिया है। लोहा सहज ही लकड़ी को काट डालता है, लेकिन लोहे को नहीं। ईंट का जवाब पत्थर से देने वाले पर कोई सहज ही वार नहीं करता, वरन् उससे भयभीत रहते हैं। माटी की भवानी पीड़ो के भोग से ही राजी रहती

है, और नष्ट देवता की भ्रष्ट पूजा ही होनी चाहिए। यदि अब-तक गाँव में कोई मुकदमा नहीं हुआ है, तो अब होगा। आगे से कोई भी अपनी स्त्री की इस प्रकार मान-हानि नहीं करेगा।"

लछिमिन ने कहा:—"देखो, सेठाइन जी, आदमी और औरत दो नहीं हैं, दोनों मिलकर गृहस्थी बनाते हैं, और वह दोनों के बराबर के अधिकार की है। कोई-कोई आदमी यदि कुराह जाते हैं, तो इसके अर्थ यह कदापि नहीं है कि स्त्रियाँ भी उनकी अनुगामिनी बनें। स्त्रियों का बड़प्पन इसी में है कि वे शांति से काम लेकर बिगड़ी हुई गृहस्थी को बनायें। जब गृहस्थी के दोनों पलड़े बराबर रहते हैं तभी वह ठीक-ठीक चलती है, और जब एक पलड़ा ऊँचा हो जाता है तब दूसरा उतना ही नीचा होकर समत्व रखता है। तुम हम लोगों के बहकाने में आ गई हो। उनकी बात जाने दो। वे गृहस्थी के सुख क्या जानें। उनका जीवन तो भोग-विलास के लिए हुआ है, और वे उसी को सब-कुछ समझ बैठा हैं। दमयन्ती, सीता की कथाएं ही हमको सच्चा रास्ता दिखाती हैं। स्त्री का जन्म तो त्याग और तपस्या के लिए हुआ है। वह अपने सुख-दुःख की परवाह नहीं करती, वह तो अपने स्वामी और पुत्र के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानती हैं। नेकी का बदला नेक है और बदी का बद। सेवा का फल मीठा ही होता है, और सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। जब पत्थर के भगवान् सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं तब क्या हाड़-मांस से बने हुए आदमी नहीं पसीजेंगे?"

यशोदा ने तिनककर कहा:—"सेवा करते-करते तो बूढ़ी हो गई हूँ, परन्तु वे कभी न पसीजे। सारा हाल तुम आँखों देख चुकी हो, मेरा उसमें क्या अपराध था? जब उन्होंने मारा था तब भागकर तुम्हारे यहाँ चली आई, और उस रात को आकर जैसा व्यवहार उन्होंने किया, क्या वह क्षमा करने योग्य है? यह तो कहो लाठी छप्पर से अटक गई, नहीं तो राधा भौजाई की जान ही चली जाती। उसके बाद उन्होंने पागलों तरह उसका गला दबाकर मार डालना चाहा। यदि मैं उन्हें अपना कण्ठ-स्वर बताकर सतर्क न करती तो क्या राधा भौजाई जीवित बचती। यदि राधा न होकर मैं ही होती तो क्या मेरे बचने की कोई आशा थी। फिर इसके बाद जले पर नोन छिड़कने चले हैं। सत्तर वर्ष के बाप-जैसे आदमी, नहीं देवता, के साथ कलंक लगाते हैं, तब अम्माँ तुम्हीं कहो, क्या सेवा करने का भाव रह जाता है? आखिर सहने की भी तो कोई हद होती है।" कहते-कहते उसके मन का उच्छ्वास उसकी आँखों के मार्ग से द्रवित होकर बहने लगा। लछिमिन और बलवन्त दोनों निरुत्तर होकर एक दूसरे का मुख निहारने लगे।

५

दवानल की लपटों का प्रकाश जितनी शीघ्रता से फैलता है, उतनी ही शीघ्रता से गाँव में बलवन्तसिंह और यशोदा के कलंक की कहानी फैल गई। बहुतों को विश्वास नहीं हुआ, और उन्होंने साहबदीन को बुरा भला कहा, तथा उसकी मूर्खता की निन्दा की। किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो विश्वास न भी करते हुए दोनों को संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे। उनकी दृष्टि में पति को छोड़कर बलवन्तसिंह के साथ रहने में कुछ-न-कुछ भेद की बात मालूम होती थी। कुछ ऐसे भी थे जो बलवन्तसिंह के चातुर्य की प्रशंसा करते थे कि उसने किस भाँति अपने ऊपर लदे हुए कर्ज का बदला चुका लिया है। बलवन्तसिंह को इतनी ग्लानि हुई कि उसने घर के बाहर ही निकलना छोड़ दिया। सम्भव था कि यदि उसकी ओर से इसका खंडन होता है तो गाँव का बहुमत उसे ही प्राप्त होता, परन्तु एकांगी प्रचार और प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने उसकी सदाचारिता पर लोगों को सन्देह होने लगा था। इधर सेठ साहबदीन प्रथम तो मुखिया थे, अधिकार और पूँजी के बल से उनका प्रचार दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था, और इस समय गाँव में उन्हीं का पक्ष सबल हो गया था। जब चारों ओर रात-दिन इसी की चर्चा से गाँव मुखरित हो गया और बलवन्तसिंह को बाहर मुँह दिखाना कठिन हो गया तो इसका निर्णय करने का विचार सहसा उसके मन में उदित हुआ।

रात्रि का लगभग एक प्रहर व्यतीत हो चुका था। बलवन्तसिंह अपने घर से चोरों की भाँति चारों ओर देखता हुआ निकला, और धीमे पदों से सेठ साहबदीन की चौपाल की ओर चला। उसने आज निश्चय कर लिया था कि वह सेठ के सम्मुख बातें करके सभी बातों का निर्णय कर डालेगा। उसका अनुमान था कि उस समय वह अकेला होगा, परन्तु यह मिथ्या प्रमाणित हुआ। उस समय भी उसकी चौपाल में पाँच-छः गाँव के बेकार आदमी बैठे थे, जो इस समय कलंक-कहानी के प्रचार में प्रमुख भाग ले रहे थे। वे किसी राजा के मुसाहिबों की भाँति सेठ की हाँ-में-हाँ मिला रहे थे और अपनी विजय की कहानी नमक-मिर्च लगाकर इस भाँति सुना रहे थे, जिसमें उनका कौशल और चातुर्य प्रकट हो।

बलवन्तसिंह एक कर्कश हास्य और विद्रूप पूर्ण कण्ठ-स्वर को सुनकर ठिठककर स्थिर हो गया। उसकी गति अवरुद्ध हो गई, और वह सुनने लगा। यद्यपि स्वर पहचाना हुआ था, किन्तु उसके मस्तिष्क की विकृत अवस्था उसकी संज्ञा को भ्रमित किये हुए थी। वह निर्णय करने में कृतकार्य न हुआ। उसके कान सुनने लगे:—"सेठ ददुआ, और कोई गवाही चाहे भले ही न दे, मैं तो दूँगा ही। इसमें आप कोई फर्क न समझें।"

सेठ साहबदीन ने कहा :—" ठीक है, जो बात सच्ची है, उसको कहने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। अगर अदालत में तुम इसको अच्छी तरह कह सके तो समझ लो मुर्रा पछाही भैंस तुम्हारे घर आ गई, और मजे से दूध पियोगे।"

उसी व्यक्ति ने उत्तर दिया :—"कहने में क्या डर लगता है, अदालत हो चाहे पंचायत; मैं कहीं नहीं डरने का। और जब सेठ ददुआ का हाथ सिर पर है तब डर ही किस बात का है।"

सेठ का कण्ठ-स्वर सुन पड़ा :—"अच्छा बताओ क्या कहोगे ?"

उसी व्यक्ति ने कहा :—"अरे कौन बड़ी बात कहनी है जो मैं भूल जाऊँगा। मेरा सामना कलकत्ते में कई बार बड़े-बड़े पुलिस-सुपरडंटों और हाकमों से पड़ चुका है, मगर महावीर जी की कुछ ऐसी कृपा है कि हमेशा बोलता हुआ निकल आया हूँ।"

एक दूसरे व्यक्ति ने कहा :—"यह तो हमें भी मालूम है बलई, तुम कहीं डरते नहीं, मगर ददुआ को जरा सब किस्सा सुना दो, ऐसे तुम कहोगे।"

बलई खाँस-खखारकर कहने लगा :—"अच्छा सुनो, मैं कहूँगा कि हुजूर एक दिन साँझ को मैं खेतों से अपने घर लौट रहा था, तो रास्ते में एक अमराई पड़ती है। वहाँ सांझ से ही रात जैसा अंधेरा छा जाता है, हाथ भी सुझाई नहीं पड़ता। जब मैं उस अमराई से गुजर रहा था तब थोड़ी दूर पर मुझे दो आदमी दिखाई पड़े। पहले मैंने उन्हें भूत समझा, फिर हिम्मत करके पास जाकर देखा तो मैंने पहचाना कि वे दोनों सेठाइन भौजाई और बलवन्तसिंह थे। सेठाइन भौजाई ने मुझे पहचानकर कहा :—"देखो, यह बात किसी से न कहना।' और यह कहकर उन्होंने अपनी एक सोने की अंगूठी दी। पहले मैंने अंगूठी लेने से इन्कार किया, फिर जब उन्होंने अपनी कसम धराई तो मैंने ले ली। यह कहकर मैं अंगूठी हाकिम के सामने पेश करूँगा। ठीक है न।"

सेठ का शब्द सुनाई पड़ा :—" हाँ बिलकुल ठीक है, लेकिन जब वकील जिरह करेगा तब क्या उसके सवालों का जबाब दे सकोगे ?"

बलई ने कहा :—"क्यों नहीं। मैंने न मालूम कितने वकीलों को चराया है। उसके सभी टेढ़े-मेढ़े सवालों का जबाब दे लूँगा।

सेठ का शब्द फिर सुनाई पड़ा :—"अच्छा मनौआ तुम क्या कहोगे ?"

मनौआ ने कहा :—"सरकार, हमका बहुत तीन-पाँच नहीं आवत, हम तो सूध-सूध बात कह देब। हम कहब कि हमरे खेत में एक मड़ैया है, वहि मा हम सेठाइन चाची का और बलवन्तसिंह ठाकुर का पौढ़े दीख रहै। सेठाइन चाची हमसे या बात केहू से कहन का मना कीहेन रहै। तब से सेठाइन चाची

हमका रोज आध सेर दूध पियावै लागी । और हमहू या बात कहू से नहीं कहा। जब गाँव में या बात फैल गई तो एक दिन हमहू सेठ चाचा से सब हाल बताय दिहिन, और तब उहू हमाय नाम सुम्मन कढ़ाय दिहिन ।"

सेठ साहबदीन के हँसने का शब्द सुनाई पड़ा, और उसके साथ ही चौपाल में बैठे हुए सारे व्यक्तियों के हास्य-रव से रात्रि की गंभीरता छिन्न-भिन्न हो गई । बलवन्तसिंह को मानो पक्षापात हो गया । उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैरों के नीचे की पृथ्वी सरक रही है, और वह खिंचता हुआ एक भयानक गहर में चला जा रहा है । उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया । उसने बड़ी कठिनता से लकड़ी का सहारा लेकर अपने को संभाला ।

सेठ ने हँसते हुए कहा :—"बहुत ठीक, दोनों गवाहियाँ चौकस हैं । अब एक-आध गवाही और हो जाय तो फिर सब खेल बन जायगा । मनौआ, बोल तू भी भैंस लेगा या और कुछ ।"

मनौआ ने प्रसन्न कण्ठ से कहा :—"भैंस नहीं, हमका तो बलवन्त बाबा के खेतवा दिवाय देव । पटवारी आपके कहे मा है । उलटी-सीधी लिखा-पढ़ी करके कौनेउ जतन से बंधा वाला खेत दिवाय देव तो हम निहाल होय जाई, और आपका दुश्मनौ मर जाई । यहि मा आपकेर याकौ पैसा न खरच होई ।"

साहबदीन ने हँसते हुए कहा :—"अच्छी बात है । पटवारी से कहकर मैं वह खेत तुमको दिलवा दूँगा । अच्छा सुक्खू, तुम क्या कहोगे ।"

सुक्खू ने कहा :—"मैं कहूँगा कि एक दिन सेठ चाचा शहर गये हुए थे । जाते समय वे मुझसे कह गए थे कि शाम को मेरी भैंस दुह आना, शायद मैं आज शाम तक न आ सकूँगा । मैंने हामी भर ली और जब खेतपर से लौटा तो मैं यह बात भूल गया । रात जब पहर-डेढ़ पहर बीत गई थी तब यकायक भैंस के दुहने की बात याद आ गई । उसी समय दौड़ा हुआ उनके घर गया । मैं सीधा घरके अन्दर बिना बुलाये हुए चला गया । वहाँ जाकर जो हाल मैंने देखा तो सन्न रह गया । वहाँ ठाकुर काका सेठ के पलंग पर लेटे हुए थे और उसीपर बैठी हुई सेठाइन काकी उनके पैर दाब रही थी । मुझको देखकर दोनों घबरा गए और ठाकुर काका ने कहा :—"देखो सुक्खू, हमारे यहाँ होने की बात किसी से न कहना और काकी ने मुझको पचास रुपये दिए और उन्होंने भी इसकी चरचा करने को मना किया । मैं तो चला आया, लेकिन ठाकुर काका नहीं आये । जब सुबह चार बजे मैं अपने खेतों में पानी लगाने जा रहा था तब रास्ते में फिर ठाकुर काका मिले और उन्होंने मुझको देखकर कहा :—"देखो सुक्खू, यह बात किसी से कहना नहीं । इस साल मैं तुमको अपना तिकोनिया खेत बोने के लिए दे दूँगा । मैंने यह मंजूर कर लिया । इसमें मेरा फायदा था, और उस खेत

को मैं कई बार उनसे माँग चुका था, क्योंकि वह मेरे खेतों से मिला हुआ है।"

सेठ ने प्रसन्न होकर कहा :—"तुम्हारा बयान सबसे ठीक रहा, सुक्खू। तुम क्या लोगे, बोलो।"

सुक्खू ने हाथ जोड़कर कहा :—"सेठ जी, मेरा एक बैल बूढ़ा हो गया है, उससे काम नहीं होता। आप हमें एक बैल खरीदने का रुपया उधार दे दीजिए।"

सेठ ने उत्तर दिया :—"अच्छा तुमको एक बैल ले दूँगा। आधा रुपया तो मैं तुमको इनाम की भाँति दूँगा, और आधे का ब्याज नहीं लूँगा। मूल रकम जब मन में आवे लौटाल देना।"

बलवन्तसिंह सब सुन रहा था। उसका क्षत्रित्व अपने वर्षों के आलस्य को अँगड़ाई लेकर दूर कर रहा था। किसी अनुमानातीत दुर्घटना का प्रभाव पहले मस्तिष्क में भय उत्पन्न करता है, क्योंकि आकस्मिक प्रादुर्भाव सर्वथा अपरिचित होने के कारण मस्तिष्क में आघात करता है, जिससे हृदय के नैसर्गिक कार्य में एक प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है, और रक्तवाहक तन्तु कुछ शिथिल-से पड़ जाते हैं। यह शिथिलता ही मस्तिष्क के भय कोष को सजग करती है। जब क्षणिक कालांतर में हृदय की धड़कन तीव्र होकर रक्त को पुनः-पुनः रक्त-वाहक तन्तुओं में संचालित करने लगती है, तब वैद्युतिक शक्ति, जो रक्त की संचालन क्रिया से उत्पन्न होती है, मस्तिष्क के अन्य कोषों को भी सजग करती है। यह प्रसंगानुसार उत्पन्न हुआ करता है। यदि घटना का संबंध उसके मान-अपमान से होता है, तो उसकी रक्षा के लिए वह क्रोध उत्पन्न करता है, और यदि आधिभौतिक कारणों से (जैसे भूत प्रेत आदि से) होता है तो वह आत्मरक्षा के लिए पलायन आदि क्रियाओं को सचेत करता है। बलवन्तसिंह को अब छिपे खड़े रहना दुष्कर ही नहीं असम्भव हो गया तेजी के साथ साहबदीन की चौपाल में प्रवेश किया, और सक्रोध कहा :—"सेठ जी, मैंने कभी तुमको इतना नीच नहीं समझा था। यह याद रखो, भगवान् है, और वह झूठ तथा सत्य सब देखता है। गाँव वाले मुझे अच्छी तरह जानते हैं, इसी गाँव में छोटे से बड़ा हुआ हूँ। तुमको अपने रुपए का ......।"

साहबदीन और उसके मुसाहिब, जो पहले उसके सहसा प्रकट हो जाने से सहम गए थे, अब फिर संभल गए। साहबदीन ने चिल्लाकर कहा :—"अरे, चोर-चोर दौड़ो-दौड़ो चोर घुस आया है।" फिर अपने साथियों से कहा :—"पकड़ो-पकड़ो, चोर को, जाने न पाय।" कहते-कहते उसने लालटेन बुझा दी। दूसरे ही क्षण बलवन्तसिंह को चौपाल में बैठे हुए बलई, मनौआ और सुक्खू तथा साहबदीन ने चारों ओर से पकड़ लिया। साहबदीन अब भी चोर-चोर चिल्ला रहे थे।

अभी रात डेढ़ प्रहर से अधिक नहीं गई थी। गाँव के कुछ वासी जाग रहे थे। वे भी अपने घरों से 'चोर-चोर' का चीत्कार करते हुए दौड़े, और पूछने लगे :—"मुखिया, क्या है, कहाँ है चोर। क्या पकड़ लिया, अच्छा जाने न पाय। हम लोग आ गए हैं।"

साहबदीन ने चिल्लाकर कहा :—"मैंने पकड़ लिया है। लालटेन लाओ, देखो तो यह कौन है। जाओ एक आदमी चौकीदार को बुला लाओ।"

साहबदीन का आक्रमण इतनी शीघ्रता से और अकस्मात् हुआ था कि बलवन्तसिंह की संज्ञा लुप्त हो गई थी। वह वास्तव में पकड़े हुए चोर की भाँति निश्चल और मूक था।

इतने में कई आदमी लालटेन लेकर चोर को देखने के लिए वहाँ एकत्रित हो गए। उस समय सब कोई एक साथ रहे थे और उस कोलहल में किसी की बात स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ती थी।

जब लालटेन सामने आई तब साहबदीन ने कहा :—"अरे यह तो ठाकुर बलवन्तसिंह है।"

सभी लोगों के मुँह से निकल पड़ा :—" अरे यह तो ठाकुर काका हैं।"

किसी ने कहा:—"काका, अब बुढ़ापे में चोरी भी करने लगे?"

साहबदीन बड़े जोश के साथ कहने लगे :—"काका जो न करें अब वह थोड़ा है। गाँव वालों को अभीतक विश्वास नहीं होता था जब मैं कहता था कि ठाकुर ने ही मेरा घर बिगाड़ा है, मेरी घरवाली को बहका कर ले गया है। अब तो सामने प्रमाण मौजूद है। ठाकुर को मैंने अपने घर के अन्दर चोरी करते हुए पकड़ा है। यह देखो मेरी बहियाँ चुराने आये थे, जिनके द्वारा मैं इन पर दावा करने जा रहा था। अब तो आप लोग गवाही देंगे।"

गाँव वासियों के मुख से एक भी शब्द न निकला। सब सोच रहे थे कि यह स्वप्न है या सत्य।

बलवन्तसिंह सिर झुकाये हुए चुप-चाप बैठा था। उसका दुर्भाग्य अपनी सफलता पर मुस्करा रहा था, और हँस रहा था पूँजीपति का कौशल और उसका चातुर्य।

६

कनक की गिरफ्तारी पत्रों में पढ़ते ही देवकीनन्दन बम्बई से सीधे कानपुर सब काम-काज छोड़कर चले आये। यह उन पर ऐसा वज्रपात था जिसको सहन करने के लिए वे तैयार नहीं थे। मजदूर-आंदोलन को चलाने के समय कनक की गिरफ़्तारी का विचार तक उनके मन में नहीं आया था। उन्हें विश्वास था कि स्त्री होने के नाते वह कभी भी गिरफ़्तार नहीं की जायगी, और

इसीलिए उन्होंने उसको कभी उससे विरत करने का उद्योग नहीं किया। उसकी गिरफ़्तारी ने उनके सारे विश्वास को चकनाचूर कर दिया और उन्हें केवल यह चिन्ता थी कि कितनी शीघ्रता से उसको छुड़ायं यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के कारण वायुयानों द्वारा यात्रा सर्व-साधारण के लिए बन्द थी, तथापि बम्बई-सरकार में उनकी असाधारण प्रतिष्ठा के कारण गवर्नर की सिफारिश से उन्हें उससे यात्रा करने की अनुमति प्राप्त हो गई थी। कानपुर पहुँचते ही वे सीधे कनक के बंगले पर गये। बंगला इस समय बिलकुल श्री हीन हो रहा था। सर्वत्र उदासी छाई हुई थी। उसे देखकर उन्होंने पहले यही अनुमान किया कि इसमें कोई नहीं रहता है। उनके हृदय में एक हूक उठी, और कनक की स्मृति ने उनकी आँखों को सिक्त कर दिया।

अकस्मात् इसी समय किसी कार्य से उर्मिला बाहर निकली। देवकीनन्दन को पहचानकर पहले वह तीव्रता से उनकी ओर अग्रसर हुई, किन्तु कनक की सुप्त स्मृति ने सहसा सजग होकर उसके पगों में वेदना के निगड़ डाल दिये, और आगे बढ़ने से रोक दिया।

देवकीनन्दन ने उसके समीप पहुँचकर कुछ कहने के लिए मुँह खोला, किन्तु शब्द कंठ से जड़ित होकर रह गया।

उर्मिला ने, आँचल से अपनी आँखों के तरल प्रवाह को रोकते हुए कहा:—"भाई साहब, दीदी जेल में हैं।"

देवकीनन्दन ने अपने को सम्भालते हुए कहा:—"उर्मिला, मुझे मालूम है। समाचार-पत्रों में पढ़ चुका हूँ।"

उर्मिला ने अपने आँसुओं को आँखों के गह्वर में ढकेलते हुए कहा:—"भाई साहब, दीदी की गिरफ़्तारी इतनी अचानक हुई और न कभी अनुमान ही किसी ने किया था। वे तो सदैव वैध रूप से ही आन्दोलन का संचालन करती थी। अवैध काम न वे स्वयं करती थीं और न किसी को करने की आज्ञा ही देती थीं। न मालूम क्यों सरकार ने उनको गिरफ़्तार कर लिया। आइये कपड़े आदि उतारिये, सब हाल आपको स्वयं मालूम हो जायगा।"

देवकीनन्दन ने उसके साथ जाते हुए कहा:—"कितनी पेशियाँ अभी तक पड़ चुकी हैं, और पैरवी कौन कर रहा है। जमानत के लिए क्या किसी ने प्रार्थना-पत्र नहीं दिया ?"

उर्मिला ने कमरे के बाहर एक कुर्सी लाते हुए कहा:—"बैठिये, हाँ जमानत के लिए हम लोगों ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सरकार ने अपनी स्वीकृति नहीं दी।"

देवकीनन्दन ने साश्चर्य कहा:—"जमानत क्यों नहीं मँजूर की गई ?

यह तो कोई ऐसा अपराध नहीं है जिसकी जमानत न ली जा सके।"

उर्मिला ने खड़े-खड़े उत्तर दिया :—"दीदी की गिरफ़्तारी साधारण कानून के अन्दर नहीं हुई। जन-सुरक्षा कानून के अनुसार सरकार को पूर्ण अधिकार है कि वह जमानत अस्वीकार कर दे। यह भी सुनने में आता है कि उनके मुकदमे की सब कार्यवाही जेल के भीतर ही होगी, और वहाँ किसी के जाने की अनुमति नहीं मिलेगी। वकील के अतिरिक्त और कोई न जा सकेगा।"

देवकीनन्दन ने कुछ सोचते हुए पूछा :—"पैरवी के लिए कौन वकील नियुक्त किया है।"

उर्मिला ने उत्तर दिया :—"कानपुर के सभी प्रमुख वकील पैरवी करने के लिए उद्यत हैं, परन्तु दीदी इन्कार करती हैं। वे अपनी पैरवी स्वयं करने को कहती हैं।"

देवकीनन्दन ने गम्भीर होकर पूछा:—"अभी तक उनसे कौन मिल चुका है ? तुम तो अवश्य मिल चुकी होगी।"

उर्मिला ने उत्तर दिया :—"नहीं मिल सकी। मुझे आज्ञा नहीं मिली, और मिस्टर डेविड के अतिरिक्त दूसरे को उनसे साक्षात् करने की आज्ञा नहीं दी गई। मिस्टर डेविड को केवल उनके बैरिस्टर होने के नाते आज्ञा मिली थी, परन्तु दीदी ने उनसे भी पैरवी कराना अस्वीकार कर दिया। अब आप आगए हैं, आपके समझाने से शायद मान जायें।"

देवकीनन्दन ने कुछ रुष्ट होकर कहा :—"कनक का जिद्दी स्वभाव अभी-तक नहीं गया, वह नहीं जानती कि यह समय जिद्द करने का नहीं है। सरकार से लड़ने में जिद्द नहीं, कौशल से सफलता मिलती है। मेरे कहने से क्या होगा ? जब एक बार वह इन्कार कर चुकी है तब वह कभी वकील के द्वारा पैरवी नहीं करायगी।"

उनकी आँखों से उस समय असन्तुष्टि झाँक रही थी।

उर्मिला ने भीतर जाते हुए कहा :—"आपके लिए चाय तैयार करती हूँ। आप मुँह-हाथ धोइये।"

देवकीनन्दन ने उत्तर दिया :—"नहीं चाय बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐयरोड्रोम की कैन्टीन से मैं चाय पी आया हूँ। मैं मिस्टर डेविड के यहाँ जारहा हूँ। वे कनक से मिल चुके हैं। उससे पूछूँ कि कनक क्यों वकील करने से इन्कार करती है ? खाने के लिए मेरी प्रतीक्षा न करना, मैं किसी मित्र के यहाँ भोजन कर लूँगा।"

यह कहकर वे जाने लगे, किन्तु उर्मिला ने आगे आकर कहा :—"यह कदापि नहीं हो सकता, भाई साहब ! चाय चाहे आप न पियें, किन्तु भोजन

आपको यहीं करना पड़ेगा। मिस्टर डेविड से मिल कर आप आवें, आपको भोजन तैयार मिलेगा। बहन का बनाया हुआ भोजन भाई को करना ही पड़ता है। वह किसी भाँति अस्वीकार नहीं कर सकता।"

देवकीनन्दन की दृष्टि सहसा उर्मिला की ओर चली गई। उन्होंने देखा कि वह सूख कर काँटा हो गई है, और हड्डियों की ठठरी के अतिरिक्त वह कुछ नहीं है। उनके मन ने कलपते हुए कहा:—"उर्मिला ने भी उस दिन से न खाया होगा? तुम्हारा इन्कार करना उचित नहीं है।"

फिर प्रकट में कहा:—"अच्छा उर्मिला, मैं यहीं खाऊँगा, तुम भोजन बना रखना।"

यह कह कर वे चले गए, और उर्मिला उनको देखती रही। उनके चले जाने के पश्चात् वह उसी कुर्सी पर बैठ गई जिस पर देवकीनन्दन बैठे थे। उच्छ्वास जो अभी तक किसी भाँति अवरुद्ध था, एकांत पाकर फिर उमड़ने लगा, और अतीत की घटनाओं के चित्रों की धूलि साफ कर उन्हें सजग और चैतन्य करने में संलग्न हो गया।

वह सोचने लगी:—"मनुष्य का अदृष्ट भी कितना अस्पष्ट होता है। कोई नहीं जानता कि दूसरे क्षण क्या होने वाला है। मेरा जीवन घटनाओं की तरंगों की हलकम्प में कितना दोलायमान हुआ है। जीवन के आरम्भ से ही दुर्घटनाओं की शिकार होती चली आरही हूँ। शायद विधाता ने मेरे अदृष्ट में लिख दिया है कि जिसे मैं चाहूँगी, वही मुझसे रुष्ट हो जायगा। पहले माता-पिता को खोया, फिर पति को खोया, और अब अपनी सहोदरा से भी अधिक प्रिय धर्म बहन को भी खोया। भगवान् की क्या यही इच्छा है कि मैं वात्सल्य, प्रेम और स्नेह से वंचित होकर परित्यक्ता सी दुखी, अशांत और उद्देश्यहीन जीवन व्यतीत करूँ? घटनाओं के क्रम तो इसी दिशा की ओर अपना संकेत कर रहे हैं।"

"अच्छा अदृष्ट क्या है? मानव जीवन क्या असम्बद्ध जीवन है? क्या उसका केवल आकस्मिक प्रादुर्भाव है? बहते हुए जल के प्रपात से कितने बुदबुदे उठेंगे यह कोई क्या बता सकता है। यह बुदबुदे उठते ही क्यों हैं, और यदि उठते हैं तो वे क्या किसी क्रमागत नियमों से आबद्ध होते हैं अथवा वे उच्छृंखल और स्वतंत्र हैं? इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता है। और जो उत्तर मिलते हैं उन पर असंदिग्धता की छाप क्यों रहा करती है?"

"संसार ही क्यों ब्रह्मांड की सब रचना—अणु तथा परमाणु से लेकर सूर्य तक—सब किसी न किसी नियम के आधारभूत हैं। अनियमित और उच्छृंखल रूप में स्वतंत्र तो कोई नहीं है। नियम-बद्ध शाश्वत विकास का नाम ही सृष्टि

रचना है, और विकास नित्य नूतन रूपों के परिवर्तन पर ही अवलम्बित है। जिस प्रकार जल प्लावित नदी जलधारा में कितने जल के परमाणु हैं, कौन बता सकता है, किन्तु वे सब एक गति से, एक रूप से बहते हुए चले जा रहे हैं, क्या उसी प्रकार जीवन नदी का जीवन जल भी अगणित, असंख्य, कल्पनातीत जीव परमाणुओं को अपने उर में समाविष्ट किए बहा चला जा रहा है? शायद इसीलिए इसका न कभी आदि था, और न कभी अन्त होगा यह शाश्वत और नित्य है, चेतन और निर्लिप्त है। सर्प अपने जीवन काल के आदि से कितनी केंचुलें बदलता है, और उतरी हुई केंचुल से उसे प्रेम नहीं रहता वह उससे अपना पिंड छुड़ाने के लिए काँटों का आश्रय लेता है, क्या उसी प्रकार जीव नाना रूपों को धारण करता, उनको परित्याग करता चला आया है, और अनन्तकाल तक चला जायगा। क्या यही सृष्टि का विकास है। जिस प्रकार प्रकृति जो नित्य निर्माण करने की शक्ति से ओत-प्रोत है, और जड़ न होकर शांति रूप में चेतन है, केंचुल को उतारने के पूर्व नवीन त्वचा बना देती है, क्या उसी प्रकार वह एक जीवन को परिवर्तित करने के पहले आगामी जीवन की सृष्टि नवीन वातावरणों में आरम्भ नहीं कर देती? जैसा सर्प होगा उसी प्रकार की केंचुल उतरेगी, तब तो वह नियमों से आबद्ध है। शायद उसी भाँति जीवन भी नियमबद्ध है जो विभिन्न अवस्थाओं के नित्य नूतन वातावरण में परिवर्तित होता हुआ, अपना निजी अस्तित्व भी निभाता हुआ अनन्त काल तक चला जायगा। पूर्ववर्ती और वर्तमान को लेकर भविष्य की रचना होती है, और जो आज वर्तमान है उसकी रचना प्रकृति ने उसके आसन्न पूर्वावस्था तथा उससे भी सामूहिक अवस्थाओं के वातावरणों को लेकर किया है। तब क्या सामूहिक वातावरणों का प्रभाव का ही दूसरा नाम 'अदृष्ट' या भाग्य है और क्या वह निश्चित और निश्चल है निस्पृह और निरपेक्ष है? क्या वर्तमान उसकी निश्चित धारा को परिवर्तित करने में अशक्त है और असमर्थ है? तब विवेक और बुद्धि की रचना क्यों हुई? प्रकृति कभी निरर्थक रचना नहीं करती। विवेक और बुद्धि का कर्त्तव्य क्या यही है कि वह अन्यान्य जीवों के साथ सत् साम्य स्थापित करता हुआ चतुर नाविक की भाँति स्वार्थ की भवरों से बचाता जीवन-नौका को खेता हुआ ले जाय, जिसमें वर्तमान जीवन के कर्मों की प्रतिक्रिया, जो आगामी जीवन में प्राप्त होगी, शुभ और कल्याणकारी हो? इन विचारों की सत्यता क्या समय की कसौटी पर कस कर जानी जा सकती है? समय की गणना तो केवल सीमित वस्तुओं के लिए ही है, जो असीम है उसके लिए समय का विधान नहीं है। बिन्दु का क्या कहीं आदि और अन्त है? क्या इसी बात का ज्ञान कराने के लिए ब्रह्माण्ड की यावत रचना गोल है, जो सीमित ज्ञान वाले मानव को

संकेत कर रही है कि "हमारा न कहीं आदि है न अन्त है । हम नित्य और शाश्वत हैं ।"

"तब क्या मेरा वर्तमान जीवन पूर्व जीवन की क्रियाओं की प्रतिक्रिया मात्र नहीं है । उफ, यह प्रतिक्रिया कितनी भयंकर है, जो इंगित करती है मेरा पूर्व जीवन कितना असत् और साम्य भावों से विलग था, स्वार्थ साधन में कितना आपाद मस्तक रत था, अपने ही समान अन्य प्राणियों न्यायानुकूल प्राप्य तथा देय भागों को अपने स्वार्थ पूर्ति की वेदी पर बलिदान चढ़ाने में सिद्ध हस्त और कटिबद्ध था । तथा यह पीड़ा और ज्वाला केवल उन कर्मों की प्रतिक्रिया मात्र है, और यही प्रतिक्रिया ही अदृष्ट या भाग्य है ।"

"नहीं जानती कि उनके दिन कैसे बीत रहे होंगे ? उनकी मानसिक दशा क्या होगी । क्या उनका भी कर्म मेरे कर्मों से सम्बद्ध था ? क्या उन्होंने भी अपने स्वार्थ साधन में विवेक और बुद्धि को ठुकरा कर दूर कर दिया था । उनकी दशा का वास्तविक कारण तो मैं हूँ । मुझे ढूंढने के लिए यदि वे न गये होते, और मैं उनको देखकर खिड़की से न कूद पड़ती, और ठीक उसी समय वामन-दास वहाँ न पहुँच जाता, तथा उनके विवेक का नाश न हो जाता तो यह अप्रिय घटना क्यों होती, और क्यों उनको द्वीपान्तर वास का दण्ड मिलता ? उनका सम्बंध मुझ से असत् से होने के कारण शायद उनको यह प्रायश्चित् करना पड़ रहा है ।"

"हाँ और शायद वही प्रायश्चित्त कनक बहन को भी करना पड़ रहा है। मेरे संसर्ग दोष से उनको भी जेल यातना सहन करनी पड़ रही है । मेरा जीवन अभिशापित है । मेरा रोम-रोम पाप से जड़ित है । मेरी प्रत्येक निश्वास के साथ पाप की भीषण ज्वाला निकलती है, और वह इतनी विदग्धकारी है जो संसर्ग मात्र से ही दूसरे के पुण्यों को जलाकर क्षार कर देती । उफ मेरा कितना पापी जीवन है ।"

उर्मिला की विचार-धारा पश्चाताप की अग्नि परिधि में आकर स्तंम्भित होकर शुष्क होने लगी । उसके मस्तिष्क में एक मसोस और पीड़ा उठी, जिसने उसके हृदय के रक्त कोष की रक्त संचालन क्रिया में एक प्रकार की अग्नि पैदा कर उसको दग्ध करना आरंभ कर दिया । वैद्युतिक शक्तियाँ भी विखर उस आन्दोलन को तीव्रतर करने लगी । मस्तिष्क के प्रत्येक कोष विकल हो उठे, और वे उस पीड़ा को ठेल कर आँसुओं के रूप में बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगे ।

उर्मिला फूट-फूट कर रोने लगी ।

अस्पताल के प्रायवेट वार्ड के एक कमरे में लेटे हुए चन्द्रनाथ ने आगन्तुका पामीला को अपने समीप खड़ा देखकर उठने की चेष्टा करते हुए कहा :—"पामी, तुम आ गई। तुम्हारे देखने से ही मेरा आधा कष्ट कपूर की भाँति उड़ गया।"

पामीला निक्सन ने उसके हाथ को दबाते हुए कहा :—"तुम उठने की चेष्टा न करो। तुम्हारे सिर में भी चोट आई है। डाक्टर की आज्ञा है कि मैं तुमसे बहुत देर तक बातें न करूँ। तुम स्वस्थ हो। ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम अब पूर्ण रूप से खतरे के बाहर हो।"

चन्द्रनाथ ने उसके हाथ को दबाते हुए कहा :—"पामी, क्या मेरे मर जाने से तुमको क्लेश होता ?"

चन्द्रनाथ की आँखों से प्रेम की धारा उमड़कर पामीला को प्लावित करने लगी। उसके हाथों की उंगलियाँ भी वैद्युतिक शक्ति द्वारा प्रेम का सन्देश पामीला के हाथों द्वारा उसके मस्तिष्क के भोग-कोष में संचारित कर झंझावात पैदा करने लगी। उसके नव यौवन ने भी उद्वेलित होकर उसके हृदय के रक्त स्रोत को भोगकोष में जाने वाली तन्तुओं में प्लावित कर उसकी ग्रीवा और कपोलों को अपनी लाल आभा प्रदान करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके विवेक ने यौवन के उद्दाम प्रवाह को बरबस रोक लिया, और बुद्धि ने अंगड़ाई लेकर उसके शैथिल्य को झिटककर दूर कर दिया। उसने चन्द्रनाथ के मनोभावों को सादर अपने कर्त्तव्य पथ से विलग करते हुए कहा :—"मित्र की शोचनीय अवस्था सदैव क्लेश उत्पन्न करती है, इसमें पूँछने की कौन बात है, चद्रनाथ।" जिस प्रकार बिजली का प्रवाह मनुष्य धारावाहक तार से सम्बंध विच्छेद होने पर सहसा रुक जाता है, उसी प्रकार चन्द्रनाथ की प्रेम धारा भी पामीला के उत्तर से अवरुद्ध हो गई। वे अन्यमनस्क होकर कुछ सोचने लगे। उनके मन के एकाकीपन ने एक दीर्घ निश्वास ली।

पामीला ने अपने उत्तर के तीखेपन को मृदुता के आवरण से ढकते हुए कहा :—"अनिष्ट की कल्पना ही दुखदाई होती है। मुझे वास्तव में तुम्हारे इस प्रकार आहत हो जाने से क्लेश है।"

चन्द्रनाथ को सन्तोष नहीं हुआ। उसकी आशा ने उससे अपने मनोभाव को स्पष्ट करने का आदेश दिया। उन्होंने बड़ी दीन दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा :—"पामी, मैं मित्रता के अतिरिक्त कुछ उससे अधिक की आशा करता हूँ। मित्रता तो शुष्क और और नीरस भी हो सकती है, मैं तो उसकी अपेक्षा कुछ विशेष की कामना करता हूँ। मैं उसको पाने के लिए लालायित हूँ, जो एक रमणी दे सकती है।"

पामीला ने कुछ सोचते हुए कहा :—"रमणी का जीवन एक वणिक का जीवन है, और किसी वस्तु का देना य न देना उसकी नहीं उसके ग्राहक की इच्छा पर निर्भर करता है ग्राहक जब किसी वस्तु की कामना करता है तब वह उसको प्राप्त करने के लिए एक निश्चित मूल्य देता है।"

चन्द्रनाथ ने प्रसन्न होते हुए कहा :—"मैं वह मूल्य देने को तैयार हूँ। खाली चेक पर हस्ताक्षर करके दे सकता हूँ, मनमानी रकम लिखने का अधिकार भी तुमको दे सकता हूँ।"

पमीला ने हँसते हुए कहा :—"मूर्ख, रमणी का हृदय रुपयों से नहीं खरीदा जा सकता।" पामीला का ईषत् हास्य व्यंग्य की कर्कशता से झंकरित हो गया। चन्द्रनाथ उसकी ओर विकल और असहाय दृष्टि से देखने लगे।

पामीला ने पुनः कहा :—"तुम पूँजीपति हो न। तुम हरएक वस्तु का मूल्य अपने रुपया आना पाई से आँकना चाहते हो। तुम्हारी यही भूल है, संसार की कुछ वस्तुएँ रुपए के शासन से बाहर होती हैं। तुम पुरुष हो, पौरुष तुम्हारी प्रकृति है। स्नेह और प्रेम यह तो ब्रह्माण्ड की सबसे कोमल वस्तुएँ हैं; इनको प्राप्त करने के लिए इनके जैसा ही मृदु और नम्र होना पड़ता है। पूँजी केवल अहंकार को जन्म देती है, और अहंकार कलान्तर में पौरुष की वृद्धि करता है। चन्द्रनाथ, एक पूँजीपति प्रेम नहीं कर सकता, वह केवल अपना स्वार्थ साधन करना जानता है, और वह भी अपनी पूँजी के बल से।"

पामीला चुप होकर चन्द्रनाथ का मुख निरीक्षण करने लगी, जो धीरे-धीरे विवर्ण होता हुआ नेत्रों को विस्फारित और निस्तेज बना रहा था।

पामीला ने दूसरा आघात किया। वह कहने लगी :—"तुम सोचते होगे चन्द्रनाथ, कि यह रमणी कितनी अकृतज्ञ है। मेरे अमूल्य उपहारों का कैसा बदलाचुका रही है। तुम्हारा कितना उपहास कर रही है।" व्यंग्य की खरखराहट से वह कमरा भी ध्वनित हो गया।

चन्द्रनाथ मौन थे, उनके मन के प्राँगण में आवेश और अहंकार में द्वन्द्व युद्ध हो रहा था। पामीला उसको लक्ष्य कर पुनः बोली :—"इस समय क्रोध तुमको अपनी मूर्खता पर हो रहा है चन्द्रनाथ। तुमने अपनी पूँजी के बल से एक रमणी को पहले भी खरीदना चाहा था, किन्तु उसने भी तुम्हें ठुकरा दिया था, और ठुकरा दिया था तुम्हारी पूँजी को, जिसको प्राप्त करने के लिए तुमने अपने को शैतान के हाथों बेच दिया था। चौंकते क्यों हो? रमणी की बुद्धि ऐसे मामलों के लिए बड़ी प्रखर प्रमाणित हुई है। घटनाओं पर अवलम्बित अनुमान सदा सत्य होता आया है। किन्तु तुम उस पर जब विजय प्राप्त नहीं कर सके, तब तुमने मुझको अपना लक्ष्य बनाया और मेरी पूजा आभूषणों से करने लगे।

मेरे पिता उसमें कुछ लुब्ध हो गए, क्योंकि पूँजी से उनको भी वैसा ही प्रेम है जैसा प्रत्येक पुरुष को होता है। मैं तुम दोनों की स्वार्थ-परता का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही थी। एक रमणी को आधार बनाकर तुम दोनों अपनी-अपनी कूट अभिसन्धियों को पूर्ण करने में निरत थे। पुरुष मात्र ही अपने को नारी जाति के शोषण का अधिकारी समझते हैं, और सम्बंध की गुरुता को भी भूल जाते हैं। यह बात तो प्रत्येक स्वार्थान्ध के विषय में सत्य है। मैंने पिता की कमजोरी को उसकी सन्तान होने के नाते क्षमा किया, और तुम्हारी कमजोरी को एक मूर्ख के नाते क्षमा करती आई हूँ। किन्तु आज तुम जब अपनी परिधि के बाहर जाने लगे तो आवेश में मैंने भी सारी वस्तु स्थिति प्रकट कर दी। यह मैं स्पष्ट बता देना चाहती हूँ चन्द्रनाथ, कि तुमको मैं एक मूर्ख मित्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं मान सकती। आशा है तुम मुझको क्षमा करोगे। मैं स्वीकार करती हूँ कि तुम्हारी ऐसी दयनीय अवस्था में मुझको यह सब बातें कहकर दुःखी करना उचित नहीं था, किन्तु घटना स्त्रोत तो मेरे अधिकार में नहीं है। मैं बराबर आकर तुम्हारी खोज खबर लिया करूँगी। अच्छा अब जाती हूँ।"

यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गंभीर मुद्रा से पार्माला चली गई। चन्द्रनाथ के मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकली और वह आँखें बन्द कर सोचने लगे।

पामीला के जाने के कुछ ही देर पश्चात् देवकीनन्दन ने उसके कक्ष में प्रवेश किया। किसी देवता को सामने देखकर जितना आश्चर्य किसी एक मानव को होता है, उससे भी अधिक चन्द्रनाथ को हुआ। वह विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर निहारने लगे।

देवकीनन्दन ने कुर्सी को उनकी शैया के समीप खींच कर बैठते हुए कहा :—"चन्द्रनाथ, आज तुम से मैं कुछ बातें करने आया हूँ।"

उनके स्वर की गंभीरता ने उसको सावधान होने की चेतावनी दी। उसके पिछले कार्यों से उत्पन्न हुआ भय उसकी आँखों से झाँकने का प्रयत्न करने लगा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

देवकीनन्दन ने तीव्र दृष्टि से देखते हुए कहा :—"चन्द्रनाथ, तुम अपने को संसार का एक बहुत बड़ा कुशल, बुद्धिमान और चालाक व्यक्ति समझते हो। तुमको विश्वास है कि तुम्हारी अभिसन्धियों को कोई अन्य जान न पावेगा, और तुम बड़ी खूबी से संसार की आँखों में धूल डाल सकते हो तुमने वही किया भी, और उसमें तुम सफल भी हुए। यद्यपि सफलता तुमको एक बहुत बड़े अंश तक प्राप्त हुई है, तथापि कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो तुम्हारी अभिसन्धियों को भली-भाँति समझते हुए भी बिधि का विधान समझकर बोलते नहीं। तुमने

जिस प्रकार मेरे चाचा की सम्पत्ति अपहरण की, वह मुझे विदित है, परन्तु कनक के त्याग के कारण मुझे भी चुप रहना पड़ा। चाचा की सम्पत्ति से कहीं अधिक सम्पत्ति मेरे पास है, और मैं उसे बड़ी सुगमता से उसको दे सकता हूँ, इसलिए भी चुप रहा, और इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा कारण मेरे चुप रहने का यह था कि मैं देखना चाहता था कि तुम में दौड़ने की शक्ति कहाँ तक है ? तुमने जिस प्रकार कनक को अपने जाल में फँसाना चाहा, उसका भी मुझे आभास है। तुमने मिल-मालिकों का संघ बनाकर जिस प्रकार मजदूरों के आन्दोलन को केवल कनक को नीचा दिखाने के लिए कुचलना चाहा उसका भी ज्ञान मुझको है, तुम जिस प्रकार यहाँ के जिलाधीश मिस्टर निक्सन को लोभ देकर अपना उल्लू सीधा करते हो, उसकी भी जानकारी मुझको प्राप्त हुई है। अभी तक मैंने तुम्हारे आक्रमणों को सहन किया है, अब मैं तुम्हें सचेत करने आया हूँ कि तुम अपने कर्मों की प्रतिक्रिया सहने के लिए तैयार हो जाओ।"

चन्द्रनाथ का हृदय काँप रहा था। संसार के किसी मनुष्य से यदि उसे भय था तो वह देवकीनन्दन थे। उनके प्रशान्त आवरण के नीचे उनकी कुशाग्र बुद्धिमत्ता को जानता था, और इसीलिए उसने वामनदास के जाली बिल में सम्पत्ति का एक भाग उनको दिया था। उसके मुख की विवर्णता उसके मानसिक उथल-पुथल की सूचना दे रही थी। उसने धीमे स्वर में कहा:—"आप यह क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आता। आपको और कनक जी को मैं पहले की भाँति देखता हूँ, और वैसा ही समझता भी हूँ। मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। कि कनक जी का मैं कोई अनिष्ट करूँ, और इसीलिए मैंने स्वर्गीय वामनदास जी के बिल को कई महीने तक प्रकाशित नहीं किया.......।"

बीच ही में देवकीनन्दन ने कहा :—"हाँ, जब तुमको कनक ने निराशकर दिया, तब तुमनें बिल को प्रकाशित किया ?"

चन्द्रनाथ ने अपने भय को दबाते हुए कहा :—"नहीं यह बात नहीं है। यों तो कौन ऐसा है जो कनक की ओर आकृष्ट न हो, किन्तु मेरे मन में ऐसी कोई दुर्भावना नहीं थी। वे बार-बार मेरा अपमान करती थीं, और उससे मुझे पर्याप्त उत्तेजना मिलती थी। मैंने उनको वास्तविक स्थिति समझाने के विचार से बिल की बातें कहदी, और उन्होंने उस दिन से सारी सम्पत्ति ही त्याग दी मैंने न मालूम कितना आग्रह किया, किन्तु उन्होंने मेरी एक बात भी न सुनी। हाँ, यह मैं अवश्य स्वीकार करता हूँ कि मैंने मजदूर आन्दोलन के विरुद्ध 'मिल-मालिक संघ' की स्थापना की है और उसको कुचलने का प्रयत्न भी किया है। यह सब मैंने आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर किया है। बिल की यथार्थता के विषय में आपका अनुमान सर्वथा गलत है, मैंनें धन हस्तगत करने के लिए

अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया। आपके चाचा स्वयं दे गए थे।"

देवकीनन्दन ने भृकुंचित करके कहा:—"चाचा की औरस कन्या कनक नहीं है, इसका ज्ञान तो मुझे भी कभी नहीं हुआ, और उन्होंने इसका कभी मुझसे या किसी अन्य से कोई जिक्र ही किया।"

चन्द्रनाथ ने गंभीरता के साथ कहा:—"इसका भेद मेरे अतिरिक्त और कोई जानता भी नहीं।"

देवकीनन्दन ने व्यंग्य पूर्ण स्वर में कहा:—"क्योंकि यह भेद की कहानी केवल तुम्हारी मन गढ़न्त है। क्यों?"

शब्द की तीव्रता ने चन्द्रनाथ के भय को जाग्रत कर दिया। उसने उसे दमन करने की चेष्टा करते हुए कहा:—"जब आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तब कहने से कोई लाभ नहीं है।"

चन्द्रनाथ ने नेत्र नतकर लिए। देवकीनन्दन ने हँसते हुए कहा:—लेकिन फिर भी मैं सुनना चाहता हूँ।"

चन्द्रनाथ ने उत्तर दिया:—"आपके चाचा के चरित्र से सम्बंधित है इसलिए उसको सुनकर आपको प्रसन्नता नहीं होगी।"

"प्रसन्न होने के लिए मैं नहीं आया हूँ, चन्द्रनाथ। मैं भेद जानने के लिए आया हूँ।" देवकीनन्दन ने व्यंग्य के साथ कहा।

चन्द्रनाथ ने कहा:—"अच्छा सुनिए। यदि आपको विश्वास न होगा तो मैं प्रमाण भी उपस्थित करूँगा। आपके चाचा का नैतिक चरित्र कितना गिरा हुआ था वह तो अब सबको मालूम है। आज से कई वर्ष पहले की बात है जब आपकी चाची राज्यक्षमा से पीड़ित होकर पहाड़ों में रहने के लिए गई थीं। उस समय उनकी सेवा सुश्रूषा के लिए एक नर्स रखी गई थी। पहाड़ों के स्वस्थकर जलवायु से आपकी चाची की अवस्था सुधरने लगी, और उन्हीं दिनों वे गर्भवती हुईं। इन्हीं दिनों आपके चाचा का सम्बंध उस नर्स से हो चुका था। आपकी चाची की शारीरिक अवस्था फिर बिगड़ने लगी और रोग ने पुनः जोर पकड़ा। उधर आपकी चाची के प्रसव के दिन समीप आ रहे थे। समयानुसार आपकी चाची के सन्तान हुई, जो अभाग्यवश मृत हुई थी। प्रसवकाल में आपकी चाची की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। नर्स ने यह चेतावनी दी कि यदि उनको अपनी सन्तान के मरने का हाल मालूम हो जायगा तो संभव है कि उनके हृदय की गति बन्द हो जाय, और मृत्यु हो जावे। अतएव उन दोनों ने यह तय किया कि कोई सद्यजात् बालक या बालिका प्राप्य हो जाय तो उसको उनकी सन्तान घोषित कर दिया जाय। नर्स की एक बहन के एक दो दिन पहले एक कन्या उत्पन्न हुई थी। उसने उसका हाल कहा:—और वह उससे खरीद ली गई, और

वही आपकी चाची को उनकी गर्भजात सन्तान बनाई गई । पालन-पोषण के बहाने उसकी प्रकृत माता को भी नर्स के रूप में रख लिया । यह भेद सिवाय उन दोनों नर्सों के और किसी अन्य को नहीं मालूम हुआ । उसके पश्चात् आपकी चाची स्वस्थ भी हो गई, और उन्होंने उस कन्या को जो वास्तव में यह कनक थी, अपनी ही गर्भजात सन्तान समझा, और उसी प्रकार पालन भी किया। यही रहस्य ज्यों का त्यों छिपा ही रह गया । इसी लिए आपके चाचा ने उसको सम्पत्ति नहीं दी ।"

देवकीनन्दन ने तीव्रता के साथ पूछा :—"और आपको इसका भेद कैसे मालूम हुआ ।"

चन्द्रनाथ ने सहज स्वर में कहा :—"स्वयं वामनदास जी के कहने से । जब विल का मसविदा लिखने को मुझे आदेश दिया, और मैं कनक के नाम सब सम्पत्ति देने को लिखकर लाया, तब उन्होंने यह वास्तविकता प्रकट की, और साथ ही एक दूसरा भेद भी बताया, परन्तु उसको कहने से कोई लाभ नहीं क्योंकि आपको विश्वास नहीं होगा ।"

चन्द्रनाथ ने यह ऐसे कण्ठस्वर से कहा, जो सुनने वाले के मन में उत्सुकता उत्पन्न करे ।

देवकीनन्दन ने पूछा :—"नहीं, वह भेद भी बता दीजिए, जब इतनी गोपनीय बातें आपने बताने की कृपा की है, तब यही भेद आप क्यों छिपाए रहें, इसको भी कह डालिए ।"

उनके शब्दों में अविश्वास बिखरा जा रहा था ।

चन्द्रनाथ ने मलिन हास्य के साथ कहा :—"आपको विश्वास तो होगा ही नहीं फिर कहने से लाभ ।"

देवकीनन्दन :—"विश्वास करने का वचन देना मैं उचित नहीं समझता, परन्तु सुनना अवश्य चाहूँगा । चन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि यदि वह नहीं कहता तो फिर उसको ऐसा सुयोग शायद कभी प्राप्त न हो, इसलिए उसने कहा :—"आप मेरे भाई हैं, आपका कहना मानना ही पड़ेगा । वास्तव में मैं आपका बड़ा भाई हूँ । मैं स्वर्गीय वामनदास की सन्तान हूँ। जब बम्बई में वे रहते थे तब उन्होंने मेरी माता के साथ गुप्त-विवाह किया था । अपनी स्त्री के भय से उन्होंने कभी यह बात प्रकाशित नहीं की, और न कभी इसका किसी से जिक्र ही किया । मेरी माँ की मृत्यु होने के पश्चात् उन्होंने मुझे इंगलैंड शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया, और मैं वहाँ कई वर्षों तक रहा । लौटने पर उन्होंने मुझे अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में रख लिया, और कार्य सिखाना आरम्भ किया। मेरी मां आपके जाति की न होने के कारण वह सम्बन्ध प्रकाशित करने

करने के लिए सदैव संकोच करते रहे। मैं उनको पीड़ित करना नहीं चाहता था, अतएव मैंने इसी भाँति रहना स्वीकार किया। जब विल का समय आया तब उन्होंने इस अन्याय को अनुभव किया, और कहा था :—"कि नाम से तो तुमको मैंने वंचित कर दिया, अब धन से वंचित नहीं करूँगा।" इसलिए उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति मुझको दी है, और कनक जो उनकी कोई नहीं थी, खरीदने और पालने के नाते उसके विवाह आदि की व्यवस्था की है।"

देवकीनन्दन ने उठते हुए कहा:—'अच्छा, यह भेद अभी तक आपने क्यों छिपा रक्खा ?

उनके स्वर में व्यंग्य की कर्कशता थी।

चन्द्रनाथ ने म्लान हास्य के साथ कहा:—"मेरे पास इससे भी अकाट्य प्रमाण है। आपके चाचा के हाथ के लिखे हुए कितने ही पत्र हैं, जिनमें मेरा वर्णन है, और वे पत्र मुझको अपनी माँ से प्राप्त हुए थे। आप लोग कभी मुझे ग्रहण न करेंगे, यह बात उनको ज्ञात थी, और मुझे भी। इसलिए न कभी उन्होंने प्रकट होने दिया और न मैंने ही प्रकट किया। आज कहना पड़ा। मैं जानता हूँ कि आप कभी मुझे अपना बड़ा भाई स्वीकार नहीं करेंगे, इसीलिए उन मिलों में जिनमें आपके साथ भागीदारी थी, आपको ही देने के लिए उनसे अनुरोध किया था। मुझे सन्तोष है कि उन्होंने वैसा ही किया भी।"

देवकीनन्दन ने जाते हुए कहा:—"आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद। शीघ्र ही मिलूंगा।"

उनके जाने के पश्चात् भी व्यंग्य उस छोटे से कक्ष में झंकरित होकर चन्द्रनाथ को शंकित कर रहा था।

८

जेल के अन्दर ही कनक का मुकद्दमा आरम्भ हुआ। नगर के समाचारपत्रों ने इसकी कड़ी आलोचना की और मजदूर सभा ने खुली अदालत में सुनवाई करने की माँग की, परन्तु उसका कुछ प्रभाव न हुआ। सरकार अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार काम कर रही थी, और सब प्रकार के प्रतिरोध से भी सामना करने को प्रस्तुत थी। देवकीनन्दन ने अनेकों प्रयत्न किए, पत्रों में लेख प्रकाशित कराए, और स्वयं भी मिस्टर निक्सन से मिलने गए, परन्तु सब निष्फल हो गया। मिस्टर निक्सन ने बड़ी मृदुता के साथ अपनी असमर्थता प्रकट की। कनक से मिलने की आज्ञा मांगी, तब प्रांतीय सरकार के सेक्रेटरी की आज्ञा दिखा दी जो मजदूर आन्दोलन में भाग लेने वाले कार्यकर्ताओं के सम्बंध में थी। मिस्टर निक्सन के विरुद्ध उनको कोई शिकायत नहीं रह गई। उन्हें विश्वास हो गया कि सारी कार्रवाई प्रांतीय सरकार के आदेश से की जा

रही है।

मजदूरों में असन्तोष बढ़ रहा था। कनक की गिरफ्तारी से आन्दोलन को अपरिमित हानि हुई थी, और संघर्ष की आवाज पुन: उठने लगी थी। वाम-पक्ष दिन-पर-दिन जोर पकड़ रहा था और सरकार से मोर्चा लेने की तैयारियां आरम्भ होगई थीं। मिल-मालिकों के प्रति उनका द्वेष दिन-पर-दिन बढ़ रहा था, और हड़ताल के स्थान पर वे उपद्रव करने पर तुले हुए थे। यद्यपि उन्हें ज्ञान था कि उनकी क्षुद्र शक्ति सरकार की कोई हानि नहीं कर सकती, तथापि वे उसको यथाशक्ति हानि पहुँचाने के लिए कटिबद्ध थे। जीवन का मोह एक प्रकार से छोड़ चुके थे, और अपने नेता के लिए प्राण देकर अपनी स्वामिभक्ति और प्रेम का दिग्दर्शन कराना चाहते थे। उनमें से कितने ही कनक को सरकार से जबरन छुड़ा लेने का स्वप्न देख रहे थे, और कितने ही विध्वंसकारी अस्त्रों के सन्धान में थे। वे क्राँति करने की सोच रहे थे, और इसी विचार से उन्होंने क्रान्तिकारी दलों की खोज करना आरम्भ कर दिया।

देवकीनन्दन और उर्मिला सशंकित होकर उनकी तैयारी देख रहे थे। उन्होंने बहुत समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वह सब निष्फल गया। उनकी कोई भी बात मानने को तैयार नहीं थी। कनक के पश्चात् यद्यपि नेतृत्व उर्मिला के हाथों में आ गया था परन्तु उसकी उसी भाँति उपेक्षा की जा रही थी जिस प्रकार वयस्क अपने से छोटों की करते हैं। वे सब उसके अनुशासन से बाहर हो रहे थे। देवकीनन्दन के प्रति भी उनकी जाग्रत नहीं होती थी। उनकी माँग थी कि कनक का मुकद्दमा खुली अदालत में होना चाहिए, परन्तु उसको कार्यान्वित कराना किसी के अधिकार की बात नहीं थी। एक सबसे बड़ा यही कारण था कि मजदूरों को अपनी शक्ति पर निर्भर होना पड़ रहा था। जिस दिन मुकद्दमे की कार्यवाही आरम्भ होने का समाचार मिला उस दिन मिलों में हड़ताल हो गई। संघर्ष का यही श्रीगणेश था, और अधिकारियों ने सर्वत्र सशस्त्र पुलिस का पहरा लगा दिया था। नगर में १४४ दफा लगा दी गई, परन्तु इससे मजदूर माने नहीं, और चार-चार व्यक्तियों की टुकड़ी बनाकर जेल की ओर जाने लगे। जेल के द्वार से सौ गज से अधिक दूरी पर सशस्त्र घुड़सवार पुलिस का पहरा था, और किसी को उधर से आने जाने की निषेधाज्ञा प्रचारित कर दी गई थी। मजदूरों के समूह गंगातट पर इकट्ठा होने लगे, पुलिस को अवसर मिला, और उनका एक सशस्त्र दल घाट की नाका बन्दी करने के लिए आ गया। स्वयं जिलाधीश मिस्टर निक्सन घूम-घूम कर सारा प्रबंध निरीक्षण कर रहे थे।

मजदूरों की भीड़ के पास खड़े हुए देवकीनन्दन को मिस्टर निक्सन ने बुलाकर कहा :—"आप तो बामनदास सेठ के भतीजे हैं, स्वयं कई मिलों के

मालिक हैं, फिर मैं कैसे आपको इन मजदूरों के बीच में देख रहा हूँ ?" देवकीनन्दन के पीछे-पीछे उर्मिला भी चली आई थी। उसकी ओर देखते हुए उसने फिर कहा:—"यह महिला कौन है ? ऐसा मालूम देता है कि मैंने इसे कहीं देखा है।"

देवकीनन्दन ने उत्तर दिया:—"आपको तो मालूम ही है कि मिस कनक मेरी चचेरी बहन हैं। जब बहन मजदूरों का नेतृत्व कर रही है, तब उसका भाई क्या उससे दूर जा सकता है।"

मिस्टर निक्सन ने घोड़े को थपथपाकर ठहरने का आदेश देते हुए कहा:—"तब ये मजदूर आपके ही इशारे पर यहाँ इकट्ठे हुए हैं, और हड़ताल करा कर युद्ध प्रयास में रोड़े अटकाने का उत्तरदायित्व आप पर है।"

देवकीनन्दन:—"यदि आप ऐसा—समझते हैं मेरी भी गिरफ्तारी की आज्ञा प्रदान कीजिए। हम में से हरएक व्यक्ति इसके लिए तैयार है।"

मिस्टर निक्सन का भ्रू-कुँचन दूसरे ही क्षण मधुर हास्य में परिणत हो गया:—"नहीं, मुझे तो विश्वास नहीं होता, । आप जैसे शिक्षित व्यक्ति ऐसा अशोभनीय कार्य नहीं कर सकते। सरकार आपकी बड़ी आभारी होगी यदि आप इन मजदूरों को समझा बुझा कर ले जायं, नहीं तो कुछ उपद्रव हो जाने पर गोली चलाने के लिए सरकार को बाध्य होना पड़ेगा। कृपा करके आप मध्यस्थ बन कर इनको घर भेज दें, और कल से काम पर जाने की व्यवस्था कर दीजिए।"

उर्मिला से विना बोले नहीं रहा गया। वह बोल उठी:—"मजदूर केवल एक बात चाहते हैं, और वह माँग उनकी नियमानुकूल भी है। कनक दीदी का मुकदमा खुली अदालत में होने दीजिए।"

मिस्टर निक्सन ने पुनः भ्रू-कुंचित करते हुए पूछा:—"यह कौन औरत है मिस्टर।"

उसके स्वर में तिरस्कार, घृणा, उपेक्षा थी जो प्रत्येक अंग्रेज के मन में भारतीय पुरुषों और स्त्रियों के प्रति रहा करती है। उसकी उद्धतवाणी ने देवकीनन्दन को उत्तेजित कर दिया, किन्तु परिस्थिति को समझ कर उसको दमन करते हुए कहा:—"यह अभागिनी रामनाथ की पत्नी है।"

निक्सन ने बड़े ध्यान से उर्मिला को देखते हुए कहा:—"अच्छा, इस समस्त नाटक की सूत्रधार यही हैं। उफ, मैंने बड़ी भारी भूल की जो इनको स्वतंत्र छोड़ दिया है।"

उर्मिला ने जोश के साथ कहा:—"आप अभी भी अपनी भूल सुधार सकते हैं। संसार में अब अपना कहने को क्या रह गया है ? यदि मुझे गिरफ्तारी

ही नहीं किसी बहाने फाँसी की सजा दी जावे तो मैं अपना बड़ा भाग्य मानूँगी, और उस मनुष्य को जो ऐसा सुख-दण्ड निर्धारित करेगा, असंख्य धन्यवाद तथा हार्दिक आशीर्वाद दूँगी।"

निक्सन चकित होकर उस भारतीय बाला की ओर देखने लगा। फिर पूछा :—"तुम क्या दूसरा विवाह नहीं करोगी ? इस जन्म में तो रामनाथ तुमको मिल नहीं सकता।"

उर्मिला का श्वेत मुख आरक्तिम हो गया। उसने तीव्र कण्ठ से कहा :—"आप जिलाधीश हैं, और दूसरे विदेशी हैं। यदि ऐसी बात किसी दूसरे ने कही होती तो......।"

निक्सन का शैतान प्रसन्न हो रहा था। उसने बात काटकर कहा:—"जरा यह सुन लूँ कि तुम क्या करती ?"

उर्मिला ने आवेश के साथ कहा :—"भारतीय स्त्रियों का विवाह केवल एक बार ही हुआ करता है, और वे अपने अपमान का बदला या तो प्राण लेकर करती हैं या प्राण को त्याग कर करती हैं। भारतीय नारी मरना जानती है, और जो मरना जानती है वह ......।"

निक्सन ने हँसते हुए कहा :—"मारना भी जानती है। अच्छा तुमने भी हत्याकारिणी प्रवृत्ति अपने पति से पाई है। मैं बहुत शीघ्र ही इसका प्रबंध करूँगा। तुमको स्वतंत्र रखकर नगर की शांति खतरे में न डालूँगा।"

यह कर निक्सन घोड़े को ऐड़ लगा कर चला गया। उसके जाने के पश्चात् देवकीनन्दन ने कहा :—"शाबाश उर्मि, तूने आज बड़े साहस का परिचय दिया है। कनक ने तुम्हारी संकोचवृत्ति को दूर कर तुम्हें एक साहसी बाला बना दिया है। यह बहुत शैतान मालूम होता है, कोई न कोई उपद्रव करेगा। हम दोनों को गिरफ़्तारी का भय दिखा गया है। मजदूर लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि उन्होंने हमें निक्सन से बातें करते देखा है।"

उर्मिला ने गंभीर होकर कहा :—"यदि गिरफ्तार ही हो जाऊं तो फिर सारी आपदायें ही दूर न हो जायं।"

देवकीनन्दन ने कुछ उत्तर नहीं दिया, और चुपचाप चले गए।

६

जब तक कनक का मुकदमा चलता रहा तब-तक कोई विशेष उपद्रव नहीं हुआ। मजदूरों ने सर्वत्र शांति ही रक्खी। परन्तु हड़ताल ज्यों की त्यों चल रही थी। उनमें इतना जोश था कि वे भूखे और प्यासे रहकर प्रतिदिन जेल के समीप गंगातट पर एकत्रित होते और बाहर से नैत्यिक प्रगति को जानने का प्रयत्न करते। देवकीनन्दन और उर्मिला अभी तक उन्हें शान्त रखने में कृतकार्य

हुए थे, परन्तु उनमें असन्तोष दिन प्रति-दिन बढ़ता ही जाता था।

सरकार की सतर्कता में कोई अन्तर नहीं आया था, वरन प्रबंध की उग्रता क्रमशः बढ़ती ही जाती थी। सशस्त्र पुलिस का स्थान फौज ने ले लिया था, और सर्व साधारण के यातायात पर प्रतिबंध लगा हुआ था। मिल-मालिकों ने भी मिलों में ताले डलवा दिए थे। परिस्थिति उत्तरोत्तर चिंता-जनक होती जा रही थी। ऐसा विदित होता था कि संघर्ष शीघ्र ही छिड़ने वाला है।

अन्ततोगत्वा वह दिन आ ही गया, जब कनक के मुकदमे का फैसला सुनाया जाने वाला था। उसने अपनी सफाई में न कोई गवाह उपस्थित करना स्वीकार किया और न किसी वकील के द्वारा पैरवी करना ही। जब उसको अपराध आरोप का पत्र सुनाया गया, तब उसने उन सबको स्वीकार किया, और कहा कि सरकार जिन कार्यों को अविहित समझती है, उन्हें वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानती है। अतएव यदि सरकार की दृष्टि में जन-सेवा, समाज-सेवा करना अपराध है और उससे युद्ध-प्रयास अथवा शाँति व्यवस्था में बाधा पड़ती है तब तो वह अवश्य अपराधिनी है। सरकार अपना कर्तव्य करे और वह अपना।

पामीला ने कनक के साथ साक्षात करने का प्रयत्न किया, परन्तु मिस्टर निक्सन ने उसको भी स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। उन्हें भय था कि कहीं वह भी कनक के प्रभाव में आकर उसकी अनुगामिनी न बने। अगैथा और मिस्टर दोनों उसके मानसिक भावों का चढ़ाव उतार तीक्ष्ण दृष्टि से निरख रहे थे। जिस दिन कनक के मुकदमे का निर्णय सुनाया जाने वाला था, उस दिन पामीला ने अपने पिता के कमरे में प्रवेश करते हुए कहा:—"पापा मैं आपसे एक प्रश्न का उत्तर जानने के लिए आई हूँ।" मिस्टर निक्सन के सामने कनक की फायल थी, और वे उस पर दिए हुए निर्णय को पढ़ रहे थे।

उन्होंने सिर उठा कर बड़ी गंभीरता से पामीला की ओर देखते हुए पूछा:—"क्या जानना चाहती हो?"

उनके स्वर में रुक्षता और वात्सल्य का अभाव था, और विचार की गंभीरता थी। पामीला ने उसे तुरन्त ही लक्ष्य कर लिया, वह भी आज पूर्णतया तैयार होकर आई थी। उसने भी गम्भीर होकर कहा:—"मैं यह जानना चाहती हूँ कि कनक के मुकदमे का क्या फैसला होने जा रहा है?"

मिस्टर निक्सन ने वात्सल्य को दूर ढकेलते हुए कहा:—"पामी, मैं समझता हूँ कि तुम्हें सरकारी मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। राजनीति और राज्य संचालन का उत्तरदायित्व अकेले मेरे उपर निर्भर नहीं करता। इसका संचालन प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें भी नहीं करती।

संचालन सूत्र होता है सेक्रेटरी आफ स्टेट के हाथों से, जो केबीनेट की इच्छानुसार कार्य करता है। यदि वास्तव में देखा जाय तो वह भी स्वतंत्र नहीं है। बैदेशिक नीति की भाँति भारत विषयक नीति पर भी हमारा कोई नियंत्रण या अधिकार नहीं है। अतएव कनक के मुकदमे का भी निर्णय हमारे हाथ में नहीं है। वह निर्धारित नियमों के अनुसार ही दिया जावेगा। यहाँ पर मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उसके विषय में आदेश बहुत पहले प्राप्त हो चुके हैं, और मुकदमे का यह खेल केवल जनता को भुलावा देने के लिए किया गया है, और प्रायः सदैव ऐसा ही होता है। हमारा पहला उद्देश्य है शासन करना, भारत को पंगु और निर्बल बनाए रखना, जिससे हमको उसके शोषण करने का अवसर मिलता रहे। बस इसी मौलिक नियम की भित्ति पर हमारी सारी नीति अवलंबित है। हम शासन देशवासियों के कल्याण की भावना से नहीं करते, उनकी भौतिक उन्नति के लिए नहीं करते, उनके दुख और दरिद्रता को दूर करने के लिए नहीं करते, बल्कि हम शासनकरते हैं अपने लाभ के लिए और संसार में अंग्रेज जाति का प्रभुत्व स्थापित रखने के लिए। हमको यहाँ के निवासियों के साथ सहानुभूति करके अपने देश के साथ विद्रोह और विश्वास-घात करने का कोई अधिकार नहीं है। हमारा कर्तव्य पहले स्वदेश और राजमुकुट की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने का है। यदि हम इस नीति का पालन सदैव करते रहते हैं तो यहाँ की जनता पर किए हुए हमारे अत्याचार सरकार की दृष्टि में हमें सफल शासक बनाते हैं, और हमारी पदोन्नति उत्तरोत्तर होती रहती है। कदाचित कोई अंग्रेज शासक भावुकता से कार्य करता है-भावुकता से अर्थ मेरा न्याय से है, क्योंकि वह न्याय विधान जो दण्ड से शून्य है, अथवा जिसमें उन्नत कराने की भावना भरी है, तब वह भावुकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तब उसको सदैव कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उसको किसी न किसी बहाने शासन-तंत्र से हटा लिया जावेगा, और ऐसे स्थान पर भेज दिया जावेगा, जहाँ उसका सम्पर्क जनता से न हो सके। पामी, मैं उसी भावुकता का शिकार होने के लिए तैयार नहीं हूँ। मेरे सामने उन्नति का मार्ग खुला हुआ है, मैं उस ओर प्रस्थान करूँगा, या तुम्हारी भाँति भावुक होकर अपने देश अपनी जाति और स्वयं अपने साथ विश्वास-घात करता हुआ अवनति के गह्वर में गिर पड़ूँ। आगामी नव-वर्ष के उपलक्ष में मुझे सरकार की ओर से उपाधि मिलने वाली है, सम्भव है पदोन्नति भी हो, किसी प्रांत का गवर्नर भी बनाया जा सकता हूँ, सेक्रेटरी आदि भी हो सकता हूँ। मेरी उन्नति के साथ तुम्हारा भी सामाजिक स्तर बढ़ेगा। तुम में यदि गुण हों समय और अवसर से लाभ उठाने का विवेक हो तो तुम अनायास ही उन्नति कर सकती हो। संभव है कि तुम किसी गवर्नर की या

सेनापति की पत्नी हो सकती हो। न कभी मैं भावुक रहा हूँ और न उसको प्रश्रय ही देना चाहता हूँ। भावुकता वह मीठा विष है जो मनुष्य को अकर्मण्य और पंगु बना देता है। स्त्रियाँ, विशेषकर अशिक्षित स्त्रियाँ इसके जाल में फंस जाती हैं और फिर अपना सब कुछ खोकर कंगाल होकर रोती हुई जीवन व्यतीत करती हैं इसको अभिशाप समझ कर दूर ही से प्रणाम करो, और तथ्यों के संसार में कर्मिष्ठ होकर प्रवेश करो। सबसे पहले अपना स्वार्थ जिसे उद्देश्य भी कहते हैं, उसकी येन-केन प्रकारेण पूर्ति का उपाय करो, क्योंकि संसार में मनुष्य अकेला होकर उत्पन्न हुआ है, अतएव उसकी उन्नति अथवा अवनति केवल उसी के प्रयास पर निर्भर करती है। तुम कनक से प्रभावित हुई हो? इसको स्वीकार करने में तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। एक क्षुद्र भारतीय भिखारिणी के लिए तुम कातर होती हो, जिसको केवल पशुओं की भाँति जीवन निर्वाह करने का अधिकार है।"

मिस्टर निक्सन अपनी बातों का प्रभाव आंकने लगे।

पामीला ने खिन्न होकर उत्तर दिया:—"पापा मैं यह सब सुनना नहीं चाहती। क्या कनक के मुकद्दमे के सम्बंध में ऊपर से आज्ञा प्राप्त हो गई है।"

निक्सन ने बड़ी मृदुता के साथ कहा:—"नहीं, मेरी प्यारी बेटी, किसी व्यक्ति विशेष के लिए स्पष्ट आदेश प्राय: प्राप्त नहीं हुआ करते। नीति की एक रूपरेखा ही आदेश रूप में प्राप्त हुआ करती है, जिसको अधार बनाकर परिस्थिति के अनुसार निर्णय करना होता है। इस मजदूरों के आन्दोलन को और मजदूरों को कुचलने के लिए आदेश प्राप्त हो चुके हैं। अब चूँकि कनक इस आंदोलन की सूत्रधार है अतएव उसको पंग बना देना हमारा कार्य है। हम कठिन-से-कठिन सजा देने के लिए स्वतंत्र हैं, परन्तु उसे छोड़ने के लिए अथवा उस आँदो-लन को जीवित बनाए रखने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। हमारी रीति-नीति तो उसी विशाल रूप रेखा के अनुसार बनानी ही पड़ेगी। भारतीय आन्दोलन कर रहे हैं स्वतंत्रता प्राप्त करने का, उनका विचार है कि जपान के आक्रमण के साथ-साथ वे यहाँ भी विद्रोहाग्नि प्रज्वलित करेंगे। हम लोग यदि सचेत होकर नहीं रहेंगे और इस उठने वाले विद्रोह का दमन पहले से ही नहीं करेंगे तो हमारी स्थिति भयावह हो जायगी, और शायद सिंगापुर, मलाया, बरमा की भाँति हमें भारत भी छोड़ना पड़ेगा। हम इस समय किसी प्रकार की शासन में ढील नहीं दे सकते। क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि मजदूरों की हड़ताल से युद्ध प्रगति में कितनी हानि पहुँच रही है? औद्योगिक केन्द्र होने के नाते युद्ध प्रयास के क्षेत्र में कानपुर का एक विशिष्ट स्थान है। मेरे पास प्रांतीय सरकार के आदेश आ रहे हैं कि यह हड़ताल

समाप्त की जावे । बिना रक्त-पात के यह काम सहज में होता नहीं दिखाई पड़ता । विद्रोहियों का नाश किये बिना शांति और व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती । मुझे उपद्रव के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं, और शायद आज ही आरम्भ हो जायगा ! कनक के मुकद्दमे के फैसले के साथ ही विद्रोही अस्थिर हो जायंगे और उससे लाभ उठाना हमारे सी. आई. डी. का काम है । वे मजदूर बन कर उपद्रव आरम्भ कर देंगे, और जब तिनकों के ढेर में एक कोने में आग लग जाती है, तब वह सबको जलाकर ही बुझती है । तुम रक्त-पात के नाम से काँप उठती हो । एक शासक जाति की बाला को यह सिहरन शोभा नहीं देती, वह उस क्षेत्र में जहाँ तोपों की गड़गड़ाहट होती है, वायुयानों से बमों की वर्षा होती है निर्भीक होकर विचरण करती है, शत्रुओं की रक्त की धारा में विनोद पूर्ण क्रीड़ा करती है, उसके मन में शासितों के प्रति दया, ममता, आदि भाव जाग्रत नहीं होते । वह उनके लिए बालू की भाँति सबल और जल की भाँति डुबा देने वाली होती । ऐसी ही स्त्रियां शासन करती हैं और जो सन्तान उनसे उत्पन्न होती है, वह भी जन्म से ही शासक ही होकर पैदा होती है । इंगलैंड की रमणियाँ वीर-प्रसू हैं, भीरू-प्रसू नहीं । तुम्हारी यह भीरुता सर्वथा अशोभनीय है । आशा है कि मेरे बातों पर गम्भीरता के साथ विचार करोगी ।"

इसी समय चपरासी ने लाला कंचनलाल के आगमन की सूचना दी ।

मिस्टर निक्सन ने पामीला को बाहर जाने का संकेत किया । वह सोचती हुई चुपचाप कमरे के बाहर चली गई ।

लाला कंचनलाल ने आकर अभिवादन किया । उसके हाथ में एक अटैची थी जिसको वे सावधानी के साथ लिए हुए थे । निक्सन ने स्वागत में मुस्कराते हुए पूछा :—"कहिये सेठ जी, सब कुशल तो है ।"

लाला कंचनलाल ने बेतकुल्लफी के साथ एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा :—"आजकल कुशल तो हमलोगों से कोसों दूर है । मिलों में ताले पड़े हुए हैं, मजदूर हमारी जान लेने के उपाय कर रहे हैं और सरकार कानों में तेल डाले बैठी है ऐसी परिस्थिति में कुशलता के समाचार पूछना मानों जले पर नमक छिड़कना है ।"

उनके स्वर में आत्मीयता की वह झलक थी जो बड़ों के प्रति छोटों के उपालंभ में हुआ करती है ।

रिश्वत का रुपया कितनी शीघ्रता से बड़ों का बड़प्पन खोकर उन्हें नीच बनाने में समर्थ होता है, इसका प्रत्यक्ष-प्रमाण देते हुए मिस्टर निक्सन ने कहा :—"सेठ, तुमलोग बिना भेंट पूजा के मुफ्त में ही अपनी गोट लाल करना चहाते हो ।"

लाला कंचनलाल ने हँसकर कहा :—"पुजारी को भेंट चढ़ाये बिना वह विशिष्ट प्रसाद भला कब देगा। इसके अतिरिक्त देव-मन्दिर में खाली हाथ कोई नहीं आता। बोलिए आप कितनी भेंट से प्रसन्न होंगे ?"

मिस्टर निक्सन ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा :—"यह कहो पहले कि इस अटैची में तुम कितना लाये हो, यह तुमको समझ लेना चाहिए कि मामला बहुत गम्भीर है। मेरे एक संकेत से तुम्हारी सारी आपदायें दूर हो सकती हैं, तुम्हारी कमाई का मार्ग युद्ध-कालभर के लिए निरापद और निर्विघ्न हो सकती है, और मेरे एक साधारण मौनावलम्बन से तुम लोगों का अस्तित्व ही जड़-मूल से नष्ट हो सकता है।"

लाला कंचनलाल की परिस्थिति गम्भीरता में विलीन हो गई। उसने अटैची से नोटों का पुलिन्दा निकालते हुए कहा :—"ये दस लाख रुपये हैं, इनको स्वीकार कीजिये, और मजदूरों की हड़ताल समाप्त करिए।"

मिस्टर निक्सन ने रुपयों को नहीं छुआ। उसने शुष्कता के साथ कहा :—हजारों मजदूर आदमियों के खून का मूल्य केवल दस लाख रुपया। यह तो बहुत कम है, कार्य के सम बिलकुल नगण्य है। आदमी जूठन केवल मीठे के के लालच से खाता है। मैंने सब उपाय कर देख लिए हैं, हड़ताल सहज-ही समाप्त नहीं हो सकती, और अगर हो सकती है तो वह केवल भयंकर रक्त-पात से। जब के सब प्रवर्तक मारे जायगे, तभी उसका अन्त होगा। इतने बड़े कार्य के लिए यह तुच्छ रकम देते हुए लज्जा भी नहीं आती।"

लाला कंचनलाल ने खिसियाकर कहा :—"अच्छा आप ही बताइये कि क्या लेंगे ? मिल-मालिक संघ के सदस्यों के समक्ष आपकी मांग रख दूँगा। अकेले मेरे वश की बात तो नहीं।

मिस्टर निक्सन ने अत्यन्त शुष्कता के साथ कहा :—"मैं इस मामले में पचास लाख से एक पैसा कम नहीं लूँगा। मिल खुल जाने पर जब आप लोगों करोड़ों रुपया पैदा करेंगे, तब तो आप हमें कोई पुरस्कार नहीं देंगे। आप लोगों की गाड़ी जब रुकती है तभी भेंट दिया करते हैं।"

लाला कंचनलाल उस समय स्वगत् कह रहे थे :—"यह तो संघ द्वारा स्वीकृतिकी हुई सब रकम माँगता है। यदि नहीं देता तो संघ के समक्ष क्या कहूँगा। हड़ताल यदि समाप्त नहीं होती तो बेहिसाब हानि होती है, और यदि जाकर कहता हूँ कि वह साठ लाख मांगता है तो मुझे विश्वास है कि संघ इसकी भी स्वीकृति दे देगा, और कहीं उन्होंने किसी अन्य को रिश्वत का रुपया देने के लिए नियुक्त कर दिया तो फिर मेरा सारा भंडाफोड़ हो जायगा। समझ में नहीं आता कि कि कौन-सा उपाय करूँ जिससे साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। पचास

लाख में यदि अपने लिए कम-से-कम दस लाख भी न बचाए तो फिर हड़ताल के दिनों का घाटा कैसे पूरा होगा।"

निक्सन ने उनको मौन देखकर किंचित क्रुद्ध स्वर में कहा:—"क्या सोच रहे हैं ?"

लाला कंचनलाल ने बड़े दुःख के साथ कहा:—"पचास लाख से क्या कुछ कम नहीं लेंगे ? यह तो विचारिए पहले भी संघ आपको बहुत कुछ दे चुका है, और भविष्य में भी देगा, क्योंकि हमारा काम आप लोगों की सहायता के बिना चल ही नहीं सकता। अच्छा इस समय चालीस लाख ले लीजिये। अब तो आपको यह स्वीकार ही करना पड़ेगा, रह गया बाकी दस लाख वह किसी अन्य अवसर पर संघ दे देगा।"

एक-बार निक्सन के मन ने स्वीकार कर लेने को कहा:—"किन्तु लोभ ने तुरन्त ही कहा:—"तुम यदि इस समय एक करोड़ माँगो तो वह भी देंगे, परन्तु जब तुमने उसकी आधी ही रकम माँगी है, तब उतनी ही लेकर मानो। यह तो सौदा है। घी कभी सीधी उँगलियों से नहीं निकलता।"

लाला कंचनलाल ने उनको गम्भीर देखकर कहा:—"अच्छा यह रकम अभी उभार रखिये, मैं वचन देता हूँ कि इसकी पूर्ति अवश्य करूँगा।"

निक्सन ने प्रगट में कहा:—"यह कोई बनिये की दुकान नहीं है, सेठ जी। अब आप जाइये। मैं इस विषय में कोई बात नहीं करना चाहता।"

अधिकारी अपने अधिकार सत्ता से सदैव श्रेष्ठ रहता है। लाला कंचन-लाल के मन ने कहा:—"उपाय तो साफ है। तुम्हें तो दस लाख पैदा करना ही है, तो इसको पचास लाख जो अपने साथ लाये हो उसका भुगतान यहीं कर दो, और घर जाकर संघ के खाते दस लाख रोकड़ बही में लिख कर संघ में साठ लाख देने का हिसाब पेश कर दो। प्रमाण-स्वरूप अपनी बही भी सामने रख देना। किसकी मजाल है जो रोकड़ बही को झूठा साबित कर दे। इस उपाय से काम भी बन जायगा और घाटा भी पूरा हो जायगा।"

मिस्टर निक्सन ने उठते हुए कहा:—"सलाम, बस जाइये मेरे पास अब समय नहीं है।"

लाला कंचनलाल ने भी उठते हुए कहा:—"अच्छा लीजिये, आप पचास लाख ही लीजिये। यह रकम अपने पास से दे रहा हूँ। संघ के सामने आपको अवसर आने पर कहना पड़ेगा। एक तो यह अवसर कभी आवेगा नहीं, और यदि कभी आ भी जावे तो आपके कह देने से ही मेरी निजी रकम वसूल हो जायगी।"

मिस्टर निक्सन ने रुपया लेते हुए कहा:—"हाँ, हाँ, यदि लोग तुम्हारा

विश्वास नहीं करेंगे तो मैं संघ से यह रकम दिलवा दूँगा। थोड़े दिनों में चन्द्रनाथ अच्छा हो जायगा, उससे कहकर दिलवा दूँगा।"

लाला कंचनलाल चन्द्रनाथ का नाम सुनकर सहम गये। उन्होंने लड़खड़ाते हुए कहा:—"यह तो मैं आपसे बता दूँगा। अभी आप किसी से कुछ न कहें।"

मिस्टर निक्सन ने हँसते हुए कहा:—"अच्छा नहीं कहूँगा।"

लाला कंचनलाल संतप्त मुद्रा से कमरे के बाहर हो गये। उनके मन ने ने कहा:—"अब तुमको दस लाख नहीं मिल सकते। चन्द्रनाथ अच्छा हो गया है, अब इज्जत के लिए उससे हाथ धो बैठो।"

१०

देवकीनन्दन, उर्मिला और मजदूर-दल स्तब्ध रह गये, जब उन्होंने सुना कि कनक को आजीवन द्वीपान्तर-वास का दण्ड दिया गया है। किसी ने इतने गुरुतर-दण्ड की कल्पना भी नहीं की थी, और साधारण रूप से कनक के विरुद्ध ऐसा कोई अभियोग नहीं था जिससे ऐसे दण्ड की सम्भावना होती। मजदूर आन्दोलन के नेतृत्व करने के अपराध में आजीवन द्वीपान्तर की सजा सर्वथा अवैध और अव्यवहारिक प्रतीत होती थी, परन्तु सत्य अपनी कठोरता के साथ उस असम्भावित घटना को भी सम्भावित बना रहा था।

कार्य करने के लिए उत्तेजित शक्ति स्तब्धता से जब तनिक देर के लिए कुंठित हो जाती है, तब स्तब्धता-विसर्जन के पश्चात् वह उतनी ही उद्दाम गति से कार्य करने के लिए आतुर भी हो उठती है। मजदूर-दल जो अभीतक किसी प्रकार शांत था, जिसके कार्य प्रवाह को देवकीनन्दन और उर्मिला अपनी शक्ति से बाँध की भाँति रोके हुए थे, अब वह उसको तोड़कर सवेग बहने के लिए आकुल हो उठा। किन्तु इसी समय एक दुर्घटना और उपस्थित हो जाने से पुनः हत-बुद्धि होगया। ठीक उसी समय गिरफ़्तारी का वारन्ट लिए हुए सब-इंसपेक्टर पुलिस रामसिंह ने उर्मिला के समीप पहुँच कर कहा:—"मैं आपको शांति सुरक्षा कानून में गिरफ्तार करता हूँ। आप मेरे साथ पुलिस की मोटर में बैठ जाइये, और कोतवाली चलिये।"

देवकीनन्दन ने जो उससे कुछ दूर थे, समीप पहुँच कर कहा:—"क्या बात है?"

रामसिंह ने उनकी ओर बड़ी उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा:—"कुछ नहीं, सरकार की आज्ञा पालन कर रहा हूँ। यदि आप भी अपनी भलाई चाहते हैं तो यहाँ से शीघ्र हट जाइये, अच्छा होगा कि आप घर चले जायं। आपके चाचा का नमक मैंने बहुत दिनों तक खाया है इसलिए सतर्क कर देना

कर्त्तव्य समझता हूँ। थोड़ी देर में ऐसी घटनायें-घटने वाली हैं, जिनकी कल्पना भी आपने न की होगी।"

देवकीनन्दन ने हँसकर कहा:—"इसका कुछ आभास मुझको भी मिल रहा है, परन्तु यह तो बताइये उर्मिला बहन को आपने किस अपराध के लिए गिरफ़्तार किया है।"

रामसिंह ने मोटर पर बैठते हुए कहा:—"इनकी गिरफ्तारी इनके लिए ईश्वरीय वरदान समझिये। भारतीय सुरक्षा कानून की धारायें बड़ी विशद हैं। सरकार अपने पथ के काँटों को उन्हीं के द्वारा दूर किया करती है।"

दूसरे क्षण मोटर उर्मिला को लिए हुए चली गई। मजदूरों का दल अभीतक स्तब्ध खड़ा था। मोटर जाने के पश्चात् उन्हें विदित हुआ कि उर्मिला भी गिरफ़्तार हो गई है। उन्होंने उसकी जय-जयकार के साथ गगन को कम्पित कर दिया।

देवकीनन्दन परिस्थिति को हाथ से बाहर जाते देख कर एक ऊँचे स्थान पर खड़े हो गये और कहने लगे:—"भाइयों, यह समय आपकी शांति का है। उत्तेजित होने से आपको हानि हो सकती है·······।" वे आगे न बोल सके। इसी समय एक ओर से कोलाहल उठा, श्रोताओं तथा उनका ध्यान उस ओर स्वतः चला गया गया। उधर से 'मारो', 'जेल तोड़ दो', 'कनक को जबरन छुड़ा लो' आदि शब्दों से जेल की दीवार तोड़ी जाने लगी। कितने ही मजदूरों के हाथ में गेंती, फावड़ा आदि खोदने वाले औजार थे। कुछ लोग लाठियों से सुसज्जित थे, और कितने ही बल्लभ, कांटा और फरसा लिए हुए थे। वे सब 'मारो, मारो पुलिस को मारो, कलक्टर को मारो, कनक देवी को छुड़ा लो' आदि के नारे लगा रहे थे।"

उत्तेजना छूतवाली बीमारियों की भाँति फैलने वाली हुआ करती है। दूसरे को उत्तेजित देखकर शांत मनुष्य भी सहज उत्तेजित हो जाया करता है। देवकीनन्दन के कानों में सहसा इंस्पैक्टर रामसिंह की चेतावनी के शब्द गूँजने लगे:—"थोड़ी देर में ऐसी घटनायें घटने वाली हैं, जिनकी कल्पना भी आपने न की होगी।" उनके मन ने सहसा पूछा:—"क्या ये वही घटनायें तो नहीं घट रही हैं, जिनकी चेतावनी अभी रामसिंह दे गया है।"

बुद्धि ने उत्तर दिया:—"सम्भवतः वही है। ये उपद्रवकारी हमारे दल के नहीं हैं। यदि संदेह हो तो किसी से पूछ कर निर्णय कर लो।"

देवकीनन्दन ने अपने समीप खड़े हुए एक मजदूर नेता से पूछा:— "जरा पहचानो तो क्या उपद्रवकारी हमारे दल के लोग हैं ?"

नकारात्मक चिह्न में उसने सिर हिलाते हुए कहा:—"नहीं, ये लोग

हमारे दल के कदापि नहीं हैं। आज के पहले इनको कभी नहीं देखा है।"

देवकीनन्दन को विश्वास हो गया कि यह कार्यवाही सरकार की ओर से कराई जा रही है, जिसमें उनको दमन करने का अवसर प्राप्त हो। उन्होंने अपनी शक्ति भर चिल्लाते हुए कहा :—"भाइयों, होशियार हो जाओ। इन लोगों के बहकावे में न आओ। ये सब सी. आई. डी. के लोग हैं, जो हमको गोलियों के शिकार करवाने के लिए भेजे गये हैं। आप ही सोचिये कि क्या आपने इनको कभी देखा है। शांत रहिये और अपने घर जाइये। हम लड़कर सरकार से जीत तो नहीं सकते, हाँ, मर जरूर सकते हैं, और उस देवी के चलाए हुए आन्दोलन को समाप्त अवश्य कर देंगे। जिस कनक देवी को छुड़ाने की बात ये लोग कहते हैं, वास्तव में उसके आन्दोलन को भूमि-सात करने के लिए आये हैं। आपको ये लोग व्यर्थ ही अकारण मृत्यु के मुँह में डालना चाहते हैं........।'

इसके आगे वे न बोल सके। दूर से वायु को को चीरता हुआ ईंट का एक टुकड़ा आया और यह उनके सिर में लगा। देवकीनन्दन गिर पड़े। उनके गिरते ही चारों ओर तुमुल कोलाहल से वह स्थान मुखरित हो उठा। सशस्त्र पुलिस के दल और गोरों की फौज ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। उन्हीं उपद्रवकारियों ने उनपर ईंटों से प्रहार करना आरम्भ किया। पुलिस ने बन्दूकों को ताना और गोरों की फौज ने नर-आखेट करना बात-की-बात में आरंभ कर दिया। मजदूरों के भागने के मार्ग केवल एक को छोड़ कर सभी अवरुद्ध थे। यह वह मार्ग था जो जेल की दीवाल के समीप होकर उसके फाटक की ओर गया हुआ था, और जहां उपद्रवकारी जेल की दीवाल पर आघात कर रहे थे। गोली की पहली बाढ़ दगते ही मजदूर वेषधारी सी. आई. डी. के कर्मचारी जेल की दीवाल के समीप वाले मार्ग से भागने लगे। उनके भाग जाने के पश्चात् सशस्त्र घुड़सवार पुलिस ने आगे बढ़कर उस मार्ग को भी अवरुद्ध कर दिया। अभागे मजदूर पाश-बद्ध हरिणों की भाँति बन्दूक की गोलियों की भेदनकारी शक्ति की परीक्षा अपने जीर्ण-शीर्ण कंकालों से करने लगे। कुछ जीवित कंकाल धराशायी होकर अपने माप के अनुसार भू-भाग खोजने में तल्लीन हो गए, किन्तु उनके दूसरे साथियों ने उसकी भी तृष्णा त्याग कर एक दूसरे पर गिरने लगे। गोरी फौज के सिपाही पैशाचिक किलकारियों के साथ चांदमारी खेलने में तल्लीन थे। वे अंग्रेजी राजसत्ता को प्रतिष्ठित कर शांति स्थापित कर रहे थे, मजदूर चीख रहे थे, त्राहि पुकार रहे थे, परन्तु उनका चीत्कार बन्दूकों का रव उदरस्थ कर रहा था। पूँजीवाद का सहायक साम्राज्यवाद हड़तालों का भय सर्वदा के लिए नष्ट कर रहा था। मरने वाले मजदूरों की संख्या का अनुमान सर्वथा असम्भव था। जीवित भागकर जाने वाला शायद ही कोई मजदूर हो।

नग्न संहार का नाटक किंचित् काल में अपनी वीभत्स दृश्य दिखाकर समाप्त हो गया। चारों ओर शांति स्थापित हो गई, जिसकी अंग्रेज सरकार कल्पना कर रही थी। अंग्रेजी फौज मजदूरों के शवों का पहाड़ छोड़कर मोटरों पर बैठकर आपस में मनोविनोद करती हुई चली गई। भारतीय पुलिस उन मृतों के संस्कार के लिए सचेष्ट हुई। पुलिस लाइन से लारियों पर लारियां आने लगीं, और उनमें मजदूरों के शव उठा-उठाकर बंडलों की भाँति फेंके जाने लगे। उनकी भयानक मुखाकृति उस समय भी पूँजीवाद का विद्रूप कर रही थी, परन्तु वह अपने सुख स्वप्नों के देखने में विभोर था। और मन्द मुस्कान के साथ पूछ रहा था कि "हड़ताल करने का क्या अब भी हौसला अवशेष है ?"

मिल के यंत्रों की भांति पुलिस उन शव को एकत्रित कर जल-समाधि देने के लिए ले जाने में व्यस्त थी। उनमें से कितने ही अभागे कराह रहे थे, कितने ही मृत्यु के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, और कितने ही बरबस उसको अपने पास से ढकेल रहे थे, किन्तु साम्राज्यवाद के संतरी पुलिस के लिए सभी मृत हो चुके थे। उनकी चिकित्सा करके उनको पुनः हड़ताल करने के लिए जीवित करना उन्हें अभीष्ट नहीं था, तथा आज्ञा भी नहीं थी। कराहते हुए और चीत्कार करते हुए वे गंगा मां के वक्ष पर गिरते, और वह उनको अपनी छाती से लगाकर उनका सारा दुःख ताप दूर कर रही थी। कितने ही पुलिस के जवान, जिनमें अपने देशवासियों के प्रति कुछ दया का भाव था वे अपनी संगीनों की तीक्ष्णता की परीक्षा करके उनकी तड़पन को दूर कर रहे थे।

थोड़ी ही देर के प्रयास में मजदूरों के उस दल का पृथ्वी-तल से चिह्न तक मिटा दिया गया। उनमें से केवल पांच व्यक्ति हस्पताल पहुँचाये गए, और घायलों की खानापुरी करने के लिए पर्याप्त समझे गए, और वे जो प्रवाहित कर दिये गए थे, अथवा जिनको जल-समाधि दी गई थी, वे जीवित प्रसिद्ध किये गए।

साम्राजवाद का अनन्य सहचर मिथ्यावाद सभ्य संसार को अपने चकाचौंध उत्पन्न करने के विचार में निरत हो गया।

११

सन्तू ने सवेग प्रवेश करते हुए कहा :—"दादा, कुछ सुना है ?"

महाबीर ने बिना आँखों को खोले हुए कहा :—"जाओ, हटो। मुझे दुनिया की बातें सुनने को समय नहीं है, और न कुछ उत्कंठा ही है। पहले यह बताओ कि दारू लाये या खाली हाथ लौट आए। ठेकेवाला कलवार हम लोगों को लूट-लूटकर मालामाल हो गया है। अब इसको ठीक करना है। बेईमान अब उधार देने से इनकार करता है। उसका इतना साहस। क्या बताऊँ हमारे

मालिक बीमार हैं नहीं तो आज संध्या के पहले-पहले उसकी दुकान यहाँ से उठवा देता। हमीं लोगों की बदौलत तो उसकी दुकान चलती है, और सच पूछो तो हमारी सिफारिश से उसको यहाँ का ठेका मिला अब आजकल उलटा मुझको लाल पीली आँखें दिखाता है। उसकी आँखें न निकलवा लूँ तो मेरा नाम महावीरसिंह ठाकुर नहीं।"

सन्तू ने ऊबकर झिड़की बताते हुए कहा:—"तुम तो यहाँ अपनी बकवास लगाये हो, और वहाँ दुनिया मरी जाती है। आज मजदूरों पर गोली चल रही है, गोली। समझ में कुछ आया। गोली चलने के बाद मिलों के सब मजदूर पकड़े जायँगे। लाल पगड़ी वाले हमारे मोहल्लों में घूम रहे हैं। चलो हम लोग आँख बचाकर भाग चलें। अगर पकड़े गये तो साल भर से कम सजा नहीं होगी।"

'गोली' शब्द ने महावीर की तन्द्रा भंग करदी। खुमारी भरी आँखों को खोलने का प्रयत्न करते हुए कहा:—"क्या कहा गोली चली है ? अरे गोली किसने चलाई ?"

सन्तू ने बैठते हुए कहा:—"दारू पीने के बाद तुम्हें तो दीन दुनिया की खबर नहीं रहती। तुमसे क्या मतलब, चाहे जो मरे, और चाहे तो घायल हो।"

महावीर ने क्रुद्ध होकर कहा:—"दारू क्या तुम नहीं पीते। मैं तो तुमको पहले पिला कर पीता हूँ। खबरदार, जो कुछ दारू के बारे में कहा। मैं अपनी बुराई सुन सकता हूँ, अपने बाप की बुराई सुन सकता हूँ, परन्तु दारू की बुराई नहीं सुन सकता। दारू तो मुझको प्राणों से अधिक प्यारी है।"

सन्तू ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह उठकर अपना सामान इकट्ठा करने लगा।

महावीर ने पुनः कहा:—"अरे बोलता नहीं, क्या बात हुई। गोली किसने चलाई, और कौन-कौन मारा गया है ?"

सन्तू ने कुछ क्रोधित स्वर में कहा:—"यह सब जान कर तुम क्या करोगे। तुम यहाँ बैठे-बैठे दारू पियो और अब तुमको दारू उधार देने वाला है नहीं। यह तो मेरी साख से तुमको दारू मिल जाती थी अब मजे से पीना, मैं तो जाता हूँ।"

महावीर की खुमारी धीरे-धीरे दूर हो रही थी। सन्तू अपना असबाब बाँधने में संलग्न था।

महावीर ने मृदुल होकर कहा:—"ओ भाई सन्तू, कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हो, कुछ बताओ तो।"

सन्तू ने खीझे हुए स्वर में कहा:—"सब तो बता चुका हूँ। इससे

अधिक कुछ नहीं जानता।"

महावीर ने अनुनय पूर्ण स्वर में कहा:—"क्या बताया भाई। मैंने ठीक से कुछ सुना नहीं। खुमारी चढ़ी हुई थी। इतना तो सुना है कि कहीं गोली चली है, और कुछ लोग मारे गये हैं, इससे अधिक कुछ नहीं जानता।"

सन्तू के मन में दया आई और वह बोला:—"आज जेल के पास हड़ताल करने वाले जितने मजदूर इकट्ठे हुए थे, उन्हीं पर सरकार द्वारा गोली चलाये जाने का समाचार मिला है। यह नहीं मालूम हुआ कि गोली क्यों चलाई गई। उन्होंने कुछ उत्पात किया होगा। यह तो तुमको मालूम ही है कि उनकी सरदारिन गिरफ्तार हो गई थी, और उनका मुकदमा जेल के अन्दर चल रहा था। इसीलिए आज कई दिनों से सभा के मजदूर वहाँ पर इकट्ठा होते थे। आज सुना था कि उनका फैसला सुनाया जाने वाला था। यह तो हमलोग जानते थे कि उसको सजा मिलेगी। भला अपने मालिक से बिगाड़ कर कोई चैन से रह सकेगा। हमारे मालिक यद्यपि बीमार हैं, मगर हुक्म उन्हीं का चलता है। वे वहाँ बैठे-बैठे जो हुक्म कलक्टर साहब को देते हैं, वही होता है। उन्होंने ही हुक्म दिया होगा तभी सरकार ने गोली चलाई है। यह सुना है कि हड़तालिये मजदूर जेल तोड़ रहे थे, मगर कुछ कर न सके, और मारे गये।"

महावीर की खुमारी दूर हो गई। उसने आँख मलते हुए कहा:—"यह बात है, अच्छा मेरी समझ में सारी बातें आगई। वे लोग जरूर कनक जी को छुड़ाना चाहते होंगे। तभी सरकार ने गोली चलाई है। तुम कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हो।"

सन्तू ने उत्तर दिया:—"मैं जाऊँगा घर। और कहाँ जाऊँगा। अभी जब कलाल की दूकान से लौट रहा था, तब रास्ते में मैंने कई पुलिस के सिपाहियों को मोहल्ले में घूमते देखा है। वे हड़तालिये मजदूरों को गिरफ्तार करने के लिए आये होंगे, नहीं तो इतनी संख्या में क्यों आते? वे अलग-अलग होकर घूम रहे थे, परन्तु सब बीस-पच्चीस जवानों से कम न होंगे। गोली चलने के बाद गिरफ्तारी सदा से होती आई है। गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है। उनके साथ कहीं हम लोग न भी गिरफ्तार कर लिये जायं, इसी डर से घर भागा जा रहा हूँ। तुम्हारा मन हो तो तुम भी मेरे साथ चलो।"

महावीर:—"मन की क्या बात है। अरे, जब तू जायगा तो मैं ही अकेला रह कर क्या करूँगा। मैं भी चलूँगा। गाँव जाने में केवल एक बात का डर है, वह यह कि वहाँ रोजाना छक कर दारू पीने को नहीं मिला करेगी। बुढ़ऊ कभी पीने नहीं देंगे।"

सन्तू यहीं तुमको पीने को कहाँ मिलेगी। तुम उधार लेकर देना जानते

नहीं, इससे अब तुमको कोई उधार नहीं देगा। मैं तो घर जाऊँगा ही। इसलिए तुमको न यहाँ पीने को मिलेगी न वहाँ।"

महावीर:—"उपाय सूझा है, ऐसा जिसमें अपनी गिरफ्तारी कभी हो। ही नहीं सकती।"

सन्नू:—"मालिक की बात कहते होंगे। अरे वे इन लोगों को छुड़ाने कचेहरी न दौड़ जायंगे। इसके अतिरिक्त उन्हें कहने ही कौन जायगा कि महावीरसिंह जी गिरफ्तार हो गये हैं। ऐसा तुम उनको प्यारे नहीं हो।"

सन्नू के स्वर में व्यंग्य का उपहास भरा हुआ था।

महावीर ने तड़प कर जवाब दिया:—"मैं तुम्हारा जैसा बुद्धू नहीं हूँ। तुमसे कहीं अधिक मेरे बुद्धि है। मैं यह कुछ नहीं कहता। वह दूसरा ही उपाय है, ऐसा सोलह आना उतरेगा कि जिसका कोई जवाब नहीं।"

सन्नू:—"अच्छा जरा कहो, मैं भी तो सुनूँ।"

महावीर:—"यह तो तुम जानते ही हो कि पुलिस उन्हीं मजदूरों की शत्रु है जो हड़ताल में शामिल हैं, या हड़ताल कराना चाहते थे। हड़तालियों ने दारू पीने की कसम खाई है। जो हड़ताल में शामिल नहीं हैं, वे दारू आदि पीते हैं। इसलिए दारू पीनेवाले कभी हड़तालिये नहीं समझे जायंगे। यदि हम दोनों भाई प्रेम के साथ बैठे हुए दारू पीयें तो पुलिस को यहाँ से वापस लौट जाना पड़ेगा। दारू पीते देखकर वह हम लोगों को हड़तालिया कभी नहीं समझ सकती। इससे मजे से मूँछों पर ताव देते हुए बेदाग बच जायंगे।"

सन्नू ने कुछ सोचते हुए कहा:—"मगर......।"

महावीर ने उसकी बात काट कर कहा:—"मगर-वगर कुछ नहीं। ठेके से एक बोतल ले आओ, और आओ हम-तुम दोनों पियें। मेरी बात मानो, फिर हमको कोई गिरफ्तार नहीं करेगा।"

इसी समय द्वार पर किसी ने पुकारा:—"इस घर में कौन रहता है। जो रहता हो वह बाहर आवे।"

सन्नू और महवीर दोनों भयभीत होकर एक दूसरे का मुख देखने लगे।

सन्नू ने धीमे स्वर में कहा:—"लो, आगए। ये पुलिस के सिपाही हैं। चौराहे वाला जमादार है, मैं इसका कण्ठ स्वर पहचानता हूँ।"

बाहर से फिर किसी ने कहा:—"इस घर में कौन रहता है? कोई बोलता क्यों नहीं।"

महावीर ने लेटते हुए कहा:—"चुपचाप ओढ़ कर सो जाओ। जवाब मत दो। अपने आप बुलाकर चला जायगा।"

महावीर सिर से चादर तानकर सो गया । सन्नू ने भी लेटते हुए कहा :—"तुम्हारी बकवास में यदि न पड़ा होता तो अब तक कोस-दो-कोस निकल गया होता तुम्हारी दारू ने तुमको तो डुबोया और साथ ही मुझको भी अछूता न छोड़ा । यह भी याद नहीं कि बाहरी दरवाजा बन्द है या खुला"

महावीर ने झिड़क कर कहा :—"अरे चुप रह । व्यर्थ की बकवास लगाए है । या तो सुई की नाक से जैसे डोरा निकल जाता है वैसे साफ निकल जाओगे, या फिर जो भाग्य में बदा होगा वही अदा होगा । बस चुपचाप पड़े रहो ।"

बाहर से किसी ने फिर पूछा :—"क्या यही महावीर का घर है, जो बीनस मिल में काम करता है । बिनता चलाता है ।"

सन्नू ने कहा :—"लो, अब तो तुम्हारा नाम लेकर पुकारने लगा है । अब नहीं बच सकते ?"

महावीर ने काँपते हुए कण्ठ से कहा:—"चुप होकर पड़े रहते नहीं बनता । बुलाता है बुलाने दो । जब हम बोलेंगे ही नहीं तब क्या कर लेगा ?"

उन्होंने सुना कि वही आगन्तुक उसके पड़ोसी से पूँछ रहा है:—"क्या इसी घर में महावीर रहता है, जो बीनस मिल में बिनता चलाता है ।"

उनके पड़ोसी ने उत्तर दिया :—"हाँ, महावीर और सन्नू दोनों भाई इसी घर में रहते हैं । दोनों ही बीनस मिल में काम करते हैं ।"

आगन्तुक ने पुनः पूछा :—"क्या घर में वे अकेले रहते हैं ? दूसरा कोई तो नहीं रहता ।"

पड़ोसी ने उत्तर दिया :—"हाँ, आजकल वे अकेले हैं । उनका बाप उनकी औरतों को घर ले गया है । जबसे वे यहाँ से गई, मोहल्ले की छूत बह गई । दोनों साक्षात् ताड़का थीं । रात-दिन गाली रामायण का अखण्ड पाठ हुआ करता था । लेकिन उनके जाने के बाद अब तो शांति है । तुम कहाँ से आए हो ?"

आगन्तुक ने जवाब दिया :—मैं उनके गाँव से आया हूं । बड़ी मुश्किल से उनका पता लगाते हुए आया हूं । इस समय वे कहाँ मिलेंगे, बता सकते हो ?"

पड़ोसी ने उत्तर दिया :—"भाई, क्या बताऊँ कहाँ मिलेंगे ? कौन जाने वे दंगे में फँस न गए हों, और उसमें मारे गए हों ।"

आगन्तुक जो वास्तव में लछिमिन का भेजा हुआ आया था, भयभीत होकर बोला :—"दंगा, कैसा दंगा भाई । क्या हिंदू-मुसलमनों का फिर दंगा हो रहा है ।"

पड़ोसी ने कहा :—"यह हिन्दू-मुसलमानों का दंगा नहीं है, यह सरकार और मजदूरों का दंगा है। कुछ मजदूर हड़ताल कर बैठे हैं और उपद्रव कर रहे हैं। वे आज जेल तोड़ रहे थे, इसी से हारकर सरकार को गोली चलानी पड़ी है।"

शायद महावीर और सन्तू भी वहीं फँस गए हों। कौन जानता कि वे मारे गए या गिरफ़्तार हो गए हों।"

भीतर सन्तू ने कहा :—"अरे यह सिपाही नहीं है दादा। गाँव से कोई आया है। आओ बाहर चलकर देखें कि कौन आया है?"

महावीर ने कहा :"अरे चुप-चुप। ये सब बहाने बाजी हैं। मैं पुलिस वालों की चालें अच्छी तरह जानता हूँ। बहाने से ऐसी बातें कर रहे हैं कि जिस से हमको विश्वास हो जावे कि हमको गिरफ़्तार करने के लिए नहीं आए हैं, और बाहर निकल आवें। घर से कौन आयगा?"

उधर आगन्तुक ने कहा :—"क्या बतावें, ऐसे भयानक समय हमको आना पड़ा। अगर मैं जानता कि यहाँ पर दंगा-फसाद हो रहा है तो हरगिज़ नहीं आता।"

पड़ोसी ने कहा :—"हाँ, समय तो अच्छा नहीं है। अब धर पकड़ आरम्भ होगी, उसमें न मालूम कितने निरपराध पकड़े जायंगे। तुम भी कहाँ धोके से पकड़े न लिए जाओ। अगर पुलिस को संदेह हो गया कि तुम हड़तालियों के सम्बन्धी हो तो वे इसी बात पर तुमको भी गिरफ़्तार कर लेंगे। तुम्हारे आने की क्या आवश्यकता थी, तीन पैसे का पोस्ट कार्ड क्यों न भेज दिया?"

आगन्तुक ने खीझे हुए स्वर में कहा :—"यही तो मैं भी कहता था, मगर जब लछिमिन अम्मा मानी नहीं, और यशोदा बहन ने भी बहुत जोर दिया तब आना पड़ा।"

पड़ोसी ने कहा :—"अच्छा, आगये हो बैठ जाओ; थोड़ी देर में पता लग जायगा कि महावीर और सन्तू पर क्या बीती? अगर घर के अन्दर बैठे रहोगे तो पुलिस नहीं बोलेगी और नहीं तो घूमते-फिरते देखकर गिरफ़्तार कर लेगी। सुना है कि करफ्यू आर्डर लग गया है।"

इधर महावीर ने कहा :—"देखो इस चंद्रिका को, उसको बैठने का निमंत्रण दे रहा है। मैं ऐसे पड़ोसियों के साथ हरगिज न रहूँगा। मालूम हो गया यह खुफिया पुलिस का सिपाही।"

सन्तू ने उठकर बैठते हुए कहा :—"अच्छा, तुम तो लेटे रहो मुँह छिपाये हुए। मैं बाहर जाकर पता लगाता हूँ। अगर वारंट है तो तुम्हारे नाम से क्योंकि वह तुमको ही पूछता है।"

महावीर ने सन्तू को पकड़ते हुए कहा: —"अरे सन्तू, मैं कहता हूँ कि बाहर मत जा। चुप-चाप क्यों नहीं लेट जाता। घर का दरवाजा जरूर बन्द है नहीं तो अन्दर घुस आता।"

सन्तू ने अपने को छुड़ाते हुए कहा :—"दादा, दारू से तुम्हारी सारी बुद्धि मारी गई है। अगर यह खुफिया पुलिस का सिपाही है तो हमारी अम्मा का नाम कैसे जानेगा। इस तरह पड़े रहने से तो बच नहीं जायंगे। ऐसा कौन अपराध किया है जो पकड़ेंगे।"

सन्तू ने महावीर की बातों पर ध्यान नहीं दिया। बाहर निकलकर पूछा :—"अरे कौन है ?"

चंदिका ने कहा :—"अरे तुम घर के अन्दर ही बैठे थे। बोले क्यों नहीं। ये भले आदमी तुम्हारे गाँव से आए हैं, कब से हैरान हो रहे हैं, और तुम बोलते भी नहीं।"

सन्तू ने उत्तर दिया :—"चंदिका भाई, पुलिस के डर से हम लोग नहीं बोल रहे थे। जानते ही हो इन हड़तालियों के कारण शहर में कितनी मार-काट मची हुई है।" फिर आगन्तुक से पूछा :—"क्यों भाई, कहाँ से आए हो।"

आगन्तुक ने जवाब दिया :—"अभी तो मैं सिधौली से आ रहा हूँ। बात यह है कि गाँव में मुखिया सेठ साहबदीन और तुम्हारे पिता से दुश्मनी चल रही है। उन्होंने तुम्हारे पिता पर चोरी का जाल लगाकर गिरफ़्तार करवा दिया है। इससे तुमको बुलाने के लिए तुम्हारी माँ ने भेजा है।"

आगन्तुक को लेकर सन्तू सब हाल कहने के लिए महावीर के पास गया। महावीर ने सुनकर कहा: "तो तुम चले जाओ, सन्तू। हम दोनों चलकर वहाँ क्या करेंगे। एक मुकदमे की पैरवी करे और एक यहाँ कमा करके रुपया भेजे।"

सन्तू ने कहा :—"नहीं दादा, तुम जाओ, तुम्हारी बुद्धि बहुत तीव्र है। सूझ-बूझ अच्छी है, और जितनी सहायता बापू की तुम कर सकोगे उतनी मैं नहीं कर सकूंगा। सब-से-बड़े होने के नाते भी तुमको जाना चाहिये।"

महावीर ने उस अपरिचित व्यक्ति की ओर संदेहात्मक दृष्टि से देखते हुए कहा :—"अभी तक आपने अपना परिचय नहीं दिया। आज के पहले आपको कभी देखा नहीं।"

आगन्तुक ने कहा :—"रिश्ते में मैं सेठ साहबदीन का साला हूँ। बात है कि सेठ ने मेरी बहन को मार-पीटकर घर के बाहर निकाल दिया। उसको तुम्हारे पिता ने आश्रय दिया। मेरी बहन सेठ के विरुद्ध मुकदमा चलाने पर तुली हुई है, इसीसे पहले तुम्हारे पिता को झूठा जाल लगाकर उसने फँसा दिया है।

रुपया पैसा की चिन्ता न करो, वह सब मैं कर लूँगा। तुम लोगों में से कमसे कम एक आदमी को चलना चाहिए।"

जब महावीर ने सुना कि रुपया पैसे का खर्च आगन्तुक जो साहबदीन का साला था, चलायेंगे तब वह प्रसन्न हो गया। अब सन्तू को भी जाने की इच्छा हुई, और महावीर ने उसको वहीं रहने का आदेश दिया। बहुत वादविवाद के पश्चात् दोनों भाइयों ने एक साथ जाना निश्चित किया।

१२

मिल-मालिक संघ की एक विशेष बैठक कार्लटन होटल में सामयिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए हो रही थी। उसके सभी सदस्य प्रसन्न थे, और वे एक दूसरे को बधाई दे रहे थे। हड़ताल समाप्त हो गई थी, और मिल खुल गए थे। यद्यपि मशीनें पूर्ववत् निस्पृह भाव के साथ उत्पादन कार्य में लगी हुई थी, किन्तु उनको चलाने वाले मजदूरों के मुखों पर भय की छाप थी, और मिल-मालिकों के मुखमण्डल विजयोल्लास से देदीप्यमान थे। उनमें से किसी को यह चिन्ता न थी कि कितने अभागे मजदूरों का खून हुआ है, और न उनके मन में यह विचार ही उठा था कि मृत मजदूरों के परिवारों के प्रति मानवता के नाते उनका कोई कर्त्तव्य अवशेष है। उनमें से किसी ने भी यह न सोचा था कि मजदूर भी उन्हीं की भाँति एक मानव है, उसकी भी उन्हीं की भाँति कुछ आवश्यकतायें हैं, और जब वे पूर्ण नहीं होती तभी उनको प्राप्त करने के लिए उनको हड़ताल का आश्रय लेना पड़ता है। उनके मन में एक बार भी अनुताप नहीं हुआ कि उनके सिर पर हजारों मजदूरों के मारे जाने का पाप लदा हुआ है। उन्होंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि मजदूर, जिनके अनवरत परिश्रम के के कारण ही वे ऐश्वर्य की गोद में बैठे हुए हैं, उसका भी कोई भाग उस उत्पादन में हो सकता है? वे उसको मशीन की भाँति निर्जीव और आकाश शून्य ही समझे हुए थे। जिस प्रकार कोयले तथा अन्य ईंधन की आवश्यकता मशीनें चलाने के लिए होती है, उसी प्रकार मजदूरों की मशीन चलने योग्य बनाए रखने के लिए उतनी मजदूरी देना पर्याप्त है जिसे वे जीवित रहकर उनका उत्पादन कार्य कर सकें, यही उनका विश्वास था।

लाला कंचनलाल विशेष रूप से प्रसन्न थे, क्योंकि वे अपने को मिल-मालिकों की विजय का प्रधान कारण समझने लगे थे। वे हरएक से किसी-न-किसी बहाने से निक्सन के साथ की गई वार्तालाप को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में चूक नहीं रहे थे। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि मजदूरों का संहार कराने में उनका विशेष प्रयत्न है, और यदि उनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो सम्भवतः वह कृत्कार्य न होता।

पोपटलाल ने हँसकर कहा :—"आज वर्षों की बीमारी दूर हुई।"

अब्दुलमजीद ने उस हँसी में योग देते हुए कहा :—"भाई, मैं तो लाला कंचनलाल का मुरीद हो गया। उन्होंने वह काम किया जो आज तक कोई नहीं कर सका था। चन्द्रनाथ के बीमार हो जाने से मैं समझता था कि हमारे अंजुमन का काम बन्द हो जायगा, लेकिन यह लाला जी की कारगुजारी है जिससे मजदूरों का हंगामा हमेशा के लिए जहन्नुम रसीद हो गया।"

सेठ नेमीचंद ने मुँह सिकोड़ते हुए कहा :—"अरे इसमें किसी कारगुजारी की जरूरत नहीं थी। मुख्य काम तो किया है हमारे पचास लाख रुपयों ने। हाँ यदि रुपया हम लोग न दिये होते तो कोई काम करवाता तो मैं भी उसकी सराहना करता।"

लाला कंचनलाल का मुख विवर्ण हो गया।

पोपटलाल ने सहास्य कहा :—"नेमीचंद जी कभी भी लाला जी की सहारना नहीं कर सकते। एक बार लाला चाहे अपना सिर भी काट डाले, परन्तु उन्हें विश्वास नहीं होगा। उसमें भी वे कोई छल कपट समझेंगे।"

लाला कंचनलाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया :—"जिसको काम करना पड़ता है उसीको मालूम पड़ता है। सेठ जी भी तो यहीं थे। उन्होंने क्यों यह जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। अपना सदैव से यह ध्येय रहा है—

कौल मरदों का नहीं काम अधूरा करना।
दखल दे जिस बात में उसे पूरा करना॥

अब्दुलमजीद ने उछलकर कहा :—"वाह, वाह। क्या गजब का शेर कहा है। दरअस्ल लाला कंचनलाल हर मानी में मर्द हैं। हम लोगों ने पिछली बैठक में यह तय करना भूल गए थे कि जो काम को पूरा उतारेगा उसको हमारा अंजुमन कोई इनाम वगैरह देगा।

पोपटलाल :—"अरे, पिछली बैठक हुई कब थी? केवल मैंने उप-सभापति होने की हैसियत से पचास लाख रुपयों का चेक लाला कंचनलाल के नाम काट दिया था। बैठक तो आज हुई है। उसमें आप लोग सर्व सम्मति से वह रकम पास करेंगे, और उसके साथ ही धन्यवाद व पुरस्कार के विषय में भी कोई प्रस्ताव पास कर देना चाहिए।"

अब्दुलमजीद :—"सूखे-सूखे धन्यवाद से काम नहीं चलेगा। कुछ पुरस्कार या इनाम भी तो देना चाहिए।"

सेठ नेमीचंद :—"इनाम तो सदैव छोटे-छोटे कर्मचारियों को दिया जाता है, अथवा नाई, बारियों को। सेठ साहूकार......।"

लाला कंचनलाल ने बीच ही में बात काटकर कहा :—"देखिये सेठजी

आप जरा अपनी जिह्वा रानी को संभाल कर चलावें।"

अब्दुलमजीद ने हँसते हुए कहा:—"अरे लाला जी आप व्यर्थ ही बिगड़ रहे हैं, आपको कोई नहीं कहता। सेठजी तो आम रिवाज बता रहे हैं। खैर आप लोग झगड़ा न कीजिये। हाँ, एक और खुशखबरी आपको सुनाता हूँ। वह यह कि हमारे अंजुमन के प्रधान सेठ चन्द्रनाथ की तबियत अब बिककुल अच्छी हो गई है, और वे बहुत जल्द हम लोगों के दरम्यान आवेंगे।"

पोपटलाल ने प्रसन्न होकर कहा:—"यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। अब हम लोगों को सारा हिसाब किताब देख लेना चाहिये, और·······।"

अब्दुलमजीद:—"अरे, हिसाब किताब कैसा। हम लोगों ने अंजुमन को बीस-बीस लाख रुपये दिए थे, उनमें से जो खर्च हुआ है वह हम सब लोग जानते हैं। बाकी बैंक में जमा रहने दीजिए, आगे पीछे कभी वक्त पड़ने पर काम आवेगा।"

लाला कंचनलाल ने अवसर पाकर कहा:—"हाँ, इस अवसर पर मैं एक बात आप लोगों को बता देना चाहता हूँ, कि वास्तव में मैंने निक्सन को ६० लाख रुपये दिए हैं। वह तो एक करोड़ माँगता था, परन्तु किसी तरह उस को साठ लाख पर ठीक किया। इससे एक पैसा कम लेना नहीं चाहता था। यह देखिये बही में मैंने हिसाब लिख रखा है। अब आप लोग यदि उचित समझें तो मेरे दस लाख मुझको दे देवें, और अगर इसमें कोई जाल फरेब समझते हों तो मैं अकेले संघ के लिए यह व्यय उठाने को तैयार हूँ।"

सेठ नेमीचंद ने मुस्करा कर कहा:—"उप-सभापति ने जितने रकम की चेक दी होगी, हम उसी को पास कर सकते हैं। यदि किसी ने अधिक खर्च किया है तो अपना कोई दूसरा काम निकलवाने के लिए किया होगा। संघ उसका भार उठाने को तैयार नहीं है।"

अब्दुलमजीद ने कहा:—"यह नहीं हो सकता। हमको इन्साफ से काम लेना चाहिए। अगर लाला कंचनलाल ने हमारे संघ के लिए कुछ अपनी जेब से खर्च किया है तब यह भलमनसाहत हरगिज नहीं है कि हम इतनी लम्बी रकम का बोझा अकेले उन्हीं पर लाद देवे।"

लाला कंचनलाल ने अभिमान भरे स्वर में कहा:—"जाने दीजिये अब्दुलमजीद साहब, यह मैं पहले ही से जानता था, इसीलिए मैंने पहले ही तय कर लिया है कि यह रकम मैं अपने खर्च खाते लिखूँगा। केवल सूचनार्थ आप लोगों को कह दिया है।"

पोपटलाल ने सभापति के रूप में कहा:—"इसका निर्णय चन्द्रनाथ के आने पर किया जायगा। क्योंकि निक्सन के साथ उनकी पुरानी मित्रता है,

और वे उससे पूछ लेंगे कि उनको लाला जी ने कितना रुपया दिया है, तब लाला नेमीचंद को सन्देह करने का कोई कारण न रह जायगा।"

नेमीचंद ने सहर्ष कहा :—"हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ।"

कंचनलाल के मुख की श्री हत हो गई। उन्होंने बनावटी क्रोध के साथ-साथ कहा :—"यह पूछा-पाछी मैं कभी सहन नहीं कर सकता। मुझे दस लाख अपनी गाँठ से देना स्वीकार है, परन्तु पूछने के प्रस्ताव को मैं अस्वीकार करता हूँ। इसमें मेरी मान-हानि होती है।"

नेमीचंद ने कहा :—"जब दिया है तब पूछने से क्यों भय होना चाहिए। बिना पूछे हुए मैं एक पैसा भी देने का समर्थन नहीं करता। मैं उपसभापति से सर्वथा सहमत हूँ। निक्सन से पूछ कर ही यह रकम दी जायगी।"

इसी समय पामीला के साथ मिस्टर निक्सन ने उस कमरे में प्रवेश किया। सब लोग चकित होकर उनकी अभ्यर्थना करने को खड़े हो गए।

मिस्टर निक्सन ने प्रवेश के साथ ही कहा :—"अपना नाम सुनकर मैं यह देखने को चला आया कि यहाँ पर कौन सज्जन हैं जो इतनी बेतकुल्लफी के साथ मेरा नाम ले रहे हैं, और मुझसे कुछ पूँछना चाहते हैं ?"

लाला कंचनलाल का चेहरा श्वेत हो गया। शेष तीनों सदस्य एक दूसरे का मुख देखने लगे।

पोपटलाल ने रुकते-रुकते कहा :—"हम लोग आज यहाँ पर आपको धन्यवाद देने को एकत्रित हुए हैं। आपने जो सेवायें हमारे संघ की हैं, उसके लिए हम लोग विशेष रूप से आभारी हैं। अंग्रेज जाति की न्याय प्रियता का इससे अधिक ज्वलन्त प्रमाण अन्यत्र नहीं मिलेगा। अंग्रेजी राज्य में ही शेर और गाय एक ही घाट पर पानी पीते हैं। आपने मजदूरों को सत्यमार्ग का निर्देश कर दिया है। यदि वे उसके अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे तब उत्पादन का कार्य सुगम और सहज गति से होता जायगा, और युद्ध प्रयास में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। संघ तो सदैव से सरकार के काम को आगे बढ़ाने के लिए सचेष्ट रहता है हम लोग पुनः आपको हृदय से हमारी बाधाओं के दूर कर देने के लिए धन्याद देते हैं।"

निक्सन उत्तर में कहने लगे :—"मैं यद्यपि यहाँ पर अकस्मात ही आ गया हूँ, और इस संस्था से मेरा कोई सम्बंध न होते हुए भी मैं आपके उद्गारों का जो आपने मेरे प्रति प्रदर्शन किया है, उत्तर देना उचित समझता हूँ। मैं आपकी राज-भक्ति की आन्तरिक हृदय से प्रशंसा करता हूँ, और अपनी रिपोर्ट में इसका उल्लेख करना न भूलूँगा। सरकार भी आपके युद्ध प्रयत्नों से संतुष्ट है, और आपकी बाधाओं को दूर करना अपना कर्तव्य समझती है। मैंने जो

कुछ किया है वह अत्यन्त अनिच्छापूर्वक किया है, किन्तु उसको अंतिम उपाय समझ कर ही किया है। मजदूरों को कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने स्वार्थपूर्ति के उद्देश्य से बहका रक्खा था, और उनकी गिरफ्तारी के बाद भी जब उन्होंने अपने को देश-द्रोह के मार्ग से पृथक् नहीं किया, और राज-सत्ता पर भी आक्रमण करना आरम्भ कर दिया, तब मुझे कठोरता अवलम्बन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। मुझे कहते हुए हर्ष होता है कि न्यूनतम दण्ड से ही स्थिति सुधर गई, और हड़ताल भंग होगई। केवल पाँच मनुष्य ही घायल हुए हैं, और उनमें से एक आप लोगों की भाँति पूँजीपति और मिल-मालिक हैं जो उन मजदूरों को उस अवैध मार्ग से विरत करने का प्रयत्न कर रहा था। वह बेचारा वहीं उन्हीं हड़ताली मजदूरों के प्रहार से घायल हुआ, और उसको अस्पताल भेज दिया है। इस आन्दोलन की सूत्रधार स्वर्गीय वामनदास की जारज सन्तान कनक थी, जिसको द्वीपान्तर वास का दण्ड देकर आपके संघ को सदा के लिए निरापद कर दिया है। जो इस आन्दोलन का बीजरूप था, अथवा जिसके कारण इस उपद्रव की नींव पड़ी, वह रामनाथ था। उसकी पत्नी उर्मिला को भी गिरफ्तार कर लिया गया है, तथा आशा है कि वह भी अपनी स्वामिनी कनक का शीघ्र ही अनुसरण करेगी। युद्ध प्रयास में जो व्यक्ति रोड़े अटकायेंगे, सरकार उनको अपना पुनीत कर्त्तव्य समझ कर दूर करेगी, और इसके लिए कठोर-से-कठोर उपाय ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं करेगी। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि कानपुर का मजदूर आन्दोलन बड़ी सुगमता से समाप्त हो गया है। इसको आपने भी स्वीकार किया, और सरकार ने भी इसकी प्रशंसा की है। मैं पुनः आपको सहर्ष सूचित करना चाहता हूँ कि सरकार ने मेरी सेवाओं के उपलक्ष में मुझको इस युद्ध काल की नाजुक स्थिति में एक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य का भार सौंपा है। मुझे आज ही प्रांतीय सरकार से सूचना मिली है कि सम्राट् की सरकार मुझको अन्दमान और निकोबार द्वीप-समूहों का शासक बना कर भेजना चाहती है, और मेरी नियुक्ति भी कर दी गई है। मुझे यहां से शीघ्र-से-शीघ्र प्रस्थान करने की आज्ञा मिली है। आप लोगों को छोड़ते हुए मैं मुझे बड़ा दुःख होता है, परन्तु कर्त्तव्य के सन्मुख मुझे यह भी सहन करना पड़ेगा। आपने जो सहयोग मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं आभारी हूँ, और आपको हृदय से धन्यावाद देता हूँ।"

निक्सन के कथन से सभी प्रभावित हुए। इस प्रकार के अकस्मात प्रस्थान की किसी ने कल्पना ही नहीं की थी। सभी चकित होकर एक दूसरे का मुख निरखने लगे।

पोपटलाल ने पूछा:—"आप भी अन्दमान जा रहे हैं? यह भी एक

विचित्र घटना चक्र है। विधि-विधान कुछ ऐसा मालूम होता है कि कनक आदि विद्रोहियों को सीधा करने के लिए ही आपको वहाँ भेजा जा रहा है।"

निक्सन ने हँसते हुए कहा :—"हाँ, कुछ ऐसा ही मालूम होता है कि इनके साथ मेरा सम्बंध विच्छेद अभी नहीं होगा। अच्छा, मैं अब विदा होता हूँ, और आपके सहयोग के लिए पुनः आपको धन्यवाद देता हूँ।"

यह कह कर वे पामीला के साथ चले गए। उनके जाने पर संघ के सदस्यों ने वादाविवाद के पश्चात् उन्हें एक वृहत् भोज देने का निश्चय किया, और उसका प्रबंध भार सेठ नेमीचंद को दिया गया। लाला कंचनलाल का मुख उतरा हुआ था, और वे सब की दृष्टियाँ बचाने का सतत् प्रयत्न कर रहे थे। विवेक और लोभ का युद्ध उनके विचार प्राँगण में चल रहा था।

१३

यशवन्तसिंह की हार्दिक प्रसन्नता का ओर छोर उस समय न मिलता था, जब जपानी सेना नायक ने उसको मुक्त करते हुए सेना में भरती करने की आज्ञा दे दी। मानसिंह और हरनामसिंह दोनों उसके साथी भी उसके साथ हो गए। सिंगापुर पहुँच कर उन्होंने उसके प्रधान से सवाल किया और उसने उनको तुरन्त ही उचित पदों पर नियुक्त कर दिया। उन तीनों की इच्छा एक साथ रहने की थी और घटना चक्र से उन तीनों को एक ही सेना में तीन पद प्राप्त हो गए, जिससे उनकी घनिष्टता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। परेड आदि करने के पश्चात् तीनों सदैव एक ही साथ दिखाई पड़ते थे।

यशवन्तसिंह को अब भी कभी-कभी अपने घर की याद हो आती थी। उसके स्मृति पटल पर जब उसके बाप का चित्र खिंच जाता, तब दुःख से इतना विह्वल हो जाता कि उसको अपने मित्रों का साथ छोड़कर एकान्त सेवन करना पड़ता था। मानसिंह और हरनामसिंह दोनों का सतत प्रयत्न यही रहता कि यह सब कुछ भूला रहे, अतएव अनेकानेक कार्यों में वे उसको लगाए रहते। उनको जापानी सेना में आए कई दिन बीत गए थे। एक दिन प्रातः काल जब परेड के पहले कैन्टीन में मिले तब यशवन्तसिंह ने कहा मानू:—आज मैंने रात्रि को एक भयंकर स्वप्न देखा है।

मानसिंह ने हँसकर कहा :—"स्वप्न केवल निर्बल हृदय वाले देखा करते हैं। जिनका मस्तिष्क कमजोर होता है, वही स्वप्न देखते हैं। स्वप्न की बातों को कभी याद न रखना चहिए, क्यों कि उनसे लाभ कुछ नहीं होता।

यशवन्तसिंह ने घुच-घुचाए हुए नेत्रों से कहा :—"क्या करूँ, मानू वह स्वप्न भूलता ही नहीं। उसकी प्रखरता अभी तक उसको हराभरा बनाए हुए है। मानू, मैंने आज अपने बापू को स्वप्न में देखा है।

मानसिंह ने उसके झाँकते हुए आँसुओं को देख लिया था। उसने अनु-

मान लगा लिया था कि उसने कोई दुःखद घटना देखी है, जिससे वह व्याकुल है। उसने हँसकर स्वप्न की कटुता को हल्का करने का प्रयत्न करते हुए कहा:—
"जस्सू, तुम स्वप्नों पर क्या विश्वास करते हो। सुप्त अवस्थ में जब मानव का मस्तिष्क विचार कार्य में संलग्न होता है तब वही विचार चलित रूप धर कर अपने को प्रकट करते हैं इसी क्रिया का नाम स्वप्न है। संभव है कि कल सोते समय तुम अपने घर की याद कर रहे थे, और याद करते करते सो गए। शारीरिक क्लान्ति के कारण तुम्हें निद्रा तो आ गई, परन्तु तुम्हारा मस्तिष्क अपने सोचने का कार्य बराबर करता रहा अतएव उन्हीं विचारों ने चलित चित्रों के संसार की सृष्टि की। जब विचार मिलन आदि सुखद घटनाओं से संबन्धित रहते हैं, तब तो दिखाई देने वाले स्वप्न सुखद होते हैं और इससे विपरीत की अवस्था में वे भयंकर और कष्ट का कारण होते हैं। परन्तु दोनों में तथ्य कुछ नहीं है।

यशवन्तसिंह ने चाय का प्याला बिना पिए मेज पर रखते हुए कहा:—
"मानू मेरा मन तुम्हारी बात स्वीकार नहीं करता। स्वप्नों के देखने का कारण चाहे जो कुछ हो, परन्तु किसी-किसी स्वप्न को मैंने सत्य होते देखा है। मैंने आज रात को देखा है कि मेरे बापू को पुलिस ने गिरफतार कर लिया है। और वे एक कोठरी में बैठे हुए रो रहे हैं। मेरे बुलाने पर भी वे नहीं बोलते, और दोनों हाथों से अपना मुँह छिपाए हुए हैं। थोड़ी देर बाद देखता हूँ कि कई लोग उन्हें बाँध कर उस ओर लिए जा रहे हैं जहाँ भीषण अग्नि जल रही है। उसकी निर्धूम लपटें आकाश को चूम रही हैं। वे चिल्लाकर मुझे पुकार रहे हैं। मैं उन सिपाहियों से उनको छोड़ देने के लिए अनेकानेक विनय करता हूँ परन्तु वे मेरी एक नहीं सुनते, और कहते हैं कि हमको जलाने का हुक्म हुआ है, हम लोग छोड़ नहीं सकते। मेरे देखते-देखते वे उनको उसी अग्नि में डाल देते हैं और मैं भी उनके साथ उसी में कूद पड़ता हूँ। इसके पश्चात् वे मुझको पकड़कर सिपाहियों की ओर ढकेलते हुए कहते हैं कि इसको क्यों जलाते हो अपराध तो मैंने किया है। अकेले मुझको जलाओ, और इसको छोड़ दो। मैं रोता ही रह जाता हूँ, और दृश्य पुनः बदलता है। इस बार देखता हूँ कि मैं विजयी होकर घर जा रहा हूँ। साथ में तुम भी हो। हम दोनों जब घर पहुँचते हैं, तो देखते हैं कि घर गिर गया है गाँव उजड़ गया है, और कहीं कोई नहीं है। जहाँ मेरा घर था वहाँ बैठकर मैं रोने लगता हूँ। उसी समय एक ओर से बापू वहाँ आते हैं और कहते हैं जस्सू, मैं तो मरकर स्वर्ग चला गया हूँ। तुम मेरे लिए अब मत रोओ तुम्हारे जाने के बाद अंग्रेजों ने हमारे गाँव को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, और हम सब उसमें मारे गए। अंग्रेजी सेना हम लोगों को इसलिए मारने आई थी क्यों कि

तुम उनसे लड़ रहे थे। अब तुम सुख से रहो। मैं जाता हूँ । फिर थोड़ी दूर जाकर लौट आए और बोले तुमको एक चीज़ देना भूल गया, जो तुम्हारी अम्मा ने भेजा है। लो. यह एक यन्त्र है, इसको अपने दाहिने हाथ में पहन लो, तुम्हारे ऊपर गोली. बारूद, तोप बन्दूक बम आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उन्होंने अपनी झोली से वह यन्त्र निकालकर मुझको दे दिया । इसके पश्चात् मेरे नेत्र खुल गए, फिर मैंने सोने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु आँख नहीं लगी, तबसे बार-बार रुलाई आती है। मानू, तुम मानो चाहे न मानो परन्तु मेरा मन साक्षी देता है कि मेरे बापू का कुछ अनिष्ट हुआ है।

मानसिंह के उत्तर देने के प्रथम ही वहाँ हरनामसिंह ने आकर कहा:—"वह तुम दोनों यहाँ बातों में संलग्न हो, और उधर प्रधान सेनापति की आज्ञा प्राप्त हुई है कि हमारी टुकड़ी को शीघ्र ही युद्ध क्षेत्र में भेजा जावे। मैं कैप्टन से मिलकर आरहा हूँ। आज संध्या के पहले हमारी सेना यहाँ से कूच कर देगी।"

इसी मध्य में उसकी तीव्र दृष्टि ने यशवन्तसिंह की विलाप मुद्रा को निरख लिया था उसने मानसिंह से पूछा:—"घर से कोई दुःखद समाचार आया है क्या, जस्सू क्या बात है? रुआंसे-रुआंसे क्यों दिखाई पढ़ते हो, क्या बात हुई है बोलो।

यशवन्तसिंह के उत्तर देने के पहले ही मानसिंह ने कहा:—"हुआ क्या कुछ नहीं। सब बातें विस्तार के साथ कहने का अब समय नहीं है। परेड के बाद हमलोग इस प्रश्न पर विचार करेंगे।"

हरनामसिंह ने घड़ी देखते हुए कहा:—"परेड में अभी पाँच मिनट बाकी हैं। जब तक मैं सब बातें सुन नहीं लूँगा, परेड़ करने में मेरा मन नहीं लगेगा। मैं तो समझता था कि मैं सुखद समाचार लेकर जा रहा हूँ, परन्तु यहाँ तो रंग ही बदरंग है। मैं जब तक सुन न लूँगा, चाय तक नहीं पिऊँगा।

मानसिंह ने कहा:—"कोई विशेष बात नहीं है। रात को जस्सू ने कुछ भयावने सपने देखे हैं, जिसने घर की स्मृति को कुछ सजग कर दिया है। इसीसे यह दुःखी होगये हैं, और रात भर सोये नहीं।"

हरनामसिंह ने हँस कर कहा:—"सपनों के संसार में वास्तविकता ढूँढना उसी भाँति है जैसे बालू से तेल निकलना। स्वप्न देखकर दुःखी होना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं इन पर कभी विश्वास नहीं करता।

मानसिंह ने उसमें सहयोग देते हुए कहा:—"यही तो मेरा भी मत है, परन्तु जस्सू के मन में मेरी बात नहीं बैठती। वास्तविकता यह है कि जस्सू को कभी अपने घर से दूर नहीं रहना पड़ा, इसलिये कभी-कभी मन बड़ा विकल हो जाता है और सोते समय वही विकलता भयावह स्वप्न दिखाती है।

यशवन्तसिंह ने मन के आवेग को रोकते हुए कहा:—"यह सत्य है कि मैं कभी अपने बापू से दूर नहीं रहा किन्तु इधर तो उनसे दूर रहते हुए बहुत समय हो गया है। हमलोग इतने व्यस्त रहते हैं कि घर की बातें सोचने के लिए अवकाश तक नहीं मिलता। यह स्वप्न मैंने अचानक ही देखा है। अवश्य हीघर में कोई अशुभ घटना घटी है। बापू परकोई-न-कोई विपद अवश्य ही आई है। भाई मेरा मन घर जाने लिए उतावला हो रहा है।

हरनामसिंह ने हँसते हुए कहा:—"अब तो पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने परही घर के दर्शन होगे अंग्रेजों से जब तक भारत का उद्धार नहीं करलेते तब तक हम घर नहीं जा सकते। जस्सू क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गए ? इतना कातर होना तुम्हारे जैसे वीर के लिए शोभा नहीं देता। संग्राम में कूदने के पहले इन कमजोरियों से मुक्ति पालेना सच्चे सैनिक का कर्त्तव्य होता है। माता का अधिकार पिता से दश गुना अधिक होता है और मातृभूमि का माता पिता दोनों से सौ गुना। यह तो तुम्हारा ही वचन है, क्या भूल गए ?

यशवन्तसिंह ने उत्तर दिया:—नहीं मैं भूला नहीं हूँ हरी भाई। परन्तु जो कभी सत्य और स्पष्ट था वह स्वप्न करके नहीं भुलाया जा सकता। स्पप्न के रूप में भविष्य की सूचना मिली है। मानसिंह ने घड़ी देखते हुए कहा:—"दो मिनट और अवशेष हैं। घण्टा बजने ही वाला है। अब भी समय है, एक आध प्याला चाय पीलो। तुम्हारी क्लान्ति और मनका अवासाद तिरोहित हो जायगा। घर चलेंगे अवश्य, लेकिन विजयी होकर आजाद होकर और अंग्रेज़ों को भारत से बाहर निकाल कर।

हरनामसिंह ने प्याला खाली करते हुए कहा:—"चाय पिओ, जस्सू चाय पिओ। तुमको यह जानकर प्रसन्न होना चाहिए कि हमारे घर जाने की अवधि धीरे-धीरे कम हो रही है। आज संध्या के पहले-पहले हम लोगों को यह स्थान छोड़कर चल देना पड़ेगा। यद्यपि यह अभी तकनहीं मलूम हुआ है कि कहा भेजे जाएगे परन्तु यह निश्चय है कि युद्ध क्षेत्र में भेजे जा रहे हैं जहाँ अंग्रेजी सेना से हमको मोरचा लेना पड़ेगा।

मानसिंह ने चाय का प्याला यशवन्तसिंह के मुँह में लगाते हुए कहा:—"देखो चाय बिलकुल ठंडी हो गई। जल्दी पिओ। घंटा बजने ही वाला है।" यशवन्तसिंह को विवश होकर चाय पीना पड़ा।

१४

बन्देमातरम गायन......सुमधुर स्वर से बैंड में बज रहा था वायु की तरंगे कानों द्वारा पहुँचकर सैनिकों के मस्तिष्क में सुदूर वासिनी मातृभूमि का

प्रेम जाग्रत कर रही थी। स्वदेश प्रेम की स्वर लहरी झूम-झूम कर भारतीय वीरों को बलिदान हो जाने का सन्देश दे रही थी। उनका प्रच्छन्न शौर्य, आत्मविश्वास के प्रकाश से देदीप्यमान होकर ज्वलन्त और सजग होने का उपक्रम कर रहा था।

बैंड का गायन समाप्त होते ही कमान अफसर ने कहना आरम्भ किया:—"मेरे बहादुर जवानों। तुम्हारी सेना का नाम है आजादी सेना तुमको इस झंडे के नीचे एकत्रित करने वाला, तुम्हारा देश प्रेम है। तुमको जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा देने वाला तुम्हारा कर्त्तव्य ज्ञान है। तुम्हारे स्वार्थ त्याग और महान बलिदान का पुरस्कार भी वैसा ही महत् और गौरव-पूर्ण होगा, वह होगी भारत के चालीस करोड़ निवासियों की आजादी। उनको संसार के आजाद मनुष्यों की श्रेणी में बैठाने का गौरव तुमको मिलेगा। तुम इतिहास बनाने जारहे हो, तुम्हारे क्षुद्र से क्षुद्र कार्य, और तुम्हारी साधारण सा साधारण गतिविधि भारत की आजादी का इतिहास निर्माण करेगी। जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र की क्षुद्र वानरी सेना ने महान पराक्रमी रावण के दुर्दान्त वीरों को परास्त कर, माता सीता का उद्धार किया था, उसी प्रकार तुम भी भारत माता को अंग्रेजों की दासता पाश से मुक्त करोगे। तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई विजय देवि अधीर हो रही है। तुम सदैव आगे बढ़ते जाओगे, और जो कदम तुम्हारा उठेगा, वह बढ़ने के लिए ही उठेगा। तुम्हारा उद्देश्य सत् है क्योंकि तुम किसी को गुलाम बनाने के लिए नहीं जारहे हो वरन सदियों की दासता को छिन्न-भिन्न करना ही तुम्हारा ध्येय है। तुम्हारा व्रत अहिंसा है क्योंकि तुम किसी दूसरे के धन माल अथवा राज्य पर अधिकार करने नहीं जारहे हो, वरन अपने प्राप्य और जिस पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, प्राप्त करने के लिए जारहे हो। तुम संसार में अशान्ति उत्पन्न करने या हानि पहुँचाने नहीं जारहे हो, वरन शोषितों के उद्धार करने जारहे हो भगवान् की दैविक शक्तियाँ तुम्हारी रक्षा करेंगी तुम्हें बल और साहस प्रदान करेंगी। उन्हीं शक्तियों के सहारे तुम्हारा कदम-अंगद का कदम होगा तुम्हारा प्रहार महावीर हनुमान का प्रहार होगा। तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू है। यदि रणभूमि में देश को आजाद करते हुए प्राण विसर्जन करते हो तो तुम स्वर्गारोहण करोगे, तुम्हारे शरीर जिस स्थान पर गिरेंगे वहां मेले भरेंगे, और शत सहस्र नरनारी तुम्हारे नाम की पूजा करेंगे उनके अजेय आशीर्वाद तुम्हें स्वर्ग में भी महानता और उच्चता प्रदान करेंगे, इतिहास के पृष्ठों में तुम्हारा नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जावेगा। तुम आगे आने वाली संतति के लिये मार्ग प्रदर्शक बनोगे। प्रकाश स्तम्भ की भांति उन्हें सत् मार्ग पर ले जाने वाले होंगे। और यदि उस शुभ मुहूर्त तक जब तक भारत

स्वतन्त्र होता है जीवित रहते हो, तब तुम रामराज्य के संस्थापक होगे, मातृ-भूमि के आँसुओं को पोंछने वाले होगे। तुम्हें लोग भारत भाग्य विधाता कहेंगे, और तुम्हारी गणना युग प्रवर्तकों में होगी। तुम आजादी के सेनानी होगे, और तुम्हारा स्थान संसार के उन गौरव-मय पुरुषों में होगा जिन्होंने स्वार्थ, त्याग और बलिदान को अपना कर संसार में सत् धर्म की प्रतिष्ठा की है। तुम मृत्यु लोक में भी देवत्व पद को प्राप्त करोगे, और संसार तथा स्वर्ग में पूज्य होगे।

किंचत मात्र ठहर कर उसने फिर कहना आरम्भ किया, यह झंडा जो तुम्हारे सामने उन्नत मस्तक होकर वायु में फहरा रहा है, वह तुम्हारी सत् भावनाओं, सत् उद्देश्यों, और सत् कामनाओं का प्रतीक है। केसरिया रंग तुमको बलिदान के लिए आह्वान् करता है, श्वेत रंग तुमको शान्ति, दृढ़ और निर्मल बनने के लिए आदेश देता है, और हरित रंग तुमको संसार के कोने-कोने में, सत्धर्म की स्थापना करने की आज्ञा प्रदान करता है। हरित रंग की भाँति तुम अपने धर्म को भी व्यापक बनाओ। वे भारत ही नहीं वरन संसार में गुलामी का नाम मिटा देने की प्रतिज्ञा करने के लिए वह तुम्हें ललकार रहा है। इसीलिए यह झंडा सत्य, और अहिंसा का प्रतीक है। जब-जब तुम्हारे मन में विकार उत्पन्न हो, क्योंकि मन चंचल है, तब-तब तुम इसको देखकर अपने कर्त्तव्य ज्ञान को उद्दीप्त कर लिया करो। इसको निर्मल, और शुद्ध रखने का दायित्व तुम्हारे ऊपर है। इसको संसार के अन्य राष्ट्रों के झंडों के साथ उनकी आजादी को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए फहराने का भार तुम्हारे ऊपर है। यह झंडा संसार के दलित राष्ट्रों के लिए मुक्ति मार्ग दिखाने वाला है, उनको अपनी छाया में रखकर उन्हें संसार का नागरिक बनाने वाला है। यह हमारे देश की मर्यादा के गौरव गरिमा के शिखर पर प्रतिष्ठित करने वाला और उसको इस शिखर पर लेजाने का भार तुम्हारे बलिष्ठ कंधों पर है तुम्हारी शक्तिशाली भुजाओं पर है। तुम आजादी के सिपाही हो। तुम जहाँ इस झंडे को लेकर जाओगे वहाँ के वासी तुम्हारा स्वागत करेंगे, तुमको अपने सिर और मस्तक पर बैठायेंगे, क्योंकि तुम उनको अपना ही जैसा स्वतंत्र और मानवोचित अधिकार को भोगने का संदेश लेकर जारहे हो। तुम्हारे इस झन्डे का मार्ग अवरुद्ध करने वाला कोई नहीं है। दलित राष्ट्रों के दलित वर्ग तुमको अपनी भुजाओं में भरकर हृदय से लगालेने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। त्रेता में रावण जैसे साम्राज्यवादी की यंत्रणाओं सेमुक्ति पाने के लिए शोषित नर-नारी भगवान् रामचन्द्र की सेना के आगमन की प्रतीक्षा शताब्दियों, से कर रहे थे, उसी प्रकार आज भी योरोपीय राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीति से मुक्ति पाने के लिए एशिया

के राष्ट्र तुम्हारा मार्ग निहार रहे हैं। भारत की आजादी में एशिया ही नहीं संसार-भर के गुलामों की आजादी निहित है। उन सबका आशीर्वाद और मंगल-कामनाएँ तुम्हारे सभी अनिष्टों का संहार करेंगी। तुम अवश्यमेव विजयी होगे और भारत के पश्चात् अन्य राष्ट्रों को भी स्वतंत्र करोगे इसमें रंच-मात्र संदेह नहीं है।

"आजादी सेना" के सैनिको, तुम भारत की संतान हो। उस भारत की जिसका हिमालय मुकुट है, गंगा यमुना जिसका उपवीत है, और सिन्धु जिसका पायन्दाज है। जो आदि काल से संसार का पथ प्रदर्शक रहा है, जो विभिन्न संस्कृतियों को आत्मसात् करके उन्हें अपना नवीन रूप देने में अग्रणी रहा है। जिसने शुद्ध मानव धर्म का प्रचार सदैव किया है। अपनी गुलामी में भी जिसने अपनी सांस्कृतिक उच्चता नहीं त्यागी जिसने अपने दुर्दिनों में भी वसुधैव कुटुम्बकम् का पाठ पढ़ा और पढ़ाया है. जिसने हूण-शक. और मुसलमानों को अपनी गोद में उसी भाँति आश्रय प्रदान किया है जिस प्रकार अपनी जन्मभूमि में वे पाते। जिसने स्वार्थ से उत्पन्न होने वाले पार्थक्य भाव कभी पनपने नहीं दिया है। उसी भारतवर्ष की तुम सन्तान हो महान देश में जन्म लेने वालों को महान् कार्य करना पड़ता है। अतएव तुम संसार में महान् कार्यों को करने के लिए ही उत्पन्न हुए हो, और उसमें सफलता तुम्हें अवश्य मिलेगी। अंग्रेजों ने भेद का भाव तुम्हारे मन में सदैव उत्पन्न किया है, क्योंकि उनका उद्देश्य असत् था, तुम्हारे ऊपर अपना शासन-भार लादकर तुम्हारा रक्त शोषण करने की प्रवृत्ति से वे ओत-प्रोत थे। परन्तु आजादी सेना उनके सदियों के परिश्रम को छिन्न-भिन्न कर देगी। हिन्दू और मुसलमान सगे भाइयों की भाँति भारतमाता को आजाद करने के लिए कटिबद्ध हुए हैं। तुम्हारे अन्तिम सम्राट् बहादुर शाह की कब्र इसी प्रदेश में बनाई गई, और आज उन्हीं बहादुर शाह की आत्मा सजग होकर अपने लाल किले का मार्ग प्रदर्शन करने के लिए तुम्हारे आगे-आगे चलेगी। तुम उस समय तक अविराम गति से बढ़ते हुए चले जाओ जब-तक लाल किले पर पहुँच कर राष्ट्रीय तिरंगा, झंडा फहरा न दो। हथियारों से लैस तुम्हारी कमरें लालकिले की छतों पर खुलेंगी. वहीं पर तुम विश्राम करने के अधिकारी होगे, और इसके पहले तुम्हें अथक परिश्रम करना है, शत्रुओं का दलन करना है, जो मानवता के शत्रु हैं उनको नष्ट करना है। बोलो स्वीकार है।

सैनिकों के एक स्वर में उत्तर दिया :—"हाँ स्वीकार है।

शतसहस्रों की कण्ठ-ध्वनि आकाश में फैल कर शत्रुओं को भयभीत करने के लिए अग्रसर हो गई।

कमान अफसर ने सन्तुष्ट होकर कहा, तुम्हारा नारा है दिल्ली चलो और

तुम्हारा ध्येय है भारत को आजाद करो।

सैनिकोंने गगन को कंपाते हुए पुनः घोषित किया, 'दिल्ली चलो, भारत को आजाद करो। दिशाएं कम्पित होकर प्रतिध्वनि करने लगीं, 'दिल्ली चलो, भारत को आजाद करो। रत्नाकर की स्वतंत्रता से प्रभावित पावन भी उत्साहित होकर कहने लगा, दिल्ली चलो, भारत को आज़ाद करो।

मातृभूमि की आराधना करता हुआ फौजी बैंड पुनः बजने लगा। आज़ादी सेनाएँ के सैनिक झूम-झूम कर कहने लगे, दिल्ली चलो, भारत अज़ाद करो।

प्रस्थान की भेरी बजाती हुई आज़ादी सेना आज़ादी का सन्देश लेकर चल दी। आकाश प्रतिध्वनित होकर उन पर अपना आशीर्वाद बिखेरने लगा।

१५

आपने एकान्त कक्ष में बैठे हुए मिस्टर निक्सन उर्मिला के मुकदमे की फाइल रखे हुए विचारों में मग्न थे। दो एक शब्द लिखते और फिर उन्हें काट देते।-उनके मन का द्वन्द्व उन्हें कुछ निश्चित रूप से करने के लिए आज्ञा नहीं दे रहा था जब वे कुछ लिख न सके तो उठकर कमरे में टहलने लगे वे मन-ही-मन कहने लगे:—"कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। एक ओर उर्मिला का दर्प चूर-चूर करने की प्रबल इच्छा उठती है, और दूसरी ओर कर्तव्य की पुकार उठती है। एक ओर विलास-लीला करने के लिए मन आकुल होता जा रहा है, और दूसरी ओर विवेक इस मार्ग का पथिक बनने के लिए वारण कर रहा है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।"

"उर्मिला वास्तव में अनिन्द्य सुन्दरी है। भुवन मोहन सौंदर्य लेकर वह इस धरातल पर अवतीर्ण हुई है। उसके एक-एक अंग का सौंदर्य संसार की सर्व-श्रेष्ठ सुन्दरियों के अभिमान को धूल में मिलाता है। मैंने अपने जीवन में ऐसी सर्वांग सुन्दरी कभी नहीं देखी। भौंरे की भाँति मैंने बहुत मधु-पान किया है अनेक देशों की सुन्दरियों के साथ विहार किया है, परन्तु उर्मिला जैसी अनुपम रमणी मैंने नहीं देखी। किसी सुंदर वस्तु को देखकर उसको हस्तगत करने की इच्छा स्वतः उत्पन्न होती है। इसमें मेरा क्या अपराध है। संसार सौंदर्योपासक है, यदि मैं भी उस पथ का अवलम्बन करता हूँ, तो क्या मैं दोषी हूँ। यह अपराध कदापि नहीं हो सकता।"

"अच्छा उर्मिला का अब संसार में कौन है। क्या इस सुन्दर पुष्प की सुरभि से संसार सुरभित नहीं होगा। अनदेखा, अन-जाना रहकर वह कुम्हला कर क्या सूख जायेगा। संसार की सब वस्तुएं केवल पुरुषों के भोग के लिए बनाई गई हैं। उर्मिला जैसे पुष्प की रचना शायद मेरे उपभोग के लिए ही हुई है, तभी घटना स्रोत उसको मेरे पाश में बाँध रहा है। उसका भाग्य पत्र मेरे

सामने है। मैं जो चाहूँ उसमें लिख सकता हूँ। उसको छोड़ भी सकता हूँ, कारावास का दण्ड भी दे सकता हूँ, और द्वीपान्तर में स्थानान्तरित भी कर सकता हूँ जहाँ उसका पति और स्वामिनी गई है, जहाँ मैं पूर्ण शासक होकर जारहा हूँ। घटनाचक्र जब मुझे वहाँ घसीट कर लिये जा रहा है तब मैं क्यों न अपने साथ इसको खींचकर वहीं ले चलूँ। इतना तो मेरे हाथ में है ही।

"किन्तु रामनाथ भी वहाँ है और कनक भी जारही होगी। वहाँ मुझे कौन रोकने वाला है। सभी मेरे आधीन होंगे और युद्ध का समय है। इस अन्धाधुन्ध काल में सभी अनहोनी बातें सहज ही संभव हो सकती हैं। कानून भी असीम अधिकार प्रदान करता है। यदि मैं इस परिस्थिति से लाभ नहीं उठाता तो संसार का सबसे बड़ा मूर्ख हूँ। मूर्ख वही है जो अवसरों से लाभ नहीं उठाता। वहाँ उर्मिला को मैं ऐसे स्थान में रखूँगा जहाँ रामनाथ और कनक की पहुँच न हो सके। यदि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार लेगी तो अगैथा को इस युद्ध के ताण्डव में खपा देना कौन कठिन काम है। फिर उसको अपनी रानी बनाकर रखूँगा। ऐसे कितने ही अंग्रेज हैं जिन्होंने उस देश की स्त्रियों से विवाह किया है जहाँ वे रहते हैं। इसके अतिरिक्त अब मेरे पास करोड़ों रुपया हो गया है। किसी भी देश में जाकर जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। यह सभी संभव है, यदि उर्मिला मेरा प्रणय प्रस्ताव स्वीकार कर ले।"

मिस्टर निक्सन ने एक गहरी निश्वास ली, वे फिर कहने लगे :—
"उर्मिला है एक अभिमानिनी नारी उस दिन उसने कैसा मुँहफट उत्तर दिया था :—"भारतीय नारियाँ कर्त्तव्य के लिए जीवन देना जानती हैं 'और फिर जो मैंने पूछा कि क्या उसको अपना अपराध स्वीकार है। उसने कितनी निर्भीकता से उत्तर दिया था, 'हाँ स्वीकार है'। इसी सिलसिले में उसके ये शब्द 'कि मेरी ही प्रेरणा से मजदूर बगावत करने के लिए तैयार हुए हैं, और अगर मुझे अवसर मिलेगा तो मैं वह क्रान्ति उपस्थित करूँगी, जिससे ब्रिटिश शासन-सत्ता बिखर जायगी। भारत के एक-एक नर-नारी में वह जोश उत्पन्न कर देना चाहती हूँ जो ब्रिटिश सत्ता में आग लगा दे, और अंग्रेजों का सर्वनाश कर दे। मुझे छेड़ना एक जीवित अग्नि स्फुलिंग को छेड़ देना है, जो भारत के अंग्रेजों का नाश करके विश्राम लेगी'।"

उसके परिचय देते हैं। उस समय उसका सिर गर्व से उन्नत हो गया था, उसके नेत्र अग्नि उगल रहे थे, और ओष्ठ फड़क रहे थे। उससे वह अनुपम सुन्दरी देख पड़ती थी। मैं उसको अवश्य अपनी जीवनसंगिनी बनाऊँगा।

जितना उग्र उसका देश-प्रेम है, उतना ही उग्र उसका प्रणय भी तो होगा। छल, बल, कौशल किसी भी उपाय से यदि रमणी का मान भंग एक बार भी कर दिया जाता है तो वह उस पुरुष की दासता स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाती है। स्त्री जाति तभी तक उन्नत सिर होकर चलती है, जब तक उसका मान भंग नहीं होता। अन्डमान में मुझे ऐसे अवसर बराबर मिलेंगे जब उसको छल-बल और कौशल से अपनी पत्नी बना सकूँगा। शराब से झिझक तभी तक तो रहती है जब तक उसे कोई पीता नहीं। पीने का मजा पाकर कौन उसे छोड़ना चाहता है। कलुषित मार्गों में यही तो आकर्षण है, जो एक बार के भी पथिक को पुनः उसी मार्ग पर चलने के लिए निमंत्रण देता है। चरित्र का पतन एक बार हो जाने से फिर उसकी दृढ़ता सदैव के लिए नष्ट हो जाती है। उर्मिला को भी एक बार चरित्र-भ्रष्ट कर देने से उसकी यौवन काल की वासनाएं उसी प्रकार उद्दीप्त हो जायंगी जैसे अग्नि घृत की बूँदों के पड़ जाने से सजग होने लगती है। यौवन काल की अतृप्त वासनाएं तो एक क्षुद्र ठोकर से जाग्रत हो जाती हैं, और जब ये जाग्रत होती हैं, तब चरित्र के जितने भी बाँध हैं उनके उद्दाम गति-प्रवाह में पड़कर चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं। वासना की लपटें, नरक और ईश्वर के सभी प्रकार के भय को अपनी लाल जिह्वा से चाट जाती हैं। उर्मिला की अतृप्त वासना को जाग्रत कर देना-भर मेरा काम है, फिर तो वह स्वतः मेरे आदेश पर अपना मन-प्राण निछावर करने के लिए उत्सुक और उत्कंठित होगी। बेचारा वामनदास यही न कर सका, और इसीलिए वह अकृतकार्य रहा। उसके पास से तो यह निकल भागी, किन्तु मेरे चुंगुल से भागकर वह कहाँ जायगी। अन्डमान में तो मेरा ही एक छत्र अधिकार होगा।

टहलते हुए मिस्टर निक्सन की दृष्टि सहसा दर्पण पर जाकर ठहर गई। वह आपादमस्तक, अपना शारीरिक सौंदर्य निरखने लगा। मानव सदैव अपना रूप देखने के लिए लालायित रहता है यद्यपि वह अपने रूप से भली भाँति परिचित रहता है तथापि वह उसमें एक नवीन सौंदर्य बराबर देखने के लिए प्रयत्न-शील रहता है। यदि वह प्रौढ़ व्यक्ति होता है तो उसकी प्रौढ़ता को छिपाने के उपाय बनाता है। ऐसा इसलिए होता है कि दर्पण अपने उरमें दर्प छिपाए हुए है जो मानव में रूप के दर्प का आविर्भाव करता है।

मिस्टर निक्सन को दर्पण के सम्मुख ठहरने के लिए विवश होना पड़ा। वह फिर कहने लगा, यौवन अब भी मुझमें अवशेष है। उसकी स्फूर्ति मैं अभी तक पहले के ही भाँति अनुभव करता हूँ। कहते हैं पुरुष का यौवन उसकी खुराक है। क्योंकि यौवन केवल शक्ति का दूसरा नाम है। शक्ति का आधार पुष्टिकारी आहार है, और उचित मात्रा में परिश्रम है, जो उसको पचाकर रक्त का निर्माण

करे। मैं स्वास्थ्य के सभी नियमों का यथावत् पालन करता हूँ और सर्वोत्तम आहार करता हूँ, फिर शक्ति का ह्रास क्यों होगा? यदि इसी भाँति मेरे आहार की व्यवस्था रहे तो मैं अभी कई दशाब्दियों तक निर्बल नहीं हो सकता। फिर मेरे सामने कोई कारण नहीं है कि मुझमें वृद्धता के लक्षण प्रकट हों। स्त्री तो केवल शक्ति की उपासिका होती है। जब मुझमें शक्ति होगी तो उर्मिला मेरा कैसे तिरस्कार करेगी।

"तब तो यही निश्चित रहा कि मैं अपने पदाधिकार का उपयोग करूँ, और अपने साथ-साथ उर्मिला को वन्दिनी बनाकर अन्दमान ले चलूँ। कनक की भाँति उसको भी द्वीपान्तर-वास का दण्ड प्रदान करूँ। अपील आदि के झंझटों में वह पड़ेगी नहीं, और मेरा फैसला बहाल रह जायगा अन्दमान में मेरा साम्राज्य होगा, और वहाँ मनमाना करने के लिए मैं पूर्ण रूप से सर्वथा स्वतंत्र होऊँगा। अनैथा मेरे मार्ग की कंटक हो सकती है, परन्तु उससे मुक्ति पाने के भी मार्ग प्रशस्त हैं, भविष्य में चाहे जो कुछ हो, अब तो मन की पुकार को मानना ही पड़ेगा। अभिमानिनी का भी मान भंग करने में एक प्रकार का आनन्द मिलता है उसके समक्ष बहिश्त के सातों राज्यों का सुख त्याज्य है।"

मिस्टर निक्सन कुर्सी पर बैठ गए, और उर्मिला की भाग्य-लिपि लिखने के लिए कटिबद्ध होगए। उन्होंने विवेक को ठुकरा दिया, और आजीवन द्वीपान्तर-वास का निर्णय लिखने लगे। लिखते हुए उनके हाथ काँप उठे, परन्तु वह कम्पन क्षणिक था, शैतान ने उन्हें अपना पूर्ण बल प्रदान कर दिया और वासना ने उन्हें उस निर्णय को लिखने के लिए बाध्य कर दिया। उर्मिला का सौंदर्य एक बार पुनः उसको दुर्दैव की भूल-भुलैयाँ में पथ-भ्रष्ट करने का जाल गूँथने लगा। मिस्टर निक्सन ने अघाकर एक साँस ली, और शैतान अपने पैशाचिक हास्य रव से उसके मस्तिष्क को प्रतिध्वनित करने लगा।

१६

उसी दिन ग्यारह बजे जब जिलाधीश के न्यायालय में उर्मिला अपना फैसला सुनने के लिए कठघरे में खड़ी की गई, उसका हृदय तीव्र-गति से स्पंदित हो रहा था। अनेकानेक कल्पनाएं उसके मन में उत्पन्न हो रही थीं। उसके मन में यह विश्वास अवश्य था कि उसको कारावास का दण्ड दिया जायगा, परन्तु वह उससे भी उग्र दण्ड की कामना कर रही थी। जब से वह पकड़ी गई और उसने सुना कि कनक को सुरक्षा कानून में आजीवन द्वीपान्तर-वास का दण्ड मिला है, तब से उसके मन में यह इच्छा बलवती हो गई थी कि येन केन प्रकारेण उसको भी वही दण्ड दिया जाय। वह उसी दिन से भगवान से निरन्तर प्रार्थना करती कि वह न्यायधीश को ऐसी बुद्धि प्रदान करे जिससे वह द्वीपान्तर-वास की

दण्ड-व्यवस्था करे। अपने स्वामी रामनाथ और कनक से पुनर्मिलन के लिए इस उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। इसीलिए उसने अपने को गुरुतर अपराधी बनाने में कोई प्रयत्न अवशेष नहीं रखा। उसने अपना अपराध मुक्त-कण्ठ से स्वीकार तो किया ही, वरन यह भी प्रकट किया कि वह घोर विप्लविनी है, और अराजकता फैलाने में कभी भी चूकेगी नहीं।

संसार की ओर से वह उदासीन हो चुकी थी, और उसके लिये वह नाना प्रकार की यातनाओं का केन्द्र हो गया था। वह शीघ्रातिशीघ्र उससे मुक्ति पाने के लिए लालायित थी, और किसी भी प्रकार जीवन त्यागने के लिए उत्कंठित थी। जब तक कनक थी, वह आत्म-हत्या का विचार नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसके सर्वांगीण प्रभाव से वह अभिभूत थी। परन्तु कनक के दण्डित हो जाने से जीवन के प्रति उसे घोर अश्रद्धा और घृणा हो गई थी। उसे विश्वास होगया था कि उसके भाग्य में घोर दैन्य और यातनाएं ही संचित हैं, जिनसे इस जीवन में त्राण पाना दुष्कर ही नहीं असम्भव है।

रुदन, स्त्री ही नहीं वरन् समस्त मानव-जाति की विपन्न अवस्था का परम मित्र है। दुर्दिनों में प्रायः सब-कोई साथ छोड़ दिया करते हैं, परन्तु रुदन नहीं छोड़ता, वरन् यह उतना ही सन्निकट आता जाता है, जितना दूसरे लोग दूर हटते जाते हैं। मानव-मस्तिष्क का जब अनुभव कोप मानसिक, अथवा शारीरिक कष्टों के प्रभाव के कारण रक्त से ओत-प्रोत होजाता है, तब समत्व स्थापित करने के लिए रक्त का जल भाग आँखों के द्वारा प्रवाहित होता है, और इसी क्रिया को सर्व-साधारण रुदन कहते हैं। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्रिया शक्ति का आधार समत्व है। प्रकृति की रचना केवल उसी समत्व को सदैव प्रत्येक दशा में स्थापित करने के लिए हुई है। क्रिया शक्ति तो सूक्ष्माति सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य होकर केवल प्रेरक भाव रखती है, और प्रकृति अपने स्थूल रूप द्वारा उसमें वस्तुतः समत्व स्थापित करती है। इसी द्विमुखी शक्ति का नाम क्रिया तथा प्रतिक्रिया है, ईश्वर तथा प्रकृति है। इनका रूप और गति वृत्ताकार है, क्योंकि ब्रह्माण्डवर्त्ती सभी आकार गोल हैं, जो एक-दूसरे को शक्ति प्रदान किया करते हैं और जिस प्रकार गोलाकार वस्तुओं का न आदि होता है और न अन्त, उसी भाँति ये दोनों शक्तियाँ भी अनादि और अनन्त हैं। यही दोनों शक्तियाँ ब्रह्माण्ड तथा शक्ति के निर्माण की आधार हैं और एक-दूसरे पर अवलंबित होने के कारण परतन्त्र होते हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

उर्मिला के मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि क्या सरकार उसको भी आजीवन-द्वीपान्तर-वास का दण्ड प्रदान करेगी। उसको अपना अपराध यद्यपि स्वयं ज्ञात नहीं था, तथापि वह जानती थी कि मजदूर आन्दोलन के कारण

ही उसे गिरफ्तार किया गया है। कनक का वियोग सहन करने में वह अपने को असमर्थ पाती थी, क्योंकि उसने उसमें माता का वात्सल्य, भगिनी का स्नेह, और मित्र का सौहार्द पाया था। मजदूर आन्दोलन तो एक प्रकार से समाप्त ही हो चुका था, और उसमें भाग लेने के लिये उसके मन में किंचित उत्कण्ठा नहीं रह गई थी। प्रायः सभी अपराधी दण्ड से मुक्त होने की कामना करते हैं, किन्तु उर्मिला उन सबके विपरीत अपनी दण्ड व्यवस्था चाहती थी।

दिनके ग्यारह बज चुके थे जब वह कठघरे में लाकर खड़ी की गई। उसने चारों ओर उन्नतसिर से देखा। न्यायालय जन शून्य था। मजदूरों के दल का कोई सदस्य वहाँ उपस्थित न था, और वकील इत्यादि भी न थे। एक पेशकार चपरासी और दो पुलिस के जवान द्वार पर खड़े थे।

मिस्टर निक्सन ने थोड़ी देर पश्चात प्रवेश किया, और उनके आगमन के साथ सब उठ खड़े हुए। उन्होंने उड़ती हुई दृष्टि से उर्मिला को एक बार देखा, और फिर सिर घुमाकर दूसरी ओर देखने लगे। उसी एक दृष्टि में उन्होंने उसके आनन पर थिरकती हुई प्रसन्नता को निरख लिया। वे खिन्न होकर मुक-दमे की मिसल देखने लगे। न्यायालय में पूर्ण रूप से स्तब्धता छाई हुई थी।

मिस्टर निक्सन ने पेशकार से कहा :—मेरी तबियत कुछ खराब है, फैसला कर तुम सुना दो पेशकार ने आदेश की स्वीकृति में सिर नतकर लिया।

उर्मिला ने सविनय कहा :—फैसला तो मैं आपके ही मुख से सुनना चाहती हूँ। आप कानून का पालन क्यों नहीं करते हैं

मिस्टर निक्सन तड़प उठे, जैसे किसी ने नेत्राघात किया हो। फिर अपने को संयत करते हुए कहा:—"सुन्दरी, मैं स्वीकार करता हूँ कि कानून के अनुसार फैसला मुझको ही सुनाना चाहिए, परन्तु एक रमणी के प्रति उसकी कठोरता दिखाने में अपने को असमर्थ पाता है।

उर्मिला ने सगर्व कहा:—"मैं कठोर-से-कठोर दण्ड सुनने के लिए तैयार हूँ। मुझे तो भय हो रहा कि है आपने शायद मेरे साथ उतनी कठोरता नहीं बरती जितनी कानूनन आवश्यक है।

मिस्टर निक्सन ने चेतावनी देते हुए कहा :—"सुन्दरी, आप अपने अधिकार परिधि से बाहर जारही हैं। दण्ड निरूपण करने का अधिकार मेरा है।

उर्मिला ने उत्तर दिया :—"उस अधिकार को मैं नहीं छीनती मैं तो केवल यह बता देना चाहती हूँ कि कि मैं दया की भिक्षा ब्रिटिश राज से नहीं माँगती। यदि मेरा बस चलता तो मैं विप्लव उत्पन्न करके इसको नष्ट कर देती।

मिस्टर निक्सन ने मुस्कराते हुए कहा :—"यह मुझे विदित है, और सरकार ने वही व्यवस्था की है। सुन्दरी, जिसके लिये तुम इतनी उतावली हो

रही हो, वह सुनो। तुमको भी तुम्हारे पति रामनाथ और तुम्हारी सखी कनक की भाँति आजीवन-द्वीपान्तर वास का दण्ड दिया गया है।"

उर्मिला के हृदय की कली-कली खिल गई। उसने उमगती हुई प्रसन्नता के साथ कहा :—"क्या यह सत्य है, क्या यह संभव है। क्या भगवान् ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करली, नहीं शायद आप मुझे भुलावा दे रहे हैं।"

उसके उल्लसित नेत्र प्रश्न भरी दृष्टि से निक्सन की ओर देखने लगे। उसको उसकी प्रसन्नता पर आश्चर्य हो रहा था। उसे भय था कि दण्ड व्यवस्था सुनकर शायद वह मूर्छित हो जायगी, और उसे घोर शत्रु रूप में देखेगी। वह इसी भय से उसको फैसला सुनाने के लिए तैयार नहीं होता था। परन्तु उसने नितान्त विपरीत अवस्था देखकर चकित रह गया।

उर्मिला ने उसको मौन देखकर पुनः पूछा :—"क्यों साहब, आपने सत्य ही द्वीपान्तर वास का दण्ड दिया है। यदि ऐसा है तो आप मेरे कोटि-कोटि आशीर्वाद के अधिकारी हैं। इस उपकार के लिए आजीवन आभारी रहूँगी ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरा सारा प्रयत्न सफल हुआ, और उसने मेरी प्रार्थना अंगीकार कर ली। मुझे आप कब भेज रहे हैं। आज ही और अभी मुझे काला पानी भेज दीजिये।

मिस्टर निक्सन तो चुप रहे, परन्तु पेशकार ने घुड़ककर कहा :—"चुप रह, चंचल स्त्री, अभी बहुत टैं-टैं करती है, जब कालापानी देखेगी तब सारी प्रसन्नता काफूर हो जायेगी, और यहाँ की जमीन देखने के लिए तरसती हुई कुत्तों की भाँति मरेगी।"

उर्मिला ने तीक्ष्णता के साथ कहा :—"जो कुछ मेरे ऊपर बीतेगी, सब सहर्ष सहूँगी या रोऊँगी किन्तु पेशकार साहब आपसे फैसला उलटने के लिये प्रार्थना करने नहीं आऊँगी।"

पेशकार कुछ उत्तर देने जा रहा था, परन्तु मिस्टर निक्सन ने सहज गम्भीर स्वर में कहा:—"तुमको बोलने का आदेश मैंने नहीं दिया है, पेशकार, तुम चुप रहो।" फिर उर्मिला से कहा :—"सुन्दरी, यदि तुम अपील करना चाहो, तो तुम्हें उसका अधिकार है।"

उर्मिला ने तुरन्त कहा :—"नहीं-नहीं मैं अपील करना नहीं चाहती। मैं नत मस्तक होकर दण्ड व्यवस्था बिना किसी आपत्ति के स्वीकार करती हूँ। लाओ, जहाँ मेरे हस्ताक्षर लेना हो ले सकते हो।"

उर्मिला ने निर्णय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। मिस्टर निक्सन का मुख निष्प्रभ हो गया।

उर्मिला ने हाथ जोड़कर बड़े ही विनीत स्वर में कहा, मेरी एक प्रार्थना

है उसे कृपा करके स्वीकार कीजिये।"

मिस्टर निक्सन कुछ प्रसन्न हुए, उन्होंने विचारा कि अब उन्हें कोई उपकार करने का अवसर प्राप्त होगा।

उन्होंने उत्तर दिया:—"निर्भय होकर कहिये आपकी सब प्रार्थनाएं स्वीकार ही नहीं वरन् तुरन्त पूर्ण की जायेगी।"

उर्मिला ने सविनय कहा:—"कृपा करके आप मुझे अविलम्ब कालेपानी भेजने की व्यवस्था कर दीजिये, मैं अब यहाँ अब एक क्षण भर नहीं ठहरना चाहती।"

जिलाधीश की आशाओं पर पानी फिर गया। उसने म्लान मुख से उत्तर दिया। "यह मेरी शक्ति से बाहर है। कानून नियमानुसार अपना काम करेगा। हाँ मैं यह अवश्य प्रबन्ध कर सकता हूँ कि आपको मार्ग में कोई कष्ट न होने पावे।

यह कहकर वे खिन्न चित्त से उठ गए।

१७

मिस्टर निक्सन न्यायालय से सीधे अपने बंगले वापस आए। उर्मिला की प्रसन्नता से उन्हें हर्ष के स्थान पर क्षोभ ही हुआ था। वे सदा से अपराधियों को उनकी दण्ड व्यवस्था से रोते ही हुए देखने के अभ्यस्त थे। उर्मिला की प्रतिक्रिया जो दण्ड विधान सुनाने के पश्चात् उन्हें देखने को मिली थी वह पूर्णतया नवीन थी, और उनकी शासक वृत्तियों के सर्वथा विपरीत थी। यद्यपि उसकी दण्ड व्यवस्था का प्रधान कारण उसके रूप पर लुब्ध होना था, और वह अपनी शैतानी प्रवृत्तियों को पूर्ण करने की सत्ता प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य भी प्रच्छन्न था। वह उसपर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था, क्योंकि उसको विश्वास था कि ऐसे उपाय से उसके भविष्य के कार्य क्रम में सहायता मिलेगी। परन्तु उर्मिला ने जब उसके दण्ड विधान को आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया, तो उसके मन ने कहा:—"तुम्हारा उद्देश्य उतनी सरलता से सफल नहीं होगा, जितनी तुम आशा कर रहे थे। जो नारी मृत्यु से भयभीत नहीं होती उस पर विजय पाना एक कठिन समस्या भी हो सकती है।"

बंगले पर पहुँचते ही वे सीधे अपने एकान्त कक्ष में चले गए। वे उद्विग्न चित्त थे, वे सोचने लगे:—"आह कैसा मनोहर रूप है, जेल में रहते हुए भी उसके प्रकृत सौंदर्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा, वरन् वह और भी प्रखर हो गया है जैसे स्वर्ण तपने से हो जाता है। इसके प्राप्त करने की आशा को मैं किसी प्रकार त्याग नहीं सकता। उसको अपने आधीन करने के लिए मैं उच्च-से-उच्च मूल्य

देने को तैयार हूँ । इसको अपनी बनाकर ही मानूँगा । इसके लिए मैं प्रियजन, परिवार प्रतिष्ठा, मान और नौकरी सभी त्यागने को उद्यत उसको अपने साथ घसीटे लिए जा रहा हूँ, देखूँ वहाँ किस करवट ऊँट बैठता है।

इसी समय अर्दली ने चन्द्रनाथ के आने की सूचना दी । उनके मनकी व्याकुलता उसे किसी से मिलने को आज्ञा नहीं दे रही थी, तथापि चन्द्रनाथ को इन्कार करना उचित नहीं था । चलते-चलाते वह कानपुर के व्यवसायियों से कुछ और भेंट पूजा लेने का इच्छुक था । उसने अर्दली को उनको ले आने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

चन्द्रनाथ ने प्रवेश करते हुए कहा:—"अभी कुछ मिनट पहले सुना है कि आप अन्दमान आदि द्वीपों के गवर्नर होकर जा रहे हैं, क्या यह सत्य है ।

मिस्टर निक्सन ने मन्द मुस्कान सहित कहा:—'हाँ यह समचार पूर्णतया सत्य है । कानपुर में जिस प्रकार शान्ति स्थापित करने में मुझको सफलता मिली है, उससे सरकार बड़ी प्रभावित हुई है । उसने मेरे कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, और इसके उपलक्ष में मुझको 'नाइट' की उपाधि मिलेगी । और जापान जिस भाँति सुदूर पूर्व में प्रगति कर रहा है, उससे आशंका हो रही है कि वह अन्दमान द्वीप पर भी आक्रमण करेगा वहाँ अनेकानेक राजनैतिक कैदी हैं, जो आन्तरिक विप्लव कर सकते हैं। ऐसे कठिन स्थान पर सरकार की इच्छा है कि वहाँ का शासक कठोर और दक्ष हो, जो आन्तरिक विद्रोह का दमन करने में समर्थ हो तथा जापानियों से भी मोर्चा लेकर उन्हें परास्त करे । सरकार को मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास है, इसी लिए उसने मुझको मनोनीत किया है । मुझे यहाँ से शीघ्र-से-शीघ्र प्रस्थान करने की आज्ञा है, अतएव मैं दो-चार दिनों में हीं जाने वाला हूँ । तुम अच्छे हो गए, तुमको देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है।

चन्द्रनाथ ने कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया:—"आप लोगों की कृपा से मृत्यु की घाटी पार कर के आ गया हूँ । मेरी थोड़ी सी बीमारी के समय में अनेकानेक काण्ड हो गये, जिनकी स्वप्न में भी आशा नहीं थी।

निक्सन:—"हाँ, घटनायें इतनी शीघ्रता से अवश्य घटी हैं। मज़दूर आन्दोलन समाप्त हो गया है । तुम से कहने में कोई हर्ज नहीं कि आन्दोलन के सभी कार्य कर्ताओं को निरंकुशता के साथ मरवा डाला गया है । साथ-साथ वे सभी मज़दूर मार डाले गये हैं जो हड़ताल के करने में सम्मिलित थे। सरकारी दमन चक्र ने तुम लोगों को वर्षों के लिये निरापद कर दिया है । अब निकट भविष्य में हड़तालों का भय नहीं रहेगा । अब आप लोग निर्भय होकर धनोपार्जन करें और……।

निक्सन कहते-कहते रुक गये और एक भेद भरी दृष्टि से चन्द्रनाथ की ओर देखने लगे।

चन्द्रनाथ ने उत्सुकता से पूछा :—"कहिये,-कहिये, रुक क्यों गए और क्या ?

मिस्टर निक्सन ने मन्द हास्य के साथ कहा:—"यही कि तुम्हारी प्रतिद्वन्दिनी कनक को भी मैंने तुम्हारे पथ से दूर कर दिया है। उसको भी आजीवन द्वीपान्तर वास का दण्ड दे दिया है, जिसमें तुम वामन दास की सम्पत्ति निशंक होकर भोग सको। यही नहीं, उसकी संगिनी और वामनदास की हत्या के मूल कारण उर्मिला को भी आज उसी पथ का पथिक बनाकर आया हूँ।"

चन्द्रनाथ ने साश्चर्य कहा :—"क्या उर्मिला को भी आपने आजीवन द्वीपान्तर वास का दण्ड दिया है।"

मिस्टर निक्सन ने सगर्व कहा: —"हां, आज ही मैंने फैसला सुनाया है। यह तो तुम भली भांति जानते हो कि सरकार अपने शत्रुओं को, चाहे वह पुरुष और चाहे स्त्री, सबल हो या निर्बल अछूता नहीं छोड़ती। विप्लव और विद्रोह करने वालों को कुचल देना सरकार का कर्तव्य है, और साधारण जनता की भलाई है। वे थोड़े से लोग जो देश की शान्ति को खतरे में डालते हैं, उनको जनहित के लिए नष्ट कर देने में सबका कल्याण है। सरकार केवल अपने स्वार्थ की मित्र होती है। उन मनुष्यों से मित्रता का व्यवहार वह तभी तक करती है जब तक वे उसकी आज्ञाओं को यथावत पालन करते हैं, और जिस समय उनकी नियत में अन्तर आया उनको यमलोक पहुंचाने में वह इतस्ततः नहीं करती।"

चन्द्रनाथ ने गम्भीर मुद्रा से कहा, "यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु कनक को आपने बड़ा कठिन दण्ड दिया है, इससे मेरे मन को बड़ा दुख हो रहा है।"

मिस्टर निक्सन ने हंसने के बाद कहा :—"तुमको कनक के दण्ड से दुख हो रहा है चन्द्रनाथ, उसकी सम्पत्ति जाली विल बना कर हरण करने में शायद तुम्हें मार्मिक वेदना ही हुई होगी, और उसे पथ की भिखारिणी बनाने में तो तुमने नारकीय यातना भोग की होगी, क्यों ?"

व्यंग्य की प्रखरता चन्द्रनाथ का उपहास करने लगी। क्रोध जाग्रत होकर उसकी आँखों से प्रकट होने लगा, किन्तु अपने से शक्ति शाली को सामने देख कर उलटे पैरों लौटने की चेष्टा करने लगा। प्रायः क्रोध अपने से निर्बलों को ही अपना शिकार बनाया करता है।

चन्द्रनाथ ने अपनी उत्तेजना को दबाते हुए कहा :—"घटना चक्र को देखते हुए, तुम्हारा कठोर व्यंग्य ठीक है। परन्तु आज मैं वास्तविकता प्रकट कर देना चाहता हूँ, जिस में तुम्हारा भ्रम निवारण हो जाये। वास्तव में उस जाली विल की रचना मैंने तुम्हारी सहायता से इस हेतु की थी कि मैं कनक से विवाह करना चाहता था। तुम चौंको नहीं, यह सत्य है। कनक से मैं प्रेम करता था, नहीं अब भी करता हूँ, और इसी कारण से उसके दण्ड से मुझको मानसिक पीड़ा हुई है। कनक की सामाजिक स्थिति मुझसे कहीं ऊँची थी। वास्तव में मैं उसका नौकर मात्र था। एक नौकर के साथ वह विवाह करेगी, यह विचार परिधि से बाहर की बात थी। अतएव उसपर दबाव डालने के लिए ही मैंने वह षड्यन्त्र किया। मेरे मन में यह विचार था कि किसी उपयुक्त अवसर पर जाली विल को बता कर उस को अपने साथ विवाह करने के लिए मैं बाध्य करूंगा। परन्तु स्वभाव की अधीरता के कारण मैं ऐसा न कर सका, और एक दिन उसके अकारण क्रुद्ध होने पर मैंने भी क्रोधावेश में वह भेद खोल दिया। उस समय भी मुझे विश्वास था कि वह अपनी सम्पत्ति हाथ से जाते देख कर नम्र पड़ जायेगी, और मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए विवश हो जायेगी। परन्तु वह मेरी भूल, हिमलाय जैसी भूल सिद्ध हुई, उसके आत्म-अभिमान को आंकना मैं भूल ही गया था। मेरी स्वार्थी प्रवृत्तियों ने मेरी बुद्धि के समत्व को खो दिया था। कनक आत्म अभिमान और त्याग की मूर्ति है। उसने मेरे सारे कौशल अपने एक ही पदाघात से चूर्ण विचूर्ण कर दिया, और करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति बिना किसी प्रतिवाद के छोड़ दिया। मैं सम्पत्ति की शुष्कता को लिए हुए रह गया। सम्पत्ति तो भोग का साधन मात्र है, वह साध्य तो नहीं है। मेरा वार निष्फल गया। अगाध पूँजी की स्वामिनी होते हुए भी उसने मजदूरों का कठिन परिश्रम, और अभावों से ओत प्रोत जीवन व्यतीत करना अंगीकार किया, किन्तु झुकना अपने अभिमान को दलित करना नहीं स्वीकार किया। दैव विडम्बना से हम दोनों प्रतिद्वन्द्वी क्षेत्रों में चले गए। उसने मजदूरों का नेतृत्व ग्रहण किया, और मैंने पूँजीपतियों का। पूंजी की सत्ता और उसकी अजेय शक्ति को दिखा कर मैंने उसको अपने वश में लाने का प्रयत्न किया। रामनाथ के फैसला सुनाने के समय तुम्हारी सहायता से मजदूरों पर गोलियाँ चलवाई और वह भीषण काण्ड दिखा कर उसको अपनी शक्ति का परिचय दिया। परन्तु वह भी मेरा प्रयास निष्फल गया। हम दोनों की बीच की खाई उत्तरोत्तर बढ़ती गई उसने कमर कस कर हड़ताल आन्दोलन को चला कर मुझे परास्त करना चाहा, और मैंने तुम्हारी सहायता से उसको जड़ मूल से नष्ट करने का उपाय करने लगा इसी बीच में मैं मोटर दुर्घटना से घायल हुआ,

और तुमने उसके चलाए हुए आन्दोलन को नष्ट तो कर दिया, परन्तु उसको भी मुझसे छीन लिया। यदि उसको दन्ड न मिलता तो पंगु होकर शायद मेरा प्रस्ताव उसे स्वीकार करना पड़ता। परन्तु अब तो बात हाथ के बाहर हो गई। निक्सन, वास्तव में मैं अभी-तक उससे प्रेम करता हूँ, और शायद उसको अपने उर में लिए हुए ही संसार से प्रयाण करना पड़ेगा।"

कहते-कहते चन्द्रनाथ की निराशा द्रवित होकर आँखों के कोने सेझाँकने लगी। उसका कंठ स्वर शनैः शनैः गाढ़ होकर मौन हो गया।

मिस्टर निक्सन ने गंभीर होकर कहा—"चन्द्रनाथ, तुमने यह पहले क्यों नहीं प्रकट किया यदि पहले यह प्रकट कर देते तो तुम्हारे कार्य में मैं बहुत बड़ा सहायक होता। मैं भी प्रेम की व्यथा जानता हूँ, उसकी कसक पहचानता हूँ। मुझे तुम्हारे साथ वास्तविक सहानुभूति है। मैं अब भी तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ और सम्भवतः अब तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण भी हो सकती है। तुम मेरे साथ अन्दमान क्यों नहीं चलते। वहीं मैं भी जा रहा हूं, पूर्ण शासक होकर। वहाँ इससे अधिक तुम्हारी सहायता कर सकूगा, और......,

कहते-कहते वह रुक गया। चन्द्रनाथ ने प्रश्न भरी दृष्टि से पूछा:—"और क्या ?

मिस्टर निक्सन कहने लगा:—"उस विषय में फिर कभी तुमसे बातें करूँगा। हाँ तुमको वहाँ एकान्त मिलेगा, न मज़दूरों का आन्दोलन होगा, और न वह स्वतंत्रता होगी। उसकी परतंत्रता से भली भाँति तुम लाभ उठा सकते हो। बोलो चलते हो।"

चन्द्रनाथ के मन की मुरझाई हुई आशा उसके वचनों के जल से लह-लहाने का प्रयत्नकरने का लगी। उसने हंस कर कहा:—"मुझे स्वीकार है, मैं चलूँगा, और एक बार प्रयत्न करूँगा। हाँ, यह तो कहो तुम्हारा पारिश्रमिक क्या होगा। स्पष्ट ही कहना, क्योंकि तुम अपना पुरस्कार लिए हुये कोई काम करोगे, इसमें सन्देह है।"

निकसन ने सहास्य उत्तर दिया, इसको मैं तुम्हारी इच्छा पर छोड़ता हूँ। वामनदास से प्राप्त की हुई आधी सम्पत्ति तो तुम सहज ही दे सकते हो।"

चन्द्रनाथ ने कुछ सोचने के बाद कहा:—"अच्छा स्वीकार है। कनक से विवाह हो जाने पर मैं तुमको सहर्ष आधी सम्पत्ति दे दूँगा, लेकिन पहले एक पाई भी नहीं, क्यों स्वीकार है।"

निक्सन ने प्रसन्न हो कर कहा—"स्वीकार है। परन्तु यह भी स्पष्ट जान लो, यदि तुमने धोका दिया तो तुम दोनों पूर्णतया मेरी मुट्ठी में होगे।"

चन्द्रनाथ ने उत्तर दिया :—"चन्द्रनाथ कह कर धोखा नहीं देता।"

दोनों ने हाथ मिलाकर अनुबंध की पुष्टि की। अन्दमान द्वीप के क्षितिज पर स्थित शैतान उन दोनों को वहाँ आने का निमंत्रण देने लगा।

पञ्चम खण्ड

१

ब्रिटिश राजतंत्र जितना राजनीतिक कैदियों की सुरक्षा का प्रबन्ध करता था उतना अन्यान्य अपराधों से दण्डित कैदियों के लिए नहीं। खून, डकैती, चोरी आदि अपराध, जो समाज के लिए हानिकारक हैं, उनकी व्यवस्था तथा उसकी शांति को नष्ट करने वाले हैं, अंग्रेजी राज्य में उतने नृशंस और जघन्य नहीं समझे जाते थे जितने राजनीतिक अपराध। सन्तरी से जेलर तक सभी उन अपराधियों से इतने सतर्क और सावधान रहते थे, उनकी प्रत्येक गतिविधि पर अपनी दृष्टि इतनी कड़ी रखते थे कि उनकी वायु भी अन्यान्य कैदियों को स्पर्श नहीं कर पाती थी। उनका जीवन अक्षरशः नारकीय बना देने में वह कोई उपाय उठा नहीं रखते थे। उसके राज्य को उलटने के प्रयत्न में जितना परिश्रम उन्होंने किया था, उससे कहीं अधिक परिश्रम वह उनके जीवन को नष्ट करने में लगाता था। अण्डमान, भारत नहीं था। वहां उन पर किये जाने वाले अत्याचारों की कहानियाँ, लघु या बृहत् रूप में जनता तक पहुंचाने वाले कोई साधन नहीं थे। वहां का गवर्नर उतना ही स्वतन्त्र था, जितना मध्यकालीन मुगल सम्राट्, जिसकी मीठी इच्छा-मात्र कानून का रूप और उसकी शक्ति रखती थी। राजनीतिक कैदी के बचाव का कोई उपाय नहीं था। इस बीसवीं शताब्दी में जहां अन्य देशों के अनेक क्षेत्रों में अन्वेषण हो रहे हैं, वहां अण्डमान टापू के यन्त्रणा-क्षेत्र में नव-नवीन आविष्कार प्रतिदिन हुआ करते थे। उनका प्रयोग उन पर उसी सुगमता से किया जाता था, जितना किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में चूहों आदि निकृष्ट और अनुपादेय जीवों पर किया जाता है। वे बेचारे समाज के बहिष्कृत अंग थे, ठीक उसी प्रकार जैसे उंगलियों के बढ़े हुए नाखून हो जाते हैं। जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी देश को आजाद करने के लिए लगाई थी, वे इसका मूल्य चुका रहे थे, अपने आंसुओं से और अपनी आहों से। उनमें से कितने ही उनके यन्त्रणा-प्रयोग की सिद्धता में अपने प्राण विसर्जन कर देते थे, और कितने ही अनुमाषिक धैर्य और सहनशक्ति का परिचय देकर जीवित रहते। उनके लिए पुनः नवाविष्कार किये जाते। ब्रिटिश राजसत्ता की शक्ति असीम थी, और उन हड्डियों के कंकालों की सीमित शक्ति बंधनों में रहने के कारण प्रतिदिन क्षीण हो रही थी। अन्त में

उनको अपने सिसकते प्राणों की बलि चढ़ाने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता, और इस प्रकार उनकी देश-भक्ति के नाटक का अन्तिम पटाक्षेप होता। अण्डमान की पृथ्वी का एक-एक कण उनके रक्त से रंजित है, और उनका गौरवमय इतिहास अपने उर में छिपाये हुए है। वह उनके कंकालों को उनकी ठठरियों को, और अस्त-व्यस्त रूप में बिखरी हुई हड्डियों के पुञ्जों को अपने विशाल क्षेत्र के कोने-कोने में छिपाये हुए पड़ा है, और आजादी के उन दीवानों के कंकाल अपने ऊपर किये गए अमानुषिक अत्याचारों की, कहानी मूक भाषा में सुनाने के लिए आज दिन भी वायु के थपेड़ों से उभक-उभक कर अपनी करवटें बदल रहे हैं। वायु आज दिन भी उनकी दृढ़ता, त्याग और कर्तव्य-पालन का साक्षी होकर उनकी करुण कहानियों के इतिहास की पुष्टि करने के लिए उतावला हो रहा है। सुदूर व्यापी अण्डमान भी उन भारतीय वीरों के रक्त से सिंचित होकर भारत से अपना सम्बन्ध उसी भाँति स्थापित करने के लिए लालायित है जैसे एक ही रक्त के दो सम्बन्धी अपना पारस्परिक नैकट्य स्थापित करने के लिए आकुल रहते हैं। यह भारत का ही एक अंग हो गया है। भारतीयों ने मरकर उस भूमि पर अपना अधिकार जमाया है। अतएव यद्यपि अण्डमान को बंगाल की खाड़ी की प्रशस्त जल-राशि ने भारत से पृथक् कर रखा है तथापि भारत का वह भी एक प्रांत है।

कनक भी एक राजनैतिक कैदी के रूप में अण्डमान लाई गई थी। उसके रहने की व्यवस्था अन्य राजनीतिक कैदियों की भांति सबसे प्रथम की गई थी। उससे यथासंभव कम-से-कम संपर्क रखने की आज्ञा अधिकारियों ने जेल के कर्मचारियों को प्रदान की थी। उससे कोई संभाषण नहीं करता था, और न उसे किसी अन्य राजनीतिक कैदी से मिलने या बोलने दिया जाता था। उससे सभी इतना बचकर कतराते हुए निकलते थे कि मानो कोई भयंकर छूत की बीमारी हो।

कनक एक नवीन जीवन का अनुभव कर रही थी। वह भी अपनी परिस्थितियों से लड़ने के लिए तैयार हो रही थी। रात और दिन वह अपने विचारों के संसार में भ्रमण करती रहती। उसे केवल दो-चार मनुष्यों के दर्शन हुआ करते थे, जब उसके खाने के लिए मिट्टी मिली दो काली रोटियां, और जंगली घास-पात का उबला हुआ साग देने के लिए जेल का चिरपरिचित सन्तरी आता था। जब पहले दिन यह भोजन आया तो उससे खाया ही नहीं गया। पहला कौर ही गले के नीचे नहीं उतरा। परन्तु जब वह नित्य-प्रति आने लगा, तब खाने के अतिरिक्त कोई उपाय ही न था। धीरे-धीरे उसमें

भी स्वाद उत्पन्न होने लगा, और वह उन विपरीत परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बनाने लगी। उसके मन ने कहा :—"यही तो मजदूरों और शोषितों के नेता होने का परिणाम है। असफलता तुमको इसीलिए मिली कि तुम उनके जीवन के साथ अपने जीवन का साम्य स्थापित नहीं कर सकी थीं। पहला प्रयत्न तुम्हारा केवल जोश अथवा भावातिरेक के कारण था, व्यवहारात्मक ज्ञान की तुममें कमी थी, उसी को पूर्ण करने के लिए यह अवसर तुमको मिला है।" कनक उससे भी लाभ उठाना चाहती थी। यद्यपि उसे ज्ञात था कि उसे यावज्जीवन प्रवास में रहने का आदेश दिया गया है, तथापि उसके मन में निराशा के भाव अब भी उत्पन्न नहीं हो रहे थे। उसे ऐसा भासित होता था कि उसे किसी आगामी महान् युद्ध में लड़ने की शिक्षा यहां दी जा रही है, उसको कठिनाइयों से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अभ्यास कराया जा रहा है।

परिस्थितियों के अनुकूल साम्य स्थापित करने का नाम ही सुख है। सुख और दुःख परिस्थितियों के साथ मानसिक भावों की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता से उत्पन्न होते हैं। मन जब अपनी विपरीत परिस्थितियों को अध्यवसाय तथा इन्द्रियों के दमन से अपने अनुकूल बना लेता है, तब दुःख का रूप पहले उदासीन भाव धारण करता है और वही कालान्तर में सुख में परिवर्तित हो जाता है। किसी अप्रिय कार्य को बारम्बार करते रहने से उसके प्रति संसर्ग भाव के कारण रुचि उत्पन्न होती है, और उसकी कटुता जो प्रथम बार प्रकट हुई थी वह निःशेष होते-होते लुप्त हो जाती है, अथवा इस प्रकार से दुःख अपना तीखापन खो देता है, और वही सुख में परिवर्तित होता है।

कनक अपनी विपरीत परिस्थितियों से सदैव लड़ती थी। उनको अपने अनुकूल बनाने में यद्यपि उसे अपने मन के ऊपर कठोर नियंत्रण करना पड़ता था, तथापि वह उसका अभ्यास करती थी और धैर्य तथा निग्रह द्वारा वह अपने मन के साथ समत्व भाव स्थापित कर लेती थी। अपने पिता की सम्पत्ति को त्यागने के बाद भी वह अपनी विपरीत अवस्थाओं से लड़ती रही, और जीवन-समर से कभी मुख मोड़ने का भाव तक उसके मन में उत्पन्न नहीं होने पाया। अण्डमान में भी वह उसी अदम्य साहस के साथ अपनी विपरीत परिस्थितियों से लड़ने लगी। परिश्रम अथवा क्रियाशक्ति की प्रतिक्रिया अवश्य होती है, और सत्-असत् मार्ग की ओर किया हुआ परिश्रम कभी विफल नहीं होता। अन्तर केवल यह रहता है कि सत् मार्ग के लिए किया हुआ परिश्रम ब्रह्माण्ड की साम्य शक्ति

के अनुकूल होने से उनसे भी सहायता और शक्ति ग्रहण करता है तथा उसका परिणाम भी सुखद होता है। इसके विपरीत असत् मार्ग की ओर किया हुआ परिश्रम ब्रह्माण्ड की अन्यान्य शक्तियों से विरोध और संघर्ष उत्पन्न करता है, जिससे केवल दुःख की सृष्टि होती है। इन्हीं कारणों से कनक को अण्डमान की उस नारकीय जेल में भी थोड़े दिनों के परिश्रम से शांति मिलने लगी। उसका जीवन नियमित रूप से व्यतीत होने लगा। कनक ने ने अण्डमान पहुँचकर रामनाथ के विषय में पूछ-ताछ की, किन्तु उसका सब प्रयास निष्फल हुआ। किसी ने भी उसकी कोई सूचना नहीं दी, और न वह स्वयं उस एकान्तवास से बाहर जाने पाती थी, जिससे वह किसी अन्य उपाय द्वारा उसका पता लगाने का प्रयत्न करती।

एकान्त का साथी केवल चिन्तन होता है। कहा जाता है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है, और उसका यही भाव उसको इतर प्राणियों से पृथक् करके उसको श्रेष्ठता प्रदान करता है। उसकी सांसारिक जीवन-गति पारस्परिक सम्बन्धों पर अवलंबित रहने के कारण वह अपने को समाज से पृथक् नहीं कर सकता, वह पूर्णतया अपने को एकाकी नहीं बना सकता। उसकी एकान्तिक अवस्था केवल कुछ समय के लिए ही हो सकती है, और वह भी भौतिक रूप में। मन की एकान्तिक अवस्था कल्पनातीत है, क्योंकि मन के अन्य गुणों के अतिरिक्त चिन्तन भी उसका एक प्रधान सहचर है। एकान्त में ही चिन्तन उग्र होता है, क्योंकि वहां भौतिक बाधा स्वरूप परिस्थितियों का सर्वथा अभाव होता है। कनक सदैव किसी-न-किसी चिन्ता में डूबी रहती। उसका उससे इतना प्रेम हो गया था जैसे सगे संबंधियों से होता है। और चिन्ताओं का भी ओर-छोर न मिलता था, वे सदैव नव-नवीन रूप से प्रकट होकर उसको अपने जाल में उलझाये रहती थीं। बहुधा ऐसी अवस्था मानव के मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव छोड़ती है जिससे वह विकृत हो जाता है। यह अवस्था उन्हीं की होती है जो परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में असफल होते हैं, अथवा जो उद्देश्य-हीन होते हैं, अथवा जिनकी वर्तमान अवस्था निराशा का जन्म देती है। किन्तु कनक अभी तक लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं हुई थी उसे विश्वास था कि यह अवस्था कुछ समय के लिए ही है, और उससे शीघ्र ही मुक्ति मिलेगी। वह किसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए ही उत्पन्न हुई है, जिसे वह अवश्य पूर्ण करेगी। इसी भाव का नाम आशा है। आशा ही मनुष्य को परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए नित नूतन बल प्रदान करती रहती है, जिससे उसकी शक्तियां क्षीण न होकर बलवान होती हैं, और उत्साह

की ज्वलन्त प्रेरणा भी कभी मूर्छित नहीं होने पाती। कनक का उत्साह अभी तक इन विपरीत अवस्थाओं में भी क्षीण नहीं हुआ था वरन् वह शक्ति-संचय कर रहा था।

जेल के अधिकारी समझ रहे थे कि एकान्त-वास उसको पागल बना देगा, अथवा उसकी सामरिक शक्तियों को पंगु बनाकर उसको उनकी शरण में ले जाने के लिए बाध्य करेगा, परन्तु कनक उनको अपने धैर्य और सहन शक्ति से पराजित कर रही थी। वह उस काल को वाक्-संयम, इन्द्रिय-दमन और आत्म-निग्रह आदि तपस्याओं के करने का काल मानती थी, तथा मनस्वी कार्यार्थी की भाँति सुख और दुःख की भावनाओं से परे होकर अपने कर्म-पथ पर विघ्न-बाधाओं को हटाती हुई निरंतर आगे बढ़ती हुई चली जा रही थी।

२

ब्रिटिश साम्राज्य का आधार-स्तम्भ पुलिस विभाग था। नगरों की जनता पर उसका जितना आतंक था, उससे कहीं अधिक गाँवों के निवासियों पर था। लाल पगड़ी के आगमन के साथ ही गाँव में त्रास, आशंका की एक लहर दौड़ जाती, और गाँववासी किसी आसन्न अनिष्ट, संकट और विपत्ति के भय से अपने-अपने घरों में घुसकर द्वार बन्द कर लेते थे। थे। यमदूतों की भाँति वे जिसके द्वार पर अपना आसन जमाते, उसकी तो पूर्णतः साढ़सती से भी त्रासदायक कुदशा आ जाती थी। उनकी मान-मर्यादा बचे रहने की कोई आशा रह न जाती थी। गाँव का मुखिया जो सदैव पुलिस के अत्याचारों का परम हितू सहायक होता था, उसकी भी कभी-कभी पूजा हो जाती, और पुलिस-दरोगा से लेकर सिपाहियों तक सत्कार करना पड़ता था। यदि भाग्यवश कहीं वह मुखिया सम्पन्न हुआ तो फिर उसको गाँव वालों की भेंटों के साथ अपनी ओर से भी कुछ-न-कुछ भेंट करना पड़ता था। गाँव-भर का दूध-दही और घृत जबरन मंगाया जाता था, और पुलिस के जवान छककर भोजन करते, तथा जाते समय किसी पैसे वाले आसामी को किसी मन गढ़न्त अपराध से सम्बद्ध कर थाने ले जाते थे। वहां उसको नाना भाँति की यंत्रणाएं देकर उसको वित्त से अधिक द्रव्य देने के लिए बाध्य करते। उनके इस अनाचार का प्रतिरोध करने वाला कोई नहीं था, और न उसकी कहीं सुनवाई थी। यह तो उनका धर्म समझा जाता था, और वैसा ही समझ कर वे उसको कर्त्तव्य रूप में पालन भी करते थे।

सिधौली में जब पुलिस ने बलवन्तसिंह के अपराध का अनुसन्धान

करने के लिए पदार्पण किया, तब गाँव में मरघट-जैसी शांति छा गई। माताओं ने अपने रोते हुए बालकों को पुलिस का भय दिखाकर रोने के लिए मना किया, युवतियों और वयस्क कन्याओं को घर से बाहर निकलने की निषेधाज्ञा घर के अभिभावकों ने प्रचारित कर दी। और वे स्वयं भी अपनी चौपाल में अथवा घर के अन्दर बैठ गए। कुछ लोगों ने दूसरे गाँव का मार्ग ग्रहण किया, और कुछ उठकर जमींदार के दीवानखाने में चले गए। चारों ओर कानाफूसियां चलने लगीं, कोई भी ऊंचे स्वर से बोलने का साहस न करता था। गाँव के सतर्क रक्षक कुत्ते लाल पगड़ी को देखकर भौंकने लगे, जिससे तमुल कोलाहल उठकर उस शांति को भङ्ग करने लगा। गाँव निवासी उनके इस प्रकार के स्वागत से भयभीत होकर उन्हें डाटकर चुप रहने का आदेश प्रदान करने लगे, परन्तु फिर भी कोई-कोई उनकी अवहेलना करके पुलिस को गाँव के बाहर निकालने की जिद करने लगे।

दारोगाजी चोरी के मामले का अनुसन्धान करने आये थे, इसलिए वे बहुत धीर गम्भीर थे। उनकी भौंहें तनी हुई थीं, और प्रत्येक पथारोही को वे इतनी विकराल दृष्टि से देखने लगते, मानो वह गुरुतर अपराधी है। उनके घोड़े के आगे-पीछे चलने वाले पुलिस के जवान भी वैसी ही गम्भीरता धारण किये हुए, किन्तु चारों ओर देखते हुए चल रहे थे। उन्हें विश्वास था कि आज कोई मोटी रकम हाथ लगेगी, क्योंकि वह एक महाजन के घर की चोरी का मामला था, तथा चोर भी एक सम्पन्न घर का व्यक्ति है, जिसके तीन लड़के नौकर हैं, और वह स्वयं एक बड़ा किसान है। सिपाहियों ने भी बहुत अतिशयोक्ति के साथ गाँव वासियों की सम्पन्नता तथा समृद्धि का वर्णन किया था जिससे दारोगाजी के लोभ ने उनके मस्तिष्क को विकृत कर दिया था। मन-ही-मन आशाओं के स्वप्न देखते हुए उन्होंने गाँव में प्रवेश किया।

सेठ साहबदीन के द्वार पर जब पुलिस-दारोगा की सवारी पहुँची, तो एक मुँह लगे सिपाही ने आगे बढ़कर दारोगाजी से कहा:—"हुजूर, अब ठहर जाइये। यही मकान हमारे साहबदीन सेठ का है, जहाँ चोरी हुई थी, यानी जाय वकुआ यही है।" कहते हुए उसने घोड़ी की बाग थाम ली, और दारोगा जी उतर पड़े। इसी बीच एक सिपाही साहबदीन का द्वार खटखटाने लगा। साहबदीन घर ही थे, और वे दारोगा जी के आगमन से परिचित थे, परन्तु फिर भी स्वभाववश उन्होंने अपने घर के द्वार बन्द कर रखे थे।

खटखटाहट सुनकर उन्होंने धड़कते हुए हृदय से द्वार खोला, और सविनय हाथ जोड़कर कहा:—"आप आ गए। आज बड़े सौभाग्य का

दिन है। पधारिये और झोपड़ी को पवित्र कीजिये।" रास्ता बताते हुए वे आगे-आगे चलने लगे।

मुँह लगे सिपाही ने डाटकर कहा:—"सेठ जी, क्या आपके यहाँ नौकर-चाकर नहीं है? आप कितनी गन्दगी में रहते हैं। यह कमरा दारोगा साहब के बैठने योग्य हरगिज नहीं है। तमाम कमरा बदबू से भरा हुआ है।"

दारोगा साहब को कमरे के अन्दर बैठने न देने का संकेत था, जिस पर उन्होंने तुरन्त अमल किया। नाक सिकोड़ते हुए वे बाहर निकल आये। मुँह लगे सिपाही हनुमान ने कमरे से लोहे की कुर्सी निकाल कर चौपाल में रखते हुए कहा:—"इतना बड़ा सेठ है, लेकिन लकड़ी की एक कुर्सी भी नहीं है। बड़ा कंजूस है, है तो आखिर बनिया ही। मुखिया हो गया है तो क्या, बुद्धि अभी तक नहीं आई कि बड़े आदमियों का स्वागत कैसे करना चाहिए।"

साहबदीन की स्थिति बताकर रकम की तादाद एंठने के लिए संकेत था। दारोगा जी मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे। साहबदीन ने उधर झाड़ू उठाई, और कमरा साफ करने के लिए आगे बढ़े कि एक दूसरा सिपाही, जिसका नाम था कासिमअली, तुरन्त आगे बढ़ सेठजी के हाथ से झाड़ू लेते हुए बोला:—"अरे सेठ जी, आप यह कुछ न कीजिये, हम लोग यह काम कर लेंगे। आप पर कोई आंच न आने देंगे। पहले आप दारोगा जी के जल-पान का इंतिजाम करें। दो कोस से चले आ रहे हैं।" कासिमअली की सहानुभूति ने सेठ को अपना हितू मानने के लिए बाध्य किया। उन्होंने उसे घर के भीतर ले जाकर उसके हाथ में पाँच रुपये का नोट रखते हुए कहा:—"खां साहब, यह आपके पान-सिगरेट के लिए है। मैं घर में अकेला हूँ, घरवाली को यही बलवन्तसिंह, जो चोरी करने के लिए आया था, बहका-कर ले गया है। तब से बड़ी परेशानी है। आप खर्च-वर्च का ख्याल न कीजिये। दारोगा जी की खातिरदारी का प्रबन्ध आप ही लोग कर लें।"

हनुमान की तीक्ष्ण दृष्टि से यह व्यापार छिपा न था। कासिमअली के बाहर निकलते ही उसने साहबदीन के पास जाकर कहा:—"सेठ जी, दारोगा साहब बहुत नाराज हैं। मिठाई, चाय-पानी का कुछ भी इन्तिजाम आपने नहीं किया।"

साहबदीन ने भीत स्वर से कहा:—"खां साहब को तो मैंने अपनी सच्ची हालत बता दी है। मेरे घर में प्रबन्ध करने वाला कोई नहीं है।"

हनुमान ने डांट भरे स्वर में कहा:—"खां साहब तो सिपाहियों का

इन्तिजाम करेंगे, दरोगा साहब का इंतिजाम तो मुझे करना पड़ता है।"

साहबदीन ने टेंट से पांच रुपये का नोट पुनः निकालते हुए कहा:—"यह लीजिये, आप दारोगा जी के चाय-पानी का इंतिजाम कीजिये।"

हनुमान ने वह नोट फेंकते हुए कहा:—"इतने रुपयों में तो उनके कुत्ते का भी जल-पान नहीं होता। आप घर में बुलाकर अपमान करते हैं। हम तो समझे थे कि आप मुखिया हैं, गांठ में कुछ बुद्धि होगी, परन्तु यह तो सफा दीवाला है। यह याद रखिये हम लोग अपने अपमान का बदला लेना भली-भाँति जानते हैं। आप रुपयों का सूद-ब्याज लेते हैं, तो हम अपने अपमान का बदला सूद-ब्याज समेत वसूल करते हैं।"

साहबदीन की पिंडली कांपने लगीं, हृदय धड़कने लगा। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा:—"क्रोध न कीजिये। मैं सेवा करने को तैयार हूँ। मैंने अपनी असमर्थता तो आपको बता दी कि मेरे घर में कोई प्रवन्ध करने वाला नहीं है। आप ही बताइये कि दारोगा साहब के जल-पान के लिए कितना दूँ। कभी मेरा काम नहीं पड़ा, इससे भूल हो जाती है। देखिये गांव वालों का यह हाल है, कोई भी नहीं आया। यों तो सभी यहां मक्खियों की भांति रोज ही भिनकते थे, आज जब मौका पड़ा है तो कोई खड़ा नहीं होता। आप कुछ ऐसा करें जिससे गांव वालों को भी बड़े आदमियों की आवभगत में साथ न देने का मजा मिल जाय। मैं आपको खुश कर दूँगा।"

हनुमान ने तुरन्त नम्र होते हुए कहा:—"आप इसकी चिन्ता न कीजिए। जब हम लोग आ गए हैं तो गाँव वालों को ठीक कर ही जायंगे। बहुत दिनों में यह गांव हत्थे चढ़ा है। हां, आप फौरन एक सौ एक रुपया दारोगा साहब के जल-पान के लिए, और ५१) रुपया मेरे चाय-पानी, सिगरेट-पान के लिए, और ३१) रुपया दूसरे सिपाहियों की मिठाई के लिए कुल १८३) रुपया फिलहाल दीजिए तो गाड़ी आगे बढ़े। नहीं तो......।"

साहबदीन ने भीत स्वर में कहा:—"यह गजब न कीजिये। जल-पान के लिए यह रकम तो बहुत ज्यादा है।"

हनुमान ने डांटकर कहा:—"फिर वही बनियापन दिखाने लगे। जल-पान की रकम तो बहुत थोड़ी है। भोजपुर के साहू रघुनन्दनप्रसाद का नाम तो आपने सुना ही होगा, उन्होंने एक चोरी के मामले में अपनी ओर से १००१) रुपया दारोगा साहब के अकेले जल-पान के लिए दिया था, और दो हजार रुपया भोज आदि के लिए। खैर वे बहुत बड़े आदमी हैं, मैंने तो आपकी हैसियत देखकर ही यह कम बताई है। अभी से आप बगलें झांकने

लगे तो आगे कैसे काम बनेगा। यह तो आपको मालूम ही है कि पुलिस पैसे वाले का साथ देती है। तुम्हारा साला नन्दलाल कल शाम को थाने गया था, वह बलवन्तसिंह को छुड़ाने के लिए दो हजार रुपये दे रहा था, परन्तु मैंने दारोगा जी को तुम्हारे खिलाफ नहीं जाने दिया, और तुम्हें अकेला जानकर ही तुम्हारा पक्ष लेने के लिए न मालूम कितनी विनती की। इससे अच्छा तो यही था कि हम लोग नन्दलाल का साथ देते।"

साहबदीन ने हाथ जोड़ते हुए कहा:—"आप तो जरा-सी बात पर क्रुद्ध हो जाते हैं। मैंने यों ही कहा था कि अकेले जल-पान के लिए यह रकम ज्यादा है। आपसे तो कह दिया कि काम न पड़ने से मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। आप जैसा हुक्म देंगे वैसा करूँगा। आप मेरा सिर्फ काम बना दीजिये। गाँव वालों को ठीक कीजिये, और बलवन्तसिंह को, जिसने मेरी इज्जत धूल में मिला दी है, सजा करवा दीजिये।"

यह कहकर उन्होंने घर की तिजौरी से १८३) रुपया निकाल कर हनुमान के हाथ पर रख दिये। उन रुपयों को लेते हुए हनुमान ने कहा:—"देखिये सेठ साहब, आप दो बातें चाहते हैं, एक गाँव वालों को ठीक करना, और दूसरे बलवन्त को सजा कराना। इन दोनों कामों के लिए आपको रुपये पांच हजार खर्च करने होंगे। इससे एक पैसा कम न खर्च होगा। अगर आपको यह रकम देना मंजूर हो तो पहले दीजिये, फिर हमारा काम देखिये। गाँव-भर में चिल्लपौं न मच जाय तो हमारा नाम हनुमान नहीं। हनुमान के नाम से गाँव थरथराते हैं, बड़े-बड़े बदमाश कांपते हैं। एक बलवन्त क्या सैकड़ों बलवन्त-जैसे बदमाशों को बाँध कर जेल भेज दिया है। हमारे दारोगा साहब की कलम में बड़ी ताकत है। जो लिख दिया वह पत्थर की लीक हो गया। यहां से हाईकोर्ट तक उनका बांधा हुआ मुकदमा छूटता नहीं। बड़े-बड़े हाकिम उनकी कलम का लोहा मानते हैं। उनका इकबाल ही ऐसा है, जिस पर उनकी दया हो गई, उसका काम पार हो गया, समझे। उनसे बचकर बलवन्त चाहे लाख सिर पटके, जा नहीं सकता। हाँ आपकी तरफ से पैरवी में कोई कसर या कमी रह गई तो बात दूसरी है। उसका जिम्मा मैं नहीं ले सकता।"

साहबदीन ने विश्वास दिलाते हुए कहा:—" आप भी मेरी ओर से सेवा-पूजा के मामले में बेफिक्र रहें। आप जैसा कहेंगे वैसा करूंगा।"

हनुमान ने तुरन्त कहा :—"तब तो रुपये पाँच हजार निकालिये।"

साहबदीन ने हाथ जोड़कर कहा :—"हाँ, हाँ, दूंगा।"

हनुमान ने बेमुरव्वती के साथ कहा :—"नहीं, रुपये हाथ पर

रखिये। पहले रुपया पीछे काम। रुपये की गरमी काम को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान करती है। यदि आप मनचाहा काम चाहते हैं तो तुरन्त पाँच हजार निकालिये। फिर हमारा रंग देखिये।"

अन्त में साहबदीन को पाँच हजार रुपये निकाल कर देने ही पड़े।

३

रुपया मिलते ही पुलिस के जवानों ने गांव में धूम मचा दी। दारोगा जी खुलकर खेलने लगे। पहले पड़ोसियों को बुलावाया गया, और उनसे पूछ-ताछ आरम्भ हुई। जब उन्होंने यह कहा कि:—"बलवन्तसिंह गांव का एक संभ्रान्त कृषक है, बात और व्यवहार का धनी है, गांव में आज तक किसी ने उसको चोरी करते नहीं देखा, और न कभी किसी को उसके विरुद्ध किसी शिका त का अवसर मिला है, उसने कभी भलाई छोड़ किसी के साथ बुराई की ही नहीं, सेठ साहबदीन के साथ रंजिश का कारण यह है कि उसने उनकी स्त्री को अपने यहां आश्रय दिया है, और जब उसको मारने गया था तब मारने नहीं दिया, और उसको अपनी बेटी बनाकर घर में रखा, इससे सेठ ने नाराज होकर यह झूठी रिपोर्ट की है।" तब उनके ऊपर मार पड़ती और उनको इसके विपरीत कहने के लिए बाध्य किया जाता। मार पड़ने पर भी जब वे इन बातों को कहना अंगीकार न करते तथा उन्हें नाना भाँति से यंत्रणाएं दी जाती। किसी के पैरों को फैलाकर चारपाई के दो पायों में बांध देते, किसी को मुर्गा बनाते, किसी को पेड़ से उलटा टांग देते, और झुला-झुला कर बेंत तथा कोड़े मारते, और किसी की आंखों में मिर्चें आदि पीस कर डालते। इन यंत्रणाओं से पीड़ित होकर कुछ ने तो पुलिस के कथनानुसार बयान दे दिये, और कुछ फिर भी डटे रहे। सेठ साहबदीन के असली गवाह मनैया आदि का कहीं पता न था। वे पुलिस के पदार्पण के साथ ही गाँव से बहिर्गत हो गए थे। पुलिस के जवान जब बार-बार उनके घर जाकर वापस लौट आये, तब वे उनकी स्त्रियों को ही वहां बलपूर्वक घसीट लाये। पहले उनसे पूछा गया कि वे अपने-अपने पतियों के जाने का स्थान बतायें, किन्तु उन्हें स्वयं ज्ञात न ीं था, इसलिए वे कहने में असमर्थ थीं। पुलिस के सिपाही उनके सत्य कथन को भी बहानेबाजी समझते थे, इसलिए उनका भेद बतलाने के लिए उस पर भी मार पड़ने लगी। इसके पश्चात् गाँव के किसी भी व्यक्ति को पकड़ लेते तथा साहबदीन की चोरी से संबन्धित कर मारने लगते। मार और यंत्रणाओं से बचने के लिए निरीह गाँव निवासी अपनी खून की कमाई निकाल-निकाल कर पुलिस को देने लगे। यही उनका ध्येय था, और इसी कार्य को सहज

बनाने के लिए उन्होंने इतना परिश्रम किया था। लोग घरों से ला-लाकर रुपया उंड़ेलने लगे, और पुलिस के जवानों की उमंगें भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगीं। दोपहर तक निर्बाध गति से जघन्य कमाई का द्वार खुला रहा।

दोपहर के भोजन करने के पश्चात् हनुमान ने सेठ से कहा :—"देखा सेठ जी, आपने हमारा खेल। हम को वे गुर मालूम हैं जिनसे मुर्दा भी एक बार बोल दे, पत्थर के भी जबान निकल आये। आदमी चराते हमारी उम्र बीती है। देखूं, बलवन्त के विरुद्ध कौन गवाही नहीं देता। जिस किसी ने अपना बयान अदालत में बिगाड़ा, उसकी खैर मत समझो। वह जेल की हवा खाये बिना बचेगा नहीं।"

साहबदीन ने दबी जबान से कहा :—"और तो जो हुआ ठीक है। इस मार-पीट से सब गाँव वाले चिढ़ जायंगे, और आपके जाने के बाद सब मुझे गालियां देंगे, और कोसेंगे।"

हनुमान ने सेठ की पीठ पर रक्षा का हाथ फेरते हुए कहा :—"अब इस गाँव में किसी की हिम्मत नहीं है जो तुम्हारे विरुद्ध कुछ कह सके। आप मुझे इशारा कर दीजियेगा, मैं अकेला ही उसको ठीक कर दूंगा। अगर उसने गालियां दी होंगी तो इलिम कसम राब लगाकर उसकी जबान खिंचवा लूंगा याद रखिये, हनुमान सिंह जिसकी मदद करता है दिल-खोल कर करता है।"

साहबदीन ने मलिन हास्य के साथ कहा :—"यह तो मुझे विश्वास है। सब तो आप ही का सहारा है। ऊपर राम है और नीचे आप हैं। गाँव वालों से तो ठन गई। मनैया आदि को देखो, वक्त पर टरक गए। जिन लोगों ने बलवन्तसिंह को मेरे साथ पकड़ा और जिनको मैंने सैकड़ों रुपये खिला दिये, अन्त में वे दगा दे गए। इनसे तो बदला चुकाना ही पड़ेगा।"

हनुमान ने आश्वासन देते हुए कहा :—"अवश्यमेव। नमक हरामों को दण्ड देना पुलिस का पहला काम है। आप उनको थाने में भेज दीजियेगा, हम उनको ऐसा ठीक कर देंगे कि महीनों हल्दी लगायंगे, और वर्षों सेंकेंगे। किन्तु सेठ जी प्रत्येक काम की फीस लगती है, वह तो आपको चुकाना ही होगा।"

साहबदीन ने चकित होकर पूछा :—"वर्षों की कमाई तो दे दी, अब भी हमारे साथ मुरौवत नहीं होगी?"

हनुमान ने उच्च शब्द से हँसते हुए कहा:—"पुलिस और मुरौवत। यह दोनों विरोधी शब्द हैं। पुलिस के जवान को अपने बाप को भी समय आने पर पकड़ना पड़ता है। पुलिस सरकार है, सरकार किसी से भी

मुरव्वत नहीं कर सकती। जितनी बार रेल पर चढ़ोगे उतनी बार टिकट खरीदना पड़ेगा, यही अंगरेजी राज का कायदा है। जितन बार पुलिस से काम करवाओगे उतनी बार फीस देनी पड़ेगी। यह तो सीधी-सादी बात है। घोड़ा यदि घास से दोस्ती करे और उसे न खाये तो भूखों मरे। भाई, पुलिस ऐसी दोस्ती नहीं पालती। हमसे चाहे जो काम ले लो, किन्तु पैसा पूरा दो तुम पैसा देने में खोट कसर करोगे तो हम काम में भी कसर रखेंगे। देखो तुमने हमारी सबकी पूरी फीस दे दी तो तुमनेउ सका फल देख ही लिया। सारे गाँव वालों को रुला दिया है, और यदि तुम हमारी फीस देने में बनियेपन से काम लेते तो हम भी मामूली-सी तफतीश करके चले जाते। गरीबों की आहें और अभिशाप व्यर्थ ही अपने सिर न ओटते।"

साहबदीन ने दुखी होकर कहा :—"अब तो मैं बिलकुल दिवालिया हो गया हूँ। मेरे पास एक भी पैसा नहीं बचा। अब कहाँ से दे सकता हूं।"

हनुमान ने शुष्क स्वर से कहा :—"तब तो मजबूरी है। हम भी इसके आगे कुछ नहीं कर सकते।" साहबदीन ने भीत स्वर में कहा :—"तो क्या इस चोरी के मामले में भी आप कार्रवाई बंद कर देंगे।" हनुमान ने हंसकर कहा :—"ऐसी बात नहीं है। चोरी के मामले की फीस हमें मिल चुकी है, हम इस काम को पार उतारेंगे। इस गांव के न सही, दूसरे गांव के गवाह खड़े करके हम तुम्हारा काम बना देंगे। मैं तो इस काम के अतिरिक्त दूसरे कार्यों के लिए कहता हूँ। नये काम की नई फीस होगी। पुलिस पैसे की नौकर है। यह सीधी और सरल बात है। आप सदा के लिए जान लीजिये। दुनिया में पैसा ही सब-कुछ है, और उसी के लिए गुलामी करनी पड़ती है। उसी से बड़े और छोटे होते हैं। उसी के बल से संसार का सब कार्य चलता है। उसी के कारण स्त्री अपने स्वामी से प्रेम करती है, पुत्र अपने पिता की आज्ञा पालता है, पिता पुत्र को चाहता है। संसार के सभी सम्बधों का सुचारु रुप से संचालन का आधार पैसा ही है। अतएव पैसे के बल से ही हम भी आपको सेठ जी-सेठ जी कहते हैं आपके कहने से झूठा मुकदमा बनाकर भले और निरपराध पुरुषों को जेल भेजते हैं, उनकी मान-मर्यादा नष्ट करते हैं, और उनकी स्त्रियों पर भी प्रहार करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा भंग करते हैं। उसी पैसे के लिए हमको मनुष्य से पशु, बर्बर, राक्षस और यमदूत की भाँति निष्करुण, दयाहीन और संगमर्मर की भाँति कठोर बनना पड़ता है। सेठ जी पैसा सब-कुछ करवाता है। भगवान् के होने में तो सब को संदेह है किन्तु पैसे को भगवान्- जैसा बलवान, शक्तिमान और

सर्व व्याधि-हर्ता होने में कोई सन्देह नहीं है।"

साहबदीन ने उसकी पुष्टि में कहा:—"आप सच कहते हैं ठाकुर साहब, मेरा तो विचार है कि पैसा भगवान् से भी अधिक शक्तिमान् है।"

हनुमान ने हँसकर कहा :—"मुझको भी अपके कथन में सत्यता मालूम होती है, क्योंकि भगवान् असत्य को कभी सत्य नहीं करेगा, किन्तु पैसा वह भी कर देगा। वह बिना नींव के दीवाल उठा देगा, नहीं महल बना देगा।"

व्यंग की तीक्ष्णता ने साहबदीन को बिद्ध कर दिया। उसने कहा :—"किन्तु ठाकुर साहब, यह मामला बिलकुल झूठ नहीं है, हाँ नमक-मिर्च जरूर लगाया गया है। यह तो आजकल सभी मुकदमों में करना पड़ता है। इसके किये बिना कोई मामला पार नहीं उतरता। अंग्रेजों का कानून ही ऐसा है कि जब तक झूठ न बोलोगे तुम्हारी जीत नहीं हो सकती। आप ही कहिये क्या मैं झूठ कहता हूँ ?"

हनुमान ने गंभीरता के साथ कहा :—"सेठ जी, तुम सच ही पूछते हो तो मैं भी सच ही कहूँगा। हम लोग इतने नीच जब नौकरी में भर्ती हुए थे, तब नहीं थे। इसी देश से उत्पन्न हुए हैं, और इसी देश के जल-वायु से हमारा पालन-पोषण हुआ है, मन भी इतर देशवासियों की भाँति स्वच्छ, उच्च भावनाओं से भरा हुआ था। मैं भी अपने माता-पिता की भाँति धर्म-भीरु और धार्मिक था। सत्य से प्रेम था और झूठ से घृणा थी। किन्तु अंग्रेजी राज की पुलिस में जाने से मेरी काया-पलट हो गई। पहले हमको यह सिखाया गया कि तुम सम्राट् के सिपाही हो, अंग्रेज जाति शासन करने के लिए उत्पन्न की गई है, तभी अंग्रेज जाति का राजा सारे संसार पर शासन करता है। वह ईश्वर का प्रतिरूप है। अंग्रेजी सरकार ने दया करके तुमको शासन करने के योग्य समझकर तुमको अपनी नौकरी में लिया है। जब तक सरकार की आज्ञाओं का पालन करते रहोगे तब तक तुम उसके प्रिय बनकर उन्नति करते चले जाओगे। सरकारी नौकर होने से तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा बढ़ेगी, इसलिए सरकार की प्रतिष्ठा सदा बनाये रखो। इसके लिए यदि तुमको झूठ भी बोलना पड़े, पाप भी करना पड़े तो बिना हिचक के कर डालो, क्योंकि तुम झूठ और पाप अपने लिए नहीं वरन् सरकार के लिए करते हो, राजा की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए करते रहो, शासन की सत्ता जमाये रखने के लिए करते हो। सरकारी नौकर होने से तुम्हारा आसन तुम्हारे अन्य देशवासियों से ऊँचा हो गया है। तुम उनके साथ कोई दया, करुणा और मित्रता का व्यवहार न करो, और न

उनसे सम्बंध ही रखो। तुमसे वे बहुत नीचे हैं, तुम उन पर शासन करते हो, हुकूमत करते हो। तुम्हारी आज्ञाओं का वे पालन करेंगे, तुम्हारे आदेश के अनुसार वे चलने के लिए बाध्य होंगे। ऐसी ही बातों ने हमारे विचारों को पलट दिया, हमको अपने देशवासियों से सगे सम्बंधियों से दूर ले गए, और हम भी पाप-कर्मों में लीन होने लगे। बैरकों में जुआ खेलते, शराब पीते, और व्यभिचार करते। प्रत्यक्ष रूप से उनका निषेध होने पर भी परोक्ष रूप से हमें सारे जघन्य कार्यों के करने के लिए उत्साह मिलता, और इस भाँति हमारे अन्तः करण की सद्भावनाओं का क्रमशः नाश किया गया। हमें डाकुओं और चोरों से मिलने दिया गया, और हमसे चोरी और डकैती आदि सभी जघन्य पाप करवाये गए। इस प्रकार हम मनुष्य से पशु बनाये गए। जब एक बार पाप से प्रेम हो जाता है, तब वह स्थायी होता है, वृत्तियां बन जाने से मरने के पश्चात् ही छूटती हैं, इसलिए सेठ जी, हम पुलिस वाले इतने नृशंस और पतित हो गए हैं। हमारे मन में दया, ममत्व, मोह कुछ अवशेष नहीं रहे हैं।" इसी समय दारोगा जी ने हनुमान को पुकारा। सेठ-जी को उसी चकित अवस्था में छोड़कर वह उनके पास चला आया।

४

पुलिस का दल जब अपराह्न काल में प्रस्थान की तैयारियां करने लगा, तब गाँव निवासियों की जान-में-जान आई। जिन व्यक्तियों ने रुपये दे दिये थे, उनको घर जाने की आज्ञा दी गई, और शेष को थाने में चलने का आदेश हुआ। उनकी आर्थिक दशा वास्तव में ऐसी नहीं थी कि वे सहज ही पुलिस का कर चुकाने में समर्थ होते। उनमें से किसी ने अपने खाने-पीने के बर्तनों को बेचकर, स्त्रियों के आभूषण गिरौं रखकर या बेचकर उनकी फीस दी, और कुछ के पास इसका भी सहारा न होने से अपने को अपने चिरसाथी भगवान् और भाग्य के ऊपर छोड़ दिया। पुलिस वालों को जब उसकी वास्तविक दशा का विश्वास हो गया तब उन्होंने प्रत्येक के दस-दस बेंत लगाकर जाने की आज्ञा प्रदान की।

जाते समय सेठ साहबदीन ने हाथ जोड़कर कहा:—"हुजूर, बलवन्तसिंह के घर की तलाशी आपने नहीं लिवाई। तलाशी लेने पर उसके यहां बहुत माल मिलेगा।"

दारोगाजी ने हनुमानसिंह की ओर देखते हुए कहा:—"हनुमान, तुमसे यह कैसी भूल हुई। असली मुलजिम के घर की तलाशी नहीं ली। उसके घर वालों को यहां बुलाया भी नहीं, और न उसे कुछ पूछ-ताछ की। इस इलाके में जितनी चोरियां हुई हैं, उन सबका माल उसके घर से बरामद

होगा। बलवन्त बड़ा शातिर चोर है। यह कहो कि इत्तिफ़ाक़न वह पकड़ा गया, नहीं तो उसे सभी साधु जानते थे। ऐसे बदमाश की तलाशी जरूर लेना चाहिए।"

हनुमानसिंह ने आगे बढ़कर दारोगाजी से कहा:—"हाँ हुजूर, यह भूल अवश्य हुई। यहां की लबड़-धोंधों में कुछ याद ही न रहा। खैर, अब उधर से ही निकल चलिए। तलाशी लेने के लिए अभी बहुत समय है। सेठजी ने भी इस समय याद दिलाई जब हम सब समान बांध चुके और जिन्स की गाड़ी थाने को रवाना कर चुके।"

दारोगाजी ने कहा:—"सेठजी से भूल हो जाना कुछ बड़ी बात नहीं है। उस चोर ने इनके धन-माल के साथ-साथ इनकी घर वाली को भी चुरा लिया है, फिर इनके होश-हवास कैसे ठीक रह सकते हैं। अच्छा उधर ही से निकल चलो। सम्भव है कि चोरी का कुछ माल बरामद हो जाय।"

जब साहबदीन वहां से हट गए तो अवसर पाकर हनुमानसिंह ने दारोगाजी के पास पहुँचकर कहा:—"हुजूर, अभी कल ही तो सेठ के के साले नन्दलाल ने आपको एक हजार रुपया दिया है। नन्दलाल बलवन्तसिंह के घर में ही ठहरा हुआ है, और वहीं साहबदीन की पत्नी भी है। अपनी इज्जत बचाने के लिए ही पहले से उसने रकम जमा कर दी है। खाकर हराम करना तो ठीक नहीं है, फिर जैसी आपकी इच्छा। गुलाम तो आपके हुक्म का ताबेदार है।"

दरोगाजी कुछ सोचने लगे। फिर कहा:—"यह तो ठीक है कि हराम करने से बेहद बदनामी होती है, और भगवान् के घर में भी मुँह काला होता है, परन्तु सेठ साहबदीन ने पाँच हजार दिये हैं, जो उसके एक हजार से पाँच गुना है। उसका कहना तो करना ही पड़ेगा, और दूसरे बलवन्तसिंह के घर को अछूता छोड़ देने में बदनामी का कारण हो सकता है। चलो, जैसा मौका होगा वैसा कर लिया जायगा।"

हनुमानसिंह सिर झुकाकर आज्ञा पालन करने के लिए चला गया। दारोगाजी ने अपने अनुचरों के साथ साहबदीन को साथ लेकर बलवन्तसिंह के घर की ओर चले। साहबदीन ने साथ चलने में अपनी अनिच्छा प्रकट की, किन्तु दरोगाजी ने उसको अपने साथ चलने के लिए निश्चित किया।

गाँव-भर में इस समय ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी, कि मानो गाँव-का-गाँव उजड़ गया है। कुत्तों और अन्य पशुओं ने परिस्थिति की भयंकरता सम्भवतः अनुमान कर ली थी, इसी हेतु वे भी या तो जंगल में पलायन कर गए थे, अथवा अपने स्वामियों के घर में उन्हीं की भाँति मौन

होकर बैठे थे। जमींदार भी इस हलचल में तटस्थ रहे थे, और न दारोगाजी ने ही उनकी कोई परवा की।

महावीर और सन्तू जब से नन्दलाल के साथ कानपुर से आये, तब से वे अपनी दारू के प्रबन्ध में व्यस्त रहते। नन्दलाल के सामने वे ऐसी लम्बी-चौड़ी बातें करते, और ऐसा विश्वास दिलाते कि वे बात-की-बात में साहबदीन को परास्त कर देंगे। नन्दलाल से जो कुछ ऐंठ पाते, उससे वे दोनों शराब लाते और गांव के बाहर किसी बाग में बैठकर पीते और रात्रि को जब आते तो अपनी कार्यवाहियों की मन गढ़न्त कहानियां सुनाकर सबको आशा बंधाकर प्रसन्न कर देते। नन्दलाल को यद्यपि विश्वास न होता था, और इसीलिए वह स्वतंत्र रूप से थाने के दारोगा से मिला और उसकी भेंट-पूजा की, परन्तु उसकी बहन यशोदा को उनके कथन पर विश्वास हो जाता, और वह भाई से कह-सुनकर उनकी मांग को पूरा करती थी। जिस दिन दारोगा जी ने गाँव का दौरा किया, उस दिन भी वे घर नहीं थे। दूसरे गाँव के एक एकान्त बाग में बैठे हुए शराब पीने में मग्न थे। जब लपुसि का दल बलवन्तसिंह के द्वार पर पहुँचा उस समय भी वे नशे में चकनाचूर होकर पड़े थे। बलवन्तसिंह की चौपाल में कोई नहीं था। घर का द्वार बन्द था।

कासिमअली ने कुण्डी खटखटाते हुए पुकारा:—"महावीर, सन्तू, और जो कोई हो दरवाजा खोलो। दरवाजे पर दारोगा साहब खड़े हैं।"

भीतर लछिमिन ने यशोदा से कहा:—"बेटी, आ गए जमदूत। अब पुरखों की बचा-बचाई इज्जत-आबरू जाने वाली है।

यशोदा ने साहस के साथ उत्तर दिया:—"कोई डर नहीं है। मैं इनसे निबट लूंगी। भैया तो एक हजार पूज ही आये हैं।"

लछिमिन ने उसको पकड़कर अपने पीछे ढकेलते हुए कहा:—"नहीं तू घर में बैठ। तेरी कहीं इज्जत-आबरू मेरे घर में रहते हुए बिगड़ गई तो हम लोग मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। मैं बूढ़ी हूँ, मुझे बात करने दे।"

इसी समय कासिमअली ने फिर हाँक लगाई।

लछिमिन ने महावीर, सन्तू की पत्नियों को घर की छत-ही-छत पड़ौसी के घर में जाने का आदेश दिया, और स्वयं द्वार खोलती हुई बोली:—"कौन है, घर में मर्द कोई नहीं है।"

लछिमिन का हृदय अपने सामने पुलिस का दल देखकर भय से काँपने लगा।

कासिमअली ने डपटकर कहा:—"मर्द नहीं है तो क्या हुआ, तू तो

है। तू कौन है ? मालूम होता है कि बलवन्तसिंह चोर की औरत है। घर के बाहर निकल, हम लोग तेरे घर की तलाशी लेंगे। चोरी का बहुत माल छिपा रखा है। तुमको भी गिरफ्तार करके थाने ले जायंगे। सामने से हटकर इधर खड़ी हो। बता तेरे घर में दूसरा कौन है ?"

लछिमिन की घिग्घी बंध गई। उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल सका।

हनुमान ने स्थिति बिगड़ती हुई देखकर कासिमअली से कहा:—"बुढ़िया बहुत डर गई है। जरा हिम्मत से काम लो।" फिर लछिमिन से कहा:—"हम लोग तुम्हारे घर की तलाशी लेना चाहते हैं। सरकारी हुक्म है, उसका पालन करना है। हम लोग तुमको कोई तकलीफ देने नहीं आये। हमें तो उस माल से मतलब है जो बलवन्तसिंह चोरी करके लाया है। अगर तुम हमको वह माल दे दो, या जहां रखा हो वह जगह बता दो, तो हम निकाल लें और चले जायं।"

लछिमिन का भय कुछ कम हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा:—"आप देश के राजा हैं, मालिक हैं। आपकी जो इच्छा हो करें, हमें उजर ही किस बात का हो सकता है। लेकिन एक बात मैं कहूँगी, आपको अख्त्यार है, मानें चाहे न मानें।"

लछिमिन की नम्रता ने हनुमान को और भी नम्र होने के लिए बाध्य किया। उसने पूछा:—"वह क्या।"

लछिमिन ने कहा:—"मालिक, हम लोग चोर-बदमाश नहीं है। आज तक इस गाँव में किसी ने चोरी क्या, किसी किस्म का भी अपराध नहीं लगाया। आजकल दिन-दशा फिरी हुई है, इससे अपने तन का कपड़ा भी बैरी हो गया है। दो लड़के कुछ करते-धरते नहीं, तीसरा भी फौज में भरती होकर हमारे कारण चला गया। अब हम दोनों बुढ़ऊ, बुढ़िया रह गए हैं। लेकिन पूर्व जन्म के पाप अभी तक सता रहे हैं। बुढ़ऊ पर चोरी का अपराध लगाया है हमारे सेठ ने, जिनको अंजुली भर-भरकर रुपये हमने दिए हैं। हम लोग खाते नहीं, पहनते नहीं, नंगे रहकर सेठजी का करजा अदा कर रहे हैं। उसी करजे को अदा करने के लिए मेरा हाथी-जैसा बेटा लड़ाई पर चला गया। फिर भी सेठ जी हमारा पीछा नहीं छोड़ते। वे रुपये वाले हैं, सब-कुछ कर सकते हैं। आप लोग हमारा घर देखना चाहते हैं, तलाशी लेना चाहते हैं, आइये, लीजिये। सरकार मां-बाप हैं। बाप से क्या छिपाना है। आइये, भीतर चलकर सब देख लीजिये। देख लीजिये कि हम चीथड़े लपेट कर कैसे रहती हैं, देखिये कि हम बिना खाए हुए कैसे गुजर करती हैं।

हमारे पास छिपाने को है ही क्या ? हम लोगों की लाज तो उसी दिन चली गई जिस दिन गरीबी और करजे ने हमारे घर में प्रवेश किया था ।" कहते-कहते लछिमिन की आँखों में अश्रुओं की लड़ियां बिखर कर उसकी असहाय और न दीन दशा का हाल सुनाने लगीं ।

उसने मार्ग छोड़ दिया, और भीतर चलने के लिए हाथ संकेत करने लगी, क्योंकि उच्छ्वासों ने उसकी वाक्‌शक्ति को अवरुद्ध कर दिया था ।

दरोगाजी ने कड़ककर कहा:—"हनुमान, ये बदमाश लोग पहले ऐसे ही रोते हैं, जाओ घर की तलाशी ले आओ ।"

हनुमान के घर में प्रवेश करने के पहले ही यशोदा ने चिल्लाकर कहा:—"आइये, मरे हुओं को अब कुचलिए ।" फिर साहबदीन के पास जाकर कहा:—"अब मुंह क्यों छिपाते हो, सामने आओ । अपनी स्त्री की बेइज्जती कराने पर जब तुम खुद ही आमादा हो गए हो, तो मैं क्या करूँ । मेरे कारण तुमने ठाकुर पर कौन-कौन-से झूठे अपराध नहीं लगाये हैं । यह तो तुम जानते हो, और मैं जानती हूँ । लड़ाई किसी मर्यादा को रखकर लड़ी जाती है । अब जब मेरी लाश को तुम अपने दरवाजे पर देखोगे, तभी शायद तुमको शान्ति मिलेगी । मेरी जान लेकर यदि इन निरपराधों को तुम छोड़ दो, तो मैं स्वर्ग में जाकर तुम्हारी हित-कामना ही करूँगी ।"

साहबदीन ने साहस संचय करते हुए कहा:—"अब भी तुमको अपना मुँह दिखाते शरम नहीं आती ।" इसके आगे वे कुछ न कह सके, और शीघ्रता के साथ चले गए । यशोदा वहीं खड़ी रही ।

लछिमिन ने यशोदा के पास जाकर कहा:—"आओ, बेटी आओ । ये राज के आदमी बाप के बराबर हैं । बाप से कौन परदा ।" फिर हनुमान से कहा:—"चलिए, घर की तलाशी ले लीजिये ।"

हनुमान ने घर के अन्दर जाकर इधर-उधर देखना आरंभ किया । लछिमिन की दरिद्रता, जो अभी तक कोनों में छिपी हुई बैठी थी, प्रकट होने लगी । हनुमान ने आगे देखकर समय नष्ट करना उचित न समझा । उसने घर के बाहर निकलकर दारोगाजी से कहा:—"हुजूर, वहां कुछ नहीं है । कल के खाने को आटा भी नहीं है । अब चलिये ।"

दारोगाजी ने अपनी स्वीकृति में सिर हिलाया और पुलिस का दल आगे बढ़ा । उनके प्रस्थान के पश्चात् लछिमिन अपने रुदन के द्वारा इस नवाघात की पीड़ा का प्रक्षालन करने का प्रयत्न करने लगी ।

५

नील रत्नाकर की लहरों पर खेलता हुआ 'दि सी टायगर' नामक

युद्ध-पोत बड़ी द्रुत गति से अण्डमान द्वीप की ओर दौड़ रहा था। उसके साथ जल-पोतों और वायुयानों की एक टुकड़ी भी उसकी रक्षा करती हुई जा रही थी। समुद्र शान्त था, जो उसके संतरण को सहज और द्रुतगामी बना रहा था। अंग्रेजों का हिन्दुस्तानी फौज पर से विश्वास उठ गया था, इसलिए निक्सन ने विशेष रूप से गोरों के फौजी दस्ते की मांग की थी, और उसकी वह प्रार्थना स्वीकृत भी हुई।

संध्या की कालिमा अग्रसर हो रही थी। दूर क्षितिज पर अब भी यद्यपि लालिमा अवशेष थी, किन्तु वह शनैः-शनैः क्षीण होकर यामिनी को अपना स्थान अधिकृत करने के लिए निमंत्रण देती हुई सूर्य के साथ-साथ प्रस्थान कर रही थी। डेक पर पामीला खड़ी हुई उस प्राकृतिक सौन्दर्य को अनिमेष दृगों से देखने में संलग्न थी। दूसरी ओर थोड़ी दूर पर निक्सन, अगैथा और चन्द्रनाथ भी खड़े हुए बातें कर रहे थे।

निक्सन कह रहे थे:—"चन्द्रनाथ, आगामी कुछ वर्ष हमारे लिए भयानक संकट के हैं। ऐसा संकट काल आज के पहले कभी नहीं आया था। हमारे देश पर संकट आये हैं, और हमने सदैव उनको परास्त किया है। स्पेन आरमेडा को जब से हमने आज से तीन वर्ष पूर्व छिन्न-भिन्न किया था तब से हम सप्त सागरों पर शासन करते आ रहे हैं। नैपोलियन को हमने हराया, और जर्मनी को भी एक बार घुटने टिकवा चुके हैं। युद्धों ने हमारे कदम को सदैव आगे बढ़ाया है परन्तु आज वस्तु-स्थिति कुछ दूसरी ही है। जर्मनी और जापान दोनों हमें खा जाना चाहते हैं, परन्तु यह कभी सम्भव नहीं है कि हम नष्ट हो जायं। मुझे विश्वास है कि एक बार फिर हम इन दोनों को परास्त करेंगे, किन्तु अंग्रेजी साम्राज्य को धक्का अवश्य पहुँचेगा।"

अगैथा ने विकल स्वर में कहा :—"साम्राज्य के नाश होने से हमारा अस्तित्व भी नष्ट हो जायगा।"

चन्द्रनाथ ने प्रच्छन्न हास्य के साथ कहा:-"तब तो एशिया की गुलामी मिटने के दिन समीप आ रहे हैं।"

निक्सन ने गंभीरता के साथ कहा :—"नहीं, मेरे मित्र, एशिया की गुलामी मिटेगी नहीं, वरन् बढ़ेगी। जापान इन देशों पर अपना अधिकार जमा लेगा। जापानियों का साम्राज्य अंग्रेजी साम्राज्य से कहीं दुखःप्रद होगा। अभी भारतीय कह रहे हैं कि अंग्रेज हमारा शोषण करते हैं, परन्तु यदि कदाचित् जर्मनी और जापान का राज्य स्थापित हो गया तब शोषण का असली रूप देखने को मिलेगा। प्रत्येक साम्राज्य शोषण करता है, क्योंकि

शोषण के लिए ही साम्राज्य स्थापित किये जाते हैं। मैं इसे अस्वीकार नहीं करता कि हमने भारत को चूसने में कोई कसर बाकी रखी है। अब तो केवल उसमें हड्डियां ही अवशेष रह गई हैं। यदि जर्मनी या जापान आते हैं तो हड्डियों का कंकाल भी नष्ट हो जायगा। परन्तु वे नहीं आ सकेंगे। जर्मनी नष्ट हो जायगा और भारत भी बच जायगा। यद्यपि फौज के कुछ भारतीयों ने जापान के साथ गठबंधन किया है, उनकी सहायता से वे अंग्रेजों को भारत से निकालना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से भारत में भी शीघ्र ही देश-व्यापी विद्रोह होने जा रहा है, किन्तु मैं कहे देता हूँ कि यह प्रयास भी व्यर्थ जायगा। अंग्रेज फिर भी न जायंगे। चन्द्रनाथ, वास्तव में बात यह है कि इंगलैंड का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा, यदि वह भारत को अपने अधिकार से बाहर जाने देगा। बंदरिया जिस प्रकार अपने मृत बच्चे को भी अपने हृदय से चिपकाये रहती है, उसी प्रकार इंगलैंड भी भारत पर इसकी अंतिम श्वास तक अपना आधिपत्य रखेगा।"

चन्द्रनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मिस्टर निक्सन फिर कहने लगे :—"यदि भारत को स्वतंत्र कर भी दिया जाय तो मुझे विश्वास है कि वह अपनी रक्षा कभी नहीं कर सकेगा। आजकल सैनिक शक्ति की प्रधानता ही किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता स्थिर रख सकेगी। भारत की सैन्य शक्ति, यदि अंग्रेज अपनी सहायता खींच लें, तो बिलकुल महत्त्वहीन है। उसके पास आधुनिक युग के शस्त्रास्त्र नहीं है, और न उनके बनाने में वह समर्थ है। हमने उसको जान-बूझकर पंगु बना रखा है, उसके विकास को नौकरियों के स्वर्ण-जाल तक ही आबद्ध रखा है आत्म-निर्भरता का भाव उसके मन में न आने देने का प्रबंध हमने सदैव किया है। हाँ, यदि कुछ खतरा है तो हमको एक पुरुष से है, वह तुम्हारा गांधी है। वह पुरुष अपनी वाणी से शक्ति के आधार आत्म-निर्भरता का पाठ अपने देशवासियों को पढ़ा रहा है। वह अकेला ही अंग्रेजी साम्राज्य को ललकार रहा है, और उसकी ललकार से ही ब्रिटिश सिंह त्रस्त-सा हो रहा है, क्योंकि उसमें आत्म-विश्वास का महान् बल है। वह अडिग है, अचल है, और मान-अपमान, हार-जीत की भावनाओं से परे है। ब्रिटिश साम्राज्य ने उसको सब भाँति पराजित करने का प्रयत्न किया है, किन्तु उसका प्रत्येक कदम केवल आगे बढ़ने के लिए ही उठता है। उसकी आवाज भारत के कोने-कोने तक पहुँचती है, और वह सबको अपने-जैसा आत्म-विश्वासी, दृढ़ और अचल बना रहा है। हमें शस्त्रों से भय नहीं लगता,

क्योंकि हमारे पास उससे उन्नतर शस्त्र है, हमें जन-समूह से भय नहीं होता, क्योंकि उनको क्षण-मात्र में नष्ट करने की हममें सत्ता है, किन्तु हमें भय होता है उन दृढ़, वीर निःशस्त्र सैनिकों से जो केवल मरने के लिए ही मौत को सामने देखते हुए भी बढ़ते हैं। मौत भी कितनों को खायगी ? उसकी दाढ़ें खाते-खाते थक जायंगी और उसका पेट भर जायगा, उस समय वह उनसे स्वयं भयभीत होकर भाग जायगी। ईश्वर न करे वह अवस्था आय, और यदि गांधी उसको करने में समर्थ हो गया तब तो अवश्य ही हमें भागना पड़ेगा। इसलिए हम गांधी से डरते हैं, और उसके प्रयास को हम विफल करने का प्रयत्न करते हैं। आशा तो यही है कि हम अब भी उसको परास्त कर सकेंगे। वह दावानल से भी भयंकर एक अग्नि भारत में प्रज्ज्वलित करने जा रहा है। ब्रिटिश सरकार उसके धूम्र को देख रही है, इस बार का प्रयत्न अंतिम प्रयत्न होगा। या तो उस विद्रोह में भारत की स्वतंत्र भावना को एकदम कुचल दिया जायगा और या फिर हमको ही पराजित होकर पलायन करना पड़ेगा।"

इसी समय पामीला वहां आकर खड़ी हो गई। चन्द्रनाथ ने हँसकर बड़ी कोमलता के साथ कहा :—"आइये, आप तो हम लोगों से सदैव दूर-दूर ही रहती हैं।"

निकसन ने हँसकर कहा:—"आजकल पामी फिलासफर हो रही हैं।"

पामीला ने उत्तर दिया :—"जीवन की समस्याओं को सुलझाने, के लिए शायद यही एक मार्ग है।"

चन्द्रनाथ ने पूछा:—"क्या जीवन की समस्याएं इतनी जटिल हैं।"

पामीला ने गम्भीर स्वर में कहा:—"जीवन सदा से एक पहेली रहा है, जो उसको समझने का प्रयास करते हैं, वही चिन्तित दिखाई पड़ते हैं, और जो केवल स्वार्थ-पूर्ति के लिए आकुल रहते हैं, उनके लिए आत्म-चिन्तन एक उपहास की बात है।"

चन्द्रनाथ को साहस न हुआ कि वह कुछ आगे कहे। इन दिनों पामीला, चन्द्रनाथ से बहुत खिची-खिची रहती थी। यद्यपि चंद्रनाथ का सतत प्रयत्न यही रहता था कि किसी भाँति वह उससे प्रसन्न हो जाय, मित्रता का व्यवहार रखे, परन्तु पामीला उससे सदैव दूर भागती थी। यह बात नहीं कि उसका कटु व्यवहार उसके माता-पिता की दृष्टि से अलक्ष्य था, परन्तु अब वे उसके इस व्यवहार से दुखी और चिन्तित न थे। क्योंकि कनक के हस्तगत करने के विपर्यय में चन्द्रनाथ ने उनको अपनी आधी सम्पत्ति देना स्वीकार कर लिया था, इससे मिस्टर निकसन को सन्तोष हो गया था।

पामीला के उत्तर ने सबको थोड़ी देर के लिए चुप कर दिया था। अगैथा ने उस निस्तब्धता को भंग करने की चेष्टा से कहा:—"अब यहां से अन्दमान कितनी दूर रह गया है।"

निक्सन ने उत्तर दिया:—"अब अधिक दूर नहीं है, शायद कल का प्रात:काल हम लोग अन्दमान में ही देखेंगे, हाँ यदि कोई अघट घटना (जैसे जापानी जहाजों का आक्रमण) न हुई हो।"

अगैथा:—"हमारे साथ प्रबन्ध तो पर्याप्त है, हम लोग जापान को सहज ही हरा देंगे।"

निक्सन:—"जापान के प्रयत्नों को नष्ट करने के लिए ही हमारा गमन हो रहा है।"

चन्द्रनाथ ने पामीला की ओर पुन: देखते हुए पूछा:—"आज आपने अपने कैदी की कोई खोज-खबर नहीं ली।"

पामीला ने तीक्ष्ण स्वर में कहा:—"आपका उससे क्या सम्बन्ध है। यह मेरा काम है। मैं, करूँ या न करूँ।"

निक्सन ने परिस्थिति को सम्भालते हुए कहा:—"चन्द्रनाथ यह कब कहते हैं कि वह उनका काम है। उर्मिला के भोजन आदि का प्रबन्ध तो कर दिया है। उसका भार जब तुमने अपने ऊपर लिया है, तब उसके सम्बन्ध में लोग तुमसे ही तो पूछेंगे।"

पामीला ने तीव्रता के साथ कहा:—'क्या मैं उत्तर देने के लिए बाध्य हूँ। मिस्टर चन्द्रनाथ को उसके सम्बन्ध में पूछने का कोई अधिकार नहीं है।"

चन्द्रनाथ ने सहास्य कहा:—"मैं अधिकार नहीं, मित्रता के नाते पूछता हूँ, मिस पामीला।"

निक्सन ने मध्यस्थ बनते हुए कहा:—"अधिकार का प्रश्न उठाना ही अनुचित है। कानूनन उर्मिला की देख-रेख का भार तुमको नहीं सौंपा जा सकता था, किन्तु इस जहाज पर अकेले वही एक बंदिनी है, स्त्री है, और नवयुवती है, इसलिए तुमको सौंप दिया है, वह भी जब विशेषाधिकार से मैंने अपने ऊपर उसकी जिम्मेदारी ली है।"

पामीला:—"मैं आपको उत्तर दे सकती हूँ, क्योंकि मैंने आपसे उसको अपने अधिकार में लिया है, चन्द्रनाथ को मैं कोई उत्तर नहीं दे सकती।"

चन्द्रनाथ ने सहास्य कहा:—"किन्तु सतर्क करना भी तो मेरा कर्तव्य है। उस पर अपनी दृष्टि पूरी-पूरी रखनी चाहिए, कहीं समुद्र में न कूद पड़े।

आजीवन कैदी प्रायः अवसर पाकर अपने प्राण-विसर्जन करने का प्रयत्न किया ही करते हैं।''

पामीला ने वहां से जाते हुए कहा:—"धन्यवाद, उर्मिला अवसर पाकर भी लाभ नहीं उठायगी, वह तो अपने पति से मिलने की सुखद कल्पना में विभोर है।''

पामीला के चले जाने के बाद अगैथा ने कहा:—"न मालूम क्यों आज-कल यह सबसे रुष्ट रहती है।"

निक्सन ने हँसकर कहा:—"इसकी कोई चिन्ता न करो। अन्दमान पहुँचकर सब ठीक हो जायगा। आओ चलें चन्द्रनाथ, क्लब-रूम में चल-कर ताश खेलें।"

चन्द्रनाथ और निक्सन चले गए। अगैथा भी पामीला के केबिन की ओर चली गई।

६

अन्दमान में हवाई आक्रमण से बचने का प्रबन्ध बहुत सतर्कता, धीरता, और शीघ्रता से हो रहा था। राजनीतिक कैदियों के अतिरिक्त प्रायः सभी प्रकार के कैदियों को एक प्रकार से छूट दे दी गई थी। अधिकारियों से लेकर कैदियों तक एक विचित्र प्रकार का सौहार्द्र उत्पन्न हो गया था, लगभग वैसा, जैसा आसन्न संकट काल में मनुष्य-मात्र में हो जाया करता है। जब कोई जहाज़ डूबने वाला होता है, तब उसके आरोहियों में सब प्रकार के भेद भाव का स्वतः नाश हो जाता है और उस समय विशुद्ध मानव धर्म की छटा निरखने को प्राप्त होती है। वैसी ही अवस्था उन दिनों अन्दमान में भी हो रही थी।

मानव चाहे जितना दूर हटाकर रखा जाय, उसके अन्य मानवों से सम्बन्ध स्थापित करने के सब मार्ग चाहे अवरुद्ध कर दिये जायं, फिर भी आसन्न आपत्तियों की सूचना उसे मिल जाती है। मानव-मस्तिष्क ध्वनि ग्रहण करने वाले एक रेडियो की भाँति है, जिसमें ब्रह्माण्ड की अदृश्य तरंगें आकर टकराया करती हैं, और वह उन्हें ग्रहण करके नाना प्रकार के संकल्प-विकल्पों को अपनी भावनाओं के कोश में उत्पन्न करता रहता है। सीमित शक्तियों के समूह का नाम मानव है, और उसी से सम्बद्ध मस्तिष्क भी अपनी शक्तियों में सीमित होता है, परन्तु जब उसकी शक्तियों को विक-सित करते हैं, जो यौगिक क्रियाओं द्वारा होता है, तब मानव अपने धरातल से ऊंचा उठ जाता है, और उसमें दूरी और समय के भावों का नाश हो जाता है। तब वह त्रिकाल दर्शी हो जाता है। मस्तिष्क की शक्तियों को उन्नत

करके ब्रह्मांड में व्याप्त अन्य शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना ही योग है। इस दिशा में प्रयत्न करने वालों को सब बातें सहज और सरलता के साथ विदित होती हैं, और जो इस ओर से उदासीन रहते हैं उनको भी सूचनाएं तो मिलती हैं, किन्तु संकल्प और विकल्प उन्हें नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार जैसे किसी ध्वनि को दूसरी अन्य ध्वनियां पारस्परिक संघर्ष से नष्ट कर दिया करती हैं। अनिष्टकारी घातक विपत्तियों का सम्बन्ध मानव के जीवन से अत्यन्त निकट का होने के कारण वे दूसरी बातों की अपेक्षा अपना प्रभाव विशेष रूप से डालती हैं, और इसलिए आसन्न विपत्ति के द्वार पर पहुँच कर मनुष्य चौकन्ना होकर चारों ओर देखने लगता है।

ठीक वही अवस्था अन्दमान-निवासियों की हो रही थी। उनका सबसे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। सहायता प्राप्त होने की कोई आशा नहीं थी। अधिकारी भारत-सरकार की ओर से सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु उनको प्रत्येक बार निराश होना पड़ता था। जापान की प्रगति को रोकने वाला उस पूर्वी प्रदेश में कोई नहीं था, इसीलिए उन्होंने यह निश्चय किया कि शत्रु से लड़कर प्राण देना ही ठीक है। उनके पास न तो वायुयान थे, और न पर्याप्त मात्रा में गोला-बारूद ही। बन्दूकों तथा अन्यान्य शस्त्रों की भी कमी थी। छोटी-से-छोटी जापानी सेना भी उनको सहज में ही परास्त कर सकती थी। इसके अतिरिक्त जो कुछ शस्त्रास्त्र थे भी, तो उनको चलाने वाले न थे। वे कैदियों का विश्वास कर न सकते थे, उनके हाथ में अस्त्रों के देने का तात्पर्य था स्वयं अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना। इन्हीं कारणों से वे बड़े विकल, और कोई भी मार्ग ग्रहण करने में अनिश्चित और अप्रस्तुत थे। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, और सहायता न पहुँचती थी, त्यों-त्यों उनकी घबराहट बढ़ती जाती थी। अन्त में अधिकारी वर्ग ने परामर्श करके कैदियों की ही सेना बनाना निश्चय किया। उन्हें नाना प्रकार के प्रलोभन और आश्वासन दिये गए, उनको युद्ध के अनन्तर मुक्त करने की घोषणा की गई। कैदियों ने भी अनुभव किया कि यों तो चूहों की भाँति मरना पड़ेगा, और युद्ध में भाग लेने से बचने की आशा भी हो सकती है। इसलिए उन सबने उक्त प्रस्ताव का स्वागत किया।

अन्दमान में आकर रामनाथ का जीवन एक आदर्श जीवन बन गया था। वह अपने अधिकारियों के आदेशों को पूर्ण तत्परता से पालन करता था, और सदैव उनका आदर व सम्मान करता था। इसी कारण से वह प्रायः सभी अधिकारियों का कृपा-पात्र हो गया था। अधिकारी भी जब उसके संसर्ग में आये तब उन्होंने अनुभव किया कि वह हत्या के इतर

अपराधियों से सर्वथा विभिन्न है। हत्याकारी होते हुए भी उसके उच्च विचार हैं। उन्नत मन और मस्तिष्क है, उसमें कोमल भावनाएं हैं, सबके प्रति स्नेह और सत्कार है। जब उन्होंने उसकी कहानी सुनी, हत्या का रहस्य सुना, तब उसे अपने निर्णय में हत्या के अपराध से विमुक्त कर दिया, और उसके साहस और कार्य के लिए उसको बधाई दी। रामनाथ के ऊपर से अधिकारियों ने वे सभी पाबन्दियाँ हटा लीं जो एक कैदी पर लगाई जाती हैं। वह लगभग एक स्वतन्त्र व्यक्ति की भाँति सर्वत्र आता जाता, तथा अन्य कैदियों से काम लेता, किन्तु उसको रहना जेल के अन्दर ही पड़ता था।

आधीन कैदियों के साथ उसका व्यवहार भी सहानुभूतिपूर्ण रहता था, जिससे वे भी उसको भक्ति और श्रद्धा से देखते थे। वह उनको उतना ही काम बताता था जितना वे करने में समर्थ होते थे, और यदि कदाचित् कोई निर्दिष्ट काम को समाप्त न कर पाता, तो वह उसकी कमी का दायित्व अपने ऊपर ले लिया करता था। अधिकारियों से उसकी सिफारिश करके उसके कार्य को सरल बना देता था। ऐसे व्यवहार के कारण कैदी भी उसको अपना हितू और मित्र समझते थे। रामनाथ कैदियों और अधिकारियों का मध्यस्थ बनकर दोनों को समान रूप से प्रसन्न करता था, जिससे उसे दोनों का विश्वास प्राप्त था।

अधिकारियों ने जब रामनाथ के सामने जापान के आक्रमण से बचने के उपाय रखे, तब उसने सहर्ष स्वीकार किया, और अन्यान्य कैदियों को इसके लिए सन्नद्ध करना आरम्भ किया। कैदियों ने भी पूर्ण सहयोग का वचन दिया, और हवाई हमले से बचने के उपाय किये जाने लगे। रक्षा का कार्य इतने वेग से चला कि अल्प काल में ही पोर्ट ब्लेयर की काया-पलट हो गई। भूगर्भस्थ रक्षणालय बनाये जाने लगे, और दूसरे अग्नि-निवारक उपायों की शिक्षा दी जाने लगी। रामनाथ अपने नेतृत्व में सभी कार्यों का सम्पादन कर रहा था।

राजनीतिक कैदियों को इस व्यवस्था में नहीं लिया गया था। वे सबसे पृथक् रखे जाते थे। अधिकारियों को विश्वास था कि यदि राजनीतिक कैदियों से इन साधारण कैदियों का सम्बन्ध हो जायगा तो उनमें भी विद्रोह की भावना भर जायगी, और शीघ्र ही कोई विप्लव उठ खड़ा होगा। उनके पास केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियों के जाने की ही व्यवस्था थी, और अन्य कोई भी उसमें प्रवेश का अधिकारी नहीं था।

रामनाथ को भी वहां जाने की आज्ञा नहीं थी, इसीलिए कनक के

अन्दमान में पदार्पण की घटना से वह सर्वथा अनभिज्ञ था। कनक को अपनी कोठरी के बाहर निकलने की स्वतंत्रता नहीं थी, इसलिए वह भी रामनाथ के विषय में सब-कुछ जानने की इच्छा रखते हुए भी बेबस थी। कनक के विषय में भारतीय सरकार की ओर से यह लिखा गया था कि "संगठन करने में यह बहुत पटु है। मजदूरों का नेतृत्व करती रही है। संक्रामक रोग की भाँति इसको दूर रखा जाय, नहीं तो इसकी उपस्थिति सदैव विष-वमन करेगी।" अन्दमान की सरकार ने आदेश का अक्षरशः पालन करना आरम्भ कर दिया और उसका एकांतवास में रखना सर्वोत्तम उपाय समझा गया। रामनाथ को नहीं ज्ञात था कि उससे थोड़ी ही दूर कनक भी एक बन्दिनी है, जिसको वे सब सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं, जिनको वह भोग रहा है। कनक के लिए उसके मन में कितनी श्रद्धा और भक्ति थी, इसका अनुमान करने में वह स्वयं असमर्थ था। जब कभी रात की कालिमा अपनी श्यामल छाया में छिपी हुई विगत स्मृतियों को खोलने लगती, तब उर्मिला के चित्र के साथ ही कनक की भी मूर्त्ति सजग होती और उसकी आँखों से कृतज्ञता द्रवित होकर बहने लगती। अपनी उर्मिला का समस्त भार वह उसी के कन्धे पर तो डाल आया है। उसका मन प्रश्न करता, कनक उस जन्म की तुम्हारी कौन है।"

जिसका भय था, अंत में वह सामने उपस्थित हो गया। जापान के वायुयानों ने आक्रमण कर ही दिया। पोर्ट ब्लेयर में वायुयान-विध्वंसक तोपें नहीं थीं। जापानी वायुयानों को अपनी रक्षा करते हुए आक्रमण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे निर्भीक होकर विनाश का तांडव करने में संलग्न हो गए। भयानक रव से वह छोटा-सा टापू गूँज गया। धरातल काँपने लगा। अग्नि की लपटें प्रकट होने लगीं। वायु को सजग करते हुए बम-वर्षक वायुयान पृथ्वीतल से कुछ दूरी पर उड़कर बम बरसा रहे थे। यद्यपि चतुर्दिक् निबिड अंधकार था, तथापि उनके प्रकाशकारक बम पहले गिरकर तीव्र प्रकाश से उस स्थान को देदीप्यमान कर देते और तब उसी क्षण दूसरे वायुयान अपने विध्वंसक बमों की वर्षा करने में संलग्न हो जाते।

रामनाथ अन्य कैदियों के साथ एक रक्षा गृह में बैठा हुआ था। इस जीवन में आज के पूर्व उसने बम-वर्षा कभी नहीं देखी थी। यद्यपि उसे भली प्रकार विदित था कि विनाश का ताण्डव देखने में वह अपने जीवन के लिए उतावला हो रहा था। जब कोई बम वज्र-घोष के साथ भूमि पर गिरता और धराखण्ड अश्वत्थ पत्र की भाँति काँप उठता, तब वह बाहर जाने के लिए पग ब ता, परन्तु अन्य कैदी उसको पकड़ लेते थे। उसके

मन में मरने की इच्छा जागृत हो गई। उसके मन ने कहा, मरने का इससे उपयुक्त अवसर दूसरा नहीं मिलेगा।"

उसने अपने साथियों से कहा:—मुझे जाने दो, दूसरे रक्षा-गृहों को देखना है। न मालूम उनकी क्या अवस्था हो।"

साथियों में से एक ने कहा:—"पहले अपनी रक्षा करो। यह अवसर बाहर जाने का नहीं है?"

परन्तु रामनाथ की इच्छा किसी प्रकार दबाये नहीं दबती थी। प्रत्येक बम के गिरने के साथ वह सोचने लगता कि यह अवसर भी हाथ से निकल गया। इसी समय एक बम उसके समीप के एक रक्षा-गृह पर गिरा। कैदियों के मरने का चीत्कार बम के विस्फोट की तुमुल ध्वनि में डूब गया। उसके रक्षा-गृह की छत से मिट्टी गिरने लगी। सब लोगों ने भय-विह्वल दृष्टि से एक दूसरे को देखना आरम्भ किया। रामनाथ को अवसर प्राप्त हो गया, और वह उनसे अपने को छुड़ाकर रक्षा-गृह के बाहर चला गया।

उसके बाहर आते ही एक बम भीषण रव के साथ सीधा उसी गृह पर गिरा जहाँ से कुछ क्षण पहले वह भागकर आया था। उस रक्षा-गृह के समस्त आश्रित कैदियों के प्राण तिरोहित हो गए। उनके शव रज कणों की भाँति टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गए। उनका चिह्न तक लुप्त हो गया। रक्षा-गृह इस समय केवल एक भयानक गर्त्त था। वह मुड़कर पीछे देख ही रहा था कि पत्थर का एक टुकड़ा वायु को भेदता हुआ उसके कपाल से टकराया। वह दूसरे ही क्षण अचेत होकर गिर पड़ा।

वायुयानों ने अपना विध्वंस कार्य समाप्त कर दिया। वे जिस दिशा से आये थे उस दिशा को प्रस्थान कर गए। थोड़ी देर में सर्वत्र शान्ति छा गई। केवल अग्नि की भयानक लपटें उठकर पोर्ट ब्लेयर के सरकारी भवनों को भस्म करने में संलग्न थीं। आश्चर्य की बात केवल यह थी कि जेल का वह भाग, जहाँ राजनीतिक कैदियों के रहने की व्यवस्था थी तथा जो अपेक्षाकृत दूर था, पहले की भाँति खड़ा हुआ था; न उसके किसी भाग को क्षति पहुँची थी और न कोई कैदी ही मरा था

७

दूसरे दिन प्रातःकाल अधिकारियों के सामने एक विषम समस्या उपस्थित हो गई। उनके कितने हो कर्मचारी और कैदी आहत हो गए थे। वहाँ का हस्पताल भी राजनीतिक कैदियों की जेल की भाँति ध्वस्त होने से बच गया था, परन्तु डाक्टरों और नर्सों के प्राणों की रक्षा न हो सकी थी। केवल एक बंगाली डाक्टर सेन किसी भाँति बच गए थे, और घायलों की

सेवा और उपचार का भार उनके ऊपर ही था। वे अकेले थे, और घायल अनेकों। मुख्य-मुख्य अधिकारी प्रायः सभी बचे हुए थे। उन्होंने अपनी रक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध किया था। उनका रक्षा-गृह, अन्य रक्षा-गृहों की अपेक्षा सुदृढ़ था, और भाग्यवश कोई भी बम उन पर सीधा नहीं गिरा था।

इस समय अन्दमान की एक राजधानी पोर्ट ब्लेयर श्मशान-सा भयानक और भयावह हो रहा था। सर्वत्र बड़े बड़े दीर्घाकार गर्त्त बने हुए थे। जेल की दीवारें बिखर गई थीं। बारकें टूटकर ईंटों और पत्थरों के ढेर हो गए थे। अग्नि सब-कुछ भस्म करके अब भी कहीं-कहीं चैतन्य थी। चीलों और कौवों का चीत्कार उस स्थान की भयानकता को द्विगुणित कर रहा था। आज किसी के लिए काम न था। काम और उसके करने वालों का विनाश हो गया था। सबके मुखों पर विषाद और भय के चिह्न प्रस्फुटित हो रहे थे, मन काँप रहे थे, और नेत्र विस्फारित थे। उनके नेत्र बार-बार अपने अपने-आप दक्षिण के क्षितिज की ओर उठ जाते। उनके कानों में समीर की सनसनाहट वायुयानों की सनसनाहट का भ्रम पैदा कर रही थी। उनके कान यद्यपि अन्य बातों को सुनने के लिए बधिर हो गए थे, तथापि उनमें वैसी गनगनाहट हो रही थी जैसी वायुयानों के चलने से होती है।

राजनीतिक कैदियों की प्राण-रक्षा होने से अधिकारियों को कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। शत्रु के उस कार्य को उन्होंने उनके साथ पक्षपात ही समझा। डाक्टर सेन ने अधिकारियों से प्रस्ताव किया कि घायलों के उपचार के लिए उन्हें राजनीतिक अपराधी दिये जायँ, क्योंकि उनकी सहायता के बिना घायलों की रक्षा कठिन हो जायगी। उनमें से कितने ही डाक्टर हैं जो इस संकट में सहायता कर सकते हैं। परिस्थिति ने उनको डाक्टर सेन के प्रस्ताव में सहायक होने के लिए विवश किया।

उन्होंने उन सभी राजनीतिक कैदियों को, जो अपने जीवन के प्रथम काल में डाक्टर थे, एकत्रित करना आरम्भ किया। यद्यपि वे अपने कार्य को भूल गए थे, तथापि उनकी सेवा-भावना ने उसको सजग कर दिया। उन्होंने प्रसन्नता के साथ मानव-सेवा का भार ग्रहण किया, और घायलों को ले जाकर हस्पताल में उनकी मरहम-पट्टी करने लगे। डाक्टर तो मिल गए परन्तु नर्सों का बिलकुल अभाव था। साधारण कैदियों में कुछ स्त्रियाँ थीं, परन्तु राजनीतिक कैदियों में केवल कनक के अतिरिक्त और कोई नहीं था। डाक्टर सेन ने इस काम में कनक की भी सहायता लेने का निश्चय किया। उन्होंने सन्तरी के साथ उसकी एकान्त कोठरी में प्रवेश किया।

रात्रि के विनाश-ताण्डव से कनक अपरिचित नहीं थी। विनाशकारी

रव उसने सुना-भर था, देखने के लिए वह अक्षम थी। किन्तु कल्पना से उसने अनुमान कर लिया था कि जापानियों का हवाई आक्रमण हुआ है। उसने यद्यपि कानों में उंगलियां लगा ली थीं और कम्बलों की ऊन निकाल कर कर्ण छिद्रों में भर ली थी, तथापि वे कुछ बधिर हो गए थे। बम-वर्षा के समय वह बराबर किसी बम के गिरने की आशंका कर रही थी, परन्तु उसकी जेल में कोई बम नहीं गिरा। बम-वर्षा के पश्चात् भी उसका अस्थिर मन शान्त नहीं हो सका। उस रात्रि को उसने अपने को कुछ एकाकी अनुभव किया। वह किसी से वार्त्तालाप करने के लिए व्याकुल हो गई। सोने का उसने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु निद्रा ने भी उस भयावह काल में उसका साथ त्याग दिया। वह लाख प्रयत्न करने पर भी सो न सकी।

डाक्टर सेन को अकस्मात् देखकर कनक चकित हो गई। एक भारतीय भद्र व्यक्ति को सम्मुख देखकर वह अवाक् होकर उनके मुख की ओर देखने लगी।

डाक्टर सेन ने कहा:—"श्रीमती जी को मेरे अकस्मात् आगमन से आश्चर्य हो सकता है, किन्तु परिस्थिति ने मुझे आपकी सहायता लेने के लिए विवश किया है। कल जापानियों द्वारा की गई बम-वर्षा से आप अवश्य अवगत होंगी। मुझे यह स्वीकार करते हुए बहुत दुःख होता है कि अधिकारियों ने आप लोगों की रक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया था, परन्तु भगवान् ने आप लोगों की रक्षा की है, और आपकी जेल पर एक भी बम नहीं गिरा। इससे भगवान् की कृपा का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। रक्षा करने वाला केवल एक भगवान् है, और वही असहायों की रक्षा सदैव करता आया है। जिन लोगों ने आपकी रक्षा का प्रबंध नहीं किया था, उनमें से कितने ही आज घायल और अर्धमृत होकर पड़े हैं और कितने ही मर भी गए हैं। उन्हीं घायलों के उपचार के लिए अधिकारियों को उनकी सहायता ग्रहण करने के लिए बाध्य होना पड़ा है, जिनको उन्होंने अरक्षित छोड़ दिया था। मैं उसी उद्देश्य से आपके सम्मुख आया हूँ। हमारे यहाँ अस्पताल में जितनी नर्सें थीं वे सब मारी गईं। उनके स्थान की पूर्त्ति करने वाला कोई नहीं रहा। आपसे प्रार्थना है कि आप नर्स का काम करना स्वीकार करें। इससे आपको कुछ अंशों में स्वतंत्रता भी मिल जायगी। बोलिए, क्या आप यह काम स्वीकार करती हैं?

कनक ने उनकी ओर देखते हुए कहा:—"किन्तु मैं इस प्रकार के काम से पूर्णतः अपरिचित हूँ। मैं नहीं कह सकती कि मैं इसका सम्पादन योग्यता

के साथ कर सकूँगी। मैं आपको बता देना चाहती हूँ कि मैं पहले बैरिस्टर थी, और सेवा-शुश्रूषा, उपचारादि से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ"

डाक्टर सेन ने सहज मुस्कान के साथ कहा:—"स्त्री जाति, जिसको संसार की माता होने का गौरव प्राप्त है उसको सेवा का भाव सिखाना नहीं पड़ता। उसके जन्म के साथ ही वह निहित है। प्रकृति उस शक्ति की स्थापना उसी समय उसमें कर देती है। उसको बाह्य शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। भगवान् ने जब नर और नारी की सृष्टि की, तब उसने अपनी शक्तियों को भी दो समतुल्य भागों में विभक्त किया। एक को संस्थापक का रूप दिया, और दूसरे को पोषक का। संस्थापन और पोषण दोनों अविच्छन्न और पारस्परिक निर्भरता के भाव हैं। इसीलिए नर पिता रूप में सृष्टि का बीज स्थापित करता है, और नारी माता के रूप में उसका पोषण करती है। माता को अपने बच्चों के पालन-पोषण की शिक्षा देनी नहीं पड़ती। संसार के अन्य प्राणियों, पशुओं और पक्षियों की नारी जाति भी इस विद्या से भली-भाँति परिचित है। गाय को कौन अपने पहले बछड़े को चूमना और चाटना सिखाता है। कौन पक्षियों को अपने अण्डे पर बैठ कर सेने की शिक्षा देता है? जो भावनाएं और कार्य नैसर्गिक हैं उनकी शिक्षा स्वयं प्रकृति देती है। प्रकृति से बढ़कर शिक्षक और गुरू कोई अन्य नहीं हो सकता। श्रीमती जी के इस कथन को कि वे सेवा-कार्य से सर्वथा अनभिज्ञ हैं कम से-कम मैं स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ।" कनक बड़े असमञ्जस में पड़ी। सहसा रामनाथ का नाम उसके स्मृति-पटल पर अनेकानेक विचारों को ठेलता हुआ सबके आगे आया। रामनाथ के सम्बंध में कुछ बातें जान लेने का इससे अधिक उपयुक्त समय और कोई दूसरा न था।

उसने शंकित कण्ठ से पूछा:—"डाक्टर साहब, क्या आप रामनाथ क़ैदी को जानते हैं?"

डाक्टर सेन ने कुछ देर तक विचार के पश्चात् कहा:—"रामनाथ नामक व्यक्ति को मैं नहीं जानता। श्रीमतीजी, यहाँ पर नाम उतना प्रचलित नहीं है, जितना नम्बर! रामनाथ का नम्बर यदि आप बताने की कृपा करें तो शायद मैं बता सकूँ।"

कनक ने हताश होते हुए कहा:—"नम्बर तो मैं नहीं बता सकती, क्योंकि मैंने संतरी और आपके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को नहीं देखा, और सम्भाषण का अवसर तो पहले-पहल आपसे ही प्राप्त हुआ है। इतने दिनों तक मौन रहने से मुझे यह भ्रम कभी-कभी होता था, कि

सम्भवतः मैं कहीं मूक न हो जाऊँ, बोलने की क्रिया ही न भूल जाऊँ। इससे आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि मैं रामनाथ का नम्बर कैसे बता सकती हूँ! हाँ यदि आप उसका हुलिया जानना चाहें तो अवश्य बता सकती हूँ।"

डाक्टर सेन ने पूछाः—"अच्छा उसका हुलिया ही बताने की कृपा करें, शायद पहचान जाऊँ। हस्पताल में आने का उसका कभी-न-कभी काम तो पड़ा ही होगा।"

अपनी आंखें बंद कर कनक कहने लगीः—"रामनाथ एक लम्बा, इकहरे शरीर गौर वर्ण का है। उसका ललाट उन्नत, मस्तक चौड़ा, और हाथ-पैर बलिष्ठ हैं। उसके सिर के बाल काले, घुँघराले, और मुलायम हैं। उसके मस्तक के दाहिने भाग में फोड़े का व्रण है। उसके कान बड़े, नासिका दीर्घ, और यूनानियों जैसी है। उसके ओष्ठ पतले, मुख का छिद्र छोटा और जबड़े दृढ़ हैं। उसकी आँखें चमकती हुईं, बड़ी और देखने में सघन श्याम वर्ण की हैं। बाईं आँख के नीचे एक छोटा-सा तिल है, और दाहिने कपोल पर भी एक तिल है, जो बड़ा सुहावना लगता है। उसका कण्ठ-स्वर स्पष्ट, और वाणी में गम्भीरता है। वह भारत के कानपुर नगर से आया है। उस पर मनुष्य की हत्या का अपराध है, और पहले फाँसी का दण्ड मिला था परन्तु इलाहाबाद हाईकोर्ट से वह द्वीपान्तार-वास के दण्ड में परिणत कर दिया गया। बस इतना ही उसके सम्बन्ध में मैं बता सकती हूँ।"

डाक्टर सेन ने पूछाः—"आप उसे कैसे जानती हैं? क्या वह आपका कोई सम्बन्धी है?

कनक ने कुछ संकोच के साथ उत्तर दियाः—"नहीं, वह मेरा सम्बन्धी नहीं, मेरे······!" कहते-कहते वह ठहर गई।

डाक्टर सेन ने उसके कथन की पूर्त्ति करते हुए कहाः—"आपके किसी सन्निकट सम्बन्धी का हत्याकारी है?"

कनक ने शीघ्रता से उत्तर दिया, मानो वह अन्य बातें प्रकट करना ही चाहती हो, "हाँ, मैंने उसके मुकदमे की पैरवी की थी।"

डाक्टर सेन ने चकित होकर पूछाः—"क्या आपने अपने एक निकट सम्बन्धी के हत्याकारी की पैरवी की थी। उसके विरुद्ध की होगी?"

कनक ने दूसरी ओर देखकर अपनी दृष्टि को छिपाते हुए कहाः—"नहीं, उसको निरपराध प्रमाणित करने के लिए पैरवी की थी, परन्तु मैं उसमें कृतकार्य नहीं हुई। न्यायालय (नहीं मिथ्यालय ही उनको कहना चाहिए, क्योंकि अंग्रेजों द्वारा स्थापित सभी न्यायालय केवल अविचार के घर हैं)

के द्वारा वह अपराधी ही घोषित किया गया, और उसे वैसा ही दण्ड भी दिया गया। परन्तु मेरी दृष्टि में वह हत्याकारी नहीं था, वरन् संसार का एक वीर, अन्याय के विरुद्ध सक्रिय कार्यकर्त्ता था। उसने हत्या केवल दण्ड देने के लिए की थी। वह एक महान् पुरुष है, महान् आत्मा है।"

डाक्टर सेन ने अपना सिर हिलाते हुए अविश्वास के साथ कहा:—"हत्याकारी भी महात्मा हो सकते हैं, यह तो जीवन में प्रथम बार आज ही मालूम हुआ!"

कनक ने उत्तेजित होकर कहा:—"स्वार्थसिद्धि के लिए जो कार्य किया जाता है, वह बाह्य रूप से सत्कर्म होता हुआ भी अपकर्म है, और जो किसी सदुद्देश्य से, परमार्थ के लिए अथवा पद-दलित जाति की रक्षा के लिए किया जाता है, चाहे वह हत्या ही क्यों न हो, वह सत्कर्म है। ऐसा वे ही व्यक्ति करते हैं जिनकी आत्मा महान् और विचार उच्च होते हैं। डाक्टर साहब, रामनाथ को देखकर आपकी धारणा बदल जायगी।"

डाक्टर सेन ने उत्तर दिया—"भगवान् करे ऐसा ही हो, परन्तु पहले आप नर्स का कार्य करना तो स्वीकार करें। कौन जानता है कि आपका रामनाथ मृत या घायल होकर दयनीय अवस्था में कहीं पड़ा न हो?"

कनक यह सुनते ही सन्न रह गई। उसके मन ने कहा:—"डाक्टर का कथन सत्य भी हो सकता है।" प्रकट में उसने कहा:—"अवश्य मे व चलूँगी डाक्टर, मैं नर्स का काम करूँगी। देखूँ, इस जीवन में कितना रस है?"

डाक्टर सेन ने सन्तुष्ट होकर मन्द मुस्कान के साथ कहा:—"इसमें इतना रस मिलेगा, जितना जीवन में कभी प्राप्त न हुआ होगा। इसके रसास्वादन में तुम अपने को भूल जाओगी। यही तो नारी जाति का आदि रूप है।"

कनक ने एक दीर्घ निःश्वास के साथ उनके पीछे-पीछे प्रयाण किया।

८

आहतों की संख्या इतनी थी कि अन्दमान के हस्पताल में स्थान नहीं रह गया था। उनमें सभी प्रकार के व्यक्ति थे, कैदी भी थे, और उनके संरक्षक भी थे। परन्तु अधिकतर अधिकारी वर्ग के ही थे। कैदियों के लिए कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। उनका जीवन इतना नगण्य समझा गया था कि जो उपचार से पुनर्जीवित हो सकते थे, उनको यों ही मरने के लिए छोड़ दिया गया था। अधिकारियों की दृष्टि से चिकित्सा की वस्तुओं तथा दवाओं का मूल्य उन अभागों के जीवन से अधिक था। उन पर उसका व्यय भी उन्हें असह्य था। मानव के प्रति मानव कितना हृदय-हीन हो

सकता है; वहाँ पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया था। यह वे भूल गए थे कि संकीर्णता पशुता का प्रथम लक्षण है, क्योंकि अपने स्वार्थ के अतिरिक्त वह किसी दूसरे को अपना भागीदार नहीं बना सकते। वे यह भी भूल गए थे कि प्राणी को पशुता की श्रेणी से उठाकर मानव बनाने वाला केवल स्वार्थ-भाव का त्याग ही है।

परन्तु जब राजनीतिक कैदियों ने चिकित्सा का भार अपने ऊपर वहन करना स्वीकार किया, तो उन्होंने दृढ़ता के साथ भेद-भाव को मिटा देने का संकल्प किया। वे ढूंढ़ ढूंढ़कर भारतीय कैदियों को भी, जिनमें किञ्चित् भी प्राणों का चिह्न था, स्ट्रेचर पर लाकर हस्पताल में स्थान देने लगे। अधिकारियों ने इसका घोर विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि गोरों के साथ काले अपराधी नहीं रखे जा सकते, और न उनके पास औषधियों का इतना संग्रह ही है जो सबके लिए पर्याप्त हो सके। यदि कदाचित् जापानियों का दूसरा आक्रमण हो गया तो फिर बिना औषधि और उपचार के कितनों को विवश होकर मृत्यु के मुख में जाना पड़ेगा। परन्तु जब राजनीतिक कैदियों ने भेद भाव रखकर काम करने से इन्कार कर दिया, और अपनी बारकों की ओर चल दिए, तब डाक्टर सेन ने अधिकारियों को समझाया कि उनके इस कार्य से बहुत-से घायलों की अकाल मृत्यु हो जायगी। इस विषम परिस्थिति ने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक उनको सहमत किया।

कनक उद्विग्न चित्त से रामनाथ को ढूंढ़ती फिरती थी किन्तु रामनाथ का कहीं पता न था। उसके मन में दुश्चिन्ताओं का एक बवंडर उठ रहा था। रामनाथ के मिलने में जितना विलम्ब हो रहा था उतना ही वह व्याकुल हो रही थी। परदेश में स्वदेशीय अपरिचित भी कितने परिचित-से मालूम होने लगते हैं, और परिचित कितने निकट और घनिष्ठ हो जाते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव इसकी चिन्तित मुद्रा के अवलोकन से ही मिलता था। जब से उसको द्वीपान्तर-वास का दण्ड मिला, वह तब से रामनाथ को देखने और उससे मिलने के लिए व्याकुल हो रही थी। इस विचार से उस दूर अपरिचित देश में एक परिचित व्यक्ति है, उसके मन को कुछ शान्ति मिलती थी, उसके एकाकी मन की भावना का नाश होता था। हस्पताल में प्रवेश होते हुए प्रत्येक स्ट्रेचर की ओर आशाओं का पुञ्ज लिये उत्कंठित नयनों से देखती। उसके युगल नेत्रों की विकल व्यग्रता बिखरकर अश्रुओं का रूप धारण करने की चेष्टा करती, परन्तु उसका अभिमान मिश्रित कठोरता उनको नयन-कोषों में रखने के लिए विवश करती। उसका हृदय कमल-पत्र को

भाँति दुर्भावनाओं की बयार से आलोड़ित हो रहा था। उसका मन पुनः-पुनः निराशा की व्यथा को दूर फेंकना चाहता था, परन्तु डोर से बँधी फिरकी की भाँति वह उसकी ओर स्वतः बिना किसी प्रयास के आ जाती थी। उसके हाथ-पैर अवश और निर्जीव-से हो रहे थे। उसका मस्तिष्क अचेत-सा होकर उसकी समग्र क्रिया-शक्ति को मूक और निस्तब्ध बना रहा था। उसके व्याकुल नेत्र सुदूर नीलाकाश की ओर स्वतः उठ गए। गगन में कुछ आकर्षण उसने प्रतीत किया, और निराशाओं का भार उठाए हुए उसके युगल नयन वहीं टँग गए। भविष्य की दुःखद कल्पना अश्रुओं के रूप में साकार होकर उसके दोनों कपोलों पर प्रवाहित होने लगी। कृत्रिमता का बना हुआ बांध टूट गया, उसी के साथ वर्षों की पोषित परुष भावना भी ढह-ढह कर बहने लगी, और प्रच्छन्न कोमलता निखर निखर कर देदीप्यमान हो उठी। उसका निर्बल मन आकुल होकर पुकार उठाः—"भगवान् रामनाथ की रक्षा करो। अनजान में निकली हुई प्रार्थना के इस लघुतम रुदन ने उसको भी एक बार चौंका दिया। उसके प्रबल विश्वास की धारा जो अभी तक केवल 'अहम्' भाव में ही आवेष्टित थी, उसको चूर्ण-विचूर्ण करके बड़े वेग से 'सः' से साक्षात् करने के लिए व्यग्र आकुलता के साथ बहने लगी। उसके मुख से पुनः अपने-आप निकल पड़ाः—"भगवान्, रामनाथ की रक्षा करो।"

मन जब निर्बल होकर अपने ऊपर से विश्वास खो बैठता है, अथवा उसकी शक्ति से परवर्त्ती अन्य शक्तियां अपने महानतम प्रबल रूप में होकर उसकी अधिकार-परिधि से बाहर हो जाती हैं, तब मन को शक्ति संचय करने के लिए अपने से अधिक शक्तिमान का सहारा लेना पड़ता है। जिस शक्तिमान से सहारे की याचना की जाती है वह भगवान् है, और याचना का नाम प्रार्थना है। आपत्तियां ही मन को स्वतः उसका आभास कराती हैं। उसकी ओर आकर्षित करती हैं, और उसकी सत्ता स्थापित करती हैं। इसीलिए मन को धारण करने वाला मानव-मात्र भगवान् पर विश्वास करता है, और प्रार्थना की प्रेरणा से उसकी शक्तियों को ग्रहण करता है। उस समय उसे प्रमाणित हो जाता है कि वह उस महान् शक्ति का केवल एक लघु रूप है। लघु तो केवल महानतम से ही शक्ति-संचय कर सकता है, अतएव मन को अपने समस्त विकारों को त्यागना पड़ता है, और उसी के आश्रय तथा छत्र-छायामें पहुँच कर वह निश्चिन्त और प्रसन्न होता है। अवस्था का नाम सत्, चित आनन्द है, और मन की वह परम गति है, तथा विकारों से रहित हो जाने का नाम ही मुक्ति है।

वैद्युतिक प्रवाह के एक झटके की भाँति कनक को अनुभव हुआ कि कोई अन्य शक्तिमान ही रामनाथ की रक्षा कर सकता है। उसके मन से उसी की सहायता की पुकार निकल पड़ी, जिसकी ध्वनि उसके मन में पुनः-पुनः गूँजने लगी। उसके मन की रक्षाकारक प्रेरणा-शक्ति, उस महान् शक्ति का अवलम्ब पाकर रामनाथ की रक्षा करने के लिए अग्रसर हुई। उसी शक्ति ने राजनीतिक कैदियों को धूल से वेष्टित रामनाथ के अर्धमृत शरीर के समीप ले जाकर खड़ा कर दिया। उन्होंने उसे उलट-पलट कर देखना आरंभ किया। उसके सिर से इतना रक्त बहा था कि उसके समीप की धूल उससे सनकर काली पड़ गई थी। उसकी नाड़ी की परीक्षा करना आरंभ किया। नाड़ी-गति बन्द हो चुकी थी। उसने अपने अन्य साथियों से कहा कि इसमें अब कोई जीवन का कोई लक्षण प्रतीत नहीं होता है किन्तु कनक की प्रार्थना-शक्ति ने दूसरे के मन में हृदय-परीक्षा करने की बात सुनाई। वह उसकी हृदय-परीक्षा करने लगा। हृदय की गति को वह कान लगाकर सुनने का प्रयत्न करने लगा। पहले उसको विश्वास न हुआ कि वह गतिशील है, किन्तु दूसरे क्षण उसे अनुभव हुआ कि उसकी गति बहुत मन्द है। उसने उसको निश्चय करने के लिए दूसरे साथियों को आमन्त्रित किया। उनमें से कुछ ने उसकी धड़कन को सुनने में अपने को असमर्थ बताया, और कुछ ने स्पष्ट सुनने का अनुमान किया। विश्वास और अविश्वास के झूले में रामनाथ का जीवन झूलने लगा। अन्त में उस शक्ति ने उन्हें इस परिणाम पर पहुँचने के लिए विवश किया कि वे उसको उठाकर अस्पताल ले जाते, और उसकी परीक्षा डाक्टर से कराते। दूसरे क्षण ही रामनाथ का शव उठाकर स्ट्रेचर में डाल दिया गया, और वह शक्ति उसको कनक के समीप जाने का मार्ग उन्हें प्रदर्शित करने लगी।"

अन्य स्ट्रेचरों की भाँति कनक उस स्ट्रेचर के पास भी पहुँची। उसने अत्यन्त विकलता के साथ पूछा:—"अब किसको लाए हो, गोरा है या काला।"

लाने वालों में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया:—"है तो भारतीय ही परन्तु शायद वह मर गया है, यदि मरा नहीं है, तो मृतप्रायः है। यह व्यक्ति भारतीय था इसलिए ले आए हैं, अगर कहीं गोरा होता तो वहीं छोड़ आते।"

कनक की दृष्टि धूलि-धूसरित शव पर पड़ी। उसके मन में किसी ने कहा:—"यही रामनाथ है" उसके नेत्रों के सामने रामनाथ का अतीत चित्र सजग हो गया। किन्तु उसमें और इसमें अन्तर था। वह बैठ गई, और मस्तक के समीप की धूल हटाकर उस चिह्न को खोजने लगी, जहाँ पर फोड़े

का ग्रण था। धूल साफ हो जाने पर वह स्पष्ट दिखाई देने लगा। उसके हृदय की गति तीव्र हो गई। उस के नेत्र उसको पहचानने का प्रयत्न करने लगे। उसके मन ने पुनः कहा:—"यही रामनाथ हैं।"

इतने दिनों में रामनाथ में बड़ा अन्तर आ गया था, और धूल तथा रक्त से लथ-पथ होने के कारण, उसका पहचानना कठिन हो रहा था। परन्तु कनक को विश्वास हो गया कि यह रामनाथ ही है। उसके मुख की विह्वलता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। उसने दौड़कर डाक्टर सेन के पास जा कर अत्यन्त व्यग्रता के साथ कहा:—"डाक्टर साहब, इन सबको थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए। रामनाथ आ गया है। वह बुरी तरह से घायल हुआ है। पहले उसको चलकर देख लीजिए। शायद वह......।" इसके आगे वह न बोल सकी। उसके स्वर के आवेग ने कंठ ही मरोड़ दिया। उसके नेत्र धुचधुचाए हुए थे, रोने के लिए आतुर हो रहे थे।

डाक्टर सेन ने एक घायल को पट्टी बांधते हुए कहा:—"रामनाथ मिल गया यह बड़ा अच्छा हुआ। परन्तु तुम इतना व्याकुल न हो। वह शीघ्र ही अच्छा हो जायगा। मैं अभी चलता हूँ, आप केवल एक मिनट ठहर जाइए।"

कनक ने डाक्टर के समीप बैठते हुए कहा:—"लाइए, दीजिए, यह मैं बाँध दूँगी, आप कृपा करके पहले रामनाथ को देख लेवें।"

डाक्टर सेन ने कहा:—"तुम क्या ठीक से पट्टी बाँध सकोगी?"

कनक ने पट्टी को छीनते हुए कहा—"आप ही ने तो आज प्रातःकाल कहा था कि नारी जाति को सेवा का कार्य सिखाना नहीं पड़ता, वह स्वभाव से ही जानती है। पट्टी जिस प्रकार आप बांध रहे हैं, उसी प्रकार बांधूंगी। रामनाथ की हालत बड़ी नाजुक है, एक क्षण की भी देर उसके लिए घातक हो सकती है।"

डाक्टर सेन इसी बीच में पट्टी बांध चुके थे। गांठ लगाते हुए कहा:—"चलो, पहले उसी को देखता हूँ। जब आप उसके लिए इतनी व्यग्र हैं, तब वह मरेगा नहीं। आपके लिए मैं उसे यमराज के घर से भी घसीट लाऊँगा।"

डाक्टर सेन ने आकर रामनाथ की परीक्षा करनी आरम्भ की। कनक व्यग्रता की मूर्त्ति बनी हुई उनके समीप खड़ी हुई थी। उसके मुख का रंग क्षण-क्षण में परिवर्त्तित हो रहा था। उसका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। वह पूर्ण मनोयोग से प्रार्थना कर रही थी कि रामनाथ के जीवन की रक्षा हो।

डाक्टर सेन ने हृदय-परीक्षा करते हुए कहा:—"जीवन अभी तक अवशेष है, पुतलियों में अब भी चेतनता है, खून बहुत निकल गया है, जिससे उसकी दशा इतनी चिन्ताजनक हो गई है। आघात तो सांघातिक नहीं। कपाल की हड्डी टूटी नहीं है, इससे जीवन की आशा की जा सकती है। उसको यदि रक्त मिल जाय तो वह बहुत शीघ्र अच्छा हो जायगा।"

कनक ने बाल-सुलभ प्रसन्नता से कहा:—"डाक्टर साहब, सचमुच वह अभी जीवित है। रक्त मिलने से अच्छा हो जायगा। आप मेरा रक्त जितना चाहें उतना ले लें। मैं देने को तैयार हूँ, किन्तु रामनाथ के प्राण बचा लीजिए। सत्य ही भगवान् है, और वह बड़ा दयालु है डाक्टर साहब।"

डाक्टर सेन ने रामनाथ को एक चारपाई पर लिटाते हुए कहा:—"जब आपने भगवान् पर विश्वास किया है तब वह आपके साथ विश्वास-घात नहीं करेगा। थोड़े ही दिनों में यह अच्छा हो जायगा। आपका रक्त यदि इसके अनुकूल हुआ तो लूँगा, नहीं तो कोई अन्य प्रबन्ध करूँगा।"

कनक ने उत्सुकता के साथ कहा:—"आप मेरा रक्त आज, अभी-अभी ले लीजिए। यदि थोड़ा-सा अन्तर हो तो भी लीजिए।"

डाक्टर सेन ने रामनाथ के क्षत स्थान को रुई से धोते हुए कहा:—"आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिए। आप केवल भगवान् से प्रार्थना कीजिये।"

कनक के नेत्र पुनः गगन की नीलिमा की ओर जाकर अटक गए। उसका आन्तरिक मन पुकार उठा—"भगवान् रामनाथ की रक्षा करो। उर्मिला का सुहाग अचल करो।" उसके नेत्रों से अश्रुओं की धार बहने लगी। उसकी व्यथा की पुकार को भगवान् ने सुना या नहीं, कौन जाने?"

६

मजदूरों के गोलीकाण्ड में घायल हुए व्यक्तियों में देवकीनन्दन भी थे; और वे उन ६ व्यक्तियों में थे जिनको पुलिस और सैनिकों ने जल-समाधि न देकर हस्पताल में दाखिल किया था। उनकी चोट कोई सांघातिक नहीं थी, थोड़े ही दिनों के उपचार से वे स्वस्थ होकर चलने-फिरने योग्य हो गए। किन्तु इसी बीच में उर्मिला को द्वीपान्तरवास का दण्ड मिल चुका था, और उसे मिस्टर निक्सन अपने साथ लेकर अन्दमान की राजधानी पोर्ट ब्लेयर की ओर चले गए थे। यह उनकी घटना रुग्णावस्था के समय घटित हो चुकी थी, और जब जब उन्होंने उर्मिला के संबंध में जानना चाहा, उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया गया, क्योंकि मिस्टर निक्सन ने यह प्रबन्ध पहले ही कर लिया था। यह बात उन्हें उस दिन विदित हुई जब मिल-

मालिक-संघ के सदस्य पोपटलाल और अब्दुल मजीद उनको देखने के लिए हस्पताल गए।

देवकीनन्दन उनको अकस्मात् अपने समक्ष देखकर हतबुद्धि-से हो गए। वे उनकी ओर धड़कते हुए हृदय से देखने लगे।

अब्दुल मजीद ने उनके समीप आकर कहा:—"तुम तो इस तरह देख रहे हो, जैसे मुझे पहचानते हो नहीं। अरे भाई, मैं अब्दुल मजीद हूँ, तुम्हारा पुराना साथी, और लंगोटिया यार। यह पोपटलाल हैं, राजा मिल के मालिक और हमारे संघ के सभापति।

देवकीनन्दन ने मन में उठते हुए तिरस्कार को दबाते हुए कहा:—"जानता क्यों नहीं भाई, किन्तु हमारा और तुम्हारा मार्ग पृथक्-पृथक् है। तुम मिल-मालिक-संघ में हो, और मैं मजदूर-संघ में।"

अब्दुल मजीद ने हँसते हुए कहा:—"अरे इससे क्या दोस्ती में फरक आता है। भाई तुम अपना काम करो, और मैं अपना। तुम हड़ताल कराओ और मैं हड़ताल होने से रोकूँ। वही अब तक हम लोग करते भी रहे। जब तक हमारी जिन्दगी का रास्ता जुदा था, हम एक दूसरे के नजदीक नहीं आए, लेकिन जब सब झगड़ा खत्म हो गया है और उसकी बुनियाद मिट गई, तब भी हम लोग एक दूसरे के दुश्मन बने रहें यह तो ठीक नहीं है। दुश्मनी पालनी ठीक नहीं, उसको जल्द-से-जल्द खत्म कर देना ही बुद्धिमानी है। और भाई पुराने दिली जज़बात तो भुलाए नहीं जा सकते। मुझे आज सुबह मालूम हुआ कि तुम हस्पताल में पड़े हुए हो, सब काम छोड़कर तुमसे मिलने आया हूँ।"

देवकीनन्दन ने गंभीर भाव से कहा:—"मैं आपकी दोस्ती और आपके दिली जज़बात की कद्र करता हूँ, परन्तु अभी तक तो हमारी आपकी लड़ाई बन्द नहीं हुई है। वह तो उस समय तक चलेगी जब तक मिल-मालिक मजदूरों को अपनी ही भाँति उत्पादक नहीं समझते, और पूँजी के महत्त्व को नगण्य नहीं करते। लड़ाई खत्म नहीं करते। लड़ाई खत्म नहीं हुई, बल्कि तैयारी के साथ आगे लड़ने के लिए कुछ दिनों के लिए बन्द हुई है। यह भी सत्य है कि इस बार तुम लोगों के हाथ में विजय रही है, और वह रहेगी जब तक विदेशी सरकार यहाँ पर स्थापित है। वह पूँजीपतियों की सरकार पूँजीपतियों को मिटने नहीं देगी, क्योंकि उसको बल प्रदान करने वाले आप ही लोग तो हैं। सैकड़ों नहीं, हजारों की गिनती में मजदूर मारे गए, उनके नेता पकड़ कर काले पानी भेज दिये गए, परन्तु इससे क्या आप समझते हैं कि मजदूरों की लड़ाई समाप्त हो गई? यदि ऐसा समझते हैं

तो आपका यह भ्रम है। पृथ्वी अपना बीज कभी नहीं खोती। चाहे जितना नाश हो, पृथ्वी अपने उर में बीज तो छिपा ही लेती है। आप लोग चाहे जितना दमन चक्र चलायें, मजदूरों को चाहे जितना नष्ट करवा डालें, उन्हें फाँसी लटकवा दें, काले पानी भिजवा दें, परन्तु हड़ताल की अग्नि कभी बुझ नहीं सकती। वह तो सदैव जलती ही रहेगी। हाँ यह संभव है कि कुछ दिनों के लिए मन्द भले ही पड़ जाय।"

अब्दुलमजीद ने हँसकर कहा:—"मैं भाई तुमसे बहस करने नहीं आया, और न झगड़ा ही करने आया हूँ। सब कोई अपनी अपनी रोटी के नीचे अंगारे रख कर सेंकते हैं। और भाई तुम भी तो मिल मालिक ही हो, मजदूर तो नहीं हो।"

देवकीनंदन:—"हाँ, जन्म मैंने अवश्य एक मिल-मालिक के यहाँ लिया है, परन्तु मैं स्वयं अपने को एक मजदूर से अधिक नहीं समझता। जरा आप मेरी मिलों में भी हड़ताल करा लें। मेरी मिलों के मजदूर मिल को अपनी चीज समझते हैं। वैसा ही उनको पारिश्रमिक भी मिलता है। मेरा भाग उन्हीं के तुल्य होता है। मैं अपनी पूँजी के कारण उनसे अधिक नहीं लेता। मेरी पूँजी का मुझको ब्याज मिलता है, तब मैं अवशिष्ट भाग की क्यों आशा करूँ। सारा झगड़ा अवशिष्ट भाग के लिए और मजदूर को पूँजी के समान महत्त्वशाली न समझने से उत्पन्न होता है। मजदूर का दर्जा निर्जीव पूँजी से कहीं अधिक है। क्योंकि वह हमारी ही भाँति एक मनुष्य है। मुझमें और उसमें यदि कोई अन्तर है तो केवल पूँजी का है। यह एक केवल आकस्मिक घटना है कि मेरे पास पूँजी है, और उनके पास नहीं है। अपनी पूँजी लगाकर हम उत्पादन करते हैं, और वे अपनी मेहनत की पूँजी लगाकर उसी उत्पादन में योग देते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में हम दोनों बराबर की साझेदारी से उत्पादन कार्य करते हैं जब हम अपनी पूँजी का ब्याज ले लेते हैं, तब लाभ के किसी अतिरिक्त भाग की हम कामना क्यों करें? यदि करते हैं तो हम पूँजीपति होने से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। यह एक स्वयं प्रमाणित बात है कि जब दो साझेदारों में एक अनुचित लाभ उठाना चाहेगा तो साझेदारी चलेगी नहीं टूट जायगी और उससे अनेकानेक झगड़े पैदा होंगे। हम मजदूरों की ग़रीबी से उनकी दरिद्रता से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं, इसलिए इतने झगड़े उठते हैं। शोषण उसी समय तक चल सकता है जब तक शोषित अपने अधिकारों से अनभिज्ञ रहता है, और इसकी अवधि बहुत अल्प है। आप यह कह सकते हैं कि हम मिल खोलकर उनको नौकर रखते हैं, भागीदारी नहीं

करते। यह सत्य है कि आपके और उनके मध्य में कोई मुआहिदा इस प्रकार का लिखा नहीं जाता।

"किन्तु कुछ ऐसे काम हैं, ऐसी बातें हैं, जो लिखित मुआहिदा न होने से भी मानी जाती हैं, उनको वही बल प्राप्त होता है जो लिखित मुआहिदे को होता है। जैसे पिता-पुत्र के सम्बन्ध का मुआहिदा कभी नहीं लिखा गया है, परन्तु कानूनन पिता कुछ कार्य करने के लिए बाध्य है, और उसी प्रकार पुत्र भी। ये प्राकृतिक मुआहिदे हैं, जिन्हें प्रकृति लिखती है, और भगवान् के कानून का बल प्राप्त होता है। वह एक मानव से दूसरे मानव के मध्य पारस्परिक व्यवहार के लिए आदि सनातन काल से लिखा हुआ चला आ रहा है। वह यह है कि मानव-मानव सदा से तुल्य हैं। न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। आदान-प्रदान के नियमों की उत्पत्ति केवल इसलिए हुई थी कि जिसमें पारस्परिक अधिकताओं और न्यूनताओं का आपस में विनमय हो जाया करे। ईश्वर ने मनुष्य को सम्पूर्ण करके नहीं उत्पन्न किया है। यदि उसमें कुछ वस्तुओं की अधिकता है तो कुछ न्यूनताएं भी अवश्य हैं। अधिकता और न्यूनता का प्राकृतिक नियमों के अनुसार विनिमय समतुलन पैदा करेगा। समतुलन अथवा समत्व ही सृष्टि अथवा उत्पादन कार्य को आगे बढ़ाने में समर्थ होता है। समत्व स्थापित करने से सुख की सृष्टि होती है। इसी प्रकार जब हम मजदूरों और मिल-मालिकों में समत्व स्थापित कर लेंगे तब कोई झगड़ा नहीं रहेगा। झगड़ा तो इसी से होता है कि हम मजदूर को उसके परिश्रम के विनिमय में सम भाग नहीं देते हैं। स्वार्थ की भावना को त्याग कर न्यायानुकूल उसका भाग यदि आप स्वयं दे देंगे तो फिर कोई झगड़ा नहीं रह सकता। झगड़ा मजदूरों की ओर से नहीं हमारे दुर्व्यवहार के कारण होता है, हमारी संकीर्णता के द्योतक स्वार्थ की भावनाओं से उत्पन्न होता है।"

अब्दुल मजीद और पोपटलाल बड़े ध्यान से सुन रहे थे।

पोपटलाल ने कहा:—"किन्तु हम उत्पादन की योजना बनाते हैं, हानि भी उठाते हैं, खतरा भी झेलते हैं, क्या इनका कोई महत्त्व नहीं है? जब घाटा होता है तब तो मजदूर उसमें साझा करने नहीं आते। वे अपनी मजदूरी में एक पैसा भी कम करने को तैयार नहीं होते।"

देवकीनंदन ने उत्तर दिया:—"योजना बनाने और खतरा उठाने के विपर्यय में उसके तुल्य भाग देने को कोई अस्वीकार नहीं करेगा, "किन्तु घाटा उठाने का प्रश्न केवल साझेदार से हो सकता है, नौकर से नहीं। जब आप मजदूर को अपने बराबर का साझेदार ठान लेंगे तो वह घाटा भी

सहने को तैयार रहेगा। अभी तो आप उसको नौकर रखते हैं, और आशा करते हैं कि वह अपने वेतन के भाग में कमी करके आपके घाटे को पूरा करे। यह भी आपकी ही ज्यादती है। अभी आप मजदूर को देते ही कितना हैं? यदि उतना ही वेतन आपको दिया जाय तो क्या आपकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी? आप तुरन्त कहेंगे कि हमारी आवश्यकताएँ उससे कहीं अधिक हैं, हमारे जीवन का स्तर उससे विभिन्न है। यही तो आपका अन्याय है, और यह आपके पूर्वज भी बराबर करते आए हैं। आप अथवा आपके पूर्वजों ने अन्य मानवों के भाग को छल, बल, कौशल, आदि उपायों से हथिया लिया, और अपने जीवन का स्तर ऊँचा बना लिया। आज उसी अन्याय की दुहाई देकर उसको वैसा ही बनाए रखना चाहते हैं। मानवों का स्तर बराबर होना चाहिए। विभेद की भावना ही समत्व का नाश कर देती है। जो आपकी आवश्यकताएँ हैं। आपने पाशविक बल के सहारे अपने तथा अपने वर्ग के अन्य साथियों के स्वार्थ की पूर्ति के लिए एक समाज स्थापित की। अपने सुख और भोग के लिए कुछ नियमों को रचा। उसका पालन आप पाशविक शक्ति के द्वारा करवाते हैं। जिनके द्वारा आप अपने सुख और भोग की सृष्टि करते हैं, उन अभागों के लिए आप उनकी सेवाओं के विनिमय में केवल इतना ही देना पर्याप्त समझते हैं, जिसमें वे जीवित रह कर आपकी सतत् सेवा करके आपको सुखी बनाया करें। आप जो शिक्षा उनको देते हैं उसमें अपनी महत्ता सिद्ध करके उनकी लघुता प्रतिपादित करते हैं, और इस प्रकार के प्रचार से वे भी अपने को आपकी सेवा में नष्ट करने से अपना परम सौभाग्य और परमगति मानने लगते हैं। जिस-भगवान् ने अपने सृजन द्वारा उनको आपके समतुल्य होने का अकाट्य प्रमाण दे दिया है, उसी को आप अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए घसीट लाते हैं, और देव-वाणी का रूप देकर उनको नीचाति नीच सेवा करने के लिए उसका आदेश बताते हैं, तथा प्रमाण रूप कहते हैं कि "भगवान् ने तो उनको हमारी सेवा के लिए ही उत्पन्न किया है, यदि हम उनसे सेवा लेते हैं तो इसमें हमारा क्या दोष है? अपनी स्वार्थ पूर्ति का पाप भगवान् के सिर मढ़ कर स्वयं दूध के धोए हुए बने रहते हैं? जब कभी शोषित इस अन्याय के प्रति अपनी विरोधी आवाज उठाते हैं, तब पहले आप अपने कानून से उनका गला घोटते हैं, और आपकी स्थापित सरकार अपने पाशविक बल से उनको नाश करके विरोध का चिह्न तक मिटा देने का प्रयत्न करती है। इससे भी जब विरोधी भावनाएं शांत नहीं होती तब आप भगवान् के नाम का मिथ्या प्रयोग कर उनके सामने कर्म

सिद्धांत की बड़ाई करके उनके मानसिक विप्लव को दबाने की चेष्टा करते हैं। इतने से ही आप शान्त नहीं होते, वरन् स्वर्ग आदि अभौतिक सुखों का लोभ देकर उनके मन को अपना गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं। आप सब कुछ अपने स्वयं तथा निज के वर्ग के लिए चाहते हैं और शोषितों को कुछ नगण्य सा देकर उन्हें सन्तोष करने को कहते हैं। आप स्वयं सन्तोष नहीं करते, न आपके सन्तोष की सीमा ही कहीं निर्धारित है, परन्तु शोषितों को आप अवश्य पढ़ायेंगे—"सन्तोषं परमम् सुखम्"। यह केवल इसलिए जिसमें आपको अधिक क्या, उनका प्राप्य भाग देना न पड़े। आप उनको प्रत्येक रूप-रूपांतर से पंगु बनाए रहते हैं, और उसी प्रकार के प्रयत्न करते हैं, जिसमें वे सदैव निर्बल और अपंग बने रहें। क्यों यही बात है न ?"

अब्दुलमजीद ने सोचते हुए कहा—"हाँ भाई बात तो तुम ठीक ही कहते हो। मैं जब अपने को उनकी जगह पर रख कर सोचता हूँ, तो इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ, कि सरमायादार जिनको आप पूँजीपति कहते हैं शुरू बुनियाद से ही गरीबों का खून चूसते आये हैं, और हमेशा चूसने की ख्वाहिश रखते हैं। बात दरअस्ल यह है, भाई साहब, शेर की दाढ़ में जब एक बार खून लग जाता है तब उसे छोड़ देना नामुमकिन हो जाता है। हम पहले अपने ही मुनाफे की बातें सोचते हैं, और दूसरों की मौत या जिन्दगी से हमें कोई मतलब या सरोकार नहीं रहता।"

देवकीनन्दन—"मजीद, अब तुम ठीक कहते हो। हमारा सारा ही दृष्टिकोण अपने ही स्वार्थ की पूर्ति पर स्थित रहता है इसीलिए यह विषमता है। हम भूल जाते हैं कि हम एक बृहत् समाज के अंग हैं। जिस प्रकार हमको जीने का अधिकार है, उसी प्रकार दूसरों को भी है। हम अपना स्वार्थ साधन करें किन्तु दूसों की हत्या करके नहीं। हम अपनी इमारत बनावें किन्तु दूसरों के मकानों को ढहा करके नहीं। हमको अपने और दूसरों के स्वार्थों में सामञ्जस्य स्थापित करना चाहिए। शरीर तभी पुष्ट कहा जायगा जब उसके सारे अंग पुष्ट होंगे। समाज वही है जहाँ प्रत्येक वर्ग जीवन की समान सुविधा मिले, और समान रूप से उसको उन्नत बनाते रहें। देश वही सम्पन्न कहा जायगा जिसके प्रत्येक निवासी समान रूप से समृद्धशाली हों। यह तभी होगा जब हम में समान सहानुभूति सबके लिए होगी। जिस प्रकार शरीर के किसी अंग में चाहे वह पैर ही क्यों न हो, कोढ़ होने से जिस मनुष्य का वह शरीर है कोढ़ी ही कहा जायगा। देश के नगण्य से नगण्य निवासी यदि भूख की ज्वाला से तड़फते हैं, चीथड़े

पहुंचते हैं, तो उसका दायित्व समग्र देश पर है। देश की उन्नति उसके निवासियों का उन्नति है। किसी देश को आय उसके प्रत्येक निवासी की आय से मापी जाती है। मानव को सामाजिक प्राणी इसी लिए कहा जाता है, क्योंकि उसका एकाकी अस्तित्व केवल मृत्यु की दशा में ही संभव होता है। उसका जीवन केवल समाजिक व्यवहार और उसके सदस्यों के आदान-प्रदान पर अवलम्बित है। अकेला मानव अपंग है, वह कुछ भी करने में अशक्य है। पारस्परिक निर्भरता ही हमारा जीवन है। जब हमें दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर होना है तब उनको भी हमारी भाँति सबल और परिपुष्ट होना चाहिए, नहीं तो क्या वह हमारा भार वहन करने में समर्थ होंगे। उनके पतन में ही हमारा पतन निहित हैं, और उनके उत्थान में हमारा उत्थान। इस सत्य को हमारे पूर्वजों ने जान लिया था। सभी धर्म के प्रवृत्तकों ने पारस्परिक सहयोग की भावना भरने का आजीवन प्रयत्न किया है। उनकी प्रत्येक वाणी में इसकी ध्वनि है। सत्य का रूप सनातन है। समय और काल के विनाशकारी प्रभाव से वह मुक्त है। हमको वह प्रयत्न करना चाहिए जिसमें हमारा उत्थान हो, और वह तभी संभव है जब हम दूसरों के सुख-दुख की अनुभूति स्वयं से करने लगेंगे। स्तर की सच्ची उच्चता तो विचारों, उद्देश्यों और भावनाओं की उच्चता है। केवल आर्थिक उच्चता आत्म प्रवंचना है। वह हेय है, वह त्याज्य है। सामान्य रूप से अन्याय उच्चताओं के न होने से वह अभिशापित सी रहती है। अर्थ संग्रह केवल वितरक के लिए होना चाहिए। इस लिए हमारे पूर्वजों ने दान और खैरात को सर्वोपरि उच्चता प्रदान की है। दान और खैरात, त्याग की नींव पर अवलम्बित है। त्याग है, स्वार्थ का त्याग। कुटुम्ब की परिधि बढ़ा कर वसुधा की परिधि से मिला देना चाहिए। जब दोनों एक हो जायेंगे तब उन में विभेद करने की गुंजायश नहीं रहेगी। मजीद, जरा सोचो तो, अपने से थोड़ा ऊपर उठो; और फिर समाज का अवलोकन करो, तो तुम्हें दिखाई देगा कि कहीं अग्नि की लपटें उठ रही हैं, कहीं प्रसन्नता की किलकारियां उठ रही हैं, कहीं त्राहि-त्राहि है, तो कहीं हँसी के फव्वारे छूट रहे हैं। यह सब केवल आर्थिक विषमता के कारण उत्पन्न हो रहा है। भगवान् ने हमको अवसर दिया है, शक्ति दी है, साधन दिए हैं कि हम इस विषमता को अपने प्रयास से दूर करें। मिल-मालिक संघ की स्थापना आपने की है अपने स्वार्थी हितों की रक्षा के लिए। मजदूरों का खून चूसने के लिए। क्या उससे आप उनका हित साधन नहीं कर सकते। अपना हित साधन कीजिए, उनका भी हित साधन कीजिए। संघ की स्थापना इसलिए होती है, जिससे सबका

समान रूप से कल्याण हो, न कि इसलिए कि दूसरों को हलाल कर हम अपना स्वार्थ हित करें। पोपटलाल ने अब्दुलमजीद से कहा—"ऐसा करने से वास्तव में हमारी सारी समस्याएं, यातनायें ही मिट जायंगी। हम रिश्वतों में लाखों रुपये बरबाद कर देते हैं, अधिकारियों की डाली लगाने, दावतें देने में दिल खोल कर खर्च करते हैं, परन्तु मजदूरों को उसकी मज़दूरी में एक पैसा बढ़ाना उचित नहीं समझते। जितना रुपया हमने निक्सन को दिया है, शराब आदि नशों के प्रचार आदि में व्यय किया है, उसको यदि हम मजदूरों में वितरण करते, उनकी उन्नति के साधनों पर व्यय करते तो हमारी आर्थिक स्थिति कहीं दृढ़ होती, और उनका सहयोग प्राप्त करके उत्पादन बढ़ा कर वह क्षतिपूर्ण कर लेते। भाई देवकीनन्दन तुम हमारे पथ-प्रदर्शक बनो। मिल-मालिक संघ का संचालन का भरा ग्रहण करो, और हमें उस मार्ग की ओर ले चलो, जिसमें सबका हित साधन हो। मैं तो आज से तुम्हारा नेतृत्व स्वीकार करता हूँ।

मजीद ने भी कहा—"और मैं भी देवकी भाई, तुम्हारा मुरीद हुआ। बचपन ही से तुम आला दिमाग और आला इन्सान रहे हो। तुम्हारे जैसे विचार वालों की इस देश को जरूरत है। भाई तुम आगे बढ़ो, हम तुम्हारे क़दम ब क़दम चलेंगे। मुल्क में अब भी जान बाकी है, रोशनी धीमी जरूर पड़ गई है, क्योंकि दीपक में तेल नहीं रह गया है। अपने त्याग और बलिदान से हम उसे भरेंगे। वह जरूर रोशन होगा। भाई क्या ही अच्छा होता यदि यह रास्ता हमें पहले बताया होता!"

देवकीनन्दन ने प्रसन्न कण्ठ से कहा:—"भाई इसका सच्चा ज्ञान तो मुझको अपनी बहन कनक से प्राप्त हुआ है। आप सब लोग भली भांति जानते हैं कि चन्द्रनाथ ने उसके बाप की दौलत पर निक्सन को मिला कर कब्जा कर लिया, मगर उसने उफ तक मुँह से नहीं निकाला। सारी दौलत पर लात मार कर निकल आई। जब मैंने उसको अपने हिस्से से देना चाहा तो उसने एक पैसा लेना अस्वीकार कर दिया। मैंने फिर भी उसको देना चाहा तो उसने वह रुपया मजदूर संघ के कोश में देने को कहा, किन्तु वह अपनी ही कमाई पर निर्भर रही। स्वार्थ त्याग का मन्त्र मैंने उससे सीखा है, प्रेरणा उससे मिली है। किन्तु आज वह हमारे बीच में नहीं है।"

अब्दुलमजीद ने उतरे हुए मुख से कहा:—"भाई उसका पाप हमारे संघ पर ही है। हमीं लोगों ने कई लाख रुपये मिस्टर निक्सन को घूस देकर उसको काले पानी भिजवाया है। भाई इतना ही नहीं हमारी गर्दनों पर हजारों मजदूरों के मारे जाने का अजाब-पाप भी मढ़ा हुआ है। हमारे का़र-

नामे इतने काले हैं, जिससे शैतान को भी हैरत होगी। हमने मजदूरों को तबाह करने के लिए उन्हें नशे का आदी बनाया है। उनको और उनके बाल-बच्चों को बरबाद कर दिया है। उफ! आज हमको ताज्जुब होता है कि हम लोगों ने ऐसा क्यों किया।"

देवकीनन्दन—"पैसा पैदा करने के लिए; किन्तु आपको इससे पैसा नहीं मिला, बल्कि उनका नाश ही हुआ। नाशकारी योजनायें केवल नाश ही करती हैं, पहले दूसरों को, पीछे उनको जो उनको बनाते हैं।"

मजीद ने देवकीनन्दन का हाथ पकड़ते हुए कहा—"भाई, हमको बचाओ, सही रास्ते पर हमको ले चलो। पाक दामन कनक को जिसको मैं अपनी बच्ची समझता था, मरने के लिए काले पानी भिजवा दिया है। भाई मुझे बचाओ। पोपटलाल ने भी कहा:—"अब हमारे संघ का संचालन भार लेकर हमारे पापों का प्रायश्चित कराओ। हमारी रक्षा करो।"

उन दोनों के आँखों में आँसू भरे हुए थे, प्रायश्चित के संकल्प में अर्घ प्रदान कर रहे थे। देवकीनन्दन का भी जी भर आया। उन्होंने कहा:— "आइए हम सब मिलकर इस कार्य को आरम्भ करें। हमारी आवाज यद्यपि क्षीण है तथापि उसमें बल है, भगवान् की स्थापित समता का सन्देश है। यही सच्चा मानव-धर्म है। मैं आपसे पूर्ण सहयोग करने को तैयार हूँ।"

इसी समय कमरे में सेठ नेमीचंद ने प्रवेश किया और कहा:— "आप लोगों को ढूँढता हुआ यहां आया हूँ।" अब्दुलमजीद ने कहा:— "आइए सेठ जी भी हमको ढूँढते हुए आगए। सिर्फ लाला कंचनलाल की कसर है।"

सेठ नेमीचंद ने कहा :—"कंचनलाल इस योग्य नहीं है कि उससे सम्बन्ध रक्खा जावे।"

अब्दुलमजीद ने हँसकर कहा:—"आपकी तो उसके साथ पुरानी दुश्मनी है। अब तो दरगुजर कीजिए। हम लोग जिन्दगी गुजारने का एक नया तरीका अख्तियार करने जा रहे हैं, जिसमें पुरानी दुश्मनी भूल जानी होगी।"

सेठ नेमीचंद ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा:—"मैं पुरानी दुश्मनी की बात नहीं कहता। उनके पूर्व पुरुषों ने तो केवल अपना गिरों रक्खा हुआ लोटा न छुड़ा सके थे, और हमको ब्याज न दे सके। वह तो कोई इतनी निन्दनीय बात नहीं थी, परन्तु उसकी नई करतूत ने तो उसे विश्वास-घातक और चोर भी सिद्ध कर दिया है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा

कि उसने उस रकम से, जो निक्सन को देने के लिए हमारे संघ ने दी थी अपने लिए काफी हिस्सा निकाल लिया है। वह सब बेचारे निक्सन को नहीं मिली। प्रमाण-स्वरूप यह चन्द्रनाथ का पत्र पढ़िए जिसको उसने मदरास से लिखा है।"

पोपटलाल पत्र लेकर पढ़ने लगे। उसमें लिखा था :—

प्रिय नेमीचंद जी; मदरास

तारीख ११......

आपने चलते समय कहा था कि मैं कुछ बातें पूँछ कर लिखूँ। आपका अनुमान सत्य निकला। उनको उतनी रकम नहीं दी गई जितनी आपने बताई थी। मैंने अच्छी तरह जांच करली है। उन्होंने मुझ से कोई बात नहीं छिपाई। मिल-मालिक संघ के अध्यक्ष के रूप में मैं आपको अधिकार देता हूँ कि लाला कंचनलाल से वह रकम वसूल कर संघ के खाते में जमा करें। लाला कंचनलाल का आप लोग बहिष्कार कर देवें। दस लाख, जो वह अपने खाते से देना बतलाता है वह भी झूठ है। यह तो सौभाग्य की बात थी कि उस सज्जन ने उक्त रकम को उससे कम लेना स्वीकार नहीं किया, जितना कि संघ के खाता में खर्च लिखी गई है। यह उसकी सरासर बेइमानी है।

शेष सब कुशल है। हम लोग कल अन्दमान के लिए प्रस्थान कर रहे हैं

आपका—

चन्द्रनाथ।

नेमीचंद ने कहा:—"कहिए मेरा अनुमान सत्य निकला!

पोपटलाल ने क्रोधित स्वर में कहा:—"मैं अवश्य सब रकम वसूल कर लूँगा। सत्य ही वह हम लोगों की सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं है। इसका बहिष्कार करना ही उचित है।"

अब्दुलमजीद ने दाँतों तले उँगली दबाते हुए कहा—"आदमी को पहचानना मुश्किल है।"

अच्छा सुनिए, चन्द्रनाथ अब चला गया है, और उसके जाने के साथ हमने भी अपने को पलट दिया है। वह भी ही काइयाँ और मक्कार फरेबी और जाल-साज है। वह इन्सान के जामें में शैतान है। उसने हम लोगों को बड़े आज़ाब में फाँस दिया है। अब हम लोगों ने यह तय किया है कि चन्द्रनाथ की जगह पर देवकीनंदन को अपना रहनुमा बनाये अत मज़दूरों से लड़ाई बंद करने की और भलाई के रास्ते उनका सहयोग प्राप्त

करें। हमें अब अपनी काया पलट करनी है। पुरानी केंचुल उतार कर फेंक देना है। बोलिए हम लोगों के साथ मिलकर चलना आपको मंजूर है।"

नेमीचंद ने कहा:—"मैं भी आज कई दिनों से सोच रहा था कि संघ से त्याग-पत्र दे दूंगा, क्योंकि उस दमन नीति से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। यदि आप पुराना रास्ता छोड़कर सहयोग का रास्ता अपनाते हैं तब तो छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। देवकीनंदन जैसे सत्पुरुषों के सहयोग से अवश्य से हमारा संघ उन्नति करेगा।"

देवकीनंदन ने कहा:—"यह आप की कृपा है। मनुष्य मात्र की जिसमें उन्नति हो वही मानव-धर्म, सच्चा-धर्म है।

नेमीचन्द ने दृढ़ स्वर में कहा:—"मैं उसमें पूर्ण सहयोग का वचन देता हूँ।

अब्दुलमजीद ने आगे बढ़कर कहा:—"फर्ज और मैं भी खुदा को हाजिर नाजिर समझ का सही होश हवास से इकरार करता हूँ कि आज से मेरा मजहबी इन्सान की खिदमत करना, और इन्सान को इन्सान समझना होगा।

देवकीनन्दन ने सन्तुष्ट होकर कहा:—"भगवान् आप लोगों का प्रयास अवश्य ही सफल करेंगे क्योंकि इन विचारों की नीव में सत्य और अहिंसा है पर स्थिर है। मानव-धर्म की प्रतिष्ठा तभी सम्भव है जब मनुष्य हिंसा, अथवा स्वार्थ की भावना त्याग देगा। स्वर्था-रहित होना ही अहिंसक होना है।

समग्र संसार के प्राणियों, के साथ समन्वय स्थापित करना ही सत्य है। अतएव हमारी विजय अवश्य होगी। भगवान् की शक्तियाँ हमको निरन्तर आगे बढ़ाती रहेगी। क्योंकि हमारा उद्देश्य सत् है, और हमारा ध्येय अहिंसा है। यही मानव-धर्म अन्त में विजय होकर समग्र संसार में अपना प्रभुत्व स्थापित करेगा, और उस समय राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कलह द्वेश का अन्त होगा।"

पोपटलालने आगे आकर कहा:—"हम सत्य और अहिंसा की जय-जय कार के साथ उसे आह्वान करके उससे बल प्राप्त करते हैं।

उनकी जय-जय कार ने, यद्यपि वह क्षीण थी, तथापि दृढ़ थी, दिग दिगन्त में व्याप्त होकर शोषितों के मुरझाए हुए निराश हृदय के नव-आशा, नव-उत्साह, नव-प्रेरणा का सन्देश देने लगे।

उस महायज्ञ में देवकीनंदन के युगल नयनों के अश्रु विन्दु कनक की अनुपस्थिति को पूर्ण कर रहे थे।

१०

सिधौली की जनता ने पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों को सहन तो कर लिया, किन्तु उसकी प्रतिक्रिया ने साहबदीन के प्रति विद्वेष भावना को उत्पन्न कर दिया। प्रत्येक नर-नारी ने साहबदीन को कोसना आरम्भ कर दिया। वह विद्वेषाग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। उसके छोटे से छोटे अपराध जिन्हें लोग भूल गए थे, आलोचना, प्रत्यालोचना से पुनर्जीवित किए जाने लगे, और उन सब के लिए उसको दण्ड देने का निश्चय उन्होंने किया। श्रीराम को साहबदीन से द्वेष बहुत दिनों से था, उसने यह समय उपयुक्त पाकर प्रतिशोध ले लेना सुगम समझा, और वह उसके प्रति बढ़ते हुए विरोध का नेतृत्व करने लगा।

उसने घर-घर फिर कर साहबदीन के विरुद्ध प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया, और शाम को अपने घर आने का निमंत्रण दिया, जहाँ वे सब सम्मिलित होकर साहबदीन को दण्ड देने के विषय में विचार तथा निश्चय करेंगे। सबने स्वीकार कर लिया, और संध्या को उसके घर में सभा होनी निश्चित हुई।

सब के एकत्रित हो जाने पर श्रीराम कहने लगा:—"भाइयों आज हम एक बड़े गंभीर प्रश्न पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए हैं। आप लोगों को मालूम है कि पुलिस ने किस प्रकार हमारे साथ अत्याचार किया है, हमको मारा है, सताया है, और हम से मनमाना रुपया वसूल किया है। हम लोगों को इस गाँव में रहते पीढ़ियाँ बीत गई, परन्तु ऐसा अवसर कभी नहीं आया था। पुलिस पहले भी कई बार आई है, परन्तु उसने इतना अत्याचार कभी नहीं किया। यह मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि हमारी ऐसी दुर्दशा करने के लिए सेठ साहबदीन ने पुलिस को पांच हजार रुपए घूस में दिए हैं। उन्हीं की प्रेरणा से पुलिस ने हम सब को दण्डित किया है। साहबदीन, गाँव के सेठ हैं, पूँजीवान हैं, वे गाँव में अपना प्रभुत्व चाहते हैं, इसीलिए कोशिश करके वे मुखिया बने, और अब हमको अपने वश में करने के लिए यह दमन चक्र उन्होंने पुलिस के द्वारा चलवाया है। वे चाहते हैं कि न्याय और सत्य का नाम मिट जाय, उनकी आज्ञा ईश्वराज्ञा की भाँति प्रचारित हो। आप ठाकुर बलवन्तसिंह को खूब अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने केवल साहबदीन की स्त्री को अपने घर में आश्रय दिया, और साहबदीन को उसे मारने नहीं दिया, यही सारी रंजिस की जड़ है। बलवन्तसिंह के विरुद्ध जो-जो अवश्य बातें उसने उड़ाई, उनसे भी आप परिचित हैं। हम लोगों ने उनके आपसी झगड़े में बोलना उचित

नहीं समझा, और तटस्थ रहे परन्तु यह साहबदीन की दृष्टि में महान् अपराध था। उनकी इच्छा थी कि गाँव भर बलवन्तसिंह के विरुद्ध उनका साथ देवे, परन्तु आप लोगों ने यह स्वीकार नहीं किया, और जब उन्होंने उस पर चोरी का झूठा अपराध लगाया, तो भी आपने साहबदीन का साथ नहीं दिया। अतएव रुष्ट होकर वे पुलिस को पांच हजार रुपए देकर ले आए, और गाँव भर को दण्डित किया। अब विचारिए कि हमको क्या करना चाहिए, क्योंकि हम लोग एक व्यक्ति का अन्याय पूर्ण आचरण जो वह अपनी पूँजी के बल से करता है, सहन करने के लिए तैयार नहीं है।"

श्रीराम के बैठ जाने के पश्चात्-कांग्रेसी शिवचन्द्र ने कहना आरम्भ किया:—"भाइयो, पुलिस के अत्याचार तो उत्तरोत्तर बढ़ते ही जायंगे यदि हम लोग उनका सामना करने के लिए अपने को संगठित नहीं करेंगे। अतएव पहले हमको संगठित होना आवश्यक है। मेरी प्रार्थना है कि आप जो भी दण्ड की व्यवस्था करें वह तभी पूर्ण होगी जब आप में एकमत होगा।

एक दूसरे नवयुवक ने कहा:—"मेरी तो राय है कि साहबदीन के हाथ पैर तोड़ दिए जायं। न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी।

शिवचन्द्र ने कहा—"नहीं मैं इसका विरोध करता हूँ। हमारी अहिंसा नीति के विरुद्ध यह बात होगी, और हमको फिर पुलिस के दमन-चक्र का सामना करना पड़ेगा। मेरे विचार से उसका सामाजिक बहिष्कार करना उचित दण्ड होगा। उससे प्रत्येक गाँव निवासी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दे। उससे बोलचाल, लेनदेन सभी बन्द कर दिया जाय। दूसरा कार्य हमको यह करना चाहिए कि पुलिस के बड़े अधिकारियों के पास यहाँ का सब हाल लिखकर भेजना चाहिए। समाचार-पत्रों में इस घटना का समाचार देना चाहिए। बलवन्तसिंह को भी छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

श्रीराम ने कहा:—"बलवन्तसिंह को छुड़ाना तो हमारे बस की बात नहीं है।"

शिवचन्द्र ने कहा:—"है क्यों नहीं। जिला अधिकारी के पास हमको चलकर सब घटना का अद्योपान्त वर्णन करना चाहिए। अधिकारी अवश्य ही इसकी छान-बीन कर पाएंगे। इन बातों के अतिरिक्त हम सबको कांग्रेस के सिद्धान्तों पर चलना चाहिए।"

नवयुवक ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा:—"इनको तो हमेशा कांग्रेस ही

सूझती है। जब देखो तब कांग्रेस के सिद्धान्तों के पालन करने का उपदेश देंगे। यह नहीं कहते कि बलवन्त चाचा के दो निकम्मे लड़के—सन्तू और महावीर को डरा धमका कर खेती के धंधे में लगाना चाहिए। उसकी खेती बिगड़ रही है उसका प्रबंध करना तो हम सबको आवश्यक है।"

शिवचन्द्र ने चिढ़कर कहा:—"मैं कब इसको मना करता हूँ। वही तो कहने जा रहा था कि इस गाँव में मद्य का व्यवहार निषिद्ध कर देना चाहिए। मद्य ही उनको बिगाड़ रही है, और उनको मद्य पान छोड़ने के लिए विवश करना ही हमारा धर्म है।"

दूसरे गाँव निवासियों ने इसका अनुमोदन किया।

शिवचन्द्र फिर कहने लगे—"मद्यपान से हमारी कितनी हानि होती है, इसका ज्ञान तो आप लोगों को है ही। हम सबको यहाँ से ठेका देने उठा का प्रयत्न करना चाहिए, और अधिकारियों को इसके विषय में निवेदन करना चाहिए। मद्य के ठेके पर हमको धरना बैठा देना चाहिए, और यदि कोई गाँव वासी मद्यपान करे तो उसका भी सामाजिक बहिष्कार कर देना चाहिए। सामाजिक बहिष्कार एक अमोघ अस्त्र है और वह उनको सही रास्ते पर लाने के लिए सहायक होगा। किन्तु ये बातें तभी पूर्ण हो सकेंगी, जब आप में संगठन होगा। संगठन महाशक्ति है।"

सब लोगों ने संगठन पर जोर दिया, और सर्व-सम्मति से साहबदीन, सन्तू और महावीर का सामाजिक बहिष्कार करने का प्रस्ताव पास हो गया। सभा विसर्जित हुई, और पुलिस अत्याचारों के विरुद्ध अधिकारियों को लिखना निश्चित हुआ।

दूसरे दिन साहबदीन को यह समाचार मालूम हुआ कि गाँव वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया है। वह सीधा पुलिस थाने की ओर चल दिया, क्योंकि वही उसका आजकल आश्रय हो रहा था।

हनुमासिंह ने सब हाल सुनकर कहा—"सेठजी, हम लोग इसमें आपकी कैसे सहायता कर सकते हैं। हमारे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिससे हम गाँव वालों को बाध्य कर सके कि वे आपसे अपना सम्बन्ध बनाए रक्खे। तुम्हारे झूठे मुकदमे को लेकर ही हम लोग बड़ी कठिनाई में पड़ गए हैं। बलवंतसिंह के विरुद्ध एक भी गवाह नहीं मिलता, और उसको इतने दिनों तक हवालात में रखना हमारे विरुद्ध जाता है। आपकी इतनी खातिर कर दी यही बहुत समझिए। आपके कहने से सब गाँव को दण्डित कर दिया, यही कौन कम हुआ। आप चाहते हैं कि आपके घरेलू झगड़ों को लेकर पुलिस सब गाँव से लड़े। यह नहीं हो सकता। हमको भी अपने

हाथ-पैर बचा कर काम करना पड़ता है।"

साहबदीन ने दीनता भरे स्वर में कहाः—"किन्तु यदि आप इस समय हमारी रक्षा नहीं करेंगे तो गाँव में रहना असंभव है। आपकी खातिर तो मैंने सहायता पाने के लिए ही की थी।"

हनुमानसिंह ने रूक्ष स्वर में कहाः—"आपको झूठी रिपोर्ट देने के जुर्म में अभी तक हवालात में नहीं रक्खा, यही कौन कम सहायता है। बलवन्तसिंह के खिलाफ तुमने चोरी की झूठी रिपोर्ट की है, यह जुर्म तुमको छः महीने के लिए जेल भिजवा देगा। हमारे पास सबूत बहुत काफी है।"

साहबदीन के मुँह से निकल गया—"पांच हजार रुपया भी लिया, और अब चालान भी कीजिएगा!"

हनुमानसिंह ने भरपूर तमाचा साहबदीन के गाल पर मारते हुए कहाः—हरामजादा, झूठी तोहमत लगाता है। कहता है रुपये दिए हैं, पांच हजार रुपये दिए हैं। जिन्दगी में कभी पांच हजार रुपए देखे भी थे! कासिमअली, चलो बांधो इस शैतान के बच्चे को इसने पुलिस में झूठी रिपोर्ट की है।"

कासिमअली ने तुरन्त साहबदीन के हाथ पैर बांध दिए। साहबदीन ने बड़ी दीनता से देखते हुए कहाः—"भाई मुझे छोड़ दो। मैं किसी से अब रुपयों के सम्बन्ध में नहीं कहूँगा। मुझसे अपराध हुआ, मुझे माफ करो।"

हनुमानसिंह ने चिल्लाकर कहाः—"फिर वही बात, रुपये कब दिए, किसको दिए? झूठी तोहमत लगाता है। कासिमअली, जरा उधर ले जाकर इसको समझा दो कि क्या कहना चाहिए।"

साहबदीन समझायश के अर्थ भली-भाँति जानता था। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—"अब मेरे ऊपर दया कीजिए, और जाने दीजिए। मैंने आपको कोई रकम नहीं दी। मैंने झूँठ कहा था।"

हनुमानसिंह ने कड़ककर कहा—"ले, एक परचे पर लिख कि मैंने बलन्तसिंह के खिलाफ चोरी की झूठी रिपोर्ट पुलिस थाने में की थी, उसकी मैं क्षमा चाहता हूँ।"

कासिमअली ने हनुमानसिंह के कान में कहाः—"इससे कोई फायदा नहीं होगा, उलटे हमी लोग फँस जायंगे। इससे कुछ ऐंठ लीजिए, और जाने दीजिए।"

हनुमानसिंह ने कहाः—"अरे सीधी उँगली नहीं घी निकलता है।

तुम चुपचाप करते जाओ, जैसा मैं कहता हूँ। बलवन्तसिंह को छोड़ने की रकम इसी से वसूल की जायगी।"

कासिमअली ने एक कागज साहबदीन के सामने रख दिया और उसके दोनों हाथ खोल दिए। हनुमानसिंह बोलने लगा, और साहबदीन बाध्य होकर लिखने लगा।

लिखने के पश्चात् हनुमानसिंह ने कहा—"सेठ जी, अगर आप अपने को जेल जाने से बचाना चाहते हैं तो दो हजार रुपए निकालिए, नहीं तो इसी परचे के जरिए आपका चालान हो जायगा। पुलिस में झूठ रिपोर्ट देना एक बड़ा जुर्म है। कासिमअली, इसको उस कोने वाली हवालाती कोठरी में बन्द करो। जब इनको तुम समझाओगे तब इनके होश ठिकाने आयगे।"

कासिमअली साहबदीन को चलने के लिए संकेत करने लगा।

साहबदीन ने अनुभव किया कि अब बिना दो हजार रुपयों की संहिता दिए हुए प्राण नहीं बचेंगे। उसने हाथ जोड़कर कहा:—"मारिए पीटिए नहीं मैं यह भी रकम आपको दूँगा। किसी को मेरे साथ भेजिए।"

हनुमानसिंह ने प्रसन्न होकर कहा:—"अब ठिकाने की बात कहता है। कासिमअली, इसके साथ जाकर रुपया ले आओ। और देखो सेठजी, देन-लेन की बात यदि मेरे कान में आगई तो फिर समझ लेना तुमको जिन्दा ही गड़वा दूँगा। याद रखना, मेरा नाम हनुमानसिंह है। मैंने अपने बाप से भी मुरौव्वत करना नहीं सीखा। दूसरी बात यह कि आज से कभी झूठी रिपोर्ट देकर पुलिस को तंग मत करना।"

साहबदीन मन ही मन कह रहा था—"झूठी रिपोर्ट क्या, सच्ची रिपोर्ट भी कभी न करूँगा।"

उसी समय कासिमअली के साथ साहबदीन अपने गाँव सिधौली आया, और दो हजार रुपए देकर अपनी जान बचाई। रुपए लेकर कासिम-अली ने कहा:—"मेरा मेहनताना भी दीजिए सेठजी। इतनी दूर पैदल आया हूँ, और जाऊँगा उसका भी तो कुछ ख्याल कीजिए। साहबदीन को एक सौ रुपये उसे भी देना पड़ा।

हनुमानसिंह ने जब दो हजार रुपए दारोगा जी के सामने रक्खे तो उन्होंने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा—"ये रुपए कहाँ से आए?"

हनुमानसिंह ने उत्तर दिया—"कमबख्त साहबदीन से वसूल किए हैं। आज प्रातःकाल आप जब घर में थे, साहबदीन ने आकर इत्तिला दी

कि गाँव वालों ने एका करके उसको वहिष्कृत कर दिया है, और वे एक डेपुटेशन बनाकर जिला अधिकारी से हमारी रिपोर्ट करने का इरादा कर रहे हैं, तब मुझको एक उपाय सूझा और यह रकम उससे ऐंठ ली।"

दारोगा जी ने चिन्तित मुद्रा से कहा:—"यह तो ठीक नहीं हुआ। साहबदीन की वजह से हमें काफी परेशानी से सामना पड़ रहा है, ये रुपये लेकर तुमने उसे और बढ़ा दिया है। यह तो तुमको मालूम ही है कि बलवन्तसिंह के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता। उसको अब हवालात में रखना अपने को हवालात में भेजना है।"

हनुमानसिंह ने मुस्कराते हुए कहा—"हजूर, हनुमान कच्चा खेल नहीं खेलता। मैंने ये रुपए साहबदीन से उसका किसी काम करने के लिए नहीं लिया है, वरन् उसने अपने को झूठी रिपोर्ट देने के अपराध से बचने के लिए दिए हैं। मैंने उसको आज यह भय दिखलाया कि झूठी रिपोर्ट करने के अभियोग में उसका चालान किया जायेगा, और कासिमअली को उसकी मुश्कें कसने को कहा। बस वह पानी-पानी होगया, और दो हजार देने के लिए तैयार होगया।"

दारोगा जी ने हँसते हुए कहा—"तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। हाँ, यह खबर कि गाँव वाले जिला अधिकारियों से डेपुटेशन लेकर जा रहे हैं, कुछ अच्छा नहीं है। इसमें कहीं लेने के देने न पड़ जाय"।"

हनुमान ने लापरवाही के साथ कहा:—"जिला अधिकारी क्या कर लेंगे, वे अपना हिस्सा ही तो लेंगे? यदि हम पहले से ही उनका हिस्सा भेज देंगे तो फिर वे सब बातें वहीं दबा देंगे। हाँ, हमको अब बलवन्तसिंह को छोड़ देना चाहिए। मेरा तो ऐसा विचार है कि यदि हम बलवन्तसिंह को छोड़ देंगे तो फिर कोई कहीं न जायगा। गाँव वालों को ज्यादा हिम्मत नहीं होती। उनका बल केवल गाँव की सीमा तक ही होता है, आगे जाने में वे डरते हैं। हाँ उस गाँव में एक आध कांग्रेसी हैं जो जरूर उछल कूद मचाया करते हैं, उनको किसी मौके से किसी जुर्म में फांसकर वहाँ का सारा बखेड़ा ही शान्त कर देंगे। दारोगा जी ने कासिमअली को बुलाकर पूछा:—"तुम आज सिधौली गए थे, वहाँ क्या हाल-चाल देखा।"

कासिमअली ने उत्तर दिया—"मुझको तो कोई चिन्ता पैदा करने वाली बात नहीं दिखाई दी। हाँ, गाँव वाले कुछ डर ज्यादा गए हैं। मुझको देखते ही घरों के किवाड़े बन्द होने लगे। रास्ते में न मुझसे कोई बोला और न मैंने ही किसी से बात की।"

दारोगा जी ने बलवन्तसिंह को अपने सामने लाने का आदेश दिया।

फिर हनुमानसिंह से कहा:—"कल चलो बड़े साहब से मिलकर उनका हिस्सा दे आवें।"

हनुमानसिंह ने उत्तर दिया—"अभी इतनी शीघ्रता न कीजिए। पहले गाँव वालों को जाने तो दीजिए। बड़े साहब को सालाना रकम हम देते हैं, वही कौन कम है। साहबदीन जैसे बुद्धू बार-बार नहीं फंसा करते। बहुत दिनों में तो एक साथ पन्द्रह हजार रुपए मिले हैं, अगर इसमें उनका हिस्सा लगाएंगे तो रकम आधी रह जायगी, क्योंकि इन्सपेक्टर, सरकिल साहब, डिप्टी साहब, सब को ही देना पड़ेगा। यह नहीं कि इसको देने से हमारी सालाना रकम में कोई कमी हो जाय। वह तो ज्यों की त्यों देना पड़ेगा। फिर देकर क्यों गँवाएँ। हाँ जब गर्म हवा चलेगी, तब देखा जायगा प्राण बचाने के लिए तो घर की रकम भी निकाल कर देना पड़ता है। वह दूसरी बात है। आप चुप-चाप बैठे रहिए मैं सब ठीक कर लूंगा।"

कासिमअली ने बलवन्तसिंह को इसी समय उपस्थित किया।

हनुमानसिंह ने आदर के साथ बलवन्तसिंह को बैठाते हुए कहा:—"आइए ठाकुर साहब, हमें वास्तव में बड़ा दुख है कि आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा। आपको हम लोगों ने अपनी ओर से कोई कष्ट नहीं दिया, आपके खाने-पीने और सोने का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। हाँ, यह तो फिर थाना है, कुछ न कुछ कमी हो भी सकती है क्यों कि यह घर तो नहीं है। देखिए आपके घर वालों को भी हमने बिलकुल नहीं सताया। हमें आपका बहुत लिहाज है, क्योंकि आप हमारी जाति के हैं, और मुझको पता लगाने से मालूम हुआ है कि आप रिश्ते में मेरे चाचा होते हैं। पाली के ठाकुर राय पालसिंह के आप चचेरे भाई हैं, वे हमारे चाचा होते हैं। हमें जब से यह संबध ज्ञात हुआ तबसे मैं दारोगा साहब से विनय कर रहा हूँ कि आप ठाकुर साहब को छोड़ देवें। उनके विरुद्ध साहबदीन ने झूठी रिपोर्ट की है दारोगा साहब भी हमारे बड़े दयालु हैं, न्याय की मूर्त्ति हैं। अपनी कलम से कोई काम कानून के खिलाफ नहीं करते। आपके लिए जब लिखा-पढ़ी करके ऊपर से हुकम मांग लिया तब आज छोड़ने की बात उठाई है। अब आप शौक से घर जा सकते हैं। पुलिस साहबदीन के खिलाफ झूठी रिपोर्ट देने का मुकदमा चलाएगी। यदि आप चाहें तो आप भी अपनी मान हानि का अभियोग साहबदीन के खिलाफ चला सकते हैं। मैं इसमें आपकी पूरी सहायता करूँगा।"

बलवन्तसिंह इतने दिनों में बहुत निर्बल हो गए थे। उसने बड़े ही करुण स्वर में कहा—"गाँव जाकर ही अब क्या करूँगा, इससे तो श्मशान

में जाना कहीं अच्छा ह । सारी इज्जत आबरू पर पानी फिर गया। चोरी करने का अपराध तो लग ही चुका है, और जेल भी काट चुका । बस अब मुझे यहीं मर जाने दीजिए । मर कर ही यहां चलूँगा ।"

दारोगा और हनुमानसिंह दोनों मन ही मन उसका निश्चय सुनकर चिन्तित हुए। हनुमान ने हँसकर कहा:—"चाचा जी कहीं झूठी बातों से अपराध लगा करता है। अरे हम लोग तो ठाकुर हैं। राज सदैव हमारे घर में रहा, आज भाग्य लक्ष्मी के रूठ जाने से हमारी दशा हेय हो गई है, परन्तु इससे क्या हमारा अधिकार चला जायगा। पुलिस और जेल हमारी ही बनाई हुई है, आज हमारे स्थान पर अंग्रेज राज करते हैं, तो इस रिश्ते से वे हमारे मौसेरे भाई हुए। भाई के घर में रहने से कहीं इज्जत जाती है। यह आपका विचार निराधार है। चलिए आज हमारे यहाँ भोजन कीजिए। शाम तक आपको घर तक मैं स्वयं पहुँचा आऊँगा।

बलवन्तसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दारोगा जी ने कहा:—"साहबदीन के साथ आपने इतनी भलाई की और इस बदजात ने आपको यह बदला दिया। यदि आपकी अनुमति मिल जाय तो उसको ऐसा कसाऊं कि वह भी उम्र भर तक याद करे।"

बलवन्तसिंह ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

दारोगा जी ने हनुमानसिंह से कहा:—"हनुमान मुझे तो याद नहीं रहा, किन्तु तुमको तो यह न भूलना चाहिए कि आज प्रातःकाल से ठाकुर ने कुछ खाया नहीं। जलपान के लिए तुमको कुछ मँगाना तो था। यह तो तुम्हारे चाचा हैं। जैसे तुम्हारे चाचा वैसे मेरे चाचा। यदि तुम्हारे पास पैसे न थे, तो मुझसे मांग लेना था।"

हनुमान ने अपने कान पकड़ते हुए कहा:—"हुजूर मुझसे बड़ी भूल हुई। यह तो आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। पैसे की कोई बात नहीं है। सब आपका ही दिया हुआ।"

हनुमानसिंह ने एक सिपाही को मिठाई लाने का आदेश दिया।

दारोगाजी ने कहा:—"न मालूम क्यों भले आदमियों को लोग इतना सताते हैं।"

हनुमान ने तुरन्त कहा:—"बात यह है हुजूर, भले आदमी बदला नहीं लेते। वे उन बुराइयों को सह लेते हैं जो उनके साथ दूसरे लोग करते हैं, और स्वयं बुराई नहीं करते चाहे उनको कितनी हानि उठानी पड़े। हमारे बलवन्त चाचा ऐसे ही नियमों में है। समस्त गाँव इनकी प्रशंसा करता है। हुजूर यह आपको नहीं मालूम होगा कि इनका एक लड़का लड़ाई पर

गया हुआ है, और दो बेटे कानपुर में कमाते हैं। ठाकुर तो हैं ही, जरा दारू पीने लगे हैं। आपका मेरे ऊपर बड़ा अहसान होगा, यदि उनकी दारू पीने की आदत छुड़ा दें।"

दारोगाजी ने तुरन्त कहा:—"जरूर-जरूर! आजकल पुलिस में भरती हो रही है। मैं इशारा कर दूँगा, वे दोनों भरती कर लिये जायंगे। यह तो तुम जानते ही हैं कि पुलिस की नौकरी में कोई शराब नहीं पी सकता। पुलिस-लाइन में अपने-आप छूट जाती है। अहसान की क्या बात है, मैं तो कह चुका हूँ, जैसे ये तुम्हारे चाचा, वैसे मेरे चाचा हैं।"

इसी समय मिठाई आ गई। दारोगाजी ने कहा:—"ये बातें पीछे होगी, पहले आप बलवन्तसिंह को मिठाई खिलायं।"

हनुमान ने पानी का लोटा रखते हुए कहा:—"हाथ मुँह-धोकर पहले जल-पान कर लें।"

बलवन्तसिंह ने मिठाई का दौना सामने से हटाते हुए कहा:—"मैं इस समय कुछ न खाऊँगा। थोड़ा-सा पानी पी लूँगा।"

हनुमान ने उसके समीप बैठकर कहा:—"खाली पेट कैसे पानी पियेंगे। आप संकोच न करें। पहले कुछ खा लें। जो बात होगई है उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है। मैं अगर ठाकुर हूँ तो इसका बदला साहबदीन से जरूर चुकाऊँगा।"

बलवन्तसिंह बड़े असमञ्जस में पड़ा। पुलिस वालों को रुष्ट करना उसने उचित नहीं समझा। जल-पान किया, और जाने के लिए तैयार हुआ।

हनुमान ने कहा:—"अभी न जाइए, शाम को खा-पीकर चलेंगे, और चाची जी के भी दर्शन करेंगे।"

बलवन्तसिंह की इच्छा दिन में गाँव जाने की नहीं थी। उसने उसकी बात मान ली। अभी तक उसे ज्ञात नहीं हुआ था कि पुलिस वाले उसका इतना आदर-सत्कार क्यों कर रहे हैं। इतना तो उसे ज्ञात हो गया था कि उनका कोई विशेष प्रयोजन है, परन्तु उसकी वास्तविकता से वह अपरि-चित था।

संध्या का भोजन करने के पश्चात् हनुमान ने उसको अपने साथ लेकर सिधौली की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में हनुमान ने उनसे कहा:—"देखो चाचा, गाँव वाले तुम्हें चाहे जितना भड़कायं, तुम उनके कहने में मत आना। पुलिस से लड़कर कोई आज तक जीता नहीं है।"

बलवन्तसिंह ने सरल स्वभाव से उत्तर दिया:—"पुलिस से मैं क्यों लड़ूँगा? बिना लड़े हुए तो यह भोग-भोगने को मिला है और लड़कर तो न मालूम क्या गति होगी।"

गाँव के समीप पहुँचकर हनुमान ने कहा:—"कृपया अब आप जायं, मेरा इरादा तो आपके घर तक चलने का था, किन्तु दारोगा साहब का एक काम याद आ गया है। अतएव फिर कभी आऊँगा।"

हनुमान उसको वहीं छोड़कर वापिस लौट गया।

थाने में पहुँचते ही दारोगाजी ने पूछा:—"क्यों उसको समझा दिया?"

हनुमान ने हँसते हुए कहा:—"आपकी दया से यह तो बाएं हाथ का खेल है। अपने काम में सफल होने के लिए ही तो उसको चाचा बनाया। वह गाँव वालों अथवा कांग्रेसियों के बहकावे में कभी नहीं आयगा, और उसके बिना वे कुछ कर नहीं सकते। आपके आशीर्वाद से हनुमान कभी कच्चा काम नहीं करता। कल चाचीजी के दर्शन करने जाऊँगा, तब सब ठीक हो जायगा।"

दारोगाजी ने हँसते हुए कहा:—"अच्छे तुम्हारे चाचा-चाची हैं।"

हनुमान ने हँसी में योग देते हुए कहा:—"यह तो मैंने एक अपनी ही जाति वाले को चाचा बनाया है, पुलिस तो समय पर गधे को भी अपना बाप बनाने को तैयार रहती है।" दारोगाजी और हनुमान दोनों हँसने लगे।

साहबदीन जब से पुलिस-थाने से लौटा उसके मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। घर की शून्यता, जो इतने दिनों तक रहते हुए कुछ सह्य होगई थी, आज सहसा उसके मन के सूनेपन से जाग्रत हो गई, और अपने चारों ओर वह उसकी भयानकता अनुभव करने लगा। आज वह सबसे परित्यक्त था। किसी ने भी उसके द्वार पर आकर उसके सुख-दुःख के सम्बन्ध में एक प्रश्न तक नहीं किया था। किसी ने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि उसने भोजन बनाया है, खाया है या नहीं। एक कोने में उसका एकलौता लड़का ताराचन्द सो रहा था। उसने उसकी ओर देखकर एक गहरी निश्वास ली। उसके मन की शून्यता ने एक बार पुत्र-प्रेम को उभारा, किन्तु दूसरे ही क्षण वह भी उसी सूनेपन में कहीं भटक गया। उसने मन की अशान्ति को एक चिलम तम्बाकू पीकर दूर करने का विचार किया। एक ताक से उसने चिलम उतारी और भरकर अग्नि प्रज्वलित की और उसका धूम्र-पान करने लगे। तमाल-पत्र की मादकता ने उसके बिखरे हुए विचारों को एकत्रित करना आरम्भ किया।

वह सोचने लगा:—"न मालूम मेरे कौन पापों का उदय हुआ है, जिसका ऐसा घोर दण्ड मिल रहा है। एक-एक पैसा जोड़कर इतनी पूँजी इकट्ठी की थी। खाने-पहनने के सुखों को बलिदान करके रुपया जोड़ा था। इसी पूँजी के कारण मैं अपने में कुछ शक्ति अनुभव करता था, अन्य गाँव-

वासियों से मान और प्रतिष्ठा पाता था, और सारे सरकारी अहलकार मेरी ख़ुशामद करते थे। मुझे विश्वास था कि पूँजी के बल से मैं सब-कुछ करने में समर्थ हूँ। परन्तु आज मैं इसी पूँजी के कारण संसार में परित्यक्त हूँ। मेरी स्त्री ने मुझे त्याग दिया है, गाँव वालों ने मेरा बहिष्कार किया है, और पुलिस ने मेरा अपमान किया है, और मुझसे हज़ार से ज्यादा रुपए ऐंठ लिये हैं। बेचारे बलवन्तसिंह ने मेरे साथ कौन बुराई की थी, उसी को लूट-लूट-कर तो मैं धनवान बना। उसकी सारी कमाई ले आया था, और झूठ लिख-लिखकर उसका खून चूसता था। तब भी उसने एक दिन भी मुझे कुछ ऊँच-नीच नहीं कहा, मेरा कभी तिरस्कार नहीं किया। मेरे ही कारण उसके लड़के को लड़ाई में जाना पड़ा। उसने अपना जीवन मेरी ही पूँजी बढ़ाने के लिए तो बलिदान किया है। उसने उसकी कमाई भी तो मुझे देने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। मेरी स्त्री को उसने अपने यहाँ आश्रय दिया। मैं उस दिन उसको मारने गया था, कदाचित् वह या कोई दूसरी स्त्री मेरी लाठी के आघात से मर जाती तो मेरा क्या परिणाम होता। उसने उसी भयावह परिणाम से तो मेरी रक्षा की और उसे मारने नहीं दिया। इसके बाद मैंने उसको इसका क्या प्रतिफल दिया। अपनी ही स्त्री के साथ उसको कलंक लगाया। उसको बदनाम करने के लिए मैंने नीचातिनीच उपाय ग्रहण किए। इसको उस ग़रीब ने सहा, और उस रात को जब वह मुझे समझाने के लिए आया था, इस पर झूठा चोरी का अपराध लगाया। मुझे पूँजी का अभिमान था, उसके बल का भरोसा था। पुलिस को घूस देकर खड़ा किया, गाँव में लाया, और इन गाँव वालों को भी मरवाया, पिटवाया; उनकी इज्जत आबरू उतरवाई। मैंने कौन-सा अच्छा काम किया है। उसी का प्रतिफल यह मिला है कि पुलिस ने मुझसे रुपए ले लिए और मार-पीट कर निकाल दिया। यदि आज दो हज़ार रुपए न दिये होते तो शायद मैं भी जेलखाने में बैठा होता।"

वह ठहरकर फिर चिलम पीने लगा। उसके विचार पुनः परिष्कृत हुए। वह फिर कहने लगा—"लोग यह ठीक ही कहते हैं कि अन्त में सत्य ही की जीत होती है। बलवन्तसिंह को मैंने बदनाम करने का जितना प्रयत्न किया है उतना ही वह दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठता गया। बलवन्तसिंह के लिए सारा गाँव बिना एक पैसा दिए उसकी सफ़ाई के लिए तैयार है। मेरे हज़ारों रुपए खाई हुई पुलिस कहती है कि वह निरपराध है, और मेरी रिपोर्ट मिथ्या है। उसको पुलिस छोड़ना चाहती है, और मुझको गिरफ्तार करना। यह वैषम्य क्या इसीलिए नहीं है कि मैंने सरासर झूठ चलाना चाहा था।

पूँजी के बल से चिर सनातन सत्य को मिथ्या बनाने का प्रयत्न किया था। इसका फल तो ऐसा विषम मिलेगा ही। विष वृक्ष में अमृत-फल तो लग नहीं सकता।" मानसिक उथल-पुथल फिर आरम्भ हो गई। तीसरी बार चिलम पीने के बाद वह फिर सोचने लगा—"अच्छा तारा की माँ का क्या अपराध था। वास्तव में उसने कभी खाने-पहनने का सुख नहीं जाना। जीवन-भर उसने मुझे अच्छा-से-अच्छा खिलाया है और स्वयं बासी खाकर दिन निकाले हैं। चीथड़े पहनकर सारा जीवन व्यतीत किया। नौकर-चाकर रखने की बात तक नहीं चलाई। सुबह चार बजे से उठती और रात को ग्यारह बजे सोती थी। सारा समय काम करते बीतता था। जब से उसने मेरे घर में पैर रखा है तब से मेरा कार-बार चमक उठा। मेरे घर में लक्ष्मी की कृपा होनी आरम्भ हुई। उस दिन यदि उसने दो सौ रुपये ले ही लिए तो क्या हुआ। वह रुपये अन्त में मुझी को देती और यदि उसके कहने से मैं उसे गहने बनवा दिए होते तो वह भी मेरे ही घर में रहते, कहीं बाहर तो न जाता आज मेरे दस हजार रुपए मेरी गाँठ से निकल गए तो क्या इनके पाने की मैं आशा कर सकता हूँ। न मालूम मेरी बुद्धि कहाँ चली गई थी। मान लो स्त्री-पुरुष में झगड़ा हर घर में होता है, मेरे भी घर में हुआ, और वह बलवन्तसिंह की स्त्री के पास उसके घर चली गई। यह तो उसका ऐसा अपराध नहीं था कि मैं उसके घर उसको मारने के लिये गया। कदाचित् उसके वह लाठी पड़ गई होती, तो मुझे फाँसी पर लटकना पड़ता। इसके पश्चात् मैंने उसकी पवित्रता पर झूठा, अप्रामाणिक आरोप लगाया। बलवन्तसिंह, जो मेरे पिता की उम्र से भी अधिक वयस् का है, के साथ उसको व्यभिचारिणी बनाया। मुझे यह न सूझा कि मैं अपनी ही तो बदनामी कर रहा हूँ। मैं प्रसन्न था कि मैं उसको बदनाम कर रहा हूँ और बदनाम हो रहा है बलवन्तसिंह। किन्तु उस बेचारी ने उसे भी चुपचाप सहन किया। फिर उसकी बची-बचाई इज्जत को मिटाने के लिए पुलिस को लेकर बलवन्तसिंह के घर गया। उसके वे शब्द आज भी मेरे कान में गूँज रहे हैं। उफ! मैंने उस निरपराधिनी के साथ बड़ा अत्याचार किया है। मैंने इतने उग्र पाप किए हैं, और फिर भी सुख की आशा करू। यह मेरी मूर्खता के अतिरिक्त और क्या है!"

चिलम अब ठंडी पड़ गई थी उसने अभ्यास वश उसे पिया अवश्य, किन्तु धुआं न निकला। उसको एक ओर रखते हुए कहा:—"कौन स्त्री अपने इकलौते पुत्र को छोड़ना चाहेगी। क्या सात वर्ष का बालक अपनी माँ को छोड़कर रह सकता है। वह अपराध भी ने मैं किया है। अपने पुत्र को भी

दण्ड दिया। जब जब उसने माँ के पास जाने का हठ किया तब-तब उसको निर्मम होकर मारा है। मार के डर से वह उसके पास नहीं जाता। जब बाहर जाता हूँ तो इसको घर में बंद करके जाता हूँ, इस भय से कहीं यह उसके पास न चला जाय। अपनी ही संतान को काल कोठरी में बंद कर के जाता हूँ। उफ! फिर भी मैं पूछता हूँ कि मैंने क्या अपराध किया है? मेरे अपराधों के समक्ष जो मुझे दण्ड मिल रहा है वह तो बहुत उग्र नहीं है। गुरुतर अपराध का गुरुतर दण्ड होता है। परन्तु जो कुछ मुझे मिला है, वह बहुत कम है।"

चिलम उत्तेजित मस्तिष्क और अकेलेपन की साथी है। साहबदीन उसे फिर भरने लगा। तीन-चार फूँक पीने के बाद वह कहने लगा:—"मुझे ऐसा विदित होता है कि मेरी बुद्धि को विकृत करने वाली यह पूँजी है। पूँजी के नशे ने मुझ से यह सब पाप कर्म करवाए हैं। पूँजी ने मेरी विचार शक्ति पर मोटा परदा डाल दिया था इतना ही नहीं मेरी विचारधारा ही को पलट दिया था। उसका इतना नशा चढ़ा हुआ था कि मुझे जो कुछ सूझता था उल्टा सूझता था। मैं अपनी स्त्री को बदनाम कर रहा था इसमें मुझे अपनी बदनामी की बात नहीं लगती थी। मैं उसका अस्तित्व अपने से पृथक् समझता था। यह मेरी बुद्धि का दिवालापन नहीं था तो क्या था? दो सौ रुपये देने की बात पर मैं इतना कलह कर सकता था, वह भी अपनी स्त्री के साथ, जिसने अपना जीवन मेरे ऊपर न्योछावर कर दिया है, किन्तु दस हजार पुलिस को दे देने मैंने कुछ भी आगा-पीछा नहीं किया। मनैया आदि को साक्षी बनाने के लिए सैंकड़ों रुपए प्रसन्न मन से दे दिए। पाप से कमाई हुई पूँजी ने मेरी मति भ्रष्ट कर दी थी। ग़रीबों के खून से सने हुए पैसे मेरे मन में नाना प्रकार के विकार भरकर मुझसे अपना प्रतिशोध ले रहे थे। जिन दो सौ रुपयों को लेकर यह नाटक आरम्भ हुआ वे बलवन्तसिंह की जीविका ही तो थी। मैंने कितनी हृदय-हीनता का परिचय दिया था। वह व्यवहार पोस्ट-मैन तक को भी बुरा लगा था। उन दो सौ रुपयों में बलवन्तसिंह की आहें भरी हुई थीं; उसकी और उसके परिवार की भूख भरी हुई थी, जिसने मेरे सारे चातुर्य को मेरी वणिक् बुद्धि को हर लिया। मेरे सारे कौशल को नष्ट कर दिया। मेरी गृहस्थी को भ्रष्ट कर दिया। मेरी स्त्री को मुझसे छीन लिया, मुझे गाँव की दृष्टि में गिराकर मेरे सारी मान-प्रतिष्ठा को चकनाचूर कर दिया, और उसके विनिमय में मेरे दस हजार को मुझसे छीन ले गया। मेरे सारे जीवन का आनन्द, सौख्य, चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। इस संसार में मेरा आज अपना कहकर पुकारने

वाला कोई नहीं है। किसी को मेरे साथ सहानुभूति, दया, करुणा, मोह, प्रेम, स्नेह, कुछ नहीं है। सबसे बहिष्कृत हूँ, सबसे परित्यक्त हूँ। मेरा जीवन ही मेरे लिए भार रूप हो रहा है। इसका अन्त करना ही श्रेयस्कर मालूम होता है। मरने के भी तो कई मार्ग हैं, फाँसी, विष, कुआँ, सब ही तो मनुष्य का प्राण ले लेने में समर्थ हैं। क्यों न इसमें किसी एक का आश्रय ग्रहण कर जीवन-लीला समाप्त कर, दूँ। वे अभिशापित दो सौ रुपये मेरे प्राण ही लेकर मानेंगे।

साहबदीन की उत्तेजना बढ़ती जा रही थी। उसका बैठे रहना असम्भव हो गया। वह कमरे में टहलने लगा। उत्तेजित मस्तिष्क शान्त होने के लिए शरीर के अन्य अंगों को परिचालित करता है, और उसके द्वारा उत्तेजना का अधिक भाग निकल जाता है।

साहबदीन टहलते-टहलते सोचने लगा:—"अब भी एक उपाय है। *बलवन्तसिंह और अपनी स्त्री से जाकर अपने अपराधों की क्षमा माँगू।* अपराधी को जाने में कोई ग्लानि न होनी चाहिए। मैं जाने को तैयार हूँ, परन्तु कौन मुँह लेकर जाऊँ। जिनको मैंने नष्ट करने के उपाय किए हैं, जाल रचे हैं, उनके पास किस प्रकार जाऊँ। मेरे क्षमा माँगने से वे क्या मुझे क्षमा कर देंगे, क्या मेरी क्षमा से उनके घाव भर जायंगे? उनके मन में मेरे प्रति घोर विद्वेषाग्नि प्रज्वलित होगी, मेरे नाम ने उनको घृणा उत्पन्न होती होगी। मुझे क्या, मेरी वायु को भी वे स्पर्श न करना चाहेंगे। मैंने उनके घर में आग लगाई है, उनको पग-पग पर लांछित करने का प्रयत्न किया है, क्या वे मुझको देखकर प्रसन्न होंगे? यदि मैं उनके स्थान पर होता तो क्या मैं प्रसन्न होता? नहीं, मेरा जाना निष्फल होगा, कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। मेरा मरना ही उचित है। अन्य सब मेरे लिए उपहास्पद प्रमाणित होंगे। वही करूँगा। गाँव में इतने कुएँ हैं, किसी में गिर कर प्राण दे सकता हूँ। केवल गिरने की देर है, फिर प्राण तो अपने आप निकल जाँयगे ही।" टहलते-टहलते वह सहसा रुक गया। उसे ऐसा विदित हुआ कि कोई उसको पुकार रहा है। उसके उत्तेजित मस्तिष्क ने शब्द की सूचना तो दी, किन्तु वह शब्द क्या था, इसका उसे ज्ञान नहीं हुआ। उसका हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। वह बाहर भागा। द्वार पर कोई नहीं था। केवल एक कुत्ता खड़ा हुआ रोटियों के आने की राह उत्कंठित नेत्रों से देख रहा था। साहबदीन उसको प्रायः रोटी दिया करता था। आज न मिलने के कारण वह आशा लगाए प्रतीक्षा कर रहा था। साहबदीन को देखकर समझा कि रोटी आई। दुम हिलाता हुआ वह आगे बढ़ा। उसको

खाली हाथ देख कर उसे बड़ी निराशा हुई, और दुम हिला-हिला कर तथा उत्कंठित नेत्रों से देखकर रोटी की याचना करने लगा। साहबदीन ने उसकी कोई परवाह न की। किसी को न देखकर उसने जोर से द्वार बन्द कर लिया। कुत्ता फिर भी निराश न हुआ। वह आशा लगाए हुए कुछ देर खड़ा रहा, फिर चौड़ी देहरी से उछल कर चौपाल में बैठ गया।

बलवन्तसिंह के आने से गाँव के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को प्रसन्नता हुई। वह न्याय की विजय थी, और अन्याय की हार। प्रत्येक गाँव-वासी ने मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया, पुलिस के व्यवहार के सम्बन्ध में पूछा, और अपनी विपत्तियाँ भी बताईं। साहबदीन के बहिष्कार की बात बताई, और अन्य सभी प्रासंगिक निश्चयों का वर्णन किया। सन्तू और महावीर ने भी अपने मद्य-पान के छोड़ने की प्रतिज्ञा बताई। उनकी बात सुन कर वह कुछ अविश्वास के साथ हँसा। उस हँसी में दया, करुणा और उनकी असमर्थता के प्रति सहानुभूति बिखरी पड़ती थी। गाँव वालों ने भी बताया कि इस गाँव से मद्य-पान को उठा देने का निश्चय हुआ है। आगामी युद्ध-क्षेत्र में भाग लेने की प्रतिज्ञा प्रत्येक नर-नारी ने की है। शराब के ठेकेदार पर धरना बैठाया जायगा, यदि सन्तू और महावीर मद्य-पान नहीं छोड़ेंगे तो उनका सामाजिक बहिष्कार किया जायगा। बलवन्तसिंह ने उद्वेगपूर्ण नेत्रों से आकाश की ओर देखते हुए कहाः—"भगवान् की इच्छा ही पूर्ण होगी।"

उसके मन में यशवन्तसिंह के लिए बड़ी चिन्ता थी। जाने के दिन से आज तक उसका कोई समाचार नहीं आया था। पुत्र-प्रेम पुनः-पुनः जोश मारता और वह आँसुओं के द्वारा शान्ति लाभ करता था। उसने एक प्रकार से उसकी आशा ही त्याग दी, किन्तु लछिमिन से वह फिर भी कुछ कहने का साहस न करता था। अपनी वेदना में उसको साझीदार बनाने से वह भी शंकित था। उसको विश्वास था कि यदि वह अपनी आशंका प्रकट कर देगा तो लछिमिन, अपनी जीवन संगिनि से भी हाथ धोना पड़ेगा। अकेले उस भार को वहन करने में उसे कल्पनातीत कष्ट हो रहा था। उसके आजाने से सन्तू और महावीर खेती का काम देखने लगे थे। मदिरा पीने के सारे साधन बन्द हो गए थे, क्योंकि नंदलाल तो अपने घर चला गया था, और कोई अन्य उन्हें रुपया देता नहीं था। लछिमिन आदि को विपत्ति में छोड़कर यशोदा ने अपने भाई के साथ, जाना उचित नहीं समझा था। वह सोचती थी कि उसी के कारण तो उन पर विपत्ति का पहाड़ टूटा है, यदि उन्हें इस दुरवस्था में छोड़कर चली जायगी तो मुँह

दिखाने योग्य नहीं रहेगी। उसने उन लोगों के साथ ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया था। उसके भाई नन्दलाल ने अपने साथ ले जाने की बहुत चेष्टा की, किन्तु उसने उसे अस्वीकार कर दिया। नन्दलाल उसके व्यय के लिए कुछ रुपए देकर चला गया। उसके न जाने का एक और कारण भी था। गाँव में रहते हुए तो वह अपनी एकमात्र सन्तान ताराचन्द को कभी-कभी देख लेती थी। इतना ही वह बहुत समझती थी। अपने पुत्र को खेलते-कूदते देखकर उसका मातृ-हृदय किसी सीमा तक सन्तुष्ट अनुभव कर लेता था, उसी भाँति जैसे ओस के चाटने से यद्यपि प्यास तो नहीं बुझती, किन्तु कुछ शीतलता का अनुभव तो होता ही है। यह कहना कि साहबदीन के लिए वह चिन्तित न थी, असत्य होगा। इतना सब हो जाने पर भी उसका मन कभी कभी उसके लिए रो उठता था। उसकी और ताराचन्द आदि के भोजन की चिन्ता में वह स्वयं कभी-कभी न खाती थी। न मालूम किस प्रकार भारतीय स्त्री अपना जीवन निर्माण करती है कि उसके हृदय में पुत्र और पति के लिए असीम क्षमा का भण्डार भरा रहता है और वह कभी-कभी उनके कितने ही अपराध करने पर भी अपना वात्सल्य प्रेम, और स्नेह की धारा उंडेलने में पीछे पैर नहीं हटाती। रंचमात्र भी उसके हृदय में संकोच या हिचकिचाहट उत्पन्न नहीं होती। क्या विधाता ने अपनी क्षमा को नारी रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है? क्षमा असीम शक्ति की द्योतक है। रागद्वेष, मान-अपमान, आदि मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाने वाले भावों पर जो विजय स्थापित कर लेता है वही तो क्षमा कर सकता है। भारतीय नारी का स्थान तभी तो पुरुषों की अपेक्षा उच्च रखा गया है। जगत्-माता के नाम से उसका प्रतिष्ठान किया गया है। सतत् तपस्या के पश्चात् ही क्षमा का भाव उत्पन्न होता है। भारतीय नारी का जीवन तपस्या का जीवन होता है, स्वार्थ-त्याग का जीवन होता है। वह अपने पुत्र और पति के लिए अपनी स्वार्थ-भावनाओं का सतत बलिदान करती रहती है, अपने सुख और दुख का परिमाण वह उनके सुख और दुख के परिमाण से सदैव मापा करती है। वह त्याग और क्षमा की जाग्रत और चेतन प्रतिमा है।

बलवन्तसिंह के दो दिन आने के पश्चात् प्रातःकाल ताराचन्द ने बड़ी विकल मुद्रा से उसके घर में प्रवेश किया। उसके नेत्र रोने के लिए आकुल हो रहे थे और शरीर क्षीण होकर लकड़ी के सदृश हो गया था। उसके देखने से यही प्रतीत होता था कि हड्डियों के ढांचे को चमड़े से मढ़ दिया है। उसके बाल रूक्ष थे, और आखें गढ़ों में घुसी हुई थीं। बाल्यसुलभ

चपलता न मालूम कहाँ तिरोहित हो गई थी, उसमें वृद्ध पुरुषों की गम्भीरता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थीं। यशोदा और लछिमिन आँगन में बैठी हुई साग काट रही थी। ताराचन्द द्वार पर खड़ा होकर करुण स्वर से चिल्ला उठा—:"अम्मा !"

यशोदा के सन्तप्त हृदय में उस करुण स्वर ने सहसा आघात किया। जिस आह्वान को सुनने के लिए वह सदैव आकुल रहती थी, एकान्त में रुदन किया करती थी, आज वही रोदन मिश्रित आह्वान सुन कर क्षणभर के लिए स्तब्ध रह गई। दूसरे ही क्षण वह क्षिप्रता से झपटी और दोनों हाथों से पकड़ कर उसको हृदय से चिपटा लिया। कई दिनों का बँधा हुआ वात्सल्य का वेग नेत्रों द्वारा प्रवाहित होने लगा। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए, उसकी सकल पीड़ाओं को आत्मसात करते हुए कहा:—"क्या है बेटा, क्या है मेरे लाल ?"

उसके उन दो शब्दों ने ताराचन्द की सारी व्यथाएँ हर लीं। उसने सिसकते हुए कहा:—"अम्मा, बापू बहुत बीमार हैं, मुँह से बोल नहीं निकलता। अम्मा, तुम कब तक गुस्सा रहोगी ? घर नहीं चलोगी। हम दोनों को भूखों मर जाने दोगी ?"

विपत्ति और पीड़ा अज्ञान को भी ज्ञान प्रदान कर देते हैं। बालक को भी वृद्ध बना देते हैं। उसके एक-एक शब्द यशोदा का हृदय विद्ध कर रहे थे। विद्ध हृदय क्षमा का जल-प्रवाहित कर उसके संचित अभिमान की बालू की दीवार को जड़ से बहा रहा था।

लछिमिन भी विकलता की मूर्त्ति बनी हुई उसके समीप ही खड़ी हुई ताराचन्द के कातर शब्दों को सुन रही थी। उसने भी उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा:—"तुम रोओ नहीं बेटा, हम लोग अभी चलते हैं।" फिर यशोदा को ठेलती हुई बोली:—"चलो बेटी चलो, गाँव ने बहिष्कार किया है, हम तो नहीं कर सकतीं ! क्षमा ही तो हमारा रूप है, त्याग हमारा शृंगार है, और सेवा हमारा सौभाग्य है। पुरुष तो सदा से उच्छृंखल, उद्धत और कठोर रहा है। हमीं लोग तो अपनी तपस्या और प्रेम से समता स्थापित करती हैं। चलो, बेटी चलो, अब एक क्षण भी बिलम्ब न करो।"

यशोदा का हृदय रो रहा था। वह ताराचन्द को हृदय से चिपटाये हुए आगे बढ़ी। विरोध में उसके मुख से एक शब्द भी न निकला।

बलवन्तसिंह ने इसी समय घर में प्रवेश किया और वह भी यशोदा और लछिमिन को रोते हुए देख कर तस्मित रह गया। लछिमिन ने उसको देख कर कहा—"सेठ बहुत बीमार हो गए हैं। मुँह से बोल नहीं निकलता।

तारा अभी-अभी आया है। मैं जाकर देखती हूँ कि क्या बात है। यशोदा बिटिया को भी अपने साथ लिए जाती हूँ।"

बलवन्तसिंह ने विकलता के साथ कहा:—"सेठ बीमार हैं, जब से आया हूँ तब से उनको नहीं देखा। चलो, मैं भी चलता हूँ। गाँव वाले कुछ नाराज होंगे। उसके घर आने जाने की मनाही है।"

लछिमिन ने क्षमता के साथ कहा:—"होगी मनाही! मनाही आदि की बातें सुख में मानी जाती हैं दुःख में नहीं। उसने जो कुछ किया है, उसका फल भोगेगा। हम लोग क्यों धर्म-भ्रष्ट हों। अपनी करनी अपने साथ।"

बलवन्तसिंह ने सन्तुष्ट होकर कहा:—"ठीक है, अपनी करनी अपने साथ। विपत में तो गैर भी आदमी होने के नाते सेवा करते हैं, फिर हम तो सैकड़ों बर्षों के पड़ौसी और गाँव में रहने वाले हैं। हमारे पुरखे भी इसी भाँति लड़ते, झगड़ते, फिर एक होकर प्यार करते हुए इसी भूमि में खप गए हैं। पुरानी और बीती बातों की गाँठ बांध कर जुगोए होकर रहना हमारा धर्म नहीं है। बीती बातों को बिसार देना ही मनुष्यता है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। अकेले तुम दोनों क्या कर लोगो ? मेरा साथ चलना आवश्यक है।"

यशोदा का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। वह भगवान् से कातर वाणी में मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थी कि उसके पति का बाल भी बाँका न हो। उसके जीवन के विनिमय में अपना जीवन देने की विनय कर रही थी। इस समय बीती बातों का चिह्न भी उसके मानस-पटल पर विद्यमान नहीं था। वह पहले जैसा स्वच्छ और निर्मल हो गया था।

साहबदीन की अवस्था दो दिनों के निरन्तर उपवास से शोचनीय हो गई थी। उसने आत्म-हत्या के कई साधनों पर पुनः पुनः विचार किया और अन्त में निराहार रहकर जीवन लीला समाप्त करने का निश्चय किया। उसने उस दिन से अन्न और जल त्याग दिया। अन्न और जल जहाँ प्राणों का पोषण करते हैं, वहाँ बुद्धि-विकार और मतिभ्रम भी उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। उपवास से विकृत बुद्धि सन्मार्ग ग्रहण करती है। आत्मिक दुर्बलताएँ नष्ट होकर सात्विक तत्वों का पोषण होता है। संभवतः इसीलिए उपवासों का प्रयोग संसार के यावत् धर्मों में आवश्यक बताया गया है। साहबदीन ने ताराचन्द को कुछ पैसे दे दिए थे कि वह बाजार से खा लिया करे। ताराचन्द भी आजकल कहीं बाहर न जाता था, मानो भावी विपत्ति ने उसको भी दुःख-सहने की स्वाभाविक कठिनता प्रदान कर दी

थी। वह भी अपने पिता के पास बैठा हुआ चुप-चाप रोता रहता था। तीसरे दिन प्रातःकाल जब वह सोकर जागा तो उसने अपने पिता को शिथिल और अचेत पाया। उसके मन ने उसको अपनी माँ के पास जाने के लिए उत्तेजना दी, और वह सीधा बलवन्तसिंह के घर अपनी माँ को बुलाने चल दिया।

घर में प्रवेश करते हुए यशोदा का मन नाना प्रकार की दुःखद कल्पनाओं से अभिभूत हो रहा था। घर की अव्यवस्थित दशा देखकर वह रोने के लिए आतुर हो उठी। सामने ही भूमि पर साहबदीन अचेत पड़ा हुआ था। उसकी मुद्रा विकृत थी, उसके देखने से ही शव का भ्रम होता था। वस्त्र अस्तव्यस्त थे। यशोदा का रुदन वेग अब उसके थामे न थमा। दौड़ कर वह रोती हुई उसके समीप जाकर कटे वृक्ष की भांति गिर पड़ी। उसका चीत्कार घर को कम्पित करने लगा। उसने साहबदीन के अचेत मस्तिष्क में प्रवेश किया, और ज्ञान-तन्तुओं ने साग्रह उसको नेत्र खोलने के लिए बाध्य किया। उसके नेत्रों की दृष्टि फट गई थी। उसको एकत्रित करते हुए उसने चारों ओर देखने का प्रयत्न किया। उसमें जीवन की ज्योति यद्यपि वह महा क्षीण थी, देखकर यशोदा स्थिर होगई।

साहबदीन ने क्षीण स्वर में कहा:—"तुम आगई। मुझको क्षमा करो। अब रूठ कर तारा का जीवन नष्ट न करना। तुम रोओ नहीं। अपने पापों का फल भोग रहा हूँ। बलवन्त काका कहाँ हैं?"

बलवन्त ने आगे बढ़कर उसके सिरहाने बैठ कर उसका सिर अपनी गोद में रख, एक गिलास से पानी उसके खुले हुए मुखमें डालते हुए कहा:—"सेठजी, पहले पानी पिओ। भगवान् सब अच्छा ही करेंगे।"

जल की बूँदों ने अमृत का काम किया। उसके शुष्क कण्ठ में जीवन का संचार हुआ। कुछ स्वस्थ होकर साहबदीन फिर कहने लगा:—"काका, चलते-चलाते, अब मुझे क्षमा करो। मैंने तुमको बहुत दुख दिया है, उसकी सीमा नहीं है। मेरा मुँह क्षमा मांगने का नहीं है, परन्तु इससे अधिक अब कर ही क्या सकता हूँ। मुझे विश्वास था कि गाँव वाले चाहे मुझे छोड़ दें, परन्तु तुम मेरा त्याग कदापि नहीं करोगे। काका, तुम इस कलिकाल में आदमी नहीं, देवता हो। मेरे तारा की तुम रक्षा करना, उसका भार तुमको सौंप कर अब निश्चिन्त हूँ।"

आवेग ने साहबदीन का कण्ठ अवरुद्ध कर दिया।

बलवन्तसिंह ने लछिमिन को नींबू लाने का आदेश दिया और फिर कहा:—"सेठ जी, तुम विकल मत हो। भगवान् कल्याण के अतिरिक्त

अकल्याण कभी नहीं करते। भूख और प्यास ने तुम्हें सन्तप्त कर दिया है। एक-एक घूँट पानी पिओ। एक दो दिन में सब ठीक हो जायगा। घबड़ाओ नहीं। मेरे मन में कोई मैल नहीं है। छोटी-छोटी बातों से जीवन-भर का प्रेम बन्धन नहीं टूटता। वह मेरा कर्म भोग था, उसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। तुम तो निमित्त मात्र थे। मेरे किसी पाप का वह प्रायश्चित्त था। उसके भोगने के पश्चात् सब बातें पहली जैसी हो गईं। तुम भी दो दिन में अच्छे हो जाओगे। मेरी तपस्विनी बेटी का सुख-सोहाग नष्ट करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।"

साहबदीन पानी के घूँटों के साथ बलवन्तसिंह की आश्वासित वाणी के शब्दों की सत्यता को अपने मानसिक अवस्था की कसौटी पर परखने लगा। लछिमिन भी इतने में पड़ौसी के घर से दो नींबू ले आई। उसके पीछे कुछ अन्य गाँव-निवासी भी आगए और कुछ आ रहे थे। बहिष्कार का बन्धन टूट गया, और मानवीय सहानुभूति चारों दिशाओं से उमड़ कर साहबदीन का घर प्लावित करने लगी।

नींबू मिश्रित जल ने उसकी शान्ति की मात्रा में वृद्धि की, और उससे अधिक सन्तोष तो उसे गाँव-निवासियों को आँगन में एकत्रित होते देखकर हुआ। उसके मन की निराशा शनैः-शनैः तिरोहित होने लगी और आशा सजग होकर उसके मुरझाए हुए प्राणों को चैतन्य करने लगी।

उसने आगत पड़ौसियों की ओर हाथ जोड़कर कहा:—"भाइयो, मेरा अपराध क्षमा करो, जो कुछ मैंने किया हो उसे भूल जाओ। मैं क्षमा का अधिकारी नहीं हूँ, और इसी लिए अन्न जल त्याग कर और किसी को अपना कलुषित मुख न दिखाकर चुपचाप मर जाना चाहता था। परन्तु बलवन्त काका ने मुझे क्षमा करके मेरे मन में उत्साह भर दिया है कि मैं आपसे भी क्षमा माँगू। भाइयो, मेरे कारण पुलिस ने जो कुछ आप लोगों से लिया है उसकी पूर्त्ति करने का मुझे वरदान दो। उसका प्रायश्चित्त किये बिना मुझे इस अवशिष्ट जीवन में और मरने के पश्चात् भी शांति नहीं मिलेगी। मेरी इस पूँजी का इससे अच्छा उपयोग अन्य नहीं हो सकता। पूँजी के अभिशाप ने ही मुझे पथ-भ्रष्ट किया। पूँजीपति होने के लिए मैंने न-मालूम कितनों का खून चूसा है, कितनों को बेघर कर किया है, कितने घरों का सौख्य नष्ट किया है। इन दो दिनों में मेरे जीवन के सारे पाप इकट्ठे होकर मुझे डराते रहे हैं। उनकी साकार भयावनी मूर्त्ति के मैंने साक्षात् दर्शन किये हैं। इसी पूँजी के मिथ्या बल के अभिमान ने मेरी साध्वी स्त्री को बदनाम करने के लिए बाध्य किया था, बलवन्त काका जैसे

देवता को चोर बनाने का अक्षम्य अपराध किया था। बलवन्त काका का जो अनिष्ट मैंने किया है, वह अतुलनीय है। मैं वर्षों की उनकी सारी कमाई अपने घर बटोर लाया हूँ, और वह भी हलाहल झूठ लिख कर। मैंने ही उनके लड़के, गाँव के गौरव यशवन्त को लड़ाई पर भिजवाया है। मैं आज आप लोगोंके सामने स्वीकार करताहूँ कि बलवन्त काकाका न्यायतः मुझे कई हजार रुपया देना है। उनका एक-एक पैसा ब्याजके साथ अदा करूँगा। आप लोग साक्षी रहें। इस गाँव में जो कुछ मैं जिन लोगों से माँगता हूँ, उसमें कितना ही जाल, झूठ और फरेब है। ऐसा जिन लोगों के साथ मैंने किया है, उनसे तो मैं एक पैसा भी न लूँगा, और यदि उनका निकलता होगा तो हिसाब करके चुकाऊँगा। भाइयो, इस पाप के भार को उतारने में मेरी सहायता करो, और आशीर्वाद दो कि इसमें मुझे सफलता प्राप्त हो।"

कांग्रेसी शिवचन्द्र ने आगे बढ़कर कहा:—"सेठ जी, ईश्वर तुम्हारी शुभ इच्छाओं को पूर्ण करे। हम भी अपना बहिष्कार दण्ड वापस लेते हैं। विशुद्ध मानव-धर्म का जो विकास तुम में हुआ है, उसकी प्रकाश-रेखाएँ हमारे जीवन को आलोकित करके मार्ग प्रदर्शन का कार्य करें। हमारी यही इच्छा है, हमारी यही भावना है। हमारे पूर्वज पूँजी का एकत्रीकरण, समाज के निर्धन वर्ग पर उसका वितरण करके उसको समान रूप से परिपुष्ट करने क निमित्त करते थे। आज तुमने वही हमारे पूर्वजों का समत्वीकरण कल्याणकारी मार्ग का ग्रहण किया है। तुम्हारे पुराने पाप निश्चय ही नष्ट हो जायंगे। कितने ही नर-नारियों का आशीर्वाद तुम्हारे पापों को विध्वंस करने में सहायक होगा। सेठ जी, अब हम तुम्हें मरने नहीं देंगे, तुम अब हमारी समाज के, गाँव के आवश्यक अंग हो।"

साहबदीन की आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी; जिसमें पश्चात्ताप की अग्नि से शुद्ध हुआ स्वर्गीय सुख झाँक रहा था। उसने बलवन्तसिंह के पैरों पर सिर रखते हुए कहा:—"काका, जब तक तुम्हारा यशवन्त लड़ाई से लौट कर नहीं आता, तब तक तुम मुझको उसका स्थानीय समझो। वह जीवित लौट कर आवेगा, परन्तु लड़ाई समाप्ति के पश्चात्। मेरे ही कारण से वह गया है, मैं ही उस स्थान की पूर्ति करूँगा। उसके लौटने के पश्चात् यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मुझे अपना चौथा पुत्र समझना।"

फिर लछिमिन से कहा:—"क्यों अम्मा, यह सीधी-सी बात स्वीकार है?" उधर यशोदा लछिमिन के पैरों में लिपट गई, और इधर साहबदीन बलवन्त के पैरों। मैं दोनों आँसुओं की धार बहाते हुए उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगे।"

१४

कनक की अहर्निशि सेवा और डाक्टर सेन के प्रयत्न से रामनाथ खतरे से बाहर हो गया। तीन बार के रक्त प्रदान से कनक यद्यपि कुछ निर्बल हो गई थी, तथापि उसने उसकी कोई चिन्ता न की, और न उसके सेवा-यत्न में कोई त्रुटि ही होने दी। रामनाथ के अतिरिक्त अन्य घायलों की परिचर्या में भी वह उतनी ही दत्तचित्त रहती थी। घायल जब पीड़ा से चिल्लाते, वह अपनी मीठी वाणी से उन्हें आश्वासन प्रदान करती, उनके घावों को धीरे-धीरे साफ़ करती, औषधियों के लाभ बताती, और उनकी व्यथा की बातें सुनकर उनके साथ सहानुभूति प्रकट करती। उससे सभी प्रसन्न थे, और सब उसको अपने पास दो-चार मिनट खड़े होने की प्रार्थना करते थे। उसको सेवा-कार्य से रुचि होने लगी और वह एक प्रकार की अनुपम तृप्ति-लाभ करने लगी। सबको वह यथासाध्य प्रसन्न करने की चेष्टा करती, और वास्तव में उससे सभी सन्तुष्ट थे।

रात्रि का समय वह रामनाथ की चारपाई के समीप व्यतीत करती थी। वह अभी तक अचेत था। यद्यपि कनक दूसरे घायलों की परिचर्या में कोई त्रुटि नहीं करती थी तथापि उसका मन रामनाथ के पास ही रहता था। यह पक्षपात अन्य घायलों से छिपा नहीं था। वे लोग उसके विषय में पूछते, किन्तु वह उनका उत्तर टाल दिया करती थी। उन्होंने उसका कोई निकट सम्बन्धी समझकर सन्तोष किया।

इन दिनों उसके मन में एक विचित्र परिवर्त्तन हो रहा था। पुरुषों के प्रति उसकी धारणाएं सदैव उसके विपक्ष में रहती थीं। उन्हें वह स्त्री जाति का शत्रु समझती थी और उनके साथ दया का कोई व्यवहार दिखाना नहीं चाहती थी। उसी कटु-भावना में वह एक परिवर्त्तन अनुभव करने लगी थी। घायलों का चीत्कार और कराहट उसके हृदय में करुणा और दया, सहानुभूति और सद्भावनाओं की धाराएं बहाने का प्रयत्न करती। वह शीघ्र-से-शीघ्र उनका कष्ट निवारण करने की आशाएँ बंधाती और सान्त्वनापूर्ण शब्दों के कहने में थकती न थी। जब रोगी को कुछ शान्ति मिलती, उसके नयनों से पीड़ा की छाया तिरोहित हो जाती, तब अनिर्वचनीय आनन्द से उसका भी अंग प्रत्यंग पुलकित हो जाता। हर्ष का तडित्प्रवाह उसके सारे शरीर में दौड़ जाता। वह प्रत्येक घायल के लिए चिन्तित रहने लगी। उनको अच्छा करने के लिए अपनी सिफारिश भी करथी।

रामनाथ की बेहोशी टूटती ना थी। वह उसके समीप बैठकर स्थिर

नयनों से एकटक उसकी ओर देखा करती। पीड़ा की मूक तरंगें निरन्तर उठ-उठकर उसे व्यथित करतीं, उसके चित्त में निराशा की भावनाएं उत्पन्न करतीं, और वे उसकी स्त्री-सुलभ कोमलता को घात-प्रत्याघात से जाग्रत करने की चेष्टा करतीं। उसकी नारी वृत्तियां शनैः-शनैः जाग रही थीं। रामनाथ अपनी अचेत अवस्था में उसको अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उसको अपनी ओर अनिमेष नयनों से देखने के लिए बाध्य कर रहा था। उसके मन-प्राण में वह इस प्रकार समा रहा था कि उसको उसके पास रहने के अतिरिक्त कोई दूसरा काम अच्छा नहीं लगता था। वह उसकी सारी विचारधाराओं, भावनाओं और चिन्ताओं का केन्द्र-सा हो रहा था। इस आकर्षण का कारण उसे अज्ञात था। कारणों के पीछे पड़ने वाली उसकी तार्किक बुद्धि इस समय परिहृत-सी थी। विवेचना, में पड़ना और थोथे निष्कर्ष निकालना अब उसे तनिक सुहाता न था। उसका मन तर्कों के शून्य जाल में पड़ने के लिए बिल्कुल प्रस्तुत न था, वरन् वह उनसे दूर भागने के लिए प्रयत्न करता थी।

अभी तक वह अपने को सर्वांगपूर्ण ही समझती थी। अपने एकाकी जीवन में किसी अन्य व्यक्ति के आने की संभावना या आवश्यकता वह अनुभव नहीं करती थी। वह अकेले सन्तुष्ट थी और इतना ही वह पर्याप्त समझती थी। परन्तु अब उसके मन में कुछ अपरिचित विचार तरंगे उठने लगी थी, जिनमें एक अद्भुत माधुरी थी, और अनोखा सुहावनापन था रामनाथ के दर्शन से उसे जो तुष्टि और सन्तोष प्राप्त होता था, वह अन्य घायलों से नहीं। यह नहीं था कि वह उनके किसी सेवा-कार्य में त्रुटि करती थी, अथवा खिन्न चित्त से उनकी परिचर्या करती थी, परन्तु विभिन्नता तो उसके सामने प्रत्यक्ष थी। दूसरों के लिए उसके मन में वह हूक नहीं उठती थी, वेदना की वह टीस नहीं उठती थी, जो रामनाथ को अचेत और निस्पंदन देखकर होती थी। उसके संसर्ग में वह इन दिनों के पहले कभी नहीं आई थी। वास्तव में वह उसके लिए एक अपरिचित व्यक्ति था। यह भी सत्य है कि उसके कार्य के लिए उसके हृदय में सहानुभूति थी, प्रशंसा थी और उसके साथ जो अन्याय हो रहा था, वह उसकी तीव्र विरोधिनी थी। उर्मिला के लिए उसके मन में दया थी, करुणा थी, जो उसकी असहाय अवस्था के कारण उत्पन्न हुई थी। लगभग वैसा ही भाव रामनाथ के लिए भी था, क्योंकि रुपयों के अभाव से उसके मुकद्दमे की पैरवी करने वाला कोई नहीं था। वह उसको कानून के जाल से छुड़ाने के लिए आकुल थी, केवल इसलिए कि उसके प्रति किसी की सहानुभूति या दया नहीं थी।

परन्तु आज के पहले वह उसके लिए कभी इतनी व्यग्र और चिन्तित नहीं हुई थी। फाँसी की आज्ञा ने भी उसको विचलित नहीं किया था, उसके आजीवन द्वीपान्तर वास से भी वह अधिक चिन्तित नहीं हुई थी। इन दो बातों ने उर्मिला के प्रति उसकी करुणा और दया को विशेष रूप से जाग्रत अवश्य कर दिया था। परन्तु आजकल की अवस्था उस पूर्वावस्था से सर्वथा विभिन्न थी। घटनाओं ने उसको उसके समीप लाकर खड़ाकर दिया था। इस समय दोनों स्वदेश से बहुत दूर थे, और दोनों एक ही प्रकार के दण्ड से दण्डित थे। जब तक अंग्रेजी राज्य स्थापित था, तबतक उसके दण्ड में कोई परिवर्त्तन होने की संभावना नहीं थी। उसको अपने जीवन की अन्तिम घड़ी उसी द्वीप में व्यतीत करनी होगी। वैसा ही विधान रामनाथ के लिए भी था। कभी-कभी उसके मन में यह विचार उठता कि क्या यह दण्ड सादृश्य ही उसके मानसिक परिवर्त्तन का कारण तो नहीं है? इतना तो अवश्य ही उसको पूर्णतः स्पष्ट था कि उनके मानसिक विचारों में एक अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुआ है, तथा वह कुछ नवीन-सा है, जिससे वह सर्वथा अपरिचित है। रात्रि की निस्तब्धता में, प्रकृति के शून्य-काल में जब वह विचार उसके मन में उठता, तो वह उसे बाहर निकाल कर फेंकना चाहती, उससे मुक्ति पाना चाहती, परन्तु उसकी सारी शक्ति विफल हो रही थी, उसका सारा प्रयत्न निष्फल हो रहा था। उसमें वह कुछ ऐसा मिठास पा रही थी, ऐसी गुदगुदी अनुभव कर रही थी, जिसका त्याग करना भी न चाहती थी। उसमें कुछ ऐसा लुभावनापन था जिसकी ओर मन बरबस खिंचता था। हजार प्रयत्न करनेपर वह रुकता न था। वह प्रतिज्ञा करती कि साधारण अन्य घायलों को भाँति ही उसकी परिचर्या का विचार तथा प्रबन्ध करेगी, उसको किसी प्रकार की विशेषता नहीं देगी, किन्तु जब कार्य रूप में परिणित करने का अवसर आता तो वह उसे भूल जाती थी। अन्य घायलों की कराहट में सहानुभूति के दो एक शब्द बोलकर वह तुरन्त ही रामनाथ के पास आने के लिए व्यग्र हो जाती। वह उनके पास बैठने का प्रयत्न करती, परन्तु रामनाथ का आकर्षण अपनी तीव्र शक्ति से उसके अनेच्छुक चरणों को अपनी ओर घसीट लाता। उसके समीप आने से ही वे स्थिर होते। उसके समीप पहुँचकर वह फिर अनिमेष पलकों से उसकी ओर देखने लगती। उस समय उसका छटपटाता हुआ मन स्वतः शान्त हो जाता। उस समय उसके मन में यह भावना उठती कि उसे कोई अन्य घायल न बुलाए तो अच्छा हो। किसी अन्य की पुकार उसे असह्य प्रतीत होती थी।

रात्रि का चतुर्थ प्रहर प्रकाश की रेखा के समीप खड़ा हुआ उसके स्वागत के आयोजन में व्यस्त था। प्रकृति ओस विन्दुओं के स्नान से स्वच्छ और निखरी हुई कलिकाओं को प्रकाश के स्वागत के लिए प्रस्फुटित कर रही थी। रात्रि अपनी श्यामल चादर को समेटने में व्यस्त थी। निद्रादेवी संसार के इस प्रकाशपूर्ण भाग से भागने का आयोजन करने लगी। उसने कनक की आँखों से भी अपनी विश्राम-दायिनी शक्ति को खींच लिया। वह हक-बका कर उठ बैठी। कुर्सी पर बैठे ही बैठे न-मालूम कब उसे नींद आगई थी। वह उन्मीलित नेत्रों से प्रकाश और रात्रि का मिलाप देखने लगी। वे पुनः लौटकर रामनाथ पर केन्द्रित हो गए। वह निर्निमेष होकर उसकी ओर देखने लगी।

उसे सहसा प्रतीत हुआ कि उसकी पलकें कुछ हिलीं, और नेत्र के गोलक पलकों के अन्दर ही अन्दर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसके मन में हर्ष की एक तरंग उठी, और उसका शरीर काँपने लगा। उसने तुरन्त ही ऐसी ही अवस्था में देने के लिए डाक्टर सेन द्वारा बताई गई औषधि की एक खूराक उसके मुख को खोल कर डाल दी। औषधि ने पेट में जाकर तुरन्त अपना भाव प्रकट किया। उसकी पलकें पुनः बड़े वेग से हिलीं और उसके नेत्र खुल गए। एक बार चारों ओर देखकर वे पुनः मुँद गए। वे अभी तक देखने और वस्तुओं के पहचानने में असमर्थ थे। कनक ने सन्तोष की एक साँस ली, उस छोटी-सी निश्वास ने उसके हृदय के उस भार को जिसमें केवल निराशाएँ भरी हुई थीं, उतार कर फेंक दिया। रामनाथ मृत्यु की घाटी की कगार से लौट आया। कनक वहीं पर बैठ गई, और नेत्रों को बंदकर भगवान् को धन्यवाद देने लगी। उसकी तपस्या और मन की एकान्त पुकार को उसने सुना और उसे स्वीकार भी किया। रामनाथ की उसने रक्षा की। ईश्वर के प्रति उसका मन कृतज्ञता से ओत-प्रोत हो गया। जिसकी दयालुता की कहानियां वह प्रायः भक्तों के मुख से सुना करती थी, आज उसको प्रत्यक्ष देखकर उसकी आस्तिक भावनाएँ जो अभी तक मूर्च्छित दशा में पड़ी हुई थीं, अँगड़ाई लेकर उठने का प्रयत्न करने लगीं।

रामनाथ ने पुनः नेत्र खोले। उनकी निरीक्षण शक्ति मस्तिष्क के कोष में वस्तुओं की प्रतिछाया फेंकने लगी, किन्तु अब भी ज्ञान-कोष उनको यथावत ग्रहण करने में असमर्थ था। चारों दिशाओं से घूमते हुए उसके नेत्र कनक पर आकर स्थिर हो गए। उसके नेत्र उससे मिलाप करने में असमर्थ हो गए। पूर्व परिस्थिति से आज की परिस्थिति कितनी भिन्न थी। रामनाथ उसको पहचानने में असमर्थ रहा। इतने ही से मस्तक में पीड़ा

होने लगी थी। उसने अपने नेत्र पुनः बन्द कर लिए।

कर्त्तव्य ने कनक को जाग्रत किया। उसने एक दूसरी औषधि की पुड़िया उसको खाने के लिए मधुर शब्दों में कहा। रामनाथ ने बिना नेत्र खोले ही आदेश पालन किया।

कनक प्रसन्नता से नाचती हुई डॉक्टर सेन को खोजने के लिए चली गई।

१५

अपने विचारों को व्यवस्थित करने के लिए कनक एकान्त की खोज करने लगी, परन्तु उस जनाकीर्ण स्थान में एकान्त पाना दुष्कर ही नहीं वरन् असम्भव था। इसके अतिरिक्त उसका काम ऐसा था जिसमें उसको एक पल भर के लिए अवकाश नहीं मिलता था। उसको स्वयं उस काम से इतनी रुचि हो गई थी कि वह घायलों के आर्तनाद से दूर रहने में कुछ शून्य-सा अनुभव करने लगी था। उसकी मातृत्व की भावनाएं जो अभी तक सुप्त थीं, एक दूसरे रूप में जाग्रत हो रही थी। जिस प्रकार माता अपनी सन्तान से दूर रहने में कष्ट भोग करती है, कुछ वैसा ही कष्ट उसको उनसे बिलग रहने में होता था। रात्रि के अतिरिक्त दिन में एकान्त पाना उसके लिए असंभव था।

उसके मन की इच्छा थी कि कोई अन्य व्यक्ति उसके वहाँ होने की सूचना रामनाथ को देवे। भावनाओं का प्रथम वेग समाप्त हो चुका था। अभी तक रामनाथ अचेत था, उसके जीवन की आशा थी, किन्तु निश्चय नहीं था। अब तो स्थिति दूसरी थी। उसके जीवित रहने में कोई शंका न रह गई थी। पुराने जीवन का संबन्ध अभी इतनी दूर का नहीं हो गया था कि उसका चिह्न तक स्मृति से मिट गया होता। वह तो अभी भी ज्वलंत ताज़ा और स्पष्ट था, जिससे इतनी शीघ्र सम्बन्ध-विच्छेद करना उस के लिए कठिन हो रहा था। कुछ महीनों पहले वह एक तेजस्वी बैरिस्टर थी, जिसकी प्रतिभा का लोहा सब मानते थे। कुछ दिनों पहले वह मजदूरों की तथा शोषितों की नेत्री थी। जिसके सन्मुख सभी नत मस्तक होते थे। उसकी स्मृतियाँ अभी मृत नहीं हुई थीं, वैसी ही सजग तथा प्रखर भी नहीं थीं, किन्तु किसी अंश तक म्लान अवश्य हो गई थी। रामनाथ की चेतना ने उस जीवन की राख को कुरेदना आरम्भ किया। यद्यपि वह नष्ट हो गया था तथापि स्मृतियाँ चौंक-चौंक कर उसको पुनः सचेत करने की चेष्टा करती थीं। वह उनसे त्राण पाना चाहती थी, परन्तु उसकी चुटकियाँ उसको पुनः-पुनः दुखी बना देती थीं। मानव किसी अनजान के सामने जिन बातों के कहने में कोई संकोच नहीं करेगा, उन्हीं बातों को एक परिचित के सामने

कहने में संकोच करता है। यदि रामनाथ के स्थान पर कोई अन्य अपरिचित व्यक्ति होता तो संभवतः कनक को पुरानी घटनाओं के बताने में कोई कष्ट न होता। यदि उसने कनक को पहले ही बार पहचान लिया हो तो संकोच का यह पहाड़ उठा ही न होता। भावनाओं के प्रथम स्रोत में वह बह गया होता। परन्तु अब तो परिस्थित दूसरी थी।

उन दोनों से परिचित कोई अन्य व्यक्ति तो वहाँ उपस्थित न था, फिर यह भार वह किसको सौंपे? बहुत कुछ सोचने के पश्चात् डाक्टर सेन ही ऐसे व्यक्ति उसके विचार में आते थे, जो रामनाथ को सब बातों का ज्ञान कराने में समर्थ थे। इसी विचार को लेकर वह डाक्टर सेन के पास गई। किन्तु उनके समीप जाकर उसका साहस भंग हो गया। उसको देख कर उन्होंने पूछा:—"कहो बेटी, क्या कहना चाहती हो? तुम्हारे मुख की भावभंगी यह कह रही है कि तुम कुछ कहने के लिए मेरे पास आई हो। क्या बात है कोई मरीज क्या मरणासन्न है?"

कनक के मुख से निकल गया—"मरीज नहीं, मैं स्वयं मरणासन्न हूँ।"

डाक्टर सेन ने भय विह्वल कण्ठ से कहा:—"क्या कहती हो बेटी।" वे उसकी नाड़ी पकड़ कर देखने लगे। कनक के कपोल लज्जा से लाल हो गए।

उसने हाथ छुड़ाते हुए कहा—डक्टर साहब, मैं बीमार नहीं हूँ, पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। मेरे मन की अवस्था ठीक नहीं है, इसी से ऐसा वचन मुँह से निकल गया। मैं अवश्य ही तुमसे कुछ कहने आई हूँ, किसी मरीज की बात नहीं, अपनी ही कोई बात।

डाक्टर सेन ने सस्नेह कहा—"निस्संकोच कहो बेटी। इस बूढ़े से तुम कोई लाज न करो। तुम मेरी नातिनी से बहुत कुछ मिलती हो। उसका स्वभाव और रूप ठीक तुम्हारी ही भाँति था। यदि वह छोटी अवस्था में मर न गई होती तो आज वह तुम्हारी ही तरह होती। यह तो तुम जानती ही होगी कि बंगाल में दादा और नातिनी में कोई भेद-भाव नहीं होता। मैं भी तुमको अपनी अरुणा की भाँति मानता हूँ। बेटी यही उसका नाम था। हाँ मैं कुछ बकवादी अवश्य हूँ, इस पर ध्यान मत देना।"

कनक की समझ में न आया कि वह अयाचित स्नेह को किस प्रकार अपने उर में स्थान दे। किन्तु इतना अवश्य हुआ कि वह संकोच जिसके भार से वह दबी जा रही थी, कुछ कम हो गया। उसने धीमे स्वर से कहना आरंभ किया—"इतना तो आप अवश्य ही जान गए होंगे कि रामनाथ

नामक घायल कैदी मेरा परिचित है। इसी के संबन्ध में मैंने आपसे जिज्ञासा की थी, जब आप मुझे नर्स बनने का निमंत्रण देने गए थे। यह भी मैं आपको बता चुकी हूँ कि मैं यहाँ आने के पहले बैरिस्टर थी, और कुछ ख्याति भी अपने व्यवसाय में मैंने उपार्जित कर ली थी। इस व्यक्ति ने एक खून किया था, और वह भी मेरे पिता का। मेरे पिता का कम अपराध नहीं था, और यही उनके लिए उपयुक्त दण्ड भी था। वह बात जाने दीजिए कभी अवकाश में सविस्तार जब कहूँगी तो आप मेरे कथन का औचित्य समझेंगे। मेरा इस व्यक्ति से कभी परिचय नहीं था। मैं एक पूँजीपति की लड़की थी और यह एक गरीब मजदूर था। यद्यपि इसने मेरे पिता की हत्या की थी, तथापि मैंने इसकी प्राण-रक्षा का पूरा प्रयत्न किया था, मैं इसकी पैरवी करने लगी, किन्तु बचा नहीं सकी। अन्त में अपील में भी इसको काला पानी का हुक्म हुआ, और वह यहाँ भेज दिया गया। इसकी स्त्री की रक्षा करने वाला कोई नहीं था, इसलिए मैंने उसको अपने पास रख लिया। इसके पश्चात् मैं मजदूर-आन्दोलन चलाने लगी, और उसी में मुझको यह दण्ड मिला। मैं भी काले पानी आ गई। किसी भी परिचित के लिए एक अनजान स्थान में मिलने की इच्छा होना स्वाभाविक होता है। इसी से मैं उसके लिए इतनी व्यग्र थी। आज उसको होश तो आ गया किन्तु उसने मुझे पहचाना नहीं। सहसा पहचान भी नहीं सकता, क्योंकि इस स्थान में मेरे मिलने की कोई आशा या विचार उसके मन में उत्पन्न ही नहीं हो सकता। अब मुझे परिचय देने में संकोच हो रहा है। मैं इस स्थित को बचा देना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि यह भार आप लेवें और वास्तविक घटनाएँ उसको बता देवें। उसको पहले यह मालूम हो जाना चाहिए कि कनक यानी मैं यहाँ पर आगई हूँ। बस इतना ही कहिने के लिए मैं आई थी।"

डाक्टर सेन ने हँसकर कहा:—मेरी नातिनी मुझसे दोभाषिए का काम लेना चाहती है।"

कनक ने कोई उत्तर नहीं दिया।

डाक्टर सेन ने कहा:—"कोई बात नहीं, मैं उसको सारी बीती बातें बता दूँगा। मेरी बेटी को जिस बात से सन्तोष होगा वह सब मैं सहर्ष करूँगा। ठीक इसी भाँति मेरी अरुणा भी जिद करती थी कि दादा तुमको मेरे पिता से ऐसा कहना होगा। बेटी मुझे दोभाषिए जीवन का पूरा अभ्यास है। मैं इसको अवश्य करूँगा। जब उसकी नींद टूटे तो मुझे सूचना देना।"

कनक के सिर से वह भार उतर गया। वह प्रसन्न मन से चली गई।

डाक्टर सेन उसकी गति निरखते हुए बोले—"इसकी चाल भी ठीक अरुणा की भाँति है। दूर से देखकर उसी का भ्रम होता है। लड़की अच्छी है, बड़ी प्यारी लगती है। है तो मेरी अरुणा का ही प्रतिरूप।

कनक के दृष्टि से ओझल हो जाने पर उनके मुख से एक गहरी निश्वास निकल गई, जिस से पुरानी स्मृतियाँ बिखर गईं।

१६

मिस्टर निक्सन का जहाज मन्थर गति से अन्दमान के पोर्ट ब्लेयर में आकर विश्राम के आयोजन में संलग्न होगया। उसकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो गई थी! जापानी जल-पोत अथवा वायुयानों ने उसपर आक्रमण नहीं किया था। अन्दमान के शासकों को उसके आने की सूचना मिल चुकी थी और वे लोग उसके स्वागत के लिए डेक पर एकत्रित हुए थे। निक्सन के आगमन से उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी, क्योंकि वे अपने साथ उनकी रक्षा के सभी प्रसाधनों को लेकर आए थे।

नए गवर्नर का स्वागत तोपों की सलामी द्वारा हो रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य का चिह्न 'यूनियन जैक' पोर्ट ब्लेयर के उत्तुंग दुर्ग-प्रासाद पर लहरा-लहरा कर जापानियों को रण-निमंत्रण दे रहा था। ब्रिटिश सैनिक भी जोश और उत्साह में भरे हुए उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे, जब वे जापान से अपना प्रतिशोध ले सकेंगे।

मिस्टर निक्सन सपरिवार जहाज से उतरे। सैनिकों ने उनका अभिवादन किया, और अपनी तलवारों की छाया में उनको ले जाने लगे। चन्द्रनाथ को इस अवसर पर इनसे दूर हो जाना पड़ा, तथा वे दूसरे मार्ग से किले में पहुँचा दिये गए। उर्मिला को अभी तक जहाज पर ही रहने का प्रबन्ध मिस्टर निक्सन ने किया था। दुर्ग में पहुँचकर उसको बुला लेने की इच्छा थी।

दुर्ग की ध्वस्त अवस्था देखकर मिस्टर निक्सन को मार्मिक पीड़ा हुई। जब उनको सब हाल जापानियों के आक्रमण का सुनाया गया तो उन्होंने सबसे प्रथम रामनाथ का समाचार पूछा। उसके संबन्ध में अधिकारियों के विवरण से उनको प्रसन्नता नहीं हुई। यदि उन्होंने उसके मरने का समाचार बताया होता तो उन्हें कुछ शान्ति मिलती, परन्तु उसका जीवित रहना उन्हें असह्य हो गया। जब उन्हें कनक का हाल ज्ञात हुआ कि वह नर्स का काम कर रही है, तो उनको कुछ भय हुआ। इस कारण कि कहीं पामीला से उसका अनायास साक्षात् न हो जाय। उसके मन में पहले यह ध्यान उठी कि कनक को पुनः एकान्त कोठरी में भेज दिया जाय, परन्तु जब उनको ज्ञात हुआ कि उसके अतिरिक्त और कोई नर्स का कार्य करने वाला

नहीं है, उन्होंने अपनी आज्ञा लौटा ली। रात में चन्द्रनाथ को उन्होंने बुला भेजा और एकान्त कमरे में ले जाकर कहने लगे:—"चन्द्रनाथ, तुम्हारी कनक सकुशल है, और वह आजकल नर्स का काम कर रही है। बैरिस्टरी की अपेक्षा यह काम स्त्रियों के लिए कहीं अधिक उपयुक्त है। क्यों, तुम्हारा क्या विचार है ?"

चन्द्रनाथ ने हँसकर कहा:—"ठीक है, किन्तु वह अपना काम उचित रूप से न करती होगी, क्योंकि उसको पुरुषों से हार्दिक घृणा है।"

निक्सन:—"किन्तु रिपोर्ट तो हमारे अनुमान के विरुद्ध है। यहाँ के अधिकारी उसके कार्य की प्रशंसा करते हैं। जेलखाना ऐसी जगह है, जहाँ उग्र-से-उग्र सीधे सरल हो जाते हैं। अब मुझे विश्वास है कि तुम्हारा कार्य सफल हो जायगा, और तुम सहज ही अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकोगे।"

चन्द्रनाथ:—"आपकी सहायता और दया से कठिन भी सरल हो सकता है। मुझे यहाँ देखकर वह बड़ी चकित होगी।"

निक्सन:—"आशा है कि तुम धैर्य से काम लोगे। तुम अभी उससे मिलने का प्रयत्न मत करना। मैं इसका प्रबन्ध स्वयं करूँगा। तुम हस्पताल की ओर न जाना। आश्चर्य तो उसको मेरे आने से भी होगा। देखूँ, इसका प्रभाव क्या होता है ? हम लोगों को अब विशेष सतर्कता का अवलम्बन लेना होगा, क्योंकि पामीला तुम्हारे आगमन का कारण शायद जान गई है। तुमसे रुष्ट रहने का कारण इसके अतिरिक्त दूसरा क्या हो सकता है ?"

चन्द्रनाथ:—"मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों वह मुझसे इतनी कुपित है ?"

निक्सन:—"यही कारण हो सकता है कि तुम्हारी कूट अभिसन्धि को उसने अपने अनुमान द्वारा जान लिया हो। यह भी हो सकता है कि कनक ने उसको अपना और तुम्हारा हाल बताया हो, क्योंकि पहले दोनों में मित्रता तो थी। इधर जब से कनक ने सामाजिक और राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया, उनका सम्मिलन अधिक नहीं होता था। कनक के दण्ड के लिए भी उसने सिफारिश की थी, परन्तु मैंने ऊपरी अफ़सरों का हुक्म बताकर टाल दिया। अब हमें कुछ ऐसा प्रबंध करना चाहिए, जिसमें दोनों का मिलन न हो।"

चन्द्रनाथ:—"आप उसको सहज ही ऐसे स्थान में भेज सकते हैं जहाँ पामीला का आवागमन कानूनन निषिद्ध हो सके। यदि पामीला का बल कनक को प्राप्त हो जायगा, तो फिर कार्य-साधन में कठिनाई तो अवश्य हो जायगी।"

निक्सन:—"हाँ, मैं इसमें तुमसे पूर्णतः सहमत हूँ। परन्तु कठिनाई केवल यही है कि घायलों की सेवा करने वाला उसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। जापानियों के हवाई आक्रमण से जितनी क्षति हुई है वह तुम्हारे सामने है। इतना बड़ा दुर्ग अब खँडहर में परिणत हो गया है। हम लोगों के रहने के लिए पूरे कमरे नहीं हैं। मरे हुओं की संख्या घायलों से अधिक थी, किन्तु मरे अभागे कैदी ही हैं। अंग्रेज सिपाही अधिकतर घायल हुए हैं, उनके अमूल्य प्राणों की रक्षा भी तो करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। यदि कैदियों का मामला होता, तो दूसरी बात थी मैंने पहले आते ही यह आदेश दिया था, किन्तु जब परिस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसे वापस ले लिया।"

चन्द्रनाथ कुछ सोचने लगे।

निक्सन ने फिर कहना आरम्भ किया:—"यहाँ की परिस्थिति बड़ी भयंकर है। हमारे पास अब भी इतना युद्ध का सामान नहीं है कि हम जापानियों से ठीक-ठीक मोर्चा ले सकें। आक्रमण करने की बात तो दूर है। हम अपनी रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। जापान इधर विजय करता हुआ बराबर आगे बढ़ता चला आ रहा है। उसकी प्रगति रोकने के साधन हमारे पास नहीं हैं। जो कुछ सहायता मेरे साथ आई है, उसी से हमें सन्तुष्ट रहना होगा। इसके अतिरिक्त हमें हवाई आक्रमणों से बचने के लिए बहुत बड़ा प्रबन्ध करना है। मैं चाहता हूँ कि हम लोगों को उचित है कि कुछ दिनों के लिए अपने-अपने आमोद-प्रमोद के कार्य-क्रम स्थगित कर दें। कुछ दिनों पश्चात्, जब स्थिति अपने अधिकार में आ जायगी तब हमको को अपने उद्देश्य की पूर्त्ति का उपाय करना चाहिए। तुम मेरी ओर चकित हो कर क्या देख रहे हो? मेरा भी कोई उद्देश्य है, जिसको मैं किसी अन्य दिन प्रकट करूंगा। उसमें तुमको हमारी सहायता करनी होगी।"

चन्द्रनाथ चकित होकर प्रश्न भरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा।

निक्सन फिर कहने लगे:—"देखो इस समय हमारे पास कमरों की बड़ी कमी है। हमको अपने साथ एक कैदी भी रखना है। समझ में नहीं आता कि उसका कहाँ प्रबन्ध करूँ?"

चन्द्रनाथ ने साश्चर्य कहा:—"कैदी रखना है, ऐसा कौन कैदी है?"

निक्सन ने एक ठंडी निश्वास के साथ कहा:—"वह कैदी उर्मिला है, जिसको मैं अपने साथ लाया हूँ। यद्यपि राजनैतिक कैदियों की जेल सुरक्षित है, किन्तु उसको वहाँ भेजना मैं नहीं चाहता। मेरी इच्छा है कि वह रामनाथ से न मिलने पाय। रामनाथ भी हमारे मार्ग का एक काँटा है। आज-

कल वह घायल होकर हस्पताल में पड़ा है। हमें ऐसा प्रबन्ध करना है कि स वह मर जाय, और हमारा मार्ग साफ हो जाय। कनक, आजकल उसकी सेवा में व्यस्त है। उर्मिला को रामनाथ और कनक दोनों से दूर रखना ही मैं उचित समझता हूँ। तुम्हारा क्या विचार है?"

चन्द्रनाथ ने अपनी स्वीकारोक्ति देते हुए कहा:—"निक्सन, तुम्हारे प्रबन्ध में कौन कमी रह सकती है? मेरा इन बातों से कोई सम्बन्ध ही नहीं। यदि तुम रामनाथ और उर्मिला का मिलन उचित नहीं समझते तो मैं इसकी सिफारिश नहीं करूँगा। यह अवश्य कहूँगा कि कनक और उर्मिला मिल सकें तो अच्छा ही है। कनक को जितना अशक्त बनाया जा सके उतना ही अच्छा है। उसकी निर्बलता हमारी शक्ति है। तुम अभी कनक को नहीं जानते! मैं उससे कुछ अधिक परिचित हूँ; और जानता हूँ कि उसको मेरे प्रस्ताव से सहमत होना कितना कठिन कार्य है।"

इसी समय पामीला ने वहाँ आकर पूछा:—"पापा, उर्मिला को अभी तक यहाँ क्यों नहीं लाया गया?"

निक्सन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा:—"क्या अभी तक वह नहीं आई!"

पामीला ने उनके समीप आकर कहा:—"आपका विचार कहीं उसको जेल में रखने का तो नहीं है! यह मैं आपको स्पष्ट कह देना चाहती हूँ कि वह मेरे साथ रहेगी; जेल में नहीं रहेगी। उससे अधिक चतुर मैं कोई दूसरी दासी नहीं पा सकती। पापा, वह अपने देश का भोजन बड़ा उत्तम बनाती है। मैं उसको छोड़ूँगी नहीं।"

निक्सन ने सन्तुष्ट होते हुए कहा:—"पामी, मुझे तुम्हारी इच्छा सदा मान्य है। यद्यपि यह कानून के विरुद्ध है कि मैं कोई कैदी अपने पास रखूँ, परन्तु तेरी इच्छा के आगे मुझे यह कानून-विरुद्ध बात भी करनी होगी।"

पामीला ने प्रसन्न मन से कहा:—इसके लिए मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ। क्यों पापा, कनक यहाँ किस जगह है। मैं उससे भी मिलना चाहती हूँ।"

निक्सन ने गम्भीर होकर कहा:—"देखो पामी, जिद की भी एक सीमा होती है। तुम अब भला-बुरा समझ सकती हो। मैं यहाँ का शासक होते हुए भी परतन्त्र हूँ। कानून और कायदों से जकड़ा हुआ हूँ। उर्मिला की तु[illegible]बात मान ली, एक गैर कानूनी काम भी तुम्हारे लिए कर दूँगा, किन्तु इसके अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं सब गैर कानूनी काम करूँ। इससे

अनुशासन भंग होता है। कनक एक राजनीतिक कैदी है। उसके पास किसी को भी जाने की आज्ञा नहीं है। तुमको वहाँ जाने देने से मेरा शासन-प्रबन्ध बिगड़ जायगा। इससे मैं तुमको उसके पास जाने देने की अनुमति नहीं दे सकता।"

पामीला ने तीव्रता के साथ कहा:—"इससे तो मैं यही निष्कर्ष निकालती हूँ कि आप मिस्टर चन्द्रनाथ को भी यह अधिकार प्रदान न करेंगे।"

निक्सन ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा:—"मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। चन्द्रनाथ, वहाँ क्यों जायगा। उसका वहाँ क्या, किसी कैदी के पास जाने का कोई प्रयोजन नहीं है!"

पामीला ने व्यंग्य-बाण छोड़ते हुए कहा:—"हो सकता है कि तब मेरा अनुमान गलत हो। मैंने तो यही समझा था कि वे कुछ कैदियों से मिलने के लिए ही आए हैं, नहीं तो कौन अपना जीवन विपत्ति में डालकर यहाँ आता।"

पामीला ने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वह तुरन्त उन दोनों को मन्त्र मुग्ध अवस्था में छोड़कर चली गई।

निक्सन और चन्द्रनाथ एक दूसरे का मुख देखने लगे। थोड़ी देर बाद निक्सन ने कहा:—"मैं तुमसे अभी कह रहा था कि पामी से हम दोनों को सतर्क रहना पड़ेगा। वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि की बालिका है।"

चन्द्रनाथ ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वे मौन होकर भविष्य का कार्य-क्रम सोचने लगे।

१७

पनंग द्वीप के समीप नील रत्नाकर की उत्तुंग तरंगें उस दिन कुछ शान्त रूप धारण किये हुए थीं। उसके वक्ष पर कई युद्ध-पोत संतरण कर रहे थे। उनके आरोही सब जापानी सैनिक थे, जो आगामी युद्ध के लिए उत्कंठित हो रहे थे। उन्हें पग-पग पर विजय मिल रही थी इसलिए उनका उत्साह भी उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। योरोप की सैनिक महत्ता नष्ट हो गई थी, और एशियावासी भी उठने के लिए व्यग्र हो रहे थे। पिछली दो शताब्दियों में योरोपीय देशों ने जिस प्रकार अपना प्रभुत्व एशिया के देशों पर स्थापित करके उनको गुलाम बनाया था, और उनकी संस्कृति को नष्ट किया था, आज उसका प्रतिशोध चुकाने के लिए वे अपने को सन्नद्ध कर रहे थे। उनको ज्ञात हो रहा था कि योरोप के निवासी भी उनके समान ही साधारण मनुष्य हैं। वे उनसे किसी भाँति भी श्रेष्ठ और उच्च नहीं है। विश्वास-घात, छल-प्रपंच आदि में वे अवश्य उनसे अधिक चतुर हैं, परन्तु साहस, शौर्य

और विक्रम में वे उनसे किसी भाँति न्यून नहीं हैं। एशिया जाग गया था, और अपना अधिकार लेने के लिए खड़ा हो रहा था। जापानी सैनिकों में एक अद्‌भुत वीरता के दर्शन होते थे, वे अंग्रेजों तथा अन्य योरोपीय राष्ट्रों को एशिया से बाहर निकाल देने के लिए कटिबद्ध होगए थे। उनकी प्रेरणा से अर्धशिक्षित, और बर्बर कहलाने वाली जातियाँ, जिनकी सदाशयता और सीधेपन से योरोपीय राष्ट्र लाभ उठा रहे थे,अपने को संगठित करके उस का साथ दे रही थीं। समग्र मलय प्रदेश से अंग्रेज निकाल दिये गए थे।पनंग द्वीप पर जापानियों का आधिपत्य हो गया था, और उन्होंने उसको पूर्वीय अंचल के युद्ध का एक विशिष्ट केन्द्र-बिन्दु बनाया था। वे यहाँ से अपने सैनिकों को युद्ध-क्षेत्रों के विशिष्ट भागों में भेजने का प्रबन्ध करते थे। उस दिन भी यही प्रबन्ध हो रहा था।

यशवन्तसिंह, मानसिंह और हरनामसिंह भी अपनी बटालियन के साथ पनंग आगए थे। भाग्यलक्ष्मी इस समय यशवन्तसिंह पर पूर्ण अनुग्रह कर रही थी। उसके ऊपर जापानी अधिकारियों का विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, तथा उसकी उन्नति भी उसी प्रकार होती जा रही थी।

दोपहर के पश्चात् जब सैनिक विश्राम कर रहे थे, एक दूत ने यशवन्तसिंह को सूचना दी कि फील्ड मार्शल युयुत्सकी, जो पूर्वीय क्षेत्र के युद्ध संचालक हैं, उसे बुला रहे हैं। मानसिंह जो उसके समीप ही बैठा हुआ था, बोला—"जस्सू, मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि हमारी सेनाएं अब भारत-विजय के लिए प्रस्थान करने वाली हैं। शायद इसीलिए तुमको बुलाया जा रहा है।"

हरनामसिंह ने भी, जो वहाँ उपस्थित था, कहा:—"ठीक कहते हो मानसिंह मैंने भी कुछ ऐसा ही सुना है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा बड़े धैर्य से कर रहा हूँ जब हमारी (भारतीयों की) विजयिनी सेनाएं भारत के तट पर उतरेंगी, और जिस प्रकार मलय को उनके पञ्जे से मुक्त किया है, उसी प्रकार वहाँ से भी अंग्रेजों को भगाकर सैंकड़ों वर्षों की दासता का नाश करेंगी। मानू, जरा विचारो तो हम लोग कितने भाग्यवान हैं कि हमारे हाथों से भारत स्वतंत्र होने जा रहा है। उसकी दासता मिटाने वालों मे हमारा भी नाम इतिहास के पृष्ठों में लिखा जायगा।"

यशवन्तसिंह ने जाते हुए कहा:—"आप लोग मेरी प्रतीक्षा कीजिएगा, मैं अभी आता हूँ। असमय बुलाए जाने का कोई-विशेष कारण अवश्य है। यदि वास्तव में तुम लोगों का अनुमान सत्य है तब तो इससे अधिक शुभ समाचार हो ही नहीं सकता। भारत को आजाद करने के लिए ही तो हमने

अंग्रेजी सेना को छोड़ दिया है।"

यशवन्तसिंह चला गया। उसके जाने के पश्चात् मानसिंह ने कहा:—"बेचारा यशवन्त अपने घर के लिए बड़ा चिन्तित रहता है।"

हरनामसिंह ने हँसकर उत्तर दिया :—"घर जाने के लिए कौन सैनिक आतुर नहीं होता।"

मानसिंह ने कहा:—"मेरा तो यह प्रण है कि, घर तभी जाना चाहिए जब विजय प्राप्त होजाय। मनुष्य जब बाहर से घर आता है तब कोई-न-कोई घर वालों के लिए उपहार, भेंट, और सौगात लेकर ही आता है। अपनी माँ के लिए जब तक हम उपहार लेकर नहीं जाते तब तक हमारा जाना ही व्यर्थ है। हमारी साधना, तपस्या और उद्देश्य तभी पूर्ण होंगे जब हम अपने देश को अंग्रेजों के अधिकार से निकालकर स्वतंत्र कर सकेंगे। देश को संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों की पंक्ति में एक उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करना हमारा चरम लक्ष्य है। जब तक यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता तब तक हमको अपने घर के विषय में सोचना, अथवा वहाँ जाने का विचार करना भी अशोभनीय है, तथा कर्त्तव्य से च्युत होना है।"

हरनामसिंह :—"मेरा भी ऐसा ही विचार है। यशवन्तसिंह की वयस अभी हम लोगों से कम है, उसे घर का मोह होना स्वाभाविक है, परन्तु फिर भी वह अपने कर्त्तव्य-पालन में कोई त्रुटि भी नहीं करता। युद्ध-क्षेत्र में उसका साहस और शौर्य्य देखने योग्य होता है। कठिन-से-कठिन स्थान पर, जहाँ शत्रुओं की तोपें गोलें उगल रही हैं, वायुयान अनवरत बम-वर्षा कर रहे हैं, मशीनगनें निरन्तर गोलियों की बौछार कर रही हैं, वहाँ पर हम यशवन्तसिंह को उपस्थित पाते हैं, और वह शत्रुओं को बन्दी बना लेता है। सैन्य-संचालन, तथा आज्ञा-पालन करने में वह किसी भी विघ्न-बाधा की परवाह नहीं करता। आज तक जो भार भी उसके कन्धे पर डाला गया है, वह पूरा होकर ही पार उतरा है। उसको कितने तमगे, और प्रशंसा-पत्र मिले हैं, तथा मिलते जा रहे हैं। ऐसी धीरता, साहस और दृढ़ता बहुत कम सिपाहियों में देखने को मिलती है। मेरा तो विश्वास है कि वह एक दिन प्रधान सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित होगा।"

मानसिंह ने अनुमोदन करते हुए कहा :—"मेरा भी ऐसा ही अनुमान है। आज उसको कोई गुरु भार देने के लिए ही बुलाया गया है। फील्ड मार्शल युयुत्सकी को उसके ऊपर पूर्ण विश्वास है। मलय और पनंग से अंग्रेजों का नाम मिटाने वाला यही यशवन्तसिंह तो है। युद्ध-क्षेत्र में उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र और सूझ बड़ी पैनी हो जाती है। यद्यपि हम लोग उससे

कहीं पुराने सैनिक हैं, तथापि वह सभी गुणों में हमसे आगे है।"

हरनामसिंह ने सहास्य कहा :—"यह कहावत बिलकुल ठीक है:—'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' संसार में किसी विशिष्ट कार्य सम्पादन के लिए उसने जन्म धारण किया है। उसकी उन्नति में हमारी भी उन्नति है, हमारे देश की उन्नति है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि भारत को स्वतन्त्रता उसी के हाथों मिलेगी।"

मानसिंह ने प्रसन्न कण्ठ से कहा :—"हमको भगवान् से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वह अंग्रेज सेना पर विजयी हो। भारत की दासता के पाश काटने में समर्थ हो। क्यों, तुम उस दिन की कल्पना करो जब हम विजयी होकर दिल्ली में प्रवेश करेंगे।"

हरनामसिंह ने हँसते हुए उत्तर दिया :—"यही कल्पना तो रात-दिन किया करता हूँ। यह निश्चय समझो मानू, विजय हमारी अवश्य होगी। अंग्रेजों का भाग्य-नक्षत्र अस्ताचल-गामी है। एशिया और भारत की प्रभुता के दिन आ रहे हैं। देखो, यशवन्त भी आ रहा है, उसका मुख खिला हुआ है। कोई शुभ समाचार अवश्य है।"

मानसिंह ने उसका समर्थन करते हुए कहा :—"हाँ, विदित तो ऐसा ही होता है। उसके लम्बे-लम्बे डग कुछ ऐसा ही सूचित कर रहे हैं।"

यशवन्तसिंह ने उनके समीप पहुँचकर कहा :—"मित्रो, आज हमारी साधना सफल हुई। फील्ड मार्शल ने मुझको आज्ञा प्रदान की है कि मैं अपनी सेना के साथ भारत को स्वतन्त्र करने के लिए पहला कदम उठाऊँ। उन्होंने अन्दमान पर, जो भारत का ही एक भाग है, जो क्रान्तिकारियों और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करनेवालों की कब्र बनकर प्रतिष्ठित है, अथवा जो भारतीयों की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों की अन्तिम लीलाभूमि रही है, प्रथम आक्रमण करने का आदेश प्रदान किया है। उसको हम अपनी आगामी सैनिक कार्यवाहियों की आधारभूमि बनाएंगे, और वहाँ से भारत के पूर्वीय तट पर हमारे आक्रमण होंगे। उनका हमारी सेना पर पूर्ण विश्वास है, और तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि स्थल सैन्य-संचालन का सम्पूर्ण भार मुझ पर डाला गया है। मुझे लेफ्टीनेन्ट कर्नल बनाया गया है, और यह आदेश दिया गया है कि मैं उस पर अभी फिलहाल जापान का प्रतिनिधि होकर शासन स्थापित करूँ। इसके यह अर्थ कदापि नहीं है कि अन्दमान पर जापानी प्रभुत्व रहेगा। उन्होंने स्पष्ट रूप से वचन दिया है कि कुछ दिनों के पश्चात् अन्दमान और निकोबार दोनों द्वीपसमूह भारतीयों के आधीन कर दिये जायंगे।"

मानसिंह और इस्लामसिंह ने उसको प्रसन्नता से अपने गले लगा लिया, और अपनी भुजाओं में भरकर उठा लिया।

उन्होंने जय-घोष किया :—"भारत माता की जय।" दूसरे भारतीय सैनिकों ने भी, जो वहाँ आगए थे, बिना कारण जाने हुए उस जय-घोष में अपना योग प्रदान किया। मानसिंह की प्रसन्नता का पारावार न मिलता था। उसने एकत्रित सैनिकों को लक्ष्य करके कहना आरम्भ किया :—"भाइयो, तुमको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हम लोग अपने लक्ष्य की ओर शीघ्र ही अग्रसर होने वाले हैं। जब हमने अंग्रेजों का परित्याग किया था, तब कुछ अपने स्वार्थभाव से नहीं किया था। हमारे देश पर जो गुलामी का बोझ लदा हुआ है, उसको उतारने के उद्देश्य से ही हमने जापान के साथ सहयोग किया था। जापान ने आश्वासन देकर हमें बुलाया था। आज वह उसको पूरा करने जा रहा है। हमारे मित्र लेफ्टीनेन्ट कर्नल यशवन्तसिंह के सुयोग्य हाथों में वह भार सौंपा गया है। उनके ऊपर सैन्य-संचालन का सारा भार डाला गया है। हमारा पहला आक्रमण अन्डमान और निकोबार द्वीपसमूह से आरम्भ होगा। ये दोनों टापू समूह हमारे देश के विशिष्ट भाग हैं, यद्यपि वे दोनों भारत की मुख्य भूमि से बंगाल की खाड़ी द्वारा पृथक् हैं, तथापि उनका महत्त्व ऐसा ही है जैसा कि उनके अन्य प्रदेशों का है। हम लोग शीघ्र ही, संभवत: आज ही शाम को, प्रस्थान करेंगे। भाइयो, अब हमारे शौर्य, साहस, कर्मण्यता, कर्त्तव्य-पालन आदि के प्रदर्शन का समय आया है। हमको विजय प्राप्त करनी है, अपना जीवन देकर भी भारत को मुक्त करना है। अतएव आइए, हम सब एक मन, एक विचार, एक उद्देश्य, और एक लक्ष्य होकर इस परम पावन यज्ञ का सम्पादन करें। स्वर्ग से नाना राव, ताँतियां टोपी, महारानी लक्ष्मीबाई, सम्राट् बहादुरशाह, कुँवरसिंह आदि-आदि स्वतन्त्रता के पुजारी हमारे इस द्वितीय प्रयास को सफल बनाने के लिए अपने-अपने आशीर्वाद भेज रहे हैं। हम अपना कार्य उस स्थान से आरम्भ करने जा रहे हैं जहाँ की विभूति, जहाँ का प्रत्येक रज-कण शहीदों के खून से लथ पथ है, और हमारे लिए परम पवित्र हैं। वह हमारे लिए एक देव-स्थान की भाँति है। उस पर अधिकार करने के अर्थ होंगे, अपने उद्देश्य का श्रीगणेश होना।"

मानसिंह ठहर गया। सैनिकों ने एक स्वर से कहा:—"हम अवश्य अपना लक्ष्य प्राप्त करेंगे, और भारत को स्वतंत्र करेंगे।"

यशवन्तसिंह ने आगे आकर कहा:—"जब आपका यह निश्चय है तब हमको लक्ष्य-भ्रष्ट करने वाला कोई नहीं है। हम अवश्य सफल होंगे

मुझको अभी-अभी आदेश मिला है कि मैं आप लोगों को लेकर आज संध्या के पहले-पहले अन्दमान की ओर प्रस्थान कर दूँ। मुझको तो केवल आपका सहयोग मातृ-भूमि के दासता-पाश काटने में प्राप्त करने की इच्छा है। आप जब सब एकमन और एकचित्त होकर इस पुण्य कार्य को करने का बीड़ा उठा लेंगे तो निश्चय मानिए कि आपको अवश्य सफलता मिलेगी। आप अवश्य ही भारत-माता की बेड़ियां काटने में समर्थ होंगे, और अंग्रेज लुटेरों को निकालकर ही विश्राम लेंगे। हमारा लक्ष्य तो लाल किले पर अपना राष्ट्रीय झंडा फहराना है, उसके प्राङ्गण में हमारी अन्तिम कवायद होगी, और हमारी कमरें वहीं पर खुलेंगी। परन्तु दिल्ली पहुँचने में अभी देर है, और हम क्रमशः ही उस पर अपना अधिकार स्थापित कर सकेंगे। हमारे देश के असंख्य वीरों ने इस पवित्र कार्य में अपने प्राणों की बलि प्रदान की है, आज हमको उनके आरंभ किये हुए कार्य को पूर्ण करना है, अतएव हमें एक-सूत्र में आबद्ध होना आवश्यक है।"

सैनिकों ने उत्तर दिया:—"अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचना ही हमारा ध्येय है। हम आपको अपना पूर्ण सहयोग देंगे।"

यशवन्तसिंह कहने लगा:—"जब आपका सहयोग हमें प्राप्त है तब विश्वास कीजिए कि आपका उद्देश्य सफल हो जायगा।"

हरनामसिंह ने यशवन्तसिंह को उठाते हुए कहा:—"देखिए यह हमारा नेता है, हमारा अफसर है, और हमारा सेनापति है। इसकी आज्ञा मानना हमारा परम धर्म है। यह महान् कार्य किसी एक व्यक्ति के बूते के बाहर की बात है, परन्तु यदि हम सब मिलकर करेंगे तो यही हमारे लिए सहज और सुगम होगा। आपको अभी तक अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है, आपमें प्रत्येक व्यक्ति महावीर की भाँति बलवान है। अभी तक आपकी शक्तियों का विकास परतंत्र होने के कारण नहीं हुआ है, अब अवसर आने पर वह विकसित होगा। आप अपने शौर्य तथा पराक्रम से अंग्रेज बनियों को बता दें कि तुमने जो छल-बल कौशल से प्राप्त किया है, उसको हम तलवार के बल पर तुमसे छीन रहे हैं। भारत को इंग्लैंड अपनी जागीर समझता है। आज आप लोग उसकी जागीर पर अपना अधिकार करने जा रहे हैं। 'छीन लो इंग्लैंड की जागीर बन्दे मातरम्'।"

मानसिंह ने चिल्लाकर कहा:—"बन्दे मातरम्।"

यशवन्तसिंह ने अपना हाथ उठाते हुए कहा:—"बन्दे मातरम्!"

सैनिकों ने एक स्वर में जय-घोष किया:—"बन्दे मातरम्।"

पवन ने भी ध्वनित किया "बन्दे मातरम्।"

यशवन्तसिंह ने कहा:—"वन्दे मातरम् का जय-घोष करने वाले शहीदों की समाधि भूमि-अन्दमान को हम प्रस्थान करते हैं।" उन्हीं का सिखाया हुआ मंत्र 'वन्दे मातरम्' कहते हुए पवन उस मंत्र का जाप करता हुआ अन्दमान को वह शुभ समाचार सुनाने के लिए आकुल होकर भागा।

१८

कनक को यह ज्ञात नहीं हो सका कि अन्दमान के गवर्नर उसके पूर्व परिचित मिस्टर निक्सन हैं। वह एक कैदी थी, उसके लिए शासन संबंधी बातों के जानने का कोई कारण भी नहीं था। वह तो तन-मन से घायलों और रामनाथ की सेवा में रत थी। डाक्टर सेन ने उपयुक्त अवसर पाकर रामनाथ को कनक की उपस्थिति की सूचना दे दी थी। उसको आश्चर्य और दुःख दोनों हुए। अभी तक वह उर्मिला की ओर से निश्चिन्त था। उसे विश्वास था कि कनक के साथ उसके जीवन के अवशिष्ट दिन किसी-न-किसी भाँति बीत जायंगे, परन्तु उसको वहाँ पाकर उसकी चिन्ताओं का वार-पार न रहा। उर्मिला के लिए वह तड़पने लगा। कनक ने यद्यपि उसे आश्वासन प्रदान किया कि वह बिलकुल अकेली नहीं है, देवकीनंदन उसकी रक्षा का भार अवश्य ग्रहण करेंगे, तथापि रामनाथ की चिन्ताओं का अवसान नहीं था। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह किस प्रकार अपने दिन काटेगी? उसमें जो परिवर्त्तन हुए थे, उनका ब्यौरेवार वर्णन करके कनक जितना ही उसकी चिन्ताओं को कम करने का उद्योग करती, उतना ही उसका दुःख बढ़ता जाता था। उसके विचार केवल उर्मिला को लेकर ही व्यस्त रहते। वह केवल उसी के सम्बंध में रात-दिन सोचा करता।

अर्ध-रात्रि से अधिक बीत चुकी थी। कृष्ण-पक्ष की दशमी का चन्द्रमा वक्र होकर पूर्व दिशा के क्षितिज से निद्रित संसार को देखने का प्रयत्न कर रहा था। रामनाथ कनक के साथ उर्मिला के सम्बंध में बातें करता हुआ सो गया था। उसके समीप ही एक कुर्सी पर बैठी हुई कनक उस निस्तब्धता में अपने विचारों की उलझन में व्यस्त थी। वह सोच रही थी:—"मेरे जीवन में यह कैसा विषम परिवर्त्तन हो रहा है यहाँ पर आकर न मालूम किस माया-जाल में मैं फँस गई हूँ, और शनैः-शनैः फँसती जा रही हूँ। इस रामनाथ से मेरा ऐसा कौन सम्बंध है जो मैं इसके लिए आकुल होती हूँ, दुखी होती हूँ, और इसको सुख तथा शान्ति प्रदान करने से मेरे मन को भी सन्तोष प्राप्त होता है। पुरुषों के प्रति मेरे मन में सद्-भावनाएं तो कभी नहीं रही हैं, उनको मैंने सदैव अत्याचारी, स्वार्थ-लोलुप, दुष्ट-प्रकृति, विश्वास-घाती आदि-आदि समझती चली आ रही हूँ। स्त्री-जाति का शोषण करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य मानती आ रही

हूँ। नारी मानव की सारी दुर्दशा, उनकी अधोगति का कारण पुरुष-जाति को ही ठहराती आ रही हूँ। उनको धूर्त, प्रपंची, और छली प्रमाणित करती रही हूँ। वे मेरी घृणा, मेरे तिरस्कार के पात्र सदैव रहे हैं। उनको नारी जाति का शत्रु ही समझा है, और उसी का प्रचार किया है। उनके प्रति मेरे मन में कभी कोई कोमल भावना, दया आदि के भाव जाग्रत नहीं हुए, और न कभी उनको अपने मन में उदित होने दिया है। मैं सदैव विश्वास करती आई हूँ कि उनके जीवन का ध्येय केवल नारी-जाति को गुलाम बनाना है, उसकी सत्ता को नष्ट करना है, उसके जीवन के सौख्य आदि को धूल में मिलाना है। उसकी जीवन-भित्ति का निर्माण नारियों के शवों, और कंकालों की नींव पर होता है। उसकी साध तो नारियों के नाश करने से ही पूर्ण होती है। उसकी पिपासा नारियों के रक्त पीने से मिटती है। मैंने उनको नारी जाति के प्राण-घातक रूप में ही देखा है। प्रकृत जीवन में उसको वैसा ही पाया भी है। प्रत्येक घर में, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण देखने में आते हैं। पुरुष, संसार का निरंकुश, स्वेच्छाचारी, स्वार्थी और अत्याचारी प्राणी है। इसमें कोमल भावनाओं का सर्वथा अभाव है। इन कलुषित भावनाओं के बढ़ाने में नारी जाति उसकी सहायता करती है। यदि वह भी उससे असहयोग करे तो संभव है कि उसके स्वभाव में परिवर्त्तन हो। हम उसके अत्याचारों को मौन होकर सहन कर लेती हैं इसलिए वह और उद्दण्ड हो जाता है। किसी वस्तु या कार्य का विरोध उसका समत्व स्थापित करने में सहायक होता है। पुरुष की निरंकुशता इसीलिए बढ़ती गई है, क्योंकि नारी जाति ने अपने को निर्विरोध होकर समर्पित कर दिया है।

"इन दिनों मेरे मन में यह प्रश्न उठने लगा है, कि क्या सभी पुरुष उसी भाँति निरंकुश और उद्दण्ड होते हैं? क्या सभी प्रकृति के विपरीत चलकर स्त्री जाति को उसके अधिकार से वंचित करते हैं? रामनाथ भी उसी पुरुष जाति का एक मानव है। उर्मिला के साथ क्या वही अत्याचार करता है? क्या वह उर्मिला अधिकारों को नाश करने के लिए उद्यत रहता है? क्या उसकी समस्त चिन्ताओं का केन्द्र उर्मिला नहीं है? यह तो मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ, अनुभव कर रही हूँ। इसी रामनाथ ने नारी के साथ जो अत्याचार किया गया था, उसका प्रतिशोध अपने ही जाति के एक व्यक्ति से लिया है, यहाँ तक कि उसकी समस्त दुरवस्था का वही कारण हुआ है, पुरुष; पुरुष में भी अन्तर है, और क्या उसी भाँति नारी और नारी में अन्तर नहीं है? सभी पुरुष एक-से नहीं होते, और शायद सभी स्त्रियाँ भी एक तरह की नहीं होतीं। सबकी प्रकृति भिन्न-भिन्न अवश्य है। परन्तु

पुरुष अधिकतर नारी के अधिकारों की उपेक्षा ही करता आया है, उसको उसने अपना गुलाम बनाया है, और उसी भाँति सदैव रखना चाहता है।

"क्या स्त्री अकेली रहकर अपना जीवन व्यतीत करने में असमर्थ है? क्या उसके जीवन में पुरुष की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है? क्या नारी का जीवन पुरुष के बिना अधूरा है? जब इन प्रश्नों का उत्तर अपने हृदय में ढूँढ़ती हूँ तो ज्ञात होता है कि उसके जीवन में उसका अभाव कुछ खटकता अवश्य है। मैं घायलों की सेवा करने में जितना आनन्द अनुभव करती हूँ, उतना किसी अन्य काम में नहीं आता। इसके समक्ष सभी काम नीरस प्रतीत होने लगे हैं। उनके हृदय में मेरे लिए एक उत्कंठा सदैव जाग्रत रहती है, और मुझे स्वयं उनकी ओर आकर्षित कर देती है। उनकी पीड़ा को जब आराम मिलता है तब वे कैसे प्रसन्न होते हैं, कितने सन्तुष्ट होते हैं, और आशीर्वादों से अपने मन की कृतज्ञता को प्रकाशित करते हैं। असहाय अवस्था में दुर्दान्त पुरुष बालक से भी अधिक कोमल और भावनाओं में निर्मल हो जाता है। वह नारी की सहायता की प्रार्थना करता है, उसको वह ग्रहण करने के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने को उद्यत रहता है। डाक्टर सेन भी उस दिन कहते थे कि पुरुष और स्त्री का निर्माण भगवान् ने अपनी दो शक्तियों को पृथक् पृथक् करके किया है। पुरुष उसका कर्त्ता-रूप है, और स्त्री उसका पोषक-रूप। इन वचनों में तो सत्यता प्रकट होती है। मानव जाति के अतिरिक्त अन्य जातियों के प्राणियों को देखने से यही ज्ञात होता है। तब यही सत्य है, पुरुष और स्त्री एक दूसरे की पूर्त्ति करते हैं—वे दोनों परस्पर पूरक हैं। दोनों का संमिश्रण ही सृष्टि के विकास का कारण है।

"मैं भी अपने जीवन में कुछ शून्य, कुछ अभाव, कुछ अकेलापन, कुछ अपूर्णता अनुभव करती हूँ। दूसरों के बच्चों को देखकर मेरे मन में कभी-कभी एक आह निकल जाती थी जिसको मैं उस समय समझने में असमर्थ थी, परन्तु आज तो वह स्पष्ट है। मेरे लिए घायलों की पुकार तथा चाहना ने मेरे मन में यह इच्छा जाग्रत की है कि कोई मेरे लिए भी चिन्तित हो, मेरी कामना करे, मेरी राह देखे, मुझे देखकर उसका आन्तरिक हृदय खिल जाय, उसकी आँखें प्रसन्नता से नाचने लगें। न मालूम क्यों ऐसी भावनाएं मेरे मन में अहर्निश उठने लगी हैं।

"रामनाथ, एक ऐसा पुरुष है, जिसको प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो रही है। उसको अपना जीवन-साथी बनाने के विचार निरंतर उठ रहे हैं। जितना वह उर्मिला के लिए दुखी होता है उतना क्या मेरे लिए नहीं हो

सकता। जिस प्रकार उसके जीवन में उर्मिला समाई हुई है, क्या वैसे ही मैं उसकी नस-नस में नहीं समा सकती ? वह तो उर्मिला को लेकर ही व्यस्त है। उर्मिला का यहाँ तक पहुँचना असंभव है। तब क्या उसके रिक्त स्थान की पूर्ति मैं करूँ ? क्या मैं रामनाथ के जीवन में प्रवेश करूँ, और क्या वह इसे स्वीकार करेगा ? यही तो वास्तविक प्रश्न है, जिसकी उधेड़-बुन में मैं लगी रहती हूँ।

"रामनाथ कितना महत् हृदय है, कितना उच्च है, कितना महान् है। एक स्त्री की रक्षा में उसने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। स्त्री के अपमान का प्रतिशोध वह उस पुरुष के प्राणों द्वारा लेता है। वह वास्तव में वीर, और महत् है। जैसे उसके सुन्दर विचार हैं वैसा ही उसका शारीरिक सौन्दर्य भी तो है। उसका गठित रूप देखने की इच्छा सदैव बनी रहती हैं, आँखों की तृष्णा मिटती ही नहीं।

"इस समय समग्र संसार निद्राधीन है, रामनाथ भी सो रहा है, और दूसरे घायल भी सो रहे हैं। किन्तु मेरी आँखों में नींद नहीं है। वे रामनाथ को ही निरंतर देखना चाहती हैं, उसी के पास बैठे रहना चाहती हैं। उफ् ! मैं किस ओर प्रस्थान कर रही हूँ। मेरा मन मुझे कहाँ लिये जा रहा है ? इस बंदी जीवन में क्या रामनाथ के मिलन की कामना पागल के प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ है ?"

कनक ठहर गई। उसकी विचार-धारा में भँवर उत्पन्न हो गई। वह पुनः उसमें चक्कर लगाने लगी। स्थान की एकान्त अवस्था, रात्रि की निस्तब्धता, वायु की मादकता सभी उसके मन से खेलने लगीं और उसको परास्त करने के प्रयत्न में उद्यत हो गईं। उन सबों ने उसके नेत्रों को ले जाकर रामनाथ पर केन्द्रित कर दिया। उसके मन में एक पीड़ा उठने लगी। वह उसे रामनाथ के सिर के समीप खिसकने के लिए बारम्बार उत्तेजित करने लगी। विरोधी मन ने हार मानी, वह और उसके समीप आ गई। नेत्रों ने अतीव आनन्द प्राप्त किया। उस पीड़ा में कसक थी, किन्तु मीठापन भी था। वह उसे और आगे ठेलने लगी। उसका सिर झुक गया। धीरे-धीरे वह रामनाथ के कपोलों के पास आ गई। उसकी तप्त निश्वासों को वह पीने लगी। उसकी एक-एक निश्वास के पान के साथ उसमें बेसुधी और मादकता उत्पन्न होने लगी। विचारों ने साथ छोड़ दिया, वे नशे में बेहोश हो गए, और विरोध करना त्याग दिया। मन मदमन्त होकर नाचने लगा इन्द्रियों की बुभुक्षा उद्दीप्त हो गई। उन्होंने उसके मन पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। मन उनके मोहक-जाल में बिद्ध होकर उनके साथ क्रीड़ा

करने में संलग्न होगया। उसका अपना रूप मिट गया। वह और आगे बढ़ी, उसका मुख उसके शुष्क ओष्ठों के समीप आ गया। अर्ध-सुप्त और अर्ध-मूर्छित विवेक ने विरोध में कुछ अस्पष्ट प्रलाप-सा किया। इन्द्रियों की उद्दीप्त भूख ने तड़पकर उसका गला घोंट दिया। उसके ओष्ठ रामनाथ के शुष्क पपड़ाए हुए ओष्ठों से मिल गए। रोमाञ्चकारी तड़ित्प्रवाह उसके अंग-प्रत्यंग में दौड़ने लगा। उसके मन में एक कम्पन होने लगा, जिसमें अद्भुत आनन्द था, हर्ष था, और एक प्रकार की तुष्टि थी, जिसका अनुभव आज से पूर्व कभी नहीं हुआ था। सहसा रामनाथ के नेत्र खुल गए। वे कनक की आँखों से मिलकर इस अप्रकृत कार्य का कारण पूछने लगे। वह झिझकी, ठिठकी, और खड़ी हो गई। उसका विवेक और ज्ञान आँख मलता हुआ उठ खड़ा हुआ। उधर आकाश में वक्र चन्द्रमा ने बादल की ओट में अपना मुँह छिपा लिया, और अरुण-शिखा व्यथित होकर चिल्लाने लगा। कनक का मन अपराध की गुरुता से दबकर नतशिर होकर एक ओर क्षुब्ध खड़ा हो गया। इन्द्रियों के सुखद कम्पन में ज्वाला उत्पन्न हो गई। रामनाथ को मौन प्रश्न का उत्तर देने में यह असमर्थ हो गई। उसकी दृष्टि उसे दग्ध करने लगी। उससे त्राण पाने के लिए वह बाहर भागी। वायु की शीतलता उसे आश्वासन प्रदान करने लगी। चन्द्रमा प्रकट होकर उसे सान्त्वना देने लगा, और आकाश के कुछ थोड़े-से तारे झिलमला झिलमिला-कर उसके साथ सहानुभूति का सन्देश भेजने लगे। उसका चिर-पोषित गर्व, चूर्ण-विचूर्ण होकर उससे विदा माँग रहा था। अपराधिनी के पास वह रहने के लिए तैयार नहीं था।

कनक इन आघातों तथा प्रतिघातों से त्राण पाने के लिए हरी घास के गद्दे पर गिर पड़ी। उनकी नोकों पर स्थित ओस की बूँदें उसके विदग्ध और अपवित्र ओष्ठों को शीतल और पवित्र करने का प्रयत्न करने लगीं। क्लांति और अवसाद उसकी सहायता के लिए अग्रसर हुए। निद्रा उसको थपकियाँ देकर सुलाने लगी।

१६

उर्मिला ने बड़ी विकलता के साथ प्रश्न किया—"मिस साहबा, कुछ पता चला या नहीं?"

पामीला ने सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया। उर्मिला के मुख से वेदना से नहाई हुई एक आह निकली, जो पामीला को भी दुःखित करने लगी।

उर्मिला मन-ही-मन पिछले हवाई आक्रमण के सम्बन्ध में विचारने लगी।

पामीला ने उसको मौन देखकर कहा:—"अभी, क्या सोच रही है ? तुझे निराश देखकर मेरे मन में बड़ी पीड़ा होती है। तूने मुझको क्या कर दिया है पगली ! तुम्हारा देश जादू आदि के लिए प्रसिद्ध है, क्या तू भी वह विद्या जानती है, और क्या तूने उसका मुझ पर प्रयोग किया है ?"

उर्मिला ने हँसने का व्यर्थ प्रयत्न किया।

पामीला ने व्यथित हृदय से उसका निष्फल प्रयत्न देखा। वह उसके समीप आ गई, और कहने लगी—"उर्मि ! मैं एक दूसरे देश की रहने वाली तुझसे नितान्त अपरिचित हूँ, फिर भी मैं तेरे लिए सदैव कातर रहती हूँ। तुझको मैं प्यार करती हूँ, यदि मैं पुरुष होती और तुझ पर मुग्ध होती तो भी शायद वह प्यार मेरे इस प्यार से अधिक नहीं होता।"

उर्मिला ने शुष्क हँसी के साथ कहा:—"मिस साहबा इस ग़रीब पर आपकी अनन्त कृपा और दया है। कनक दीदी भी मुझे इसी भाँति चाहती थी।"

पामीला ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा:—"कनक ही क्यों, जो तेरे संसर्ग में आयगा, वही तेरे पर अपना प्राण न्योछावर कर देगा। तेरी इन काली आँखों से जो सरलता, निष्कपटता, पवित्रता, और स्नेह की धाराएं अहर्निश, निरन्तर अविराम रूप से प्रवाहित होती रहती हैं, वे सबको अपने प्रति आकृष्ट कर लेती हैं। तू अपने को उनके हाथ में समर्पण करके उन्हें मोल ले लेती है। कहती तो हूँ, कि मैं तुझसे प्रेम करती हूँ, उस प्रकार जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से करता है। बोल, तू मेरी प्रेयसी बनेगी।"

पामीला उसके दुःख का पहाड़ ठेलने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु चातक की प्यास तो साधारण जल से नहीं मिटती। किन्तु इतने आदर, और स्नेह का वह तिरस्कार भी तो नहीं कर सकती थी। उसने मानसिक पीड़ा को दबाते हुए एक बार फिर हँसने का प्रयत्न किया। हास्य मुरझाया हुआ था, आनन्द की किलकारी से सर्वथा शून्य था।

पामीला ने उसे गुदगुदाते हुए पूछा:—"बोल, मेरी प्रेयसी बनेगी ?"

उर्मिला ने हँसकर कहा:—"किन्तु एक नारी दूसरी नारी की प्रेयसी नहीं बन सकती। हाँ उसकी सखी, भगिनी, माता और स्वामिनी हो सकती है। मिस साहबा, आप मेरे लिए चारों एक साथ हैं।"

पामीला हँस पड़ी, और कहने लगी:—"मैंने तो तेरा एक रूप माँगा था, और दिए तूने चार रूप। परन्तु ये सब मेरे लिए निरर्थक हैं। मैं चाहती हूँ तेरी वह तन्मयता, वह एकान्त बलिदान, जो तू रामनाथ के लिए ही सुरक्षित किये हुए है, तेरे मन के उस गढ़ में प्रवेश करने का अधिकार

क्या तू दूसरे को नहीं देगी ?"

उर्मिला के नेत्र नत हो गए। पामीला ने उसको अपनी भुजाओं में भर लिया। वह बार-बार अपने प्रश्न को दोहराने लगी। उर्मिला ने उसके उर में सिर छिपाते हुए अत्यन्त धीमे स्वर में कहा:—"नहीं ऐसी बात मत कहो मिस साहबा ! ऐसी बातों से पाप लगता है।"

पामीला ने उसको अपने हृदय से चिपकाते हुए कहा:—"अरे पगली, इसमें पाप की कौन बात ? हम लोग तो ऐसा करने में कोई पाप नहीं समझतीं। जब तक पटती है, हम उसके साथ रहती हैं, और न पटने पर भी अपना-अपना मार्ग पृथक् कर लेती हैं। किसी एक की दासता नहीं करतीं।"

उर्मिला ने सरलता के साथ उत्तर दिया:—"आपके देश की प्रथा हमारे देश से भिन्न है। आपको उसमें सुख है, और मुझको इसमें। हम दोनों अपनी-अपनी दशा में ही सुखी हो सकती हैं।"

पामीला ने सहास्य कहा:—"मेरी इच्छा है कि तू मेरे देश की प्रथा स्वीकार करे, और......।"

उर्मिला ने उसका मुख बन्द करते हुए कहा:—"आगे मत कहो मिस साहबा, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। मैं तपस्या करना जानती हूँ, यदि उसमें असमर्थ हो जाऊँ तो प्राणों का विसर्जन करना भी जानती हूँ। हमारे देश की माताएं अपनी कन्याओं को यही शिक्षा देती हैं कि अपने पति, और पुत्र के सुख और शान्ति के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन कर दो। त्याग और बलिदान का पाठ हमें आरम्भ से ही पढ़ाया जाता है, और हम उसमें अपनी निष्कृति और मुक्ति समझती हैं।"

पामीला ने उसके नेत्रों के भीतर देखते हुए कहा:—"तब तो मुझे रामनाथ का पता लगाना ही होगा। वह चाहे जहाँ हो, ढूँढ़कर निकालना होगा। पापा से पूछने का साहस नहीं होता। वे तो ऐसे नहीं हैं, किन्तु उनके साथ चन्द्रनाथ उन्हें कुमार्ग पर लिये जा रहा है। यह मनुष्य शैतान का अवतार है। आपको मुझसे प्रेम करने का शौक उत्पन्न हुआ था, किन्तु मैंने भी उसे वह पाठ पढ़ाया जिससे उसका सारा उत्साह भंग हो गया। वह अब भी लुब्ध दृष्टि से मेरी ओर देखता है, किन्तु साहस नहीं पड़ता। कनक को हस्तगत करने के लिए वह पापा के साथ आया है। वह रुपए के बल से सबको अपना गुलाम बनाना चाहता है। रुपए का लोभ उसने पापा को भी अवश्य दिया है, तभी वे उसके कहने के अनुसार कार्य करते हैं। उसने पाप से कहकर मुझे कहीं आने-जाने से मना करवा दिया है।

किन्तु आज जैसे भी हो जेल में जाने का प्रयत्न करूँगी। चन्द्रनाथ समझता है कि मैं कनक को सतर्क कर दूँगी, परन्तु कनक के पास उसके लिए तिरस्कार और घृणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"

उर्मिला की आँखें भय विह्वल हो गईं। उसने पामीला को बड़ी आतुरता के साथ पकड़ते हुए कहा:—"चन्द्रनाथ से दीदी की रक्षा करो मिस साहबा! जब जहाज़ पर आपने उसकी उपस्थिति की सूचना दी थी तभी मेरा मन आशंकित हो गया था। मुझे यह भय हुआ था कि वह किसी सदुद्देश्य से अपने जीवन को जोखम में नहीं डाल रहा है। उसी ने तो इतने मजदूरों का खून कराया है। भगवान् कब उन निरपराधों के खून का बदला लेगा? नहीं जानती कि कब इसकी पाप-लीला समाप्त होगी!"

पामीला ने उसे आश्वासन देते हुए कहा:—"तुम इसकी चिन्ता मत करो। कनक की ओर से निःशंक रहो। वह स्वयं अपनी रक्षा करने में उसी भाँति समर्थ है जितनी कि मैं। मैं किसी भाँति चन्द्रनाथ का कुचक्र नहीं चलने दूँगी। अब उसके पापों का घड़ा भरने ही वाला है। वह अपने को निरापद समझता है, परन्तु वह नहीं जानता कि मृत्यु उसकी घात में आ गई है। तुम किसी बात की शंका मत करो, मेरी प्रेयसी।"

यह कहते हुए उसने उर्मिला को सादर चूम लिया।

उर्मिला ने विनय पूर्ण स्वर में कहा:—"इस विपत्ति में केवल आपका आधार है मिस साहिबा। हम दोनों की लाज बचाना आपके आधीन है। भगवान् और आपके अतिरिक्त किसी अन्य का सहारा नहीं है। उसी की कृपा ने आपके हृदय में मेरे लिए इतना स्नेह उत्पन्न कर दिया है।" कहते-कहते उसकी आँखें आर्द्र हो गईं। कृतज्ञता से उसका कण्ठ भर आया। शब्द उसी दल-दल में फँस गए।

पामीला ने उसकी पीठ पर सहोदरा की भाँति हाथ फेरते हुए कहा:—"मेरे रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होने पायगा। मैं रामनाथ को मुक्त कराने का पूर्ण उद्योग करूँगी। यहाँ का नियम है कि जो कैदी अपने चरित्र को ठीक रखते हैं, सरकार उन्हें स्वतन्त्र रूप से इस द्वीप में रहने का अधिकार प्रदान कर देती है। मैं पापा के द्वारा ऐसा ही उद्योग करूँगी कि जिससे तुम दोनों को वे अधिकार प्राप्त हो जायं। अब तुम बैठो मेरी रानी, मैं तुम्हारा काम करने जाती हूँ। आज किसी-न-किसी प्रकार जेल जाकर रामनाथ का पता लगाकर लौटूँगी। हो सका तो कनक से भी साक्षात् करूँगी।"

यह कहकर उसने पुनः उर्मिला का कपोल चूमा, और हँसती हुई

बाहर चली गई। उर्मिला खड़ी हुई अनिमेष नयनों से उसको देखती रही। उसकी समस्त सद्भावनाएं उसके साथ जा रही थीं। उसके दृष्टि ओझल होते ही उसके मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। उसके मन ने कहा:—"जैसी भगवान् की इच्छा होगी, वैसा ही होगा। भगवान्! इस निःस्वार्थ रमणी की रक्षा करना। इसको सभी अनिष्टों से बचाना। आवश्यकता हो तो उसके बदले मेरे प्राणों को ले लेना।"

सन्तप्त हृदय का आशीर्वाद शत-शत रूप धारण करके पामीला की रक्षा के लिए आगे बढ़ा।

२०

चन्द्रनाथ ने मिस्टर निक्सन से पूछा:—"आपने पामीला को जेल के कैदियों के देख आने की आज्ञा दे दी है?"

निक्सन ने मन्द मुस्कान के साथ कहा:—"हाँ, वह अपनी माँ के साथ गई है। क्यों, क्या बात है! आओ बैठो, तुमसे बहुत बातें करनी हैं।"

चन्द्रनाथ ने अपने क्रोध को हँसी से ढकते हुए कहा:—"कुछ नहीं। उस दिन आप ही कह रहे थे कि पामीला को कहीं जाने न दूँगा, क्योंकि वह कनक को सतर्क कर सकती है।"

निक्सन ने चन्द्रनाथ को बैठाते हुए कहा:—"उसकी माँ को यहाँ से टालने का एककारण है। कनक की ओर से तुम कोई चिन्ता न करो। मैंने आज प्रातःकाल उसको एकान्त कोठरी में भेजने का आदेश दिया है। नर्स के कामसे उसको मुक्ति मिल गई है, क्योंकि जहाज की नर्सें बुला ली गई हैं। उसको बाहर रखना निरापद नहीं था, अतएव उसको उसकी पुरानी कोठरी में भेज दिया है। पामीला उससे मिल नहीं सकती, क्योंकि राजनीतिक कैदियों से बिना मेरी आज्ञा के कोई साक्षात् नहीं कर सकता; और वह आज्ञा मैंने उसे दी नहीं, अतएव वह कनक के समीप नहीं जा सकती!"

चन्द्रनाथ ने सन्तुष्ट होकर कहा:—"अब समझा! हाँ, आप क्या कह रहे थे!"

निक्सन ने एक ठंडी साँस लेकर कहा:—"वही कहने जा रहा हूँ मित्र! तुम मेरे लड़कपन के साथी हो, मैं तुमसे कोई बात नहीं छिपाऊँगा। चन्द्रनाथ, जिस प्रकार तुम कनक से प्रेम करते हो, उसी प्रकार मैं उर्मिला से प्रेम करता हूँ। चौंको नहीं, मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ। जब से उसको देखा है, तब से उसके रूप-जाल में आबद्ध हो गया हूँ। उसकी गर्वोक्ति ने मेरे हृदय में यह लालसा उत्पन्न कर दी है कि मैं उसका गर्व खण्डित करूँ, उसको अपना बनाकर उसका रूप-अहंकार

नष्ट-भ्रष्ट कर दूँ। इस कारण से मैं उसको अपने साथ यहाँ घसीट कर लाया हूँ। नए आर्डिनेन्स के अनुसार जिलाधीश को असीम अधिकार प्राप्त हो गए थे, उन्हीं का उपयोग करके मैंने अपना स्वार्थ साधन किया है। उसको भी काले पानी का दण्ड दिया, और यद्यपि कनक के आने के पश्चात् काले पानी के कैदियों को भेजना बन्द हो गया था, तथापि मैं अनेक प्रयत्नों के पश्चात् अपनी जिम्मेवारी पर उसको इस द्वीप में ले आया। जहाज पर भी मैंने बहुत बार प्रयत्न किया कि उसका मान भंग करूँ, परन्तु पामीला और उसकी माँ की निरन्तर उपस्थिति के कारण कोई अवसर नहीं मिला। यहाँ पर भी आकर जापानियों के द्वारा सारे आवास-स्थानों के नष्ट हो जाने से रहने के कमरों की कमी हो गई। यदि चाहता तो मैं उसको राजनीतिक कैदियों की जेल में भेज सकता था, परन्तु वहाँ जाने से मेरे उद्देश्य की सफलता में अनेकों बाधाएं उत्पन्न हो जाने की आशंका थी, उससे उसको पामीला के साथ ही रहने दिया। आज किसी प्रकार उसको और उसकी माँ को यहाँ से दूर भेज सका हूँ, अतएव मित्र मैं इस अवसर पर उस कामिनी का मान-भंग करने का विचार कर रहा हूँ।"

चन्द्रनाथ चुप रहा, वह कुछ बोला नहीं।

निक्सन कहने लगा:—"इस अवस्था में मेरे प्रेम से तुमको आश्चर्य होता होगा, आश्चर्य होने की बात भी है। मैं स्वयं चकित हूँ कि मेरे मन में यह भावना क्यों उत्पन्न हुई। अभी तक मैं केवल रुपये का लोभी था, अब तो यह नया रोग गले पड़ा है। यह भी जानता हूँ कि एक बुराई दूसरी बुराइयों को अपने साथ घसीट कर लाती है, परन्तु जानते-बूझते हुए भी अपने ऊपर अब मेरा नियंत्रण नहीं है। उर्मिला को प्राप्त करने के लिए मैं सब-कुछ त्याग करने को तैयार हूँ। उसका गर्व खण्डित किये बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। उसको हस्तगत करने के लिए न मालूम मैंने कितना छल, प्रपंच और जाल किया है।"

चन्द्रनाथ ने कहा:—"किन्तु वह एक भारतीय गँवार लड़की है। हाँ सुन्दर अवश्य है, परन्तु योरोपियनों-जैसी सुन्दरी तो नहीं है, इसके अतिरिक्त वह तुम्हारी······।"

निक्सन ने बीच में टोककर कहा:—"हाँ वह मेरा प्रस्ताव सहज स्वीकार नहीं करेगी। वह ऐसी ही अभिमानिनी है। उसकी गर्वोक्ति ही तो मेरे सारे प्रेम की जड़ है। उसके वे शब्द अभी तक मेरे कान में गूँज रहे हैं—'भारतीय स्त्रियों का विवाह केवल एक ही बार हुआ करता है, और वे अपने अपमान का बदला या तो प्राण लेकर चुकाती हैं, या प्राण को देकर

चुकाती हैं। भारतीय नारी मरना जानती है, और मारना भी जानती है।' उस ने मुझे चुनौती दी है। मुझे देखना है कि वह मरती है या मारती है। उसको पद-दलित करके मैं इसी प्रश्न का उत्तर देना चाहता हूँ। निक्सन किसी की गर्वोक्ति सुनने में सदा असमर्थ है।"

चन्द्रनाथ ने धीरे से कहा:—"तब तो यह प्रेम नहीं है, प्रतिहिंसा है।"

निक्सन ने जोश के साथ कहा:—"इसको तुम प्रतिहिंसा कहो, प्रतिशोध कहो, शैतानियत कहो कुछ भी कहो, मुझको उससे कोई प्रयोजन नहीं है। वह रूपवती है, और उसमें दम्भ और अहंकार है, उसको नष्ट करना मेरा उद्देश्य है। मित्र, इसमें मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।"

चन्द्रनाथ ने मलिन मुख से पूछा :—"वह क्या ?"

निक्सन ने उठकर कहा :—"तुम यहाँ बैठकर पहरा दो, कहीं पामी और उसकी माँ न आ जायं। वह पामी के कमरे में रहती है, अतएव मैं उधर जा रहा हूँ। यदि पामी आ जाय तो उसको बातों में तब तक उलझाए रखना, जब तक मैं वापिस न आजाऊँ। पामी से मैं इस घटना को छिपाकर रखना चाहता हूँ।" चन्द्रनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह चला गया। चन्द्रनाथ को उसका आदेश पालन करने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय न था।

पहले अपने सोने वाले कमरे में जाकर अल्मारी खोलकर ह्विस्की की बोतल निकाली, और एक ही सांस में उसे खाली कर दिया। फिर दबे पैरों जाकर पामीला के कमरे का दरवाजा थपथपाने लगा। उर्मिला पामीला के जाने के पश्चात् सो गई थी। सोते-सोते उसने एक भयंकर स्वप्न देखा था, उसी से जागकर वह शोक-मग्न थी। थपथपाने का शब्द सुनकर उसने दरवाजा खोल दिया। निक्सन ने भरा हुआ पिस्तौल हाथ में लिये हुए प्रवेश किया। उसका चेहरा लाल था, और आँखों से क्रूरता और भयानकता बिखरी पड़ती थी। उसके मुख से मदिरा की तीव्र गन्ध निकल रही थी। पामीला के स्थान पर उसको देखकर उर्मिला भयभीत नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी।

निक्सन ने पिस्तौल का लक्ष्य उसकी ओर करते हुए कहा :—"सुन्दरी, यदि मेरा कहना मान जाओगी, तो फिर तुमको इस पिस्तौल से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, नहीं तो इसकी सब गोलियाँ तुम्हारे सुन्दर कलेवर में बिंध जायंगी।"

उर्मिला भय-विस्फारित नेत्रों से निक्सन का शैतानी रूप देखने लगी। उसकी एक-एक माँस-पेशी काँप रही थी। उसकी लालसा अपने पैशाचिक

रूप से उसकी आँखों के बाहर झाँक रही थी। उसके कण्ठ से शब्द नहीं निकला, तालू से वह जड़ित हो गया।

निक्सन ने उसकी ओर अग्रसर होते हुए कहा:—जब से मैंने तुमको देखा है, और तुम्हारी गर्वोक्ति सुनी है, तब से तुम पर मुग्ध हुआ हूँ। यदि तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार करती हो, तब तो तुम इस द्वीप की रानी बनकर रहोगी। सब तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे, और यदि अस्वीकार करती हो, जैसा मुझे विश्वास है कि तुम नहीं करोगी, तो फिर तुमको, कनक को, और तुम्हारे पति को कुत्ते की मौत मरना पड़ेगा।"

यह कहता हुआ निक्सन आगे बढ़ने लगा। उर्मिला पीछे हटने लगी। उर्मिला की घिग्घी बँध गई, उसने बड़ी करुण दृष्टि से उसकी ओर देखा।

निक्सन कहने लगा:—"सुन्दरी, तुम्हारा कातर होकर देखना निरर्थक है। मेरे मन में दया का भाव उत्पन्न नहीं होगा। इसीलिए मैंने एक बोतल शराब पी ली है। आओ तुम भी थोड़ी-सी पियो। पीते ही तुम्हारे मन की कायरता नष्ट हो जायगी। संसार उपभोग के लिए बनाया गया है। जो उपभोग नहीं करते, वे मूर्ख हैं, उन्हें संसार अभागा कहता है। जो संसार के सुखों का भोग करते हैं, वे भाग्यवान् कहे जाते हैं। जीवन में ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते, केवल एक बार आते हैं। बुद्धिमान् वह हैं जो उनसे लाभ उठाते हैं, और मूर्ख वह हैं जो उनको खो देते हैं। तुम्हारे जीवन में भी यही अवसर आया है। तुम चाहो तो यहाँ की रानी बनकर राज्य कर सकती हो, और चाहो तो मरकर अपना अस्तित्व मिटा सकती हो। बोलो, कौन-सा मार्ग पसन्द करती हो?"

उर्मिला ने काँपते हुए कहा:—"आप मेरे पिता हैं, असंगत बात कहना···!"

निक्सन के भयंकर हास्य ने उसके शब्दों को और भी भयानक बना दिया। वह कहने लगा:—"तुम समझती होगी कि कोई चमत्कार तुम्हारी रक्षा कर लेगा। वामनदास बेवकूफ था। उसने तुमको अपने रंग-महल में ले जाकर रखा था, जिससे बाहर निकलने के मार्ग थे। उस समय तुम एक स्वतंत्र नागरिक थीं, परन्तु मैंने तुम्हें चारों ओर से जकड़ रखा है, तुम्हारी स्वतन्त्रता भी नष्ट हो चुकी है। तुम सम्राट् की बंदिनी हो, राजद्रोह का अपराध तुम्हारे सिर पर मढ़ा हुआ है, तुम आजीवन कैदी हो, काले पानी का दण्ड तुमको दे दिया गया है। एक प्रकार से मैंने तुम्हारा सारा भौतिक अस्तित्व मिटा दिया है। यदि तुम मरती हो तो संसार में कोई

व्यक्ति तुम्हारे संबंध में कोई प्रश्न पूछने वाला नहीं है। यह सब इसलिए कहता हूँ कि जिससे तुम्हारी परिस्थिति तुम पर प्रकट हो जाय, और किसी भ्रम में न रहो। तुम मेरे पाश को विच्छिन्न नहीं कर सकतीं! तुमको मेरा कथन मानना पड़ेगा।"

उर्मिला ने हाथ जोड़कर कहा:—"मुझे तो पामीला की भाँति समझो, मैं आपकी कन्या के समान हूँ।"

निक्सन ने अधीर होकर कहा:—"व्यर्थ समय नष्ट न करो। बस तुम्हारे लिए दो ही मार्ग हैं, या तो मेरी अंक-शायिनी बनना स्वीकार करो, या फिर मरने के लिए तैयार हो जाओ।"

उर्मिला का साहस जाग रहा था। उसने बड़ी धीरता से पूछा:—"आप उन दोनों मार्गों का पसन्द करना मेरी इच्छा पर छोड़ते हैं?"

निक्सन ने उत्तर दिया:—"हाँ, जिस मार्ग को तुम पसन्द करोगी, वही तुम्हारे साथ किया जायगा।"

उर्मिला ने तनकर खड़े होते हुए कहा:—"तो लीजिए मैं दूसरा मार्ग ही ग्रहण करती हूँ। आप गोली चलाइए। मैं मरने के लिए तैयार हूँ।"

निक्सन ने पिस्तौल उठाते हुए कहा:—"तो वैसा ही हो, यदि तुम्हारी यही इच्छा है। सामने खड़ी हो। मैं गोली चलाता हूँ।"

उर्मिला की आँखें बन्द हो गईं, और उसी क्षण निक्सन एक छलाँग में उर्मिला के पास पहुँच गया, और उसको अपनी विशाल भुजाओं के पाश में आबद्ध करके कहने लगा:—"तुमको इस प्रकार से मारने के लिए इतनी तपस्या नहीं की। पहले मैं तुमको पद-दलित करूँगा, फिर ठुकराकर और तुम्हारे ऊपर थूककर तुम्हें कुढ़ने के लिए तुम्हारे पति रामनाथ के पास भेज दूँगा।"

उर्मिला उसके पाश से निकलने के लिए छटपटाने लगी। निक्सन पागलों की भाँति उसको दबाने की चेष्टा कर रहा था। उसकी पिस्तौल उसके लिए एक बाधा हो रही थी। उसने उसको उर्मिला के पीछे, पामीला के पलंग पर फेंक दिया, और दोनों हाथों से उसे पकड़ने की चेष्टा करने लगा। वह उसको उसी पलंग की ओर धक्का देता हुआ ले जाने लगा। उर्मिला ने अपने दाँतों का प्रयोग किया, और निक्सन के भुजदण्ड में अपनी पूरी शक्ति से उन्हें गड़ा दिया। निक्सन तिलमिला उठा, और उसको उठाकर उसने पलँग पर फेंक दिया। उर्मिला वहाँ गिरी जहाँ निक्सन की पिस्तौल पड़ी हुई थी। उसने दूसरे ही क्षण उसे उठा लिया। निक्सन ने क्षत स्थान पर हाथ फेरकर जो सिर उठाया तो उर्मिला को पिस्तौल उठाते हुए

देखा। दूसरे ही क्षण वह उसकी ओर झपटा, परन्तु उर्मिला उससे अधिक तेज थी। उसने पिस्तौल उठाई ही थी कि निक्सन उसके समीप पहुँच गया, और उसको पकड़ने के लिए लपका। वह उर्मिला के बिलकुल सामने आ गया। उसने तुरन्त घोड़ा दबा दिया। उर्मिला को पकड़ते-पकड़ते पिस्तौल की गोली निक्सन के पेट में लगी। दूसरे ही क्षण सब शान्त हो गया, और वह उर्मिला के पलँग पर गिर पड़ा। उर्मिला पीपल के पत्ते की भाँति काँप रही थी। निक्सन को शांत देखकर वह पलँग से नीचे उतरकर खड़ी हो गई।

इसी समय आकाश में सैकड़ों वायुयानों का सन्नाटा सुनाई पड़ने लगा। बमों की वर्षा होने लगी। कानों के परदे फटने लगे। क्षण-भर पहले का शान्त वायु-मण्डल भीषण नाद से मुखरित होने लगा। जापानी वायुयान प्रलय का दृश्य उपस्थित करने लगे। यद्यपि अंग्रेजों के वायुयान भी, जिनको निक्सन अपने साथ लाया था, लड़ने के लिए आकाश-मार्गी हुए, और वे जापानी वायुयानों से आकाश-युद्ध करने लगे, तथापि वे संख्या में अधिक होने से उन्हें भी परास्त करके, बमों की अनवरत वर्षा कर रहे थे। उधर समुद्र में भी युद्ध आरम्भ हो गया था। जापानी युद्ध-पोत ब्रिटिश युद्ध-पोतों से कहीं बड़े और उनसे अधिक सुसज्जित थे। जापानी वायुयान उन ब्रिटिश युद्ध-पोतों पर भी बमों की वर्षा कर रहे थे, जिनसे उन पर दोहरी मार पड़ रही थी। अंग्रेजी सेना के वायुयान जलते हुए गिरने लगे, और उधर युद्ध-पोत जर्जरित होकर डूबने लगे।

पोर्ट-ब्लेयर के दुर्ग पर भी कुछ वायुयानों ने बम बरसाना आरम्भ कर दिया। पहले आक्रमण से जो कुछ अवशिष्ट रह गया था, वह भूमिसात् होने लगा। चन्द्रनाथ को भागने का अवसर मिला। उसको मजबूरन उसी कमरे में बैठना पड़ा। जापानी वायु-सेना का आक्रमण इतना अचानक हुआ था कि समुचित रूप से उसको रोकने का भी अवसर अंग्रेजी सेना को न मिला।

चार घंटे तक बराबर युद्ध होता रहा। अन्त में विजय जापानियों के हाथ रही। उनकी सेना ने अन्दमान की शहीद भूमि पर अपने चरण रखे। सबसे पहले उतरने वालों में लैफ्टीनेन्ट कर्नल यशवन्तसिंह, और उसके दोनों साथी मानसिंह और हरनामसिंह थे। उन्हें आशा न थी कि इतनी शीघ्रता से युद्ध समाप्त हो जायगा। उन्होंने उतरते ही भारत-माता की जय-जयकार की, जिसको सभी सैनिकों ने दोहराया।

अन्दमान के पहाड़ों ने उस जय-घोष की प्रतिध्वनि करते हुए उनका

स्वागत किया। जापानी सेना अवशिष्ट विरोध को समाप्त करने के लिए अग्रसर हुई।

उर्मिला अब भी हाथ में पिस्तौल लिये निक्सन के अर्ध-मृत शरीर के पास ही एक कुर्सी पर बैठी हुई थी। दुर्ग का वह भाग सुरक्षित था। कोई बम नहीं गिरा था। इसी भाँति चन्द्रनाथ भी सुरक्षित था।

अपराह्न के पहले-पहले पोर्ट ब्लेयर पर जापानी अधिकार हो गया और उसके दुर्ग पर जापानी ध्वजा फहराने लगी।

२१

प्रवासी भारतीय कैदियों पर भाग्य-लक्ष्मी प्रसन्न हुई। उसने उनके भाग्य-चक्र को उलट दिया। अब तक जो कैदी थे, वे स्वतन्त्र नागरिक घोषित हुए और जो शासक थे वे कैदी बना लिये गए। राजनैतिक कैदियों का जेल इस बार भी आक्रमण से बच गया था। जापानियों ने उस ओर आक्रमण नहीं किया और न उन्होंने हस्पताल-क्षेत्र में ही कोई बम गिराए थे। अतएव पहले की भाँति वे दोनों सुरक्षित थे।

दुर्ग में प्रवेश करने वालों में यशवन्तसिंह आदि थे। उन्होंने पहले चन्द्रनाथ को बन्दी बनाया और फिर दूसरे कमरों की ओर बढ़े। शेष सभी कमरे खाली और खुले हुए थे। जिस कमरे में उर्मिला थी; उसके सामने जब वे पहुँचे तब उसको भीतर से बन्द पाया। यशवन्तसिंह ने पदाघात करते हुए कहा:—"किवाड़ें खोलो।"

उर्मिला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे ज्ञात नहीं था कि खुलवाने वाले जापानी सैनिक हैं या अंग्रेज सैनिक। यशवन्तसिंह ने दरवाजा तोड़ने की आज्ञा दी। क्षण-मात्र में बन्दूक के कुन्दों के आघात से द्वार अलग हो गया। सामने पिस्तौल लिये उर्मिला खड़ी थी।

यशवन्तसिंह ने पूछा:—"देवि! आप कौन हैं। क्या माता दुर्गा साक्षात् दर्शन दे रही हैं।"

उर्मिला का अस्थिर चित्त शान्त हुआ। स्वदेशीय को देखकर आपत्काल में किसको शन्ति नहीं मिलती। उसने पिस्तौल फेंककर कहा:—"मैं एक साधारण कैदी हूँ। इस दुर्ग का स्वामी और ब्रिटिश सत्ता का प्रतिनिधि निक्सन वह पड़ा हुआ है। उसने मेरी मर्यादा नष्ट करने की चेष्टा की थी, किन्तु भगवान् की कृपा से मेरी लाज बच गई और वह मेरे हाथ से मारा गया। यदि इस हत्या के अपराध में मुझे गिरफ्तार करना चाहें तो मैं अपने आपको समर्पण करती हूँ।"

यशवन्तसिंह उसकी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देख रहा था। उसका

हृदय भर आया, और उर्मिला के सामने नतजानु होकर उसकी चरण-धूलि लेकर मस्तक पर लगाते हुए कहा:—"देवि, वास्तव में आप दुर्गा की अवतार हैं। आपके कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। आप-जैसी देवियों के उत्पन्न होने से ही आज भी भारत का सिर ऊँचा है। इस कुत्ते को मारकर आपने अपनी ही लाज नहीं बचाई, वरन् भारत की लाज बचाई है। मुझको आप कृपा करके अपने पुत्र होने का गौरव प्रदान करें।" उसने पुनः उसकी पद-रज को सिर पर धारण किया।

यशवन्तसिंह ने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा:—"भाइयो इस दूर प्रदेश में मुझको और तुमको एक माता अनायास प्राप्त हुई हैं। इन्होंने इस द्वीप के गवर्नर को यमलोक पहुँचाकर हम लोगों को उस परिश्रम से बचा लिया है। यही नहीं, वरन् एक आततायी के हाथों से अपनी मर्यादा की भी रक्षा की है, ऐसी नारियों के बल पर आज दिन भी भारत का सिर दूसरे देशों के समक्ष उन्नत है। आप लोग भी इनकी चरण-धूलि लेकर इनका आशीर्वाद प्राप्त करें। सैनिकों ने उर्मिला का अभिवादन किया। फिर उन्होंने जयनाद किया। उनके जयनाद की तुमुल ध्वनि ने उस दुर्ग को हिला दिया।

संध्या के आगमन के पूर्व ही सहसा अवशिष्ट ब्रिटिश सत्ता के छोटे और बड़े प्रतिनिधि गिरफ्तार कर लिये गए। गिरफ्तार होने वालों में पामीला और मिसेज निक्सन भी थीं, जो हस्पताल में रहने के कारण वायुयानों के आक्रमण से बच गई थी। डाक्टर सेन भी गिरफ्तार नहीं हुए थे, क्योंकि वे भारतीय थे। समस्त राजनैतिक कैदी मुक्त कर दिये गए। उर्मिला ने यशवन्तसिंह से कनक का परिचय देकर उसको बुला देने की इच्छा प्रकट की।

पिछली रात्रि की घटना के पश्चात् कनक रामनाथ के सम्मुख नहीं जाने पाई थी; क्योंकि निक्सन ने उसको प्रातःकाल पुनः जेल में भिजवा दिया था। वह समस्त दिन अपने मानसिक पतन पर विचार करती रही। दोपहर से ही वायुयानों का आक्रमण आरम्भ हो गया। वह मरने के लिए आतुर हो गई। वह अपनी उस क्षणिक कमजोरी से इतनी लज्जित हो गई थी कि वह अपना मुख किसी को दिखाना नहीं चाहती। परन्तु कोई बम उसके यहाँ न गिरा और वह जीवित रही। यशवन्तसिंह के आदेश से जब वह दुर्ग में उपस्थित की गई तो उर्मिला उसके स्वागत के लिए आगे बढ़ी। अब भी सन्ध्या की लालिमा अवशेष थी। उर्मिला को वहाँ देखकर वह हतबुद्धि-सी खड़ी रह गई। उसने पहले अपनी आँखों का भ्रम समझा और प्रश्न किया:—"कौन, उर्मिला!"

उर्मिला ने उसकी पद-धूलि लेते हुए कहा—"हाँ, दीदी मैं हूँ उर्मिला!" तुम्हारी उर्मिला!" उसको उठाकर कनक ने अपने हृदय से लगा लिया।

यशवन्तसिंह को उर्मिला के द्वारा उसका पूर्व इतिहास विदित हो चुका था। उसने उसको प्रणाम करते हुए कहा:—"मेरे दो बड़े भाई महावीर-सिंह और सन्तसिंह हैं। वे दोनों कानपुर के वीनस मिल में मजदूर थे। जब आपने मजदूरों का नेतृत्व किया था, तब उन्होंने भी आपको अपना नेता स्वीकार किया होगा। उस नाते से मैं भी आपको नेता रूप में स्वीकार करता हूँ। इसके अतिरिक्त आपने भारत के उद्धारक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया है। इसलिए भी आप हमारी पूज्य हैं। सबसे श्रेष्ठ बात तो यह है कि जिनको मैंने अपनी माता रूप में ग्रहण किया है; उनकी आप आश्रय-दाता, और रक्षक रही हैं, इस हेतु भी आप हमारे सम्मान की अधिकारिणी हैं। आपके और माताजी के अधिकार बराबर रहेंगे।" कनक को सहसा सन्तू और महावीर का स्मरण हो आया जब वह शराबबन्दी के आन्दोलन में उनके घर गई थी। और उसके पश्चात् वह घटना भी याद आई जब रामनाथ की अपील के पश्चात् वह इलाहाबाद से मोटर पर आ रही थी, और पेट्रौल समाप्त हो जाने पर उनके घर में एक दिन ठहर गई थी।

कनक ने पूछा:—"क्या आप सिधौली ग्राम के ठाकुर बलवन्तसिंह के लड़के हैं।"

इसके आगे वह कह न पाई। यशवन्तसिंह ने बीच ही में कहा:—"हाँ, यही मेरे पूज्य पिता का नाम है, और यही ग्राम का भी नाम है। आप यह कैसे जानती हैं? बोलिए, क्या आप मेरे घर गई थीं, क्या आपने मेरे बापू को देखा था, क्या आप अम्मा से मिली थीं। अम्मा का नाम लछिमिन है। हम लोग बहुत गरीब घर के हैं। भाई हमारे शराबी थे। वे कुछ भी कमाकर न भेजते थे। घर का खर्च चलता न था। उन दिनों फौज की भरती हो रही थी। सेठ साहबदीन बापू से बहुत रुपया माँगता था, वह उनके खिलाफ मुकदमा दायर करने को कहता था। उससे बचने के लिए मुझको फौज में भरती होना पड़ा। यों तो मैं भी कांग्रेसी था; परन्तु पेट के लिए नौकर होना पड़ा। मौका मिलने पर मैं अपने कुछ साथियों के साथ अंग्रेजी फौज त्यागकर जापानियों की फौज में चला आया। जापान ने भारत की पर-तंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने का वचन दिया है। और उसी हेतु इस भूमि पर, जो भारत के साथ सम्बद्ध है, पुनरुद्धार करने के लिए मुझे नियुक्त किया है। क्षमा कीजिएगा, मैं तो अपनी कहानी सुनाने लगा। हाँ तो क्या आपने मेरे बापू और अम्मा को देखा है, वे अच्छे तो हैं।"

कनक ने उत्तर दिया:—"हाँ मैं और उर्मिला दोनों इलाहाबाद से लौटते हुए पेट्रौल समाप्त हो जाने से तुम्हारे गाँव गई थीं, और एक दिन रही भी थीं। उस समय तुम्हारे बापू और अम्मा दोनों स्वस्थ थे। वे तुम्हारी याद बार-बार करते थे!"

यशवन्तसिंह गद-गद हो गया। उसने उसकी पद-धूलि सिर पर लगाते हुए कहा:—"तब तो आप मेरे बहुत निकट होगई हैं। आपने वहाँ आतिथ्य ग्रहण किया था, और आज मुझे धन्य कीजिए।"

कनक ने हँसते हुए कहा:—"वह तो करना ही है।"

यशवन्तसिंह ने कहा:—"यों नहीं, हमारी नेता होकर। आपकी ही आज्ञानुसार यहाँ का सारा शासन-यन्त्र परिचालित होगा। आपके ज्ञान. अनुभव और विद्या के ही सहारे यह भार ग्रहण करूँगा, नहीं तो जापान सरकार को किसी दूसरे आदमी के भेजने की प्रार्थना करूँगा।"

कनक ने प्रसन्न होकर कहा:—"नहीं आप इस भार को उठायें, और भारत को स्वतन्त्र करने में सफलता प्राप्त करें। यही प्रार्थना हम लोग भगवान् से बराबर करेंगी।"

रात्रि के एकान्त में उर्मिला और कनक ने बीती बातों का आदान-प्रदान किया। चन्द्रनाथ के आगमन की बात सुनकर कनक ने कहा—"अब उससे उस जाली 'विल' का समस्त हाल पूछूँगी। निक्सन अभी मरेगा नहीं। पेट में लगी गोली से बहुधा आदमी बच जाता है। दोनों का षड्यन्त्र खुलने में अब सुविधा रहेगी।"

उर्मिला ने कहा:—"पामीला और मिसेज़ निक्सन को तो छुड़ाना ही होगा। कल ही उनको यशवन्त से कहकर छुड़ाइयेगा। पामीला का मेरे ऊपर बड़ा अहसान है। यदि वह न होती तो दुष्ट निक्सन के कारण मुझे कभी का प्राण-त्याग करना पड़ता?"

रामनाथ के सम्बन्ध में उर्मिला जानने के लिए उत्कण्ठित थी। कनक भी कहने के लिए आकुल थी, किन्तु केवल एक रात पूर्व वह अपनी क्षणिक निर्बलता के कारण अपनी दृष्टि में स्वयं गिर गई थी। अन्त में उसने धीरे-धीरे सब हाल उसकी बीमारी और सुश्रूषा का बताया। रामनाथ को जीवित सुनकर उसके हृदय का बड़ा भारी बोझ टल गया। किन्तु उसको देखने के लिए उसकी व्यग्रता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

२२

चन्द्रनाथ ने जो बयान लिखकर उपस्थित किया वह इस प्रकार था:

"मेरा नाम चन्द्रनाथ नहीं है, बल्कि जेम्स विलसन है। यह मेरा

कल्पित नाम है, जिसको मैंने बाद में रख लिया था। बम्बई प्रान्त में पूना के समीप एक पहाड़ी स्थान 'लोनावला' नामक है। यहाँ का जल-वायु उत्तम तथा स्वास्थ्यकर है। बम्बई के धनी-मानी अपने अवकाश के दिनों में यहाँ आया करते थे, और प्रमोद में अपने दिन बिताते थे। मेरी माँ मिसेज़ विलसन, जो एक यूरेशियन महिला थीं, अपने एक बँगले में रहती थीं। सेठ वामनदास अपने यौवन की प्रथम दशाब्दि में वहाँ आकर कुछ दिन ठहरे थे। उन दिनों उसका व्यवसाय चल निकला था और लक्ष्मी की कृपा होनी उन पर आरम्भ हो गई थी। उन्हीं दिनों उनका परिचय मेरी माँ अर्थात् मिसेजं विलसन से हो गया। मिसेज विलसन जिनका कुमारीपने का नाम था अमीलिया जानसन; अपने पति का नाम छोड़कर अपने कुमारी नाम से विख्यात थीं। मिस्टर विलसन अर्थात् मेरे पिता का देहान्त हो गया था, इसलिए वे मुझको अपने साथ लेकर रहती थीं। मिस्टर विल्सन बम्बई के रहने वाले थे और वे रेलवे कर्मचारी थे। उनकी मृत्यु रेलगाड़ी लड़ जाने से हुई थी, जिसकी क्षति-पूर्ति में मेरी माँ को इतना धन मिल गया था, जिससे वे स्वतंत्र रूप से अपना जीवन व्यतीत कर सकती थीं। जिस समय सेठ वामनदास का मेरी माँ से परिचय हुआ, मेरी वयस सोलह वर्ष की थी, तथा मैं सांसारिक व्यवहारों को समझने लगा था। अपनी माँ के साथ वामनदास की घनिष्ठता को मैं अच्छा नहीं समझता था, उसका विरोध भी किया करता था। कई बार मैंने सेठ जी को अपने घर आने के लिए स्पष्टतः मना कर दिया, परन्तु मेरी माँ मेरे व्यवहार से असन्तुष्ट रहती और मुझे डाटती थी। मैंने उनसे भी एक दिन कह दिया कि उनके इस काम में मेरे पिता के नाम की अप्रतिष्ठा है; जिसे मैं सहन नहीं कर सकता। मैंने सेठ जी को मारने की भी धमकी दी। इससे उनको बहुत कष्ट हुआ और सेठजी का भी आना-जाना कुछ दिनों के लिए बंद हो गया। मैं कुछ निश्चिन्त हो गया। एक दिन मेरी माँ ने मुझसे कहा कि वह मुझको शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड भेजना चाहती है। इस प्रस्ताव से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझे शीघ्र ही पहली बोट से इंग्लैंड भेजना निश्चित कर दिया। वास्तव में मेरी माँ और सेठ वामनदास ने मुझसे पीछा छुड़ाने के लिए यह उपाय खोज निकाला था। मेरे चले जाने के बाद मेरी माँ खुलम-खुल्ला सेठ की रखैल-स्त्री होकर रहने लगी। जब कभी मैं भारत आने की बात उठाता, तब मेरे पास कुछ अधिक रकम पहुँच जाती और योरोप के भिन्न-भिन्न नगरों में घूमने का आदेश मिलता। इंग्लैंड में मैं जिस परिवार को साथ रहता था, वह मिस्टर निक्सन का परिवार था। यह

वही निक्सन है, जो कानपुर में कुछ दिनों जिलाधीश रहे और बाद में अन्दमान के गवर्नर तथा शासक नियुक्त हुए थे। मेरे पास द्रव्य की कमी नहीं थी; क्योंकि सेठ वामनदास व्यय के विषय में मुक्तहस्त था। वह मुझे आवश्यकता से अधिक रुपया भेज दिया करता था, जिससे मैं भारत लौटकर उनके सुख-भोग का काँटा बनकर न खटकूँ। अनुमोदन से मैंने सब कुछ जान लिया था; परन्तु अब उस बात पर विशेष ध्यान नहीं देता था। इंग्लैंड में रहते हुए निक्सन परिवार से मेरी घनिष्ठता बढ़ती गई। उनकी माँ मुझे अपने पुत्र निक्सन की भाँति-ही मानती थी तथा मैं भी उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उनकी मैंने कई बार धन और तन से सहायता की थी, जिसका अहसान मिस्टर निक्सन बराबर मानते रहे। इंग्लैंड में रहकर मैं भी कुछ ऐयाश हो गया था, क्योंकि धन की प्रचुरता से वहाँ सहज ही सब आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं। इधर मेरी माँ से वामनदास का सम्बंध-विच्छेद हो गया। सेठजी एक रँगीली तबियत के पुरुष थे। जिनका काम केवल आमोद-प्रमोद तथा रुपया पैदा करना था। व्यापारिक उन्नति उनकी निरन्तर हो रही थी और उनकी प्रतिष्ठा भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। मेरी माँ से उनका संबंध-विच्छेद हो जाने के पश्चात् उन्होंने पैसा भेजना बंद कर दिया। व्यय बंद हो जाने से मुझे अनेकों कष्ट उठाने पड़े। मैं किसी प्रकार वहाँ से भागकर भारत आया। यहाँ आकर मैंने अपनी माँ को अत्यन्त गिरी हालत में पाया। उसके द्वारा ज्ञात हुआ कि सेठ ने उसको बुरी तरह धोखा दिया, तथा उसके पास का धन भी उन्होंने कौशल से हस्तगत करके उसको भूखों मरने के लिए छोड़ दिया है। इससे मुझे उन पर बड़ा क्रोध आया तथा प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा उसके मरण-काल में की। मैं अपनी माँ के मरने के पश्चात् बम्बई के एक सालीसिटर के यहाँ नौकर हो गया और जीवन-यापन करने लगा। उन दिनों सेठ जी भारत के बाहर भ्रमण करने गए थे, इसलिए उनसे साक्षात् न कर सका। इधर मुझे जुआ खेलने का भी व्यसन हो गया था। जुआ मेरे लिए सदा लाभदायक सिद्ध हुआ है, किन्तु उसने मुझको अपने कई दुर्गुण भी दिए। एक उनमें था जाल रचना। मैं अपने कार्यालय में अनेकों प्रकार के हस्ताक्षर देखा करता था, अतएव उनकी ही प्रतिलिपि उतारने का अभ्यास किया करता था। इससे मुझे इतना अभ्यास हो गया था कि कठिन-से-कठिन हस्ताक्षरों की यथावत् प्रतिलिपि उतार लेता था। मैंने अपने अभ्यास की परीक्षा लेनी आरम्भ की और कितनी ही जाली चैकें बैंक से भुना लीं। सौभाग्यवश एक बार पकड़ा भी गया, तथा दो वर्ष

की जेल भी काट आया। जेल में मेरा साक्षात् एक ऐसे बदमाश से हुआ जिसने वामनदास के कहने पर एक पुरुष की हत्या कर डाली थी, जिसकी स्त्री से उनका सम्बन्ध हो गया था। जब वह पकड़ा गया तो सेठ ने उसके भाग्य पर छोड़ दिया, और उसको बीस वर्ष की सजा हुई थी। जेल से निकलने के पश्चात् मैंने इस गुप्त वार्त्ता से लाभ उठाना चाहा। मैं सेठ से मिलने का मौका ढूँढ़ने लगा। जेल काटने से मैं दागी हो गया था, इसलिए उनसे पहले छिपकर एकान्त में मिलना चाहता था। सहसा एक दिन मसूरी में उनसे साक्षात् करने का एकान्त में अवसर मिल गया। उस दिन उन्होंने मुझे टाल दिया, और दूसरे दिन मिलने को कहा। अब सेठ जी मुझे गिरफ्तार कराने का प्रयत्न करने लगे। मैं फिर एकान्त पाकर उसके पास गया, उस दिन वे अपनी लड़की कनक के साथ घूम रहे थे। मैंने उस दिन स्पष्ट बातें कह दीं कि यदि वे मुझे पकड़वाने की चेष्टा करेंगे तो मैं जेल से उस व्यक्ति को पेश करूँगा, तथा जिसको उन्होंने मरवाया है उसका मुकदमा फिर से चलवाऊँगा। सेठजी इससे बहुत भयभीत हुए। उन्होंने मुझको द्रव्य देकर दूर हटाना चाहा, परन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया और उनका प्राइवेट सेक्रेटरी बनने के लिए अपना प्रस्ताव रखा। मेरी बात मानने के अतिरिक्त उनके पास कोई दूसरा उपाय नहीं था। उनका प्राइवेट सेक्रेटरी होकर मैंने सारे काम-काज अपने हाथ में कर लिए, तथा उनको केवल हस्ताक्षरों के लिए छोड़ दिया। हाँ उनके खर्च खाते में मैं किसी प्रकार की रुकावट न डालता था, इससे मेरी उपस्थिति उन्हें विशेष दुःख-प्रद नहीं थी। उन्होंने उच्च शिक्षा देने के लिए कनक को इंग्लैंड भेजना चाहा, इसमें मैंने कोई आपत्ति नहीं की। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। कनक बैरिस्टर होकर लौट आई और वह प्रैक्टिस भी करने लगी। मेरे भाग्य से मेरे पुराने मित्र निक्सन कानपुर आ गए और उनके साथ मेरी घनिष्ठता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक दिन मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वामनदास की समस्त सम्पत्ति को हथिया लूँ। इस विचार से मैंने एक जाली 'विल' बनाई और निक्सन को मिलाकर उससे शनाख्त करवा दी। निक्सन रुपए का लोभी था, मैंने उसको रुपयों का लोभ दिया और वह मेरी आज्ञाओं का यथावत् पालन करने लगा। कनक का रूप देखकर मैं उस पर लुब्ध हो गया था और उसके साथ विवाह करके वामनदास की सम्पत्ति हस्तगत करने का विचार था; परन्तु साथ ही वह जाली विल भी तैयार कर ली थी जिसके दबाव से मैं उससे विवाह करना चाहता था। इसी समय वामनदास की हत्या रामनाथ द्वारा हुई। पहले मैंने कनक को मीठे

शब्दों द्वारा अपने वश में करना चाहा; परन्तु उसके उग्र स्वभाव और मेरे साथ अपमान जनक व्यवहार से मुझको वह जाली 'बिल' बता देने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके पश्चात् घटनाओं ने जैसा मार्ग ग्रहण किया वह सब स्पष्ट ही है। वामनदास की बिल जाली है, मेरा उस पर कोई वैध अधिकार नहीं है। मैं इसके द्वारा खुले न्यायालय में प्रकाशित करता हूँ कि वामनदास की अवशिष्ट सम्पत्ति पर कनक का अधिकार है और वह उसकी वैध सन्तान है। देवकीनन्दन से जो कुछ मैंने कहा वह झूठ है। इसके पश्चात् चन्द्रनाथ के हस्ताक्षर थे, और न्यायालय के अध्यक्ष तथा साक्षियों के हस्ताक्षर ही थे।

एक दूसरे पत्र द्वारा निक्सन ने भी अपने मृत्यु समय के बयान में बताया था कि उसने चन्द्रनाथ द्वारा बनाई हुई जाली 'बिल' में अपनी शनाख्त के जो हस्ताक्षर किए थे; वह बिलकुल जाली था। वामनदास की सम्पत्ति की स्वामिनी वास्तव में कनक है।"

चन्द्रनाथ को न्यायालय ने कई अपराधों के अभियोग में दस वर्ष की कड़ी सजा दी।

निर्णय सुनने के पश्चात् पामीला ने मलिन मुस्कान के साथ कहा:—"बधाई है कनक!"

कनक ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—"सम्पत्ति तो यहाँ है नहीं; और कब मिलेगी; कोई नहीं जानता। परन्तु इतना तो मैं भी कहूँगी कि जिस वस्तु को मैं त्याग चुकी हूँ उसको पुनः ग्रहण नहीं करूँगी। पूँजी ही सब आपदाओं का मूल है। संसार का जितना संघर्ष होता है वह सब पूँजी के लिए होता है। पूँजी प्राप्त करना सहज है; किन्तु उसका समान भाव से वितरण ही एक समस्या है; जिसके न सुलझने के कारण संसार में युद्ध-पर-युद्ध हो रहे हैं, तथा वे होते जायंगे। पूँजी के आगमन के साथ ही स्वार्थ भाव उत्पन्न होता है; जो समाज की प्रगति के लिए सदैव बाधा के रूप में स्थिर रहेगा। समाज की उन्नति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि उत्पन्न पूँजी के वितरण के उपाय नहीं खोज लिये जाते। समत्व की प्रतिष्ठा से समाज उन्नति करेगा; नहीं तो कलह का कभी अवसान नहीं होगा। पूँजी की स्वार्थ-भावना का नाश होना चाहिए। जब तक उसके मन में यह विचार उत्पन्न नहीं होता कि जो कुछ वह उपार्जन करता है; समाज के कल्याण के लिए पैदा करता है; तब तक पूँजीपतियों का भविष्य अन्धकारमय रहेगा; और समाज में शान्ति किसी भाँति स्थापित नहीं होगी।"

उर्मिला ने धीमे स्वर में कहा:—"क्षमा करना बहनो, इस समस्या

का समाधान हमारे पूर्वजों ने पा लिया था। वे प्रतिवर्ष, प्रति दशाब्दि अथवा एक नियत काल में अपनी पूँजी को समाज के वाञ्छनीय अंगों में वितरित करके साम्य स्थापित करने का उद्योग करते थे। राजा अपनी सब सम्पत्ति को अपनी प्रजा में वितरित कर देता था, व्यापारी और वणिक-समाज में भी यही प्रथा थी। आज दिन भी अपने देश में दान की बड़ी-बड़ी व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। इसीलिए दान को इतना बड़ा महत्त्व प्रदान किया गया है। 'हमारे संचय में हो दान' यही एक सामाजिक कल्याण का मार्ग है। आजकल मानव एकाकी होकर अपनी कल्याण-कामना करता है—जब वह अपने को समाज का एक सम्बद्ध अंश होकर उन्नति के विचार करेगा, तभी समाज का कल्याण, देश का कल्याण, और मानव-मात्र का कल्याण होगा। समस्त वसुधा को कुटुम्ब समझ कर जो भी कार्य किया जायगा, उसमें सबका हित होने से अपना हित होना तो स्पष्ट ही है।"

पामीला ने कहा:—"हाँ इससे मैं भी सहमत हूँ। मेरे पिता ने जो कुछ उत्पन्न किया, वह केवल अपने हित-साधन के लिए था, किन्तु उनका हित कुछ नहीं हो सका। अपने पाप से कमाए हुए धन को भोगने से पहले ही वे संसार से चले गए। आज उनको कितने परिवार अभिशाप दे रहे हैं। उनका मार्ग लोक-कल्याण का मार्ग नहीं था; इसीलिए वे इस प्रकार आहत हुए! मैं भी इस धन का उपयोग नहीं करना चाहती। मैं एक 'बिल' करती कि 'भारत स्वतंत्र होने पश्चात् उन्हीं मजदूरों में यह सम्पत्ति वितरित कर दी जाय, जिनका रक्त इसमें सना हुआ है। किसी के भी रक्त-रञ्जित पैसों में कल्याण नहीं हो सकता। कल्याण की भावना से किया हुआ उपार्जन सद् भावनाओं से वेष्टित होगा, और उसकी प्रतिक्रिया सदैव कल्याणकारी ही होगी।"

रामनाथ ने उसका समर्थन करते हुए कहा:—"सत्य ही कल्याण का मार्ग स्वार्थ-विसर्जन में है। स्वार्थ-त्याग में है?"

यशवन्तसिंह ने गंभीर वाणी में कहा:—"इसी लोक-कल्याण का पाठ हमें स्वतंत्र भारत में पढ़ाना है। लोक-कल्याण में ही अपना कल्याण निहित है। स्वतंत्र भारत में पूँजी का उपार्जन समाज, देश, राष्ट्र और विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर किया जायगा। सबके समान हित होंगे, सबके समान अधिकार होंगे और सबके समान कर्तव्य होंगे। समाज का यदि एक भी गलित अंग है तो समस्त समाज दूषित है; अकेला वही अंग नहीं। इसी प्रकार, देश, राष्ट्र, और विश्व के

लिए भी यही नियम लागू है। यदि स्वार्थ-भावों का विसर्जन हो जायगा तो समस्त भौतिक और आधिभौतिक पापों तथा त्रयतापों का विसर्जन स्वतः हो जायगा।" अठखेलियाँ करता हुआ चञ्चल मलय मारुत उनके सन्देश को भारत के प्रत्येक घर में प्रचारित करने के लिए अधीर होने लगा।

२३

पोर्ट ब्लेयर शान्त था, नीलरत्नाकर शान्त था। उसके तट को चुम्बन करते हुए जल-यान खड़े थे। पोर्ट ब्लेयर का नवनिर्मित एयरोड्रोम समुद्री हवा से शीतल और मनोमुग्धकारी प्रतीत होता था। एक वायुयान उड़ने के लिए तैयार हो रहा था। थोड़ी देर में वहाँ लोग एकत्रित होने लगे। उनमें रामनाथ, उर्मिला, यशवन्तसिंह, मानसिंह और हरनामसिंह सभी थे। सबके मध्य में कनक, पामीला और मिसेज निक्सन थीं। उनके गले में अन्दमान के सुगन्धित पुष्पों की मालाएं पड़ी हुई थीं। लगभग सभी के नेत्रों में विदाई का खारा जल भरा हुआ था। सबके कण्ठ अवरुद्ध हो रहे थे।

उर्मिला ने कनक से कहा:—"दीदी, क्या सच ही तुमने यहाँ से प्रस्थान करने का विचार निश्चित कर लिया है, यह तो कहो, मुझको किसके सहारे छोड़े जाती हो।"

कनक ने उसके कपोलों पर गुलचा मारते हुए कहा:—"पगली, तुझको तेरा सर्वस्व सौंपकर जाती हूँ, जहाँ जाती हूँ, वहाँ तेरे लिए स्थान नहीं है। घायलों की सेवा-सुश्रूषा करने का अधिकार विवाहिता नारी को नहीं है, उसका अधिकार पहले अपने स्वामी की सेवा, सत्कार और आदर करने का है। क्या तुमको भी यह पाठ पढ़ाना पड़ेगा।"

यशवन्तसिंह ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा:—"दीदी तुमने वचन दिया था कि तुम यहाँ का शासन-भार सँभालने मे मेरी सहायता करोगी, क्या वह भूल गईं। तुम्हारा नेतृत्व न पाकर क्या मैं यह भार वहन करने में समर्थ हो सकूँगा।"

कनक ने उत्तर दिया:—"क्यों नहीं भाई, तुम स्वयं चतुर हो, और तुम्हारे लिए तुम्हारी माता रूप उर्मिला तो यहीं है। मैं तो न जाती, किन्तु घायलों का आर्त्तनाद मुझे बारम्बार अपनी ओर घसीट रहा है। जरा उन भारतीय वीरों की दशा विचारो, जो अपनी मातृभूमि की दासता दूर करने के प्रयास में घायल और आहत होते हैं। उनको शान्ति प्रदान करना, उनको धैर्य बँधाना; यह भी तो आजकल के युद्ध के समय एक आवश्यक सेवा, और कर्त्तव्य-पालन है। शासन-भार सँभालना

कोई कठिन कार्य नहीं है, थोड़ी-सी बुद्धि रखने वाला ईमानदार इस कार्य को सहज ही सम्पन्न कर सकता है। परन्तु जो युद्ध में प्राण-विसर्जन करने जाते हैं, और आहत हो जाते हैं, उनको प्राण-विसर्जन के लिए पुनः सन्नद्ध करना भी तो एक कार्य है, जिसको पुरुष सम्पादन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। उसको करने के लिए भगवान् ने नारी-जाति की रचना की है। भगवान् सबकी रचना के साथ उसका कर्त्तव्य मार्ग भी निर्धारित कर देते हैं। इसी प्रकार जब उसने नारी मानव की रचना की तो उसने उसके लिए तीन कर्त्तव्य निर्दिष्ट किये: प्रथम त्याग, दूसरा क्षमा और तीसरा सेवा। इसी त्रिगुणात्मक का नाम नारी मानव रखा है, और यही तीन भेद उस के कोमल कल्याणकारी और शान्ति, आनन्द प्रदान करने वाले गुण हैं। भगवान् ने अपने कुछ गुणों को पुरुष मानव को प्रदान किया, और कुछ को नारी मानव को। दोनों में अपने गुणों को समभाग में बाँटकर स्वयं निर्गुणी हो गया। अतएव पुरुषों और नारियों को, जो भगवान् के ही रूप हैं, अपने-अपने निर्धारित कार्यों तथा कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। इसी में समाज, लोक और विश्व-कल्याण समाविष्ट है। मैं जाती हूँ, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैं आऊँगी नहीं। जब जापान सरकार ने कृपा करके श्याम, मलय आदि पूर्वीय देशों के प्रवासी भारतीयों को संगठित करने की आज्ञा प्रदान कर दी है, तब हमको उस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। हमें क्षणिक मोह में आकर यह न भूल जाना चाहिए कि सहानुभूति महान् कार्य है, वह है अवशिष्ट भारत को अंग्रेजों के पञ्जों से स्वतंत्र करना। मैं दोनों कार्य करूँगी घायलों की सेवा भी और भारतीयों का संगठन भी। अपने साथ पामीला को इसीलिए लिये जाती हूँ, जिससे वह भी इस पुण्य कार्य में हाथ बटावे, अपने पूर्वजों के किये गए पापों का प्रायश्चित्त करे। आओ, पामीला; वायुयान पर बैठें। वह तैयार है, हमारी राह देख रहा है।"

कनक सबको नमस्कार करती हुई, वायुयान के समीप पहुँच गई। उर्मिला ने दौड़कर उसको पकड़ लिया। उसकी आँखों से गंगा-यमुना की धाराएं बह रही थीं। कनक ने अपने को छुड़ाते हुए कहा:—"अभी अधीर होती है। शान्त होकर अपना निर्दिष्ट कर्त्तव्य पालन कर। मनुष्य का जन्म केवल कर्त्तव्य-पालन के लिए ही हुआ है।"

कनक वायुयान में जाकर बैठ गई। उसकी बगल में पामीला और मिसेज निक्सन ने भी आसन ग्रहण किया। वायुयान एक भर्राटा लेकर उड़

चला। देखते-देखते थोड़ी देर से वह आकाश मार्गी हो गया। उर्मिला अचेत होकर गिर पड़ी।

आकाश-पथ में जाते हुए; कनक ने कहा:—"पुराने जीवन का यही विसर्जन है, और होता है अब नए जीवन का प्रारम्भ तथा नए कर्त्तव्य-पालन का श्रीगणेश। मलय मारुत भी उसे सकारने लगा।

—: समाप्त :—

